हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना और डॉ. रामविलास शर्मा

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

1995

शोधार्थी

रामप्रकाश एम. ए.

शोध निर्देशक और विभागाध्यक्ष

प्रो. शशि मुदिराज डी. लिट्.

हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500 046.

Certificate / Declaration

Name of the research scholar : RAMPRAKASH
Department : HINDI
University of Hyderabad

This is to certify that I, RAMPRAKASH have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph.D. Ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any university.

Date : 11/1/96

SIGNATURE

11-1-96
(RESEARCH SUPERVISOR)

11-1-96
(HEAD OF DEPARTMENT)
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

K.K. Ranganathan
(DEAN OF SCHOOL)
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad.
Hyderabad-500 134.

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

	प्राक्कल्पना	
	विषय-प्रवेश	
0	डॉ. रामविलास शर्मा : साहित्यिक परिचय	
	अध्याय : एक	1-43
1	मार्क्सवाद और हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना	1
1.1	हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवेश	3
1.2	भारतीय साहित्य परिषद् : प्रथम साहित्यिक जागरण	9
1.3	प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और उद्देश्य	14
1.4	प्रगतिशील समीक्षा का विकास	23
1.5	प्रगतिशील समीक्षा के मानदण्ड	32
	अध्याय : दो	44-84
2	डॉ. रामविलास शर्मा की सैद्धांतिक अवधारणायें	44
2.1	मार्क्सवाद एवं प्रगतिशील साहित्य	45
2.2	हिन्दी नवजागरण	50
2.3	हिन्दी जाति	59
2.4	साहित्यिक तत्व विषयक अवधारणा	67
2.5	साहित्येतिहासिक विषयक मान्यता	81

पृष्ठ संख्या

	अध्याय : तीन	85-257
3	डॉ. रामविलास शर्मा का काव्यालोचन	85
3.1	वाल्मीकि : मानवीय संवेदना के कवि	87
3.2	कालिदास : सामंती परिवेश का उदात्त चरित्र	92
3.3	मध्यकालीन भक्ति साहित्य बनाम संत-साहित्य	100
3.4	तुलसी-साहित्य : सामंती मूल्यों का अतिक्रमण	103
3.5	मध्यकालीन भक्ति-काव्य और गेयता	112
3.6	संत-काव्य की विद्रोही भूमिका	115
3.7	भक्ति आंदोलन : जातीय उत्थान का प्रतीक	118
3.8	रीतिकालीन साहित्य : सामंती पतन का द्योतक	121
3.9	आधुनिक कविता : नवीन चेतना की अभिव्यक्ति	126
3.10	प्रसाद-काव्य : लोक-कल्याण की कामना	133
3.11	पंत की कविता : मध्यवर्ती-पंथ और समझौतावादी प्रवृत्ति से परिपूर्ण	134
3.12	निराला-काव्य : विद्रोही-चेतना की अभिव्यक्ति	145
3.13	महादेवी साहित्य : प्रेम और वेदना का समन्वय	156
3.14	दिनकर का काव्य : यथार्थ दर्शन और काल्पनिक श्रृंगार का मिश्रण	158
3.15	बच्चन की कविता : वेदना की टीस और आशा की उमंग	164
3.16	उत्तर छायावादी काव्य : यथार्थवादी भूमि पर अंकुरित	167
3.17	अज्ञेय का काव्य : छायावादी रुझानों से आच्छादित	178
3.18	गिरिजा कुमार माथुर : छायावादी सौंदर्य और क्रांति के पक्षधर	181

पृष्ठ संख्या

3.19	मुक्तिबोध साहित्य : आत्म-संघर्ष और रहस्यवादी रुझानों से ग्रस्त	183
3.20	शमशेर का काव्य : रूमानियत और रीतिवाद का संगम	207
3.21	प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य-साहित्य : विरोधी वृत्तियों से विकसित	211
3.22	केदार की कविता : क्रांतिकारी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का काव्य	220
3.23	नागार्जुन : राजनीतिक जागरण और लोक-संस्कृति के कवि	233
3.24	त्रिलोचन-काव्य : जातीय चेतना और संघर्षशील जनता का साहित्य	237
3.25	नयी कविता के विकास के विभिन्न सोपान	242
	अध्याय : चार	258-375
4	डॉ. रामविलास शर्मा का गद्यालोचन	258
4.1	भवभूति के नाटक : मानवीय संवेदना का विस्तार	258
4.2	शरत् का कथा-साहित्य : मनोवैज्ञानिक विवेचन	267
4.3	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : आधुनिक चेतना के संवाहक	272
4.4	भारतेन्दु-युगीन साहित्य का नया मूल्यांकन	285
4.5	प्रेमचन्द का पुनर्मूल्यांकन	296
4.6	प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य : सेक्स सज्जा और यौन विकृतियाँ	310
4.7	वृन्दावन लाल वर्मा : ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की सार्थकता	315

पृष्ठ संख्या

4.8	मार्क्सवादी उपन्यासकार यशपाल : रचना एवं विचारधारा का समग्र मूल्यांकन	329
4.9	अमृतलाल नागर : मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष और चेतना	337
4.10	आँचलिक उपन्यास : भारतीय और प्रगतिशीलता का समुच्चय	352
4.11	हिन्दी कथा-साहित्य : सामाजिक विषमता और लोक-कल्याण	359
4.12	गद्य-समीक्षा के अन्य रूप	372
	अध्याय : पाँच	376-454
5	डॉ. रामविलास शर्मा का समीक्षालोचन	376
5.1	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की आलोचन का समग्र मूल्यांकन	376
5.2	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की समीक्षा-दृष्टि की आलोचना	411
5.3	डॉ. नगेन्द्र की आलोचना-दृष्टि का समीक्षात्मक विश्लेषण	426
5.4	डॉ. नामवर सिंह की आलोचना-पद्धति का विवेचन	437
	अध्याय : छः	455-514
6	डॉ. रामविलास शर्मा की जीवनी-परक आलोचना	455
7	उपसंहार	
	परिशिष्ट	
	(क) डॉ. रामविलास शर्मा से साक्षात्कार	
	(ख) डॉ. रामविलास शर्मा की समग्र कृतियाँ	
	ग्रन्थानुक्रमणिका : आधार-ग्रन्थ, सहायक-ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाएँ	

प्राक्कल्पना

बीसवीं सदी के अंत तक आते-आते संपूर्ण विश्व में पूँजीवादी प्रभुसत्ता का आतंक और उसके द्वारा संचालित शासन तंत्र का शोषण चक्र भयावह रूप धारण किये जा रहा है। इसके कारण समाज के जीवन मूल्यों में विषमता और आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती रही है। विश्व के अधिकांश क्षेत्रों में आज भी अशिक्षा एवं अज्ञान का साम्राज्य फैला हुआ है जिसके कारण अधिकांश देशों में धर्म साम्प्रदायिकता का रूप ग्रहण कर रहा है और सामाजिक-जीवन में रूढ़ियाँ व्याप्त हैं। आधुनिक शिक्षित समाज में जीवन के सम्बन्ध में अनेक भ्रामक दृष्टियाँ समाहित रही हैं और भारत जैसे देश में वर्गीय समाज-व्यवस्था, जातिवाद का साम्राज्य व्यापक होने के कारण अवसरवादी वर्ग की दुष्प्रवृत्तियों से सामाजिक-जीवन ग्रस्त एवं अभिशप्त है। इन परिस्थितियों में जीवन-संघर्ष के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली विभिन्न

समस्याओं के समाधान हेतु वैचारिक शक्ति एवं सार्वभौमिक समतावादी दृष्टि की आवश्यकता की अनुभूति ही मार्क्सवादी विचारधारा एवं दृष्टि प्रेरणा का स्त्रोत रही है।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारधारा से सम्बद्ध गंभीर साहित्य के समृद्धकर्ता एवं गहन विचारों के प्रस्तोता के रूप में प्रगतिशील समीक्षा के आधार स्तम्भ और मूर्धन्य आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व तथा कृतित्व सुविख्यात रहा है। वर्तमान युग समीक्षा का युग है। समीक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विचारधाराओं, पद्धतियों और दृष्टिकोणों का प्रचलन है। प्रत्येक पद्धति का अपना पृथक महत्व रहा है किंतु अधिक सार्थक समीक्षा-दृष्टि या पद्धति वह रही है जो समाज से जुड़कर जन-पक्षधरता स्वीकार कर उसके सुख-दुःख की अभिव्यक्ति को विश्लेषित कर उस साहित्यिक कृति का सही मूल्यांकन प्रस्तुत करती है। इस तरह की समीक्षा पद्धति हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिशील समीक्षा की रही है। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि अन्य समीक्षा दृष्टियों या पद्धतियों का महत्व नकारा जा रहा है। प्रगतिशील समीक्षा के विकास का इतिहास यह दर्शाता है कि जिस तरह यह समीक्षा पद्धति साहित्य का विकास द्वन्द्वात्मकता में देखती है उसी प्रकार इसका विकास भी द्वन्द्व के द्वारा ही हुआ है। इस क्षेत्र में द्वन्द्वरत समीक्षकों में सबसे प्रबल योद्धा डॉ. रामविलास शर्मा रहे हैं जिन्होंने दोहरे स्तर पर युद्ध किया है। एक ओर उन्होंने प्रगतिवाद विरोधियों को अपने समीक्षात्मक लेखन द्वारा मुँहतोड़ जवाब दिया तो दूसरी ओर प्रगतिशीलधारा के भ्रामक या यांत्रिक दृष्टि वाले समीक्षकों के साथ भी उनकी संकीर्णतावादी दृष्टि और यथार्थवाद के नाम पर अश्लीलता की पक्षधरता स्वीकारने की पद्धति के विरुद्ध संघर्ष किया है। इस संघर्ष के क्रम में अभिव्यक्त विचार एवं धारणायें तथा व्यावहारिक समीक्षायें प्रगतिशील समीक्षा के मानदण्ड और

समीक्षा पद्धति को प्रस्तुत करते हैं। इसके विकास में डॉ. रामविलास शर्मा का योगदान और महत्व, मात्रा एवं गुणवत्ता की दृष्टि से अतुलनीय रहा है। डॉ. रामविलास शर्मा के इसी विराट कृतित्व को मैंने "हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना और डॉ. रामविलास शर्मा" शीर्षक विषय की सीमाओं के अन्तर्गत बाँधने और विवेचित करने का प्रयास किया है। शोध-कार्य हेतु डॉ. रामविलास शर्मा के मात्र साहित्य-समीक्षक रूप को लेते हुए उनकी समीक्षात्मक सामग्री को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। इसके पूर्व विषय-प्रवेश के अन्तर्गत है -- "डॉ. रामविलास शर्मा का साहित्यिक परिचय"। अंत में उपसंहार के अन्तर्गत प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को समाकलित किया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट के अन्तर्गत डॉ. रामविलास शर्मा से लिया गया साक्षात्कार और उनकी समग्र कृतियों का विवरण है और अंत में है ग्रंथ सूची।

प्रस्तुत शोध कार्य का क्षेत्र डॉ. रामविलास शर्मा की साहित्यिक समीक्षा तक ही सीमित रहा है। इस कारण उनके भाषा एवं भाषा वैज्ञानिक-चिन्तन तथा विचारधारात्मक लेखन को इसमें समेटा नहीं जा सका। सर्वत्र प्रगतिशील आलोचना की परम्परा को दृष्टि में रखते हुए उसमें डॉ. रामविलास शर्मा की भूमिका पर विशेष ध्यान रखा गया है। प्रस्तुत शोध विषय से मिलते-जुलते और डॉ. रामविलास शर्मा के कृतित्व को विवेचित करते कुछ कार्य प्रकाश में आ चुके हैं जैसे डॉ. गीता शर्मा, डॉ. नत्थन सिंह, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी आदि का लेखन जिनसे मुझे अध्ययन करने में सुविधा मिली।

प्रस्तुत अध्ययन का विषय बहुत विस्तृत है। डॉ. रामविलास शर्मा के विराट कृतित्व और हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा की परम्परा को

एक शोध प्रबन्ध में समेटना संभव नहीं है इसीलिए मैं यह विनम्र निर्देश करना चाहूँगा कि डॉ. रामविलास शर्मा के कृतित्व के अध्ययन-विश्लेषण की कई संभावनायें मेरे आगे उजागर होती चली गई जिन पर आगे कभी काम किया जा सकता है जैसे साहित्येतिहास कार डॉ. रामविलास शर्मा, भाषा-वैज्ञानिक डॉ. रामविलास शर्मा, मार्क्सवादी परम्परा के भारतीय परिदृश्य के व्याख्याता डॉ. रामविलास शर्मा आदि।

इस शोध कार्य को सम्पन्न करने में सर्वाधिक योगदान और सहयोग डॉ. रामविलास शर्मा जी का रहा है जिन्होंने साक्षात्कार हेतु अपना अमूल्य समय और शोध हेतु सुझाव देकर उत्साह को बढ़ाया है। जिसके लिए उन्हें आदर सहित धन्यवाद देते हुए उनका आभार स्वीकार करता हूँ। प्रो. शशि मुदिराज जी के सुनिर्देशन में इस विस्तृत विषय एवं विपुल-साहित्य को सीमाओं में बाँधकर उसका अध्ययन एवं विवेचन किया गया है। मैं उन्हें धन्यवाद देकर या आभार स्वीकार कर उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता।

अन्य सहायक विद्वानों में मुख्य रूप से प्रो. मैनेजर पाण्डेय, श्री श्याम कश्यप, डॉ. गीता शर्मा, प्रो. केशवराव जाधव उल्लेखनीय रहे हैं जिन्हें धन्यवाद देता हूँ तथा अन्य सम्माननीय विद्वानों में डॉ. सुशीला व्यापारी, एम. उपेन्द्र, डॉ. कृष्णवल्लभ दवे, डॉ. आशाराम यादव, डॉ. प्रभाकर त्रिपाठी, ठाकुर गोपाल सिंह और विशेष परामर्शदाता श्री करणलाल गोप (समाजवादी) एवं विभाग के गुरुजनों का आभार स्वीकार करता हूँ तथा एस.ए.पी. महाविद्यालय के प्राचार्य, प्राध्यापकगण एवं साथियों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरे इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सहायक मित्रगण भी धन्यवाद के पात्र है जिनमें एस. हरिकृष्णा, मोहन रेड्डी, संदीप, अरूण कुमार, दयानन्द "अहीर", ओमप्रकाश "भगत" एवं देवानन्द गोप विशेष रहे हैं जिनकी शुभकामनाएँ, प्रेरणा, उत्साह और सहयोग से ही यह कार्य सम्पन्न हो पाया है। इनके अतिरिक्त शोध-कार्य को चरम परिणति पर पहुँचाने वाले मित्र गोविन्द "अक्षय" का कठोर परिश्रम, अथक प्रयास, सुझाव एवं सहयोग अतुलनीय रहा है जिन्होंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पाण्डुलिपि को अत्यन्त अल्पावधि में शुद्ध सुन्दर एवं आकर्षित रूप में टंकित कर एक चुनौती-पूर्ण उत्तरदायित्व को पूरा किया उन्हें मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

अपने दोनों परिवारों के सभी बड़े व छोटे सदस्यों का आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने अपनी असीम आत्मीयता एवं अपनत्व के द्वारा मुझे शोध-कार्य सम्पन्न करने का सुअवसर और प्रेरणा प्रदान की है और अपने पारिवारिक सम्बन्धियों को धन्यवाद देते हुए स्वर्गीय मौसा श्री जे. एल. हमील पुरकर जी के प्रति श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

शोधार्थी,

(रामप्रकाश)

विषय प्रवेश

डॉ. रामविलास शर्मा : साहित्यिक परिचय

प्रगतिशील विचारक और आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसे समीक्षक हैं जिन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि और यथार्थवादी-चिंतन के द्वारा हिन्दी समीक्षा को कलावाद के बन्धनों से मुक्त किया है। और साथ ही साहित्य की सामाजिक महत्ता व्यक्त करके हिन्दी के साहित्यकारों के सम्मुख नवीन सृजनात्मक दृष्टि को प्रस्तुत किया है। डॉ. रामविलास शर्मा भारत में मार्क्सवादी साहित्य चिंतन और समालोचना के आरंभकर्ता ही नहीं, उसके सिरमौर भी माने गये हैं। इन्हें डॉ. गीता शर्मा ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद हिन्दी के सबसे बड़े जातीय समालोचक माना है। इतना ही नहीं डॉ. रामविलास

शर्मा हिंदी भाषी प्रदेश के साहित्य, समाज, संस्कृति और इतिहास की प्रगतिशील परम्परा के मूर्तिमान जीवंत रूप में आज हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित हैं। यह सही है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने व्यवस्थित रूप से "हिन्दी साहित्य का इतिहास" जैसी किसी कृति की रचना नहीं की है परन्तु फिर भी उनकी सामालोचनात्मक कृतियाँ हिन्दी साहित्य की निजी जातीय परम्परा का रूप प्रस्तुत करती हैं। डॉ. रामविलास शर्मा स्वयं आज विश्व के सम्मुख हिन्दी भाषी जनता की एक अपराजेय शक्ति के रूप में उभर आये हैं उनके द्वारा दीर्घ समय से की जा रही अथक साधना और दृढ़ आस्था ही उनके इस अजेय व्यक्तित्व का आधार है।

डॉ. नत्थन सिंह के अनुसार "इस कलियुग में डॉ. रामविलास शर्मा सतयुगी व्यक्ति हैं। उनके मन में, न तो किसी के प्रति द्वेष है और न किसी से घृणा। वह व्यक्ति के उस कथन अथवा कर्म का विरोध करते हैं, जो सत्य पर पर्दा डालता है, जो साहित्यिक भ्रम का प्रसारण करता है और जो मनुष्य को मनुष्यता के स्तर से नीचे ढकेलता है।"[1]

अर्थात् डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मन-वचन-कर्म की साम्यता में विश्वास रखने वाले सत्मार्गी, संघर्षशील और जुझारू समीक्षक हैं। उनमें गहन अध्ययनशीलता और असीमित ज्ञान-निधि होने के साथ-साथ ज्ञानार्जन की कामना, प्रखर बुद्धि, तीव्र ग्रहण शक्ति और सूक्ष्मदर्शी दृष्टि भी मिलती है। हिन्दी के इस प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक के विषय में निराला जी ने अमृतलाल नागर से कहा था -- बड़ा तेज है, ये डाक्टर बनेगा एक दिन, अपने गुरु सिद्धांत को भी अंग्रेज़ी में पछाड़ेगा...

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 67

"निराला जी का यह उदगार आज पूर्णतः सत्य सिद्ध हो रहा है।"[1] महाकवि निराला रामविलास शर्मा से बहुत प्रभावित रहे हैं जबकि डॉ. रामविलास शर्मा का हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में पदार्पण अपने प्रिय कवि निराला पर होने वाले आक्रमणों का उत्तर देने के क्रम में हुआ है। डॉ. शर्मा का 1933 में महाकवि निराला से परिचय हुआ और सन् 34 में उन पर रामविलास का एक लेख "चाँद" में छपा, जो उनका प्रथम आलोचनात्मक लेख था।

डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्तूबर 1912 को ऊँचगाँव सानी जिला उन्नाव में हुआ उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एम.ए. किया जबकि हाई स्कूल की परीक्षा झांसी से पूरी की है। इन्होंने अंग्रेज़ी के निबन्ध पर लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि 1940 में प्राप्त की है। वे सन् 1938 से 1943 तक लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग में अध्यापक रहे और 1943 से 1974 तक आगरा के बलवन्त राजपूत कालेज में अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष पद पर रहकर अध्यापन कार्य किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा जी शर्मा जी के विषय में कहते हैं कि "हिन्दी में ऐसा गम्भीर सूक्ष्म विद्वत्ता-पूर्ण और निष्पक्ष समालोचक, साथ ही संतुलित भी मैंने तो दूसरा नहीं देखा है। हजरत कवि भी हैं और कविता के बड़े ही मर्मज्ञ आलोचक। कई भाषाओं के बहुत अच्छे जानकार। फर्राटे के साथ बंगला भाषा में व्याख्यान देते मैंने स्वयं सुना है रूसी भाषा भी जानते हैं।"[2] इतना ही नहीं आज शर्मा जी अपने तेजस्वी प्रगतिशील

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 21

2. वही, पृ. 18

लेखकीय व्यक्तित्व और विशद अध्ययन के लिए प्रसिद्ध हैं। हिन्दी के अतिरिक्त अँग्रेज़ी और संस्कृत भाषाओं और साहित्य के ज्ञान के कारण उनका लेखन क्रमशः प्रौढ़ और परिपक्व होता गया है। डॉ. निर्मला जैन के अनुसार मार्क्सवादी आलोचकों में सबसे विवादास्पद किन्तु अन्यतम है रामविलास शर्मा। अँग्रेज़ी के अध्येता और शिक्षक होते हुए भी रामविलास शर्मा ने हिन्दी भाषा और साहित्य के गौरव की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष किया जिसका आरम्भिक दस्तावेज है "फिराक और हिन्दी" शीर्षक प्रसिद्ध लेख-माला।[1] जिसका कारण डॉ. नत्थन सिंह ने डॉ. शर्मा की अटूट देश-भक्ति, मातृभाषा हिन्दी के प्रति अनुराग, ज्ञानार्जन की अदम्य पिपासा, समता तथा एकता के आधार पर समाज के पुनर्गठन की अभिलाषा, लोक-मंगल की भावना और साहित्यिक अभिरुचि को माना है।[2] जबकि अमृतलाल नागर जी डॉ. रामविलास शर्मा के दृढ़ व्यक्तित्व और अदम्य साहस को व्यक्त करते हुए कहते हैं "वे {डॉ. शर्मा} जहाँ उठ गये वहाँ अंगद के पाँव की तरह थिर हो गये, फिर सारी दुनिया आ जाय मगर उनको अपनी जगह से हटा नहीं सकती, ऐसे व्यक्ति टूट भले ही जायँ पर झुक नहीं सकते।"[3]

डॉ. शर्मा के इसी बैसवाड़ी अहम् और व्यक्तित्व के कारण यह गलत धारणा फैल गयी है कि "रामविलास जी खरे और ईमानदार तो हैं पर अकड़ु बहुत हैं किसी से मिलकर नहीं चलना चाहते। जबकि अमृतलाल नागर जी के अनुसार यह पूरी तरह गलत है। वास्तविकता यह

---

1. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी -- डॉ. निर्मला जैन -- पृ. 68
2. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 69
3. वही, पृ. 24

है कि रामविलास जी अत्यन्त विनम्र और विनयशील हैं परन्तु उनकी विनम्रता और विनय उनकी मान्यताओं के आड़े नहीं आती है इसी कारण अधिकांश लोग भ्रमवश उन्हें घमंडी और अकड़ु समझते हैं। इसका कारण डॉ. नत्थन सिंह के अनुसार डॉ. शर्मा का अल्पभाषी और गम्भीर स्वभाव रहा है।[1] किंतु रामरतन भटनागर डॉ. रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि "अनेक कटुतिक्त वक्तव्यों और आंदोलनों के धनी अपने प्रति अडिग आस्था और नये जीवन के प्रति जीवन और साहस से भरा हुआ यह अनगढ़ व्यक्तित्व कबीर के "अनगढ़िया देवा" (अनगढ़ देवता) की तरह सबसे असंपृक्त, अबूझा और आशंकित रहकर भी हिन्दी साहित्य के पिछले 25 वर्षों के केन्द्रों में प्रतिष्ठित है निराला का स्नेह उसे प्राप्त है, फिराक का चैलेंज, पंत का औत्सुक्य अनेक मित्रों और समवयस्कों का सहज प्रेम और नई पीढ़ी की श्रद्धा आतंक की भावना।"[2]

परन्तु अमृतलाल नागर जी का कहना है कि रामविलास सौम्य गम्भीर, प्रतिभावान और विचारक होने के कारण शहरी समाज के ऊँचे लोगों की संगत में बैठने-उठने के अवसर सहज ही पाते रहे इस क्रम में अनेक लोग उनके प्रति आकृष्ट भी होते रहे और कुछ भ्रमित भी। उनमें एक प्रबल दोष अमृतलाल नागर जी ने यह माना कि जब कोई उनसे (डॉ. शर्मा) बेजातौर पर नाराज होता है तो वह ठेठ देहाती की तरह उसको टि-ली-ली-ली-भो वाली मुद्रा में चिढ़ाने लगते हैं जब वो चिढ़ता है तब वे और चिढ़ाते हैं रामविलास की तीखे व्यंग्यभरी फिस-फिस वाली हँसी ने बहुत से कलेजों पर तलवार के से वार किये हैं रामविलास का क्रोध भीतरा है पर घुना नहीं। उनके क्रोध का बहिर्प्रदर्शन आमतौर पर उनकी जहरीली हँसी

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 73
2. वही, पृ. 44

और व्यंग्य वचनों के रूप में ही होता है ... रामविलास जब चिढ़ते हैं तब उनका तर्क जनित व्यंग्य और भी सधता है।[1]

जहाँ एक ओर रामरतन भटनागर के अनुसार डॉ. शर्मा का व्यक्तित्व कबीर के अनगढ़ देवता के समान मिलता है वहाँ दूसरी ओर अमृतलाल नागर जी के अनुसार संयमी व्यंग्यकार का रूप व्यक्त होता है किंतु डॉ. नत्थन सिंह के अनुसार डॉ. शर्मा का व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार है -- डॉ. नत्थन सिंह का कहना है कि "अपने प्रिय लेखक निराला जी के समान डॉ. शर्मा भी निराले हैं आज के इस अवसरवादी तथा चाटुकारिता प्रधान-युग में सत्य भाषण तथा सत्याचरण में इनका निरालापन निहित है। निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता उनके व्यक्तित्व के विशेष अंग है। वह न तो कोरे अध्यापक हैं और न मात्र लेखक वरन् नैतिकता तथा मानवीय मूल्यों की संस्थापनारत एक बेजोड़ गृहस्थ सन्यासी हैं। दूसरों की सुविधा तथा भावनाओं का मूल्य करना उनकी विशेषता है।"[2]

डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व निर्भीक और स्पष्टवादी रहा किंतु अमृतलाल जी के अनुसार रामविलास जी एक विद्वान आलोचक ही नहीं एक अच्छे पति, अच्छे शिक्षक, उम्दा पड़ौसी और सीधे-सच्चे इंसान भी हैं सादा रहन-सहन और ऊँचा-चिंतन उनका जन्मजात गुण है।[3]

रामविलास का कम्युनिज्म मूलतः उनके बाबा {दादा} की देन है। राजनीति से उनका गहरा लगाव है लेकिन कोरे शास्त्रीय रूप में ही।

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 24
2. वही, पृ. 76 से 78
3. आजकल -- देवेन्द्र चौबे

रामविलास एक ओर जहाँ धार्मिक ढोंग धतूरों के कट्टर विरोधी थे वहाँ ही वे तत्सम्बन्धी साहित्य का नया दृष्टिकोण से मूल्यांकन करते हुए उनके प्रगतिशील तत्वों को पहचानकर उन्हें प्रतिष्ठा देते रहे। आलोचना के संदर्भ में रामविलास जी के तेवर भी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के समान ही रहे हैं।[1] डॉ. रामविलास शर्मा का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में समीक्षक रूप में आक्रामक तेवर रहा है। बहुत समय तक हिन्दी साहित्यकारों में डॉ. शर्मा का समालोचकीय आतंकवाद छाया रहा। परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि उन्होंने समीक्षा के क्षेत्र में आतंक ही फैलाये रखा बल्कि उन्होंने वास्तव में शौकिया आलोचकों की मनगढ़त धारणाओं और उनके द्वारा फैलायी गयी हिन्दी साहित्यकारों सम्बन्धी गलत और अनुचित अवधारणाओं का कठोरता-पूर्वक आक्रामक रूप में विरोध किया है जिस कारण उन्हें स्वयं भी समीक्षा के क्षेत्र में चारों ओर से घोर विरोधों का सामना करना पड़ा परन्तु उन्होंने दृढ़ आस्था आत्मबल और अन्तःशक्ति से प्रेरित होकर इन विरोधों का डटकर सामना किया इस दीर्घकालीन संघर्ष का ही परिणाम है कि डॉ. शर्मा को साहित्य के अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में फैली गलत धारणाओं को समाप्त करने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा जिसके फलस्वरूप उनका विपुल समीक्षा साहित्य हिन्दी पाठकों को उपलब्ध हो सका है। इस संदर्भ में डॉ. नत्थन सिंह द्वारा व्यक्त यह विचार सही सिद्ध होते हैं -- "मानव समाज की उपयोगिता के संदर्भ में परम्पराओं का समुचित समादर करते हुए उनके अनुपयोगी पक्ष के विरोध के साथ मौलिक चिन्तन का नाम है रामविलास शर्मा। .... उनके लेखन में सर्वत्र एक नई पकड़ दृष्टिगत होती है जो उनको अन्य लेखकों की पंक्ति से अलग खड़ा कर देती है। अनेक के मध्य अकेले आलोकित होना डॉ. शर्मा के व्यक्तित्व की विशेषता है।"[2]

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- 33
2. वही, पृ. 76

इतना ही नहीं डॉ. शर्मा बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न ज्ञान की वारिधि, चिन्तन तथा विश्लेषण की मौलिक क्षमता के धनी और ज्ञान के प्रसारण में भी मुक्त हस्त हैं। साथ ही मानव सभ्यता के इतिहासकार, भारतीय और पाश्चात्य दर्शन के मर्म-भेदी विद्वान तथा समाज-शास्त्र और राजनीति दर्शन के प्रकाण्ड पंडित भी हैं। इसके अतिरिक्त अनेक राजनीतिज्ञों, नेताओं और देश-भक्ति का नारा लगाने वालों से कहीं ज्यादा देश-भक्त भी हैं। इस कारण डॉ. शर्मा का कथन और कर्म समस्त कुंठाओं से मुक्त परम्परागत रूढ़ियों से रहित, मानवीय दुर्बलताओं से अप्रभावित, अभिलाषाओं से रिक्त और संत की अपरिग्रह भावना से मंडित है। उनके व्यक्तित्व में वैयक्तिक ऐषणाओं से विरक्ति और लोक के प्रति अपरिमेय अनुराग मिलता है। उनकी साधना लोकोन्मुखी है और विचार एकांत साधना एवं एकांगी यात्रा का पाथेय हैं।[1] रामरतन भटनागर के अनुसार डॉ. शर्मा का अंग्रेज़ी साहित्य और यूरोपीय परम्पराओं का गम्भीर ज्ञान, हाजिर जवाबी, अल्हड़पन और तर्क की पैनीधार पर तैरती ठेठ जबान नावक के तीर की तरह गहरा घाव कर जाती है। डॉ. शर्मा का बेलाग व्यक्तित्व और जीवनदार साहित्य ऐसा प्रमाण है वह कुछ को जलाता है तो बहुतों के लिए आलोक विकीर्ण करता है। वे मानव-जीवन के सजग विचारक तथा विद्रोही एवं बुतशकन कलाकार ही नहीं है उनकी भावुकता भी दर्शनीय है। प्रकृति और संस्कृति के सौन्दर्य के प्रति वह अनन्यतः संवेदित है। उनके साहित्य में ध्वंस बहुत है परन्तु वह नए निर्माण के लिए आह्वान बन गया है। वाद-विवाद उठाने और मर्म पर आघात पहुँचाने की लाचारी उनकी रही है क्योंकि अनाविल बुद्धि और पश्चिम के श्रेष्ठतम विचार की भूमिका ने उन्हें भाषा, साहित्य और कला के प्रति जागरूकता दी है परन्तु कटुतम वाद-विवाद और कागजी महायुद्ध के बाद भी वे आखेट में सामने आये हैं।

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 82

शर्मा जी की जबान से कहीं अधिक तेज उनकी लेखनी है किन्तु उनका मस्तमौला व्यक्तित्व कटुता से दूर अट्टाहास और विनोद में ही चरितार्थता पाता है।[1]

उनका व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अतुलनीय और अद्वितीय है जिसकी अपनी निजी विशेषतायें हैं श्याम कश्यप जी के अनुसार डॉ. शर्मा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के साहित्यकार हैं। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के विषय में लिखे गये स्वयं उन्हीं के शब्दों में वे सीमित अर्थ में साहित्यकार नहीं हैं "वे एक साथ शिखर समालोचक, मौलिक भाषाविद्, अद्वितीय समाज विज्ञानी और बेजोड़ इतिहासकार हैं।"[2] इतना ही नहीं मार्क्स और एंगेल्स रेनाँसा के जिन महामानवों की अगली कड़ी थे रामविलास शर्मा इसी परम्परा में बीसवीं सदी के अंतिम शिखर हैं। इसीलिए नामवर सिंह डॉ. शर्मा की तुलना बार-बार मार्क्स और एंगेल्स से करते हैं और उनमें सादृश्य देखते हैं। शर्मा जी स्वयं को मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन का ऐसा शिष्य मानते हैं जिसने उनकी शिक्षाओं की पुनर्व्याख्या मात्र की है। वे यह भी कहते हैं कि यदि मेरी कृतियों का, मेरे लेखन का, कोई महत्व है तो इसका कारण मार्क्सवाद ही है। इससे मार्क्सवाद का ही असंदिग्ध महत्व उजागर होता है। आज हिन्दी हिन्दुस्तान और डॉ. रामविलास शर्मा इस प्रकार एकमेक हो गये कि एक-दूसरे के पर्याय बन गये हैं। उनका महत्व श्याम कश्यप के इस कथन से व्यक्त होता है कि "आज साहित्य, समाज और संस्कृति, भाषा-विज्ञान, इतिहास, दर्शन और राजनीतिक अर्थ-शास्त्र से सम्बद्ध प्रश्नों और समस्याओं को बिना हिन्दी के ज्ञान के सही ढंग से समझना कठिन है। आज हिन्दी के बिना किसी का भी ज्ञान

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 47
2. जनसत्ता -- अक्तूबर, 1992

अधूरा, एकांगी और एक हद तक अवैज्ञानिक बन गया है जो वास्तव में दर्जनों कृतियों और हजारों पृष्ठों में फैली डॉ. शर्मा की आधी शताब्दी से अधिक की ज्ञान साधना का ही सुफल है।

इससे सिद्ध होता है कि डॉ. शर्मा ने अपनी अथक साधना और परिश्रम द्वारा हिन्दी भाषा के क्षेत्र में अनेक विषयों का अनुपम ज्ञान भंडार समाहित कर दिया है जिससे आज ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का महत्व और उपलब्धियाँ ही नहीं बढ़ गयी हैं बल्कि हिन्दी भाषा के विपुल ज्ञान भंडार की अनिवार्यता सिद्ध हो गयी है जिसके बिना आज किसी भी क्षेत्र का ज्ञान अधूरा माना जा सकता है। इस प्रकार अपने लेखन कार्य द्वारा डॉ. शर्मा ने हिन्दी का अकेले इतना विकास किया है जितना कि उनके समकालीन सभी साहित्यकार मिलकर नहीं कर सके। डॉ. शर्मा की हिन्दी को यह देन अनमोल और अनुपम है। डॉ. शर्मा ने अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन से प्राप्त दृष्टिकोण का विकास करके उसे हिन्दी पर लागू कर एक मार्क्सवादी विचारक की संभवतः सीमाओं तक जातीय साहित्य और स्वदेशी संस्कृति का विकास किया है।

रामरतन भटनागर के अनुसार डॉ. शर्मा ने जैनेन्द्र, अज्ञेय, पंत, प्रयोगवाद और नई कविता, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल ये वे और बहुतेरे सबसे निबद्ध होकर साहस और संतोष की श्वास ही नहीं लेते हैं बल्कि उन्होंने नजरूल इस्लाम, निराला और कश्मीरी कवि मजहूर की काव्य सार्थकता को देखा और भारतेन्दु प्रेमचन्द और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के गद्य में सामाजिक चेतना, आदर्श प्राणता और युग-प्रवर्तन का मन्त्र भी पढ़ा है। इतना ही नहीं उन्होंने कीट्स के अध्यापन के लिए

इटालियन सीखी, प्रीरेफे लाइट कलाकारों की चित्र प्रतिलिपियों पर भिड़े और यूरोप के मध्ययुग की साहित्य शैलियों का अध्ययन किया है।[1]

इससे व्यक्त होता है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने लेखन-कर्म में न केवल हिन्दी के साहित्यकारों पर ही लेखनी चलायी बल्कि उन्होंने असीमित रूप में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य देशी और विदेशी भाषाओं का उनके साहित्यकारों और साहित्य का भी अध्ययन किया और साथ ही उन पर अपनी समीक्षात्मक लेखनी भी चलायी है। इस प्रकार डॉ. शर्मा का अध्ययन, मनन, चिंतन और लेखन का क्षेत्र सीमित नहीं बल्कि असीमित है। इस विपुल साहित्य के अध्ययन के लिए डॉ. शर्मा ने एक निश्चित दृष्टि का आधार स्वीकार किया है वह मार्क्सवादी दृष्टि रही है जो उन्हें मार्क्सवादी दर्शन के गहन अध्ययन और चिंतन से प्राप्त हुई है। उन्होंने इस दृष्टि के द्वारा अपना सम्पूर्ण अध्ययन और लेखन कार्य सम्पन्न किया है।

डॉ. नत्थन सिंह के अनुसार डॉ. रामविलास शर्मा को मार्क्सवादी दर्शन के विधिवत अध्ययन का समय 1938 के पश्चात् उपलब्ध हुआ। डॉ. शर्मा पक्के मार्क्सवादी है अवसरवादी नहीं। मार्क्सवाद उनके लिए एक विचार है व्यक्ति एवं समाज के पारस्परिक सम्बन्धों के निर्धारण की एक दृष्टि है, दर्शन तथा इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का एक मार्ग है आर्थिक लाभार्जन तथा विदेश-भ्रमण का साधन नहीं। मार्क्सवाद उनकी अन्तरात्मा का स्वर है जिसको वह आँख बन्द करके नहीं सुनते उनमें विश्लेषण, मनन और ग्रहण की अद्भुत क्षमता है और इस क्षमता

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 46, 48 और 49

को पुष्ट तर्क एवं सहजवाणी का बल प्राप्त है।[1] डॉ. नत्थन सिंह के कथन के अतिरिक्त नित्यानन्द तिवारी जी के इस वक्तव्य से डॉ. शर्मा की मार्क्सवादी दृष्टि की महत्ता स्पष्ट होती है। डॉ. तिवारी का कहना है कि उनका (डॉ. शर्मा) भाषा, चिंतन, आधुनिक जातियों का विकास, ऐतिहासिक विश्लेषण साहित्य और भारतीय साहित्य के इतिहास लेखन के आधार की खोज केवल उनका कठोर परिश्रम और विपुल लेखन मात्र नहीं है दृष्टि और अन्तर्दृष्टि भी है।[2]

डॉ. शर्मा की यह अन्तर्दृष्टि मार्क्सवादी दर्शन की दृष्टि रही है जो उन्हें निरन्तर प्रगति के पथ पर ले जाती है। जिसके लिए वे सदैव संघर्षरत रहते हैं। इस सम्बन्ध में यह विचार देखे जा सकते हैं -- श्याम कश्यप के अनुसार डॉ. शर्मा मार्क्सवाद की वैज्ञानिक सिद्धांतवादिता और अजेयता के लिए उत्कट संघर्ष करते आ रहे हैं स्वयं उन्हीं के शब्दों में "अनेक स्वीकृत मान्यताओं के पीछे एक संघर्ष (होता) है। मान्यताएँ याद रहती हैं, संघर्ष हम भूल जाते हैं" (विराम चिह्न की भूमिका) यह संघर्ष वे राजनीति, साहित्य, भाषा-विज्ञान, इतिहास और मार्क्सवाद की सैद्धांतिक समस्याओं के क्षेत्र में विगत आधी शताब्दी से अधिक अवधि से निरन्तर करते चले आ रहे हैं। इस संघर्ष में उनकी विजय दर असल मार्क्सवाद की ही विजय है।[3]

डॉ. शर्मा ने निराला जी के बारे में लिखा था -- "जैसे अठारह सौ सत्तावन का कोई वीर सेनानी युद्ध छोड़कर साहित्य के मैदान में चला आया हो। जबकि नामवर सिंह डॉ. शर्मा की इन पंक्तियों पर

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ. 70
2. जनसत्ता - अक्तूबर - 1992
3. वही

सटीक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि ज्यादा सही यह है कि वह वीर सेनानी रामविलास शर्मा स्वयं है।" यह अनायास ही नहीं है कि उनके लेखन में उनकी अधिकांश कृतियों में अठारह सौ सत्तावन का जिक्र किसी न किसी रूप में अवश्य आता है। यह जैसे उनकी चेतना पर छाया है उनके समस्त लेखन और चिंतन की धुरी है। डॉ. शर्मा के साहित्य की यह विशेषता व्यक्त करते हुए श्याम कश्यप को एंगेल्स याद आते हैं जो रेनाँसा के दिग्गजों की सबसे बड़ी विशेषता यह बतलाते हैं कि "प्रायः वे सभी अपने जमाने को आंदोलनों के बीच व्यावहारिक संघर्षों में जीवन जीते थे और सक्रिय रहते थे। वे किसी न किसी पक्ष को लेकर संघर्ष में शामिल होते थे। इसी से उनमें चरित्र की पूर्णता, तेजस्विता और ओज उत्पन्न होता था जिसने पूर्ण मानव बनाया था।" श्याम कश्यप के अनुसार इस संघर्षशील तेजस्विता और जुझारू ओज के औदात्य के साथ ही डॉ. शर्मा में गजब की संवेदनशीलता, अतिशय विनम्रता और स्नेह का अक्षय निर्झर है जो उनके समूचे व्यक्तित्व को अद्भुत गरिमा और तरलता प्रदान करता है।[1] इतना ही नहीं श्याम कश्यप डॉ. शर्मा की महत्ता स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "वास्तव में साहित्य, भाषा-विज्ञान, इतिहास और राजनीतिक अर्थ-शास्त्र के क्षेत्रों की भाँति मार्क्सवाद की जटिल समस्याओं की पेचीदगियाँ सुलझाने इन विज्ञानों के विज्ञान की सृजनात्मक व्याख्या करने तथा जातीयता की समस्याओं जैसे कम-छुए या अनछुए और अधूरे क्षेत्रों में मौलिकता सर्जनात्मक योगदान करने की दृष्टि से भी डॉ. शर्मा के इन विश्व कोटि के कार्यों का महत्व असंदिग्ध है।

---

1. जनसत्ता अक्तूबर -- 1992

अध्याय : एक

1. मार्क्सवाद और हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना

1.1 हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवेश

1.2 भारतीय साहित्य परिषद् : प्रथम साहित्यिक जागरण

1.3 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और उद्देश्य

1.4 प्रगतिशील समीक्षा का विकास

1.5 प्रगतिशील समीक्षा के मानदण्ड

अध्याय : एक

मार्क्सवाद और हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना

बीसवीं सदी के पाँचवें दशक में प्रगतिशील और प्रगतिवाद शब्द को लेकर हिन्दी के प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी साहित्यकारों में वैचारिक संघर्ष दीर्घकाल तक चलता रहा किन्तु आज हिन्दी के प्रगतिशील और मार्क्सवाद विरोधी साहित्यकारों द्वारा इन दोनों शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं एक ही अर्थ में किया जा रहा है और कहीं प्रगतिशील शब्द का प्रयोग समष्टि रूप से विकासशील प्रवृत्ति के द्योतक रूप में तथा प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग मार्क्सवादी विचारधारा विशेष से सम्बद्ध साहित्य की धारा के लिए हो रहा है। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि प्रगतिशील शब्द का प्रयोग अँग्रेज़ी शब्द प्रोग्रेसिव के अनुवाद के रूप में हुआ है और प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग हिन्दी साहित्य में शिवदान सिंह चौहान के द्वारा आरम्भ किया गया है।

प्रलेस के प्रथम अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने प्रगतिशील शब्द के प्रयोग पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहा था कि साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अतः "प्रगतिशील लेखक संघ" नामकरण उन्हें सार्थक नहीं लगा किन्तु डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि "जो लोग साहित्य को स्वभावतः प्रगतिशील मानते हैं वे अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य में प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के उत्पन्न होने के पक्ष को स्वीकार करते हैं।" यह पूर्णतः सही है क्योंकि डॉ. शर्मा के अनुसार "अगर कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है तो साहित्य में प्रगतिशील या प्रतिक्रियावादी का भेद करना निरर्थक है" अर्थात् यदि साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है तो प्रतिक्रियावादी साहित्य नहीं होना चाहिए परन्तु वास्तव में यह देखा जाता है कि जिस प्रकार समाज में प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी धाराओं के परस्पर विरोध से समाज के विकास को गति मिलती है उसी तरह साहित्य का विकास भी प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी साहित्य धाराओं के विरोध और संघर्ष से होता है।

डॉ. शर्मा ने प्रगतिशील शब्द को सापेक्ष अर्थ का बोधक माना है क्योंकि कोई भी घटना किसी अन्य की तुलना में ही प्रगतिशील होती है इसलिए डॉ. शर्मा निरपेक्ष अर्थ में प्रगतिशील शब्द का व्यवहार करना असंभव मानते हैं। अतः हम यहाँ पर प्रगतिशील और प्रगतिवाद शब्दों के प्रयोग के संदर्भ में व्याप्त विवाद में न पड़कर हिन्दी साहित्येतिहास के विकासक्रम में पाये जाने वाले प्रगतिशील तत्वों की खोज़ करने वाली सामाजिक दृष्टि और विश्लेषण की पद्धति को प्रगतिशील समीक्षा मानकर चल रहे हैं।

हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा का विवेचनात्मक अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले मार्क्सवाद का भारतीय समाज और बुद्धिजीवियों में वैचारिक चेतना के रूप में प्रवेश और उसके विकास की पृष्ठभूमि को जान लें।

1.1 हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवेश

सन् 1917 की रूसी क्रांति में समाजवादी विचारधारा की विजय के समय तक मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश भारतीय समाज में हो चुका था। इस विचारधारा के प्रभाव स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गरमदल का उदय हुआ जिसका प्रमाण हमें 1917 में प्रकाशित "रूस से सबक" "अभ्युदय" इलाहाबाद से प्रकाशित अखबार के लेखों से मिलता है।

भारतीय समाज में मार्क्सवादी विचारों से उत्पन्न होने वाली चेतना पर अंकुश लगाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कम्युनिस्ट साहित्य के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया परन्तु रूसी क्रांति की उपलब्धियाँ भारतीय जनता की दृष्टि से ओझल नहीं रह सकी, ब्रिटिश सरकार भारतीय समाज में रूसी क्रांति से उत्पन्न चेतना को सही रूप में देख रही थी इसका प्रमाण मांटेग्यू और वायसराय चेम्सफोर्ट द्वारा 1918 में प्रकाशित रिपोर्ट में स्वीकृत इस बात से मिलता है -- "रूस की क्रांति और इसकी शुरूआत को भारत में निरंकुशता पर विजय समझा गया, इसने भारतीय राजनीतिक आकांक्षाओं को प्रेरणा दी है।"[1]

---

1. भारत का इतिहास -- को.आ. अंतोनोवा -- पृ. 542

भारत में राष्ट्रवादी प्रेस द्वारा रूसी घटनाओं की अभिव्यक्ति नवम्बर 1917 से ही आरम्भ की जा चुकी थी। जिसकी पुष्टि "लेनिन की विख्यात रूस के जनगण के अधिकारों की घोषणा" तथा जनकमिसार परिषद् द्वारा प्रकाशित "रूस और पूर्व के सभी मुस्लिम मेहनतकशों से अपील" से होती है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के वामपंथी नेताओं ने अक्तूबर क्रांति को एक युगान्तरकारी सामाजिक परिवर्तन माना जिसका रूप हमें 1918 में तिलक द्वारा "केसरी" में की गई सम्पादकीय टिप्पणियों और वामपंथी राष्ट्रवादी नेता विपिन चन्द्रपाल के कथन में मिलता है। किन्तु 1920 में महात्मा गाँधी ने "यंग इंडिया" में "भारत को बोलशेविक वसूलों की जरूरत नहीं है" लिखकर इस युगान्तरकारी परिवर्तन के अस्तित्व को झुठलाया है। उनके इस वक्तव्य के विरोध में बनारस के दैनिक "आज" और "प्रताप" में गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की गई।

इस समय तक भारतीय राष्ट्रवादी बुद्धिजीवी और श्रमजीवी मज़दूर वर्ग रूसी क्रांति के सन्देश द्वारा मार्क्सवाद से परिचित हो चुका था तथा वह अपने शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए संगठित हो रहा था। भारतीय जन-सामान्य में मार्क्सवादी दृष्टि और विचारों का प्रसार करने और उसमें चेतना उत्पन्न करने में तत्कालीन अनेक भारतीय पत्र-पत्रिकायें सक्रिय थीं। 1920 में मज़दूरों के "अखिल भारतीय संगठन" अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की और 1925 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना से देश में किसान मज़दूरों के आंदोलन को एक नयी शक्ति प्राप्त हुई। 1930 के आस-पास का समय भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की दृष्टि से गुणात्मक परिवर्तन का रहा है। इस समय भारतीय कांग्रेस की सुधारवादी मध्यवर्गीय राजनीति से निराश भारतीय जनता, बुद्धिजीवी और साहित्यकार वामपंथी दिशा की

ओर मुड़ने लगे थे जिससे भारतीय आन्दोलन में वर्ग-दृष्टि का समावेश हुआ।

इसके अतिरिक्त तीसरे दशक तक आते-आते लेनिन और सोवियत राज्य पर भारतीय लेखकों की कृतियाँ भी प्रकाशित होनी आरम्भ हो चुकी थी इस संदर्भ में भारतीय समाजवादी जी.वी. कृष्ण राव की अंग्रेज़ी में लिखित "निकोलोई लेनिन : उनका जीवन और कृतित्व" नामक कृति उल्लेखनीय है। 1921 से 1924 के मध्य पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख और पुस्तकें विभिन्न भारतीय भाषाओं में लेनिन और अक्तूबर क्रांति के बारे में प्रकाशित होने लगी थी। इसके साथ भूमिगत क्रांतिकारी संगठनों के निर्देशन में वामपंथी भारतीय राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सक्रिय होकर गुप्त रूप से लेनिन से सम्पर्क स्थापित करने में भी सफलता प्राप्त कर चुके थे। इसका प्रमाण यह है कि लेनिन ने भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के विकास को साम्राज्य-वादियों के विरुद्ध विश्व संघर्ष का एक महत्वपूर्ण अंग मानते हुए इसका उल्लेख "चाहे कम हो पर बेहतर हो" शीर्षक लेख में किया है।

समाजवादी क्रांति के प्रभाव स्वरूप भारतीय समाजवादी विचारकों और संगठनों ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में उत्तेजना, उत्साह और तीव्रता लाने के साथ-साथ भारतीय मज़दूर और किसान समुदाय को अपनी मुक्ति हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया इसका प्रमाण एनीबेसेंट के इस कथन से मिलता है -- "रूसी क्रांति तथा यूरोप और एशिया में रूसी जनतंत्र के संभावित उदय ने भारत में पहले विद्यमान परिस्थितियों को पूर्णतया बदल दिया है।" इस परिवर्तन का एक और प्रभाव यह दिखाई देता है कि

बारडोली प्रस्ताव के बाद तथा असहयोग आन्दोलन में सक्रिय क्रांतिकारियों और कांग्रेस के वामपंथी सदस्यों का गाँधी जी पर से विश्वास उठने लगा था। इसी समय "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन" संगठन द्वारा भूमिगत क्रांतिकारी संगठित होने लगे थे।

इस प्रकार 1917 से 1921 की अवधि भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन के निर्माण की रही है जिसे अमृत डांगे द्वारा प्रकाशित "सोशलिस्ट" नामक साप्ताहिक पत्र में मार्क्स और लेनिन की कृतियों के प्रचार और रूसी अक्तूबर क्रांति भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करते हुए प्रस्तुत किया गया। इसी में 1922 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर भारतीय मज़दूर समाजवादी पार्टी के गठन की रचना भी प्रकाशित की गई तथा 1923 में बम्बई में "सोशलिस्ट" मासिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। लाहौर में गुलाम हुसैन द्वारा उर्दू अखबार "इन्कलाब", मुज्जफर अहमद द्वारा "गणवाणी" नामक बंगला अखबार और मद्रास से सिंगारवेलु चेट्टियार के नेतृत्व में "मजदूर-किसान गजट" प्रकाशित हुआ और साथ ही मार्क्सवादी दलों की स्थापना हुई। 1924 में कम्युनिस्टों के विरुद्ध पहला मुकदमा कानपुर में बोलशेविक ऐजेंट होने के दोष में चलाया गया जिससे भारतीय जनता में मार्क्सवादी आंदोलन के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। इसी वर्ष कानपुर में सत्य भक्त नामक पत्रकार द्वारा कानूनी तौर पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की गई। 1925 में कानपुर में सिंगारवेलु चेट्टियार की अध्यक्षता में भारतीय कम्युनिस्टों का पहला सम्मेलन हुआ और ट्रेड यूनियन सक्रिय हो गया। किन्तु 1926 में कलकत्ता में आयोजित

कम्यूनिस्ट पार्टी के दूसरे सम्मेलन में कोमिटर्न के साथ सम्पर्कों के संबंध में मतभेद होने के कारण सत्यभक्त ने पार्टी से अलग होकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की जो मूलतया क्रांतिकारी जनवादियों का संगठन था।[1] इस समय एम.एन. राय के नेतृत्व में प्रवासी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी विदेशी ब्यूरों का कार्य कर रही थी और दूसरी ओर मार्क्सवादी विचारधारा और कार्य-नीतियों को संगठित किया जा रहा था।

इस समय एक ओर राष्ट्रीय सुधारवादियों और दूसरी ओर कम्युनिस्टों तथा क्रांतिकारी जनवादियों के बीच संगठित मजदूर आंदोलन के नेतृत्व के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया था। इस अंतर्विरोध के बावजूद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन देश के कम्युनिस्ट आंदोलन को नयी दिशा और शक्ति प्रदान कर रहा था। और भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों और सामाजिक राजनीतिक संगठनों द्वारा रूसी क्रांति के प्रभाव को मुक्ति संघर्ष के रूप में स्वीकारा जाने लगा था।

भारतीय राजनीति में 1922 से 1927 तक आये परिवर्तनों ने वामपंथी शक्तियों को बल प्रदान किया जिससे 1927 के अंत में राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर वामपक्ष अधिक सक्रिय हो गया और उसने कांग्रेस अधिवेशन में भारतीय मुक्ति आंदोलन का मुख्य लक्ष्य-पूर्ण स्वराज्य घोषित किया। दूसरी ओर एम.एन. राय और अवनी मुखर्जी द्वारा भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और भारतीय आर्थिक और राजनीतिक स्थिति से सम्बद्ध प्रश्नों पर पुस्तकें और लेख प्रकाशित किये गये जिससे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन में सहायता प्राप्त हुई और 1934 तक आते-आते जन-सामान्य

---

1. भारत का इतिहास -- को.आ. अंतोनोवा -- पृ. 575

का कांग्रेस नेतृत्व के प्रति मोहभंग हो चुका था। इसी वर्ष सरकार द्वारा भारत में साम्यवादी दल को गैर क़ानूनी घोषित किया गया। किन्तु इससे मजदूर किसान वर्ग में साम्यवादी मार्क्सवादी विचारों का प्रचार रुका नहीं बल्कि कांग्रेस संगठन के भीतर ही समाजवादी विचारधारा के लोगों ने कांग्रेस समाजवादी दल की नीव डाली और किसान-मजदूरों के बीच वे सक्रिय हो गये। आचार्य नरेन्द्रदेव ने कम्युनिस्टों के नेतृत्व में साम्राज्य विरोधी लीग की स्थापना को महत्व दिया। 1936 में अखिल भारतीय किसान संगठन द्वारा किसान सभा की स्थापना के साथ ही किसान आंदोलन का नेतृत्व साम्यवादियों के हाथों में आ गया था। इसी वर्ष कामरेड दत्त और बेडले का लेख "हिन्दुस्तान में साम्राज्य-विरोधी जनमोर्चा" प्रकाशित हुआ।

यही वह समय था जब सम्पूर्णानन्द और आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा "जागरण" और "हंस" पत्रिकाओं के माध्यम से समाजवादी आकांक्षाओं को मूर्त किया जा रहा था और इसी समय प्रेमचन्द ने जागरण के माध्यम से प्रेस की दमन नीति के वास्तविक रूप को दर्शाते हुए कहा -- "ऐसे वातावरण में जबकि हर एक सम्पादक के सर पर तलवार लटक रही हो राष्ट्र का सच्चा राजनीतिक विकास नहीं हो सकता।"[1] इस समय भारतीय जनमानस का आक्रोश पूर्ण स्वर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "रूस की चिट्ठी" निराला और प्रेमचन्द की रचनाओं तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी अभिव्यक्त हो रहा था। 1936 तक आते-आते भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के एक बड़े वर्ग का वामपंथी विचारों और पद्धति की ओर झुकाव होता

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 7

गया जिसका प्रभाव राजनीति और साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। यह वह राजनीतिक और भारतीय सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि है जिसके आधार पर भक्तिकाल के बाद का सबसे विशाल जन-आंदोलन विकसित हुआ जिसने सम्पूर्ण भारतीय समाज और साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। इसी को साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन और राजनीति में कम्युनिस्ट या साम्यवादी आंदोलन के रूप में पहचाना जाता है।

1.2 भारतीय साहित्य परिषद् : प्रथम साहित्यिक जागरण

हिन्दी में प्रगतिशील प्रवृत्ति का उदय भारतीय साहित्य के मूल में निहित लोकमंगल की सुदीर्घ परम्परा के विकासक्रम में हुआ है। भारतेन्दु द्वारा साहित्य के क्षेत्र में प्रारम्भ की गई यथार्थवादी चित्रण की अभिव्यक्ति के माध्यम से एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया गया। उसी परम्परा के विकास की धारा द्विवेदी युग और छायावादी साहित्य से होते हुए निराला और प्रेमचन्द के साहित्य में परिणति पर पहुँची। हिन्दी का प्रगतिशील आंदोलन हिन्दी साहित्य की इसी विकासशील सामाजिक परम्परा का एक अंग रहा। किसी भी साहित्यिक, सामाजिक या राजनीतिक युग के प्रारम्भ और अन्त को किसी निश्चित तिथि अथवा समय की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है किन्तु घटनायें तथा परिस्थितियाँ किसी न किसी रूप में किसी तिथि अथवा समय विशेष के उद्भव अथवा समाप्ति का कारण अवश्य बनती है। इसी कारण हिन्दी के प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन के उद्भव का समय अनेक मान्य प्रमाणों के आधार पर

सन् 1936 से माना गया है। डॉ. शिव कुमार मिश्र का कहना है कि यही वह वर्ष है जब साहित्य और राजनीति दोनों में ही आदर्शवादी भावुकता और आध्यात्मिकता के स्थान पर यथार्थवादी बौद्धिकता और भौतिकता को प्रश्रय मिला दोनों ही दक्षिणपंथी से वामपंथी बने, राष्ट्रीयता ने नवीन रूप धारण किया, अंतर्राष्ट्रीयता उससे अधिक महत्व की पात्र बनी और दोनों के ही सम्मिलन ने राष्ट्र और जन-जीवन को नवीन चेतना से समन्वित किया।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन का उद्‌भव और विकास भारतीय सामाजिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि का परिणाम है। जिस प्रकार प्रत्येक चिंतनधारा के मूल में उस युग की विशेष परिस्थितियाँ सक्रिय होती हैं उसी प्रकार प्रगतिशील और समाजवादी साहित्यिक और सामाजिक आंदोलन की उत्पत्ति के मूल में सन् 1917 से 1936 तक की तत्कालीन युगीन परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा है किन्तु साहित्य के क्षेत्र में 1930 के पश्चात् की परिस्थितियों में पुरानी पीढ़ी के सम्पादकों द्वारा पुरातन प्रियता पुनरूत्थानवाद, हिन्दू रूढ़िवाद आदि को प्रश्रय देने तथा हिन्दी में क्लिष्ट और आलंकारिक भाषा पुरानी दरबारी शैली आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में पं. नेहरू के साथ हुए विवाद से हिन्दी पुरातनपंथी साहित्यकारों की नवीनता विरोधी प्रवृत्ति और संकुचित दृष्टि तथा हिन्दू अभिजात्य वर्ग की संकीर्णतावादी और स्वार्थपूर्ण नीति का परिचय मिलता है। परन्तु इसी समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, परिमल आदि मंचों पर बुद्धिजीवियों का संगठित होकर सृजनात्मक साहित्य की रचना करने से उनकी प्रगतिशील विचारधारा का रूप व्यक्त होता है।

लेकिन 1930 के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा राजद्रोह कानून के अन्तर्गत 3-4 वर्षों में समाजवाद, जनवाद, साम्यवाद, जन-जागरण, किसानों की मुक्ति, स्वाधीनता-संघर्ष आदि से सम्बद्ध पत्र-पत्रिकाओं पर तथा मार्क्सवादी साहित्य पर लगाया गया प्रतिबन्ध और प्रेस-दमन की नीति से सन् 1857 की दमनकारी ब्रिटिश सरकार का रूप पुनः उभर आता है। सन् 1857 की क्रांति में साम्राज्यवादी भक्तों की सहायता से ब्रिटिश सरकार ने जिस प्रकार क्रांतिकारियों का दमन किया था उसी प्रकार सन् 1930 के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रेस दमन की नीति के माध्यम से मार्क्सवादी विचारधारा से साहित्य में उत्पन्न होने वाली जन-चेतना को विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर और हथकण्डों के माध्यम से दबाया। ब्रिटिश सरकार के इस साहित्यिक दमन में पुरातन पंथी रूढ़िवादी पीढ़ी ने साम्राज्यवादी भक्तों की भूमिका अदा की।

प्रेमचन्द ने ऐसे समय में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सहकारी प्रकाशन संस्था खोलने के उद्देश्य से लेखक संघ स्थापित करने का प्रयास किया जो रामचन्द्र टण्डन से विवाद के कारण सफल नहीं हो पाया परन्तु बुद्धिजीवी युवा-वर्ग में उत्पन्न जागृति ही कालान्तर में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वाधीनता संघर्ष, लेखकों के जनवादी अधिकारों के दमन के विरुद्ध, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हेतु हिन्दू पुनरूत्थानवाद के स्थान पर जनवादी राष्ट्रीयता की स्थापना के लिए तथा हिन्दी साम्राज्यवाद की आकांक्षा के विरुद्ध भारतीय भाषाओं एवं बोलियों की स्वतंत्रता एवं हिन्दी लेखकों के संगठन के स्थान पर अखिल भारतीय साहित्य परिषद् की स्थापना के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनी है और सन् 1930 के बाद युवा वर्ग में उत्पन्न बौद्धिक

जागृति से साहित्य संग्राम की परिणति 1935 में भारतीय साहित्य परिषद् की स्थापना के साथ पूर्ण हुई। अतः यह साहित्यिक आंदोलन ब्रिटिश सरकार की दमन नीतियों के विरुद्ध उत्पन्न हुआ था जिसकी तुलना सन् 1857 की स्वतंत्रता क्रांति से की जा सकती है जिसे हम प्रथम साहित्यिक जागरण कह सकते हैं। इस साहित्यिक जागृति के द्वारा भारतीय युवा वर्ग ने ब्रिटिश सरकार के प्रशासन को जनचेतना के माध्यम से चुनौती दी थी किंतु यह साहित्यिक क्रांति दीर्घकाल तक सक्रिय नहीं रही।

अर्थात् सन् 1857 की क्रांति में भारतीय स्वतंत्रता हेतु जहाँ राजनैतिक दृष्टि से राजाओं, नवाबों और सैनिकों को संगठित कर जन-सामान्य में स्वतंत्रता की भावना जागृत की गई थी उसी प्रकार सन् 1935 में भारतीय साहित्य परिषद् द्वारा बुद्धिजीवी युवा वर्ग ने साहित्य के माध्यम से जन-जागृति हेतु उपर्युक्त उद्देश्यों के निहित एक साहित्यिक संगठन के लिए मंच बनाया था जिसके माध्यम से प्रेमचन्द के नेतृत्व में भारतीय समाज का बुद्धिजीवी युवा वर्ग प्राचीनता भक्त, रूढ़िवाद सामंतप्रियता, साम्राज्यवादी दृष्टि से प्रेरित सिंहासनस्थ वृद्ध साहित्यकारों और प्रकाशकों के साथ-2 ब्रिटिश सरकार की दमन नीति के विरुद्ध दोहरे स्तर पर संघर्ष कर रहा था किन्तु साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की हत्या से साहित्य के क्षेत्र में पुनः प्राचीनता भक्त स्थापित हो गये जिन्होंने "उग्र" के माध्यम से यथार्थवाद का और मुक्त-छन्द का विरोध किया और घासलेटी साहित्य के आंदोलन द्वारा प्रेमचन्द को विदेशी कथाकारों की रचनाओं का अपहरणकर्ता बताकर अपमानित किया।

साहित्य के क्षेत्र में बौद्धिक स्तर पर युवा वर्ग की जागृति और अल्पकाल में उसकी असफलता सन् 1857 की स्वतंत्रता आन्दोलन द्वारा उत्पन्न राजनीतिक जागृति और उसकी असफलता के इतिहास को दोहराती है। जहाँ 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ब्रिटिश सरकार के भक्त और साम्राज्यवादियों के वर्ग की सहायता से असफल किया गया था उसी प्रकार "प्रथम साहित्यिक जागरण" की असफलता रूढ़िवादी साम्प्रदायिक तत्वों, हिन्दू पुनरूत्थानवादी तथा हिन्दी साम्राज्यवादी तत्वों द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी की हत्या के माध्यम से युवा वर्ग में उत्पन्न चेतना की हत्या के द्वारा हुई। परन्तु जिस प्रकार सन् 1857 की क्रांति से उत्पन्न जन-चेतना स्वतंत्रता प्राप्ति में परिणत हुई उसी प्रकार हिन्दी साहित्य जगत् की युवा पीढ़ी द्वारा साहित्यिक जागरण की परिणति प्रलेस की स्थापना के साथ पूर्ण की गई। जिससे युवा वर्ग ने साहित्य रचनाओं द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति में सहयोग प्रदान कर अपने उद्देश्य को प्राप्त किया है।

यहाँ देख सकते हैं कि 1857 की क्रांति के सिपाही असफल होने के बाद भी अंग्रेज़ों के विरूद्ध मोर्चा बाँधे हुए थे उसी प्रकार भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग साहित्य सम्मेलन के प्राचीनता भक्त पदाधिकारियों से पराजित होने पर भी उनके विरूद्ध साहित्य क्षेत्र में डटे रहे।

इस प्रकार सन् 57 की क्रांति जहाँ राजनैतिक क्षेत्र में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में महत्व रखती है वही साहित्य सम्मेलन पद पर नव-युवाओं के नेतृत्व की असफलता भी जन-जागृति से प्रेरित साहित्य संरचना के क्षेत्र में बुद्धिजीवी युवावर्ग का रूढ़िवादिता और प्राचीनता, सामंतवादिता

तथा साम्राज्यवादियों के विरुद्ध साहित्यिक मोर्चा बनाने का प्रथम साहित्यिक जागरण रहा है। चाहे वह असफल ही क्यों न रहा हो।

1.3 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और उद्देश्य

जिस समय भारत में प्रेमचन्द के नेतृत्व में भारतीय लेखकों को भारतीय साहित्य परिषद् के संगठन द्वारा भारतीय भाषाओं में एकता स्थापना हेतु पारस्परिक सहयोग की भावना उत्पन्न करने का प्रयास हो रहा था वहीं दूसरी ओर सोवियत संघ में मैक्सिम गोर्की के नेतृत्व में 1934 में "सोवियत लेखक संघ का गठन हुआ जिसका समर्थन रोमारोला, आंद्रेजीड, हेनरी बारबूज, जॉर्ज बर्नार्डशा आदि कर रहे थे। इसी समय अर्थात् 1935 में हेनरी बारबूज के नेतृत्व में संस्कृति की रक्षा के लिए विश्व लेखक अधिवेशन *(World Congress of writer's for the defence of culture)* पैरिस में बुलाया गया जिसमें गोर्की रोमारोला, आद्रे मालरो टामसमान वाल्डेफैंक आदि विश्व विख्यात साहित्यकार और संयोजक उपस्थित हुए। इस अधिवेशन में फासिज़्म के विरुद्ध शोषित जन-समर्थन और वैचारिक स्वतंत्रता हेतु एक स्थाई समिति का निर्माण अंग्रेज़ी के कथाकार ई. एम. फोर्स्टर की अध्यक्षता में किया गया। जिससे प्रेरित होकर विश्व में लेखकों के स्वत्व रक्षा हेतु साम्राज्यवाद और फासिज़्म के विरुद्ध संगठनों की स्थापना होने लगी। इसी क्रम में सन् 1935 में लन्दन में समाजवादी विचारधारा के भारतीय बुद्धिजीवियों ने भी "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" *(Indian Progressive Writer's Association)* की स्थापना की। जिसके अध्यक्ष मुल्कराज आनन्द और सेक्रेटरी सज्जाद जहीर चुने गए। इस बैठक के घोषणा-पत्र की प्रतियाँ प्रमुख भारतीय लेखकों और सम्पादकों के पास

भेजी गई। प्रेमचन्द ने "हंस" के माध्यम से पूरी आत्मीयता और सहयोग के द्वारा इस लेखक संघ के उद्देश्यों को प्रचारित किया और टिप्पणी करते हुए कहा - "हमारे सुशिक्षित और विचारशील युवकों में भी साहित्य में एक नई स्फूर्ति और जागृति लाने की धुन पैदा हो गई है। लंदन में स्थापित *The Indian Progressive Writer's Association* के मेनिफेस्टो से आशा होती है कि यह सभा अपने नए मार्ग पर जमी रही तो साहित्य में नवयुग का उदय होगा।"[1]

प्रेमचन्द की इस टिप्पणी से प्रलेस के प्रति उनकी उदार दृष्टि और आत्मीयता व्यक्त होने के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय युवावर्ग में साहित्य के प्रति जागृति आने की पुष्टि होती है। प्रवासी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग विश्व में आ रहे परिवर्तन और मानवाधिकारों की रक्षा के लिये संगठित होने वाली संस्थाओं के कार्यों के प्रति जागरूक था इसी कारण उसमें संस्कृति की रक्षा हेतु संगठित होने की आकांक्षा उत्पन्न हुई जिसका परिणाम ही प्रलेस की स्थापना रहा है। यह संस्था भारतीय बुद्धिजीवियों को विश्व स्तर पर विश्व के साहित्यकारों और बुद्धिजीवी वर्ग से जोड़ती है। इससे भारतीय युवावर्ग की विश्व स्तर पर जागृति और विस्तृत दृष्टिकोण और जन-जागरण तथा मानव कल्याण के लक्ष्य की संकल्पना व्यक्त होती है।

प्रलेस द्वारा भारतीय साहित्यकारों, पत्रकारों, प्रकाशकों और बुद्धिजीवी वर्ग को विश्व स्तर पर विश्व साहित्य संगठन से जोड़ने का

---

1. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 8

कार्य प्रवासी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग कर रहा था। विश्व की परिस्थितियाँ और मानवीय गतिविधियाँ प्रवासी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को भारत के साहित्यकारों को विश्व स्तर पर लाने के लिए प्रेरित कर रही थी। जिसकी पूर्ति हेतु ही प्रलेस की स्थापना की गई थी। यदि आधुनिक दृष्टि से देखा जाय तो प्रलेस का दृष्टिकोण विश्व एकात्मकता से परिपूर्ण दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में सज्जाद जहीर का कथन विशेष महत्व रखता है -- '1935 के कान्फ्रेंस के बाद सारी दुनिया के प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन का एक अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र पेरिस में स्थापित हो गया।...हमारे लन्दन के प्रगतिशील लेखक संघ ने यह फैसला किया कि वह नियमित रूप से इस अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक केन्द्र के साथ जुड़ जाये और बाद में जब हिन्दुस्तान में प्रगतिशील लेखक संघ स्थापित हो जाये तो फिर उस केन्द्रीय हिन्दुस्तानी संघ की एक विदेशी शाखा की हैसियत से वह इस संबंध को कायम रखे और केन्द्रीय संस्था के आदेशों के अनुसार विदेशों में भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व करे।[1]

सज्जाद जहीर के उक्त वैचारिक अंश से स्पष्ट होता है कि प्रवासी भारतीयों द्वारा लन्दन में संगठित किया गया प्रलेस अपने आप में पूर्ण रूप से स्वतंत्र रहा न कि पेरिस में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र द्वारा संचालित प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन की शाखा। यदि प्रलेस पेरिस की अंतर्राष्ट्रीय संगठन की शाखा रही होती तो भला सज्जाद जहीर को यह क्यों कहना पड़ता कि लन्दन के प्रलेस ने अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक केन्द्र से जुड़ने का फैसला किया है। अतः स्पष्ट है कि प्रवासी भारतीयों द्वारा 1935 की सांसारिक परिस्थितियों और परिवेश तथा मार्क्सवाद से प्रभावित होकर प्रलेस की स्थापना की गई है अतः इसे विदेशी संस्था से सम्बद्ध देखना और विदेशी आंदोलन को भारतीय समाज पर थोपने का अनुचित तर्क देना आधारहीन होगा।

---

1. प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन -- हंसराज रहबर -- पृ. 15

1936 में प्रयाग में आयोजित हिन्दुस्तान एकेडेमी के वार्षिक समारोह में प्रेमचन्द से सज्जाद जहीर तथा उनके साथियों की भेंटवार्ता में प्रलेस को सम्पूर्ण भारत में संगठित करने की सहमति हुई। और इसी समय भारतीय साहित्य परिषद् के अधिवेशन में साहित्यिक गतिविधियों को प्रगतिशील दिशा में ले जाने का अनुरोध भारतीय साहित्यकारों द्वारा किया गया। इस सम्मेलन के प्रस्ताव कांग्रेस समाजवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी से प्रभावित रहे। रेखा अवस्थी का कहना है कि 'विशाल भारत में इस सम्मेलन की भ्रामक रिपोर्ट अज्ञेय द्वारा प्रस्तुत की गई जिस पर प्रहार करते हुए अख्तर हुसैन रायपुरी ने सम्मेलन की कार्यवाही का स्पष्टीकरण किया। इस सम्मेलन में अज्ञेय और बनारसीदास चतुर्वेदी ने क्रांतिकारी साहित्य-रचना के प्रस्ताव का विरोध किया जिसका उत्तर अख्तर हुसैन ने ही दिया।[1]

1936 में ही मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्यिक गतिविधियों से भी अज्ञेय, चतुर्वेदी आदि प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण के लेखकों का विरोध रहा है, इस समय तक भारत में प्रलेस की स्थापना भी नहीं हो पायी थी। अज्ञेय इत्यादि प्रतिगामी दृष्टिकोण के साहित्यकारों का भारतीय समाज में जन-चेतना की उत्पत्ति से भी विरोध रहा। दूसरी ओर मार्क्सवादी विचारधारा के प्रचारक कांग्रेस समाजवादी पार्टी द्वारा लखनऊ से "संघर्ष" नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकाला गया इसके माध्यम से सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनन्द आदि कांग्रेस के समाजवादी कार्यकर्ताओं, नरेन्द्रराय, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, बेनीपुरी आदि के सम्पर्क में आये।

इन्हीं दिनों पार्टी के विभिन्न जन-संगठनों के माध्यम से जन-संपर्क स्थापित कर मार्क्सवाद-लेनिनवाद का प्रचार सुधारवादी नेतृत्व का

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 10-11

विरोध और स्वाधीनता-संघर्ष में गति लाने तथा बुद्धिजीवियों, छात्रों तथा किसानों के मोर्चा संगठित करने की योजना बनाई गई। लेखकों को संगठित करने का कार्य सज्जाद जहीर को सौंपा गया उन्होंने प्रेमचन्द के नेतृत्व के महत्व को समझते हुए हिन्दुस्तान में यथार्थवादी साहित्य-निर्माण हेतु लेखक संगठन की स्थापना की आवश्यकता को अनुभव किया जिसकी पूर्ति हेतु इन्होंने प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के द्वारा प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन और संगठन चलाने का कार्य आरंभ किया। सज्जाद जहीर इस कार्य में प्रेमचन्द के नेतृत्व के महत्व को स्वीकार करते हुए उनके माध्यम से भारतीय युवावर्ग से महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त करने में सफल रहे।

अतः प्रलेस की स्थापना भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अपने राजनीतिक उद्देश्यों और लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भारतीय समाज के साहित्यकारों को संगठित कर उनकी लेखन-शक्ति द्वारा जन-सामान्य में स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने की उर्जा के प्रसारण हेतु की गई थी। अतः प्रलेस एक प्रकार से कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवाद का जनता में प्रसार करने के लिए अपनाया गया साहित्यिक मंच रहा। जिसके उद्देश्य को सज्जाद जहीर ने इस प्रकार प्रकट किया है -- "प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन का रुख देश की जनता और मज़दूर-किसानों और मध्यम-वर्ग की ओर होना चाहिए। उनको लूटने वालों और उन पर अत्याचार करने वालों का घोर विरोध करना, अपनी साहित्यिक रचनाओं से जनता में चेतना, गति-क्रियाशीलता और एकता उत्पन्न करना और तमाम अवरोधों और प्रवृत्तियों का विरोध करना जो जड़ता प्रतिक्रिया निरुत्साह उत्पन्न करती है, हमारा मुख्य कर्तव्य ठहरा। ... हम चेतन रूप से देश के स्वाधीनता-संघर्ष

और देश की जनता की अपनी स्थिति को सुधारने के आंदोलन में भाग ले। सिर्फ़ दूर से तमाशाई न हो बल्कि सामर्थ्य भर अपनी योग्यता के अनुसार स्वतंत्रता सेना के सिपाही बने। ... इसका अर्थ यह है कि लेखक राजनीति से अलग और उदासीन नहीं हो सकते। प्रगतिशील लेखक के मन में मानव जाति से स्नेह और गहरी सहानुभूति जरूरी है। बिना मानवता, प्रेम स्वतंत्रता की इच्छा और जनतंत्रवाद के प्रगतिशील लेखक होना संभव नहीं।... हम चाहते हैं कि प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग मज़दूरों-किसानों, दरिद्र और पीड़ित जनता से मिले, उनके राजनीतिक और सामाजिक जीवन के अंग बने। ...बुद्धिजीवियों के लिए साहित्य-रचना के साथ-साथ जन-जीवन के स्प अधिक से अधिक सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक है बल्कि बिना इसके नए साहित्य की रचना हो ही नहीं सकती। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारे संघ की शाखाएँ एकांत प्रिय विद्वानों की टोलियाँ न हो बल्कि उनमें हरकत भी हो। साहित्यिक गोष्ठियों में दूसरे लोग भी आए लेखकों की रचनाओं पर खुली बहसें हो, लेखक और कवि साधारण लोगों से मिलते-जुलते रहे। उनमें घुले रहे, उनसे सीखें और उन्हें सीखाएँ। हमारा संघ लेखकों का संगठन होते हुए और साहित्य रचना पर अधिक से अधिक ध्यान देते हुए भी अंजुमने तरक्की-ए-उर्दू अथवा हिन्दी साहित्य सम्मेलन न बन जाए गतिमान और सजीव संस्था बने जिसका जनता से सीधा और स्थाई सम्पर्क हो।"[1]

सज्जाद जहीर द्वारा प्रलेस की स्थापना के बताये गये उद्देश्य से सिद्ध होता है कि प्रलेस की स्थापना का श्रेय प्रायः प्रवासी भारतीय बुद्धिजीवियों को जाता है परन्तु भारत में उसकी स्थापना का श्रेय देश की

---

1. प्रगतिवाद : पुनर्मूल्यांकन -- हंसराज रहबर -- पृ. 14

तत्कालीन परिस्थितियों की माँग को देना होगा। क्योंकि प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य देश की प्रतिक्रियाहीनता की भावना निरूत्साह आदि को समाप्त कर उन्हें अपने साथ हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध विदेशी सरकार के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करना रहा है, विदेशी सरकार के दमन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए जनमानस में चेतना लाने के लिए समाज के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को संगठित कर उन्हें राजनीति द्वारा पलायन की दृष्टि से मुक्ति दिलाना तथा उनमें राजनीति के प्रति समाहित उदासीनता को समाप्त कर अपने लेखन द्वारा मानव जाति से सहानुभूति रखते हुए जन-जागृति लाने के उद्देश्य के प्रति प्रेरित करने के लिए ही प्रलेस की स्थापना की गई। भारतीय समाज से कटे हुए बुद्धिजीवी वर्ग को समाज से जोड़ते हुए समाज के अन्य पिछड़े हुए किसान मज़दूर वर्ग में सामाजिक और राजनीतिक जागृति और चेतना लाना प्रलेस का उद्देश्य दिखाई देता है। प्रलेस द्वारा ही साहित्यकारों को पहली बार जनमानस को अपनी रचनाओं का विषय बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई जिससे देशी भाषाओं का साहित्य समाज का अभिन्न अंग बनने में सफल रहा। शम्भूनाथ जी का कहना है कि "प्रगतिशील जनवादी आंदोलन राष्ट्रवाद तथा भारतीय समाज के आधुनिक विकास के गर्भ से ही बाहर आ रहा था। एक लम्बी परम्परा के भीतर से भारतेन्दु मंडल के लेखकों, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला आदि ने प्रगतिशील आंदोलन की जो ज़मीन तैयार की उसी ज़मीन पर 9-10 अप्रैल, 1936 को प्रगतिशील लेखक संघ का पहला सम्मेलन आयोजित हुआ।"[1]

---

1. "विपक्ष" अंक-7 -- पृ. 12

1936 में लखनऊ में हुए कांग्रेस अधिवेशन के साथ-साथ प्रलेस द्वारा प्रगतिशील लेखकों का पहला सम्मेलन आयोजित किया गया। कांग्रेस अधिवेशन के सभापति के रूप में नेहरू को और प्रलेस के अध्यक्ष के रूप में प्रेमचन्द को भार सौंपा गया। इसी समय भारतीय राजनीति में भी अनेक परिवर्तन आये। लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना कर प्रो. एन.जी. रंगा को अध्यक्ष और महासचिव स्वामी सहजानन्द सरस्वती को चुना गया। इस सम्मेलन में प्रेमचन्द द्वारा दिया गया अध्यक्षीय भाषण अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। इस समय आस्था और विश्वास के साथ अभिनव साहित्यिक जागरण का आह्वाहन करते हुए उन्होंने कहा-- "साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है हमें ऐसा साहित्य निर्मित करना चाहिए जिसमें वर्तमान विपन्नावस्था का प्रतिबिम्ब हो और उससे परित्राण पाने के लिए आशा-पूर्ण सन्देश निहित हो।"[1]

तत्कालीन साहित्य में आदर्शवादी सीमाओं में विकसित होने वाला यथार्थवाद सामाजिक यथार्थवाद की विचार-प्रणाली के रूप में प्रकट हुआ। इसी समय प्रेमचन्द ने साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा - "जीवन की आलोचना" प्रस्तुत की। क्योंकि समाज के दलित-पीड़ित और वंचित वर्ग का पक्षधर साहित्य ही समाज की न्यायवृत्ति और सौन्दर्यवृत्ति को जागृत करता है। प्रेमचन्द ने सौन्दर्य को कसौटी परिवर्तन की आवश्यकता को दर्शाते हुए कहा -- "हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी अभी वह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। शासक वर्ग के लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है न कि रूपहीन बच्चों वाली गरीब स्त्री में, जो बच्चों को खेत के

---

1. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता -- भक्त राम शर्मा -- पृ. 15

मेड़ पर सुलाकर पसीना बहा रही थी।"[1] इसके साथ ही प्रेमचन्द ने अकर्मण्य और कुंठित साहित्य और कला की तीव्र भर्त्सना की तथा प्रगतिशीलता की कसौटी निर्धारित करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया -- "हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। ...हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं।"[2]

इस प्रथम प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के घोषणा-पत्र का उद्देश्य समस्त भारतीय प्रगतिशील लेखकों की संस्थाओं का संगठन, साहित्य प्रकाशन से उद्देश्यों का प्रचार करना, प्रगतिशील लेखकों और आलोचकों को प्रोत्साहित करना, प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों से संघर्ष करके देश-वासियों को स्वाधीनता संग्राम के लिए प्रेरित करना तथा प्रगतिशील लेखकों को वैचारिक स्वतंत्रता दिलाना आदि रहा है। जिसकी पूर्ति हेतु 1936 में "हंस" को प्रेमचन्द ने प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन को सौंपा था।

तत्कालीन बुर्जुआ वर्ग और ब्रिटिश सरकार द्वारा प्लेस का विरोध किया जा रहा था क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि इस संस्था के उद्देश्यों की सफलता उनके अस्तित्व के लिए चुनौती न सिद्ध हो जाये। इसी कारण जहाँ एक ओर प्लेस को विदेशी साहित्यिक फसाद और कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा संचालित बताया जा रहा था वहीं दूसरी ओर प्लेस के नेतृत्वकर्ता

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 16
2. मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन -- शिवकुमार मिश्र -- पृ. 494

पर घृणा का प्रचारक, ब्राह्मण विरोधी आदि आरोप लगाकर व्यक्तिगत रूप से विभिन्न हथकण्डों द्वारा प्रेमचन्द पर कुठाराघात किया गया और उनकी रचनात्मकता को गलत सिद्ध करने के लिए उनकी कहानियों और उपन्यासों के अनेक दृष्टांतों को गलत ढंग से भारतीय समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर उनकी रचनात्मकता को हीन और समाज विरोधी सिद्ध किया जा रहा था। प्रतिक्रियावादियों, बुर्जुआ वर्ग और ब्रिटिश सरकार का प्रलेस के विरोध में पूर्णतः सहयोग प्रदान किया। परन्तु साहित्यिक दृष्टि से प्रलेस काव्यांदोलन तक सीमित न रह कर एक सार्वभौमिक आंदोलन का रूप धारण कर चुका था। इस संबंध में रेखा अवस्थी का कहना है कि -- प्रगतिवाद ने साहित्यिक स्तर पर भारतेंदुकालीन नवजागरण से अपने को जोड़ा तथा प्रेमचन्द, प्रसाद निराला आचार्य शुक्ल एवं उग्र की जनवादी साहित्यिक परम्परा को नई ऐतिहासिक मंजिल पर क्रांतिकारी रोमांटिसिज्म आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद की दिशा में समृद्ध करने का आंदोलन चला। प्रगतिवाद एवं उसके समानान्तर साहित्यिक प्रवृत्तियों के बीच द्वन्द्व तथा जनवादी, समाजवादी संस्कृति एवं सामंती साम्राज्यवादी संस्कृति के रूप में यथार्थवादी रुझानों का विकास हुआ जो प्रगतिशील आंदोलन के रूप में साहित्य की सभी विधाओं में व्याप्त हो गया।

1.4 प्रगतिशील समीक्षा का विकास

प्रगतिशील साहित्य धारा का विकास उसकी पूर्ववर्ती रचनात्मक और समीक्षात्मक प्रवृत्तियों और साहित्यिक रचनाओं तथा मार्क्सवादी विचार-धारा के आधार पर हुआ है और साहित्यिक आंदोलनों से प्रभावित होकर लेखकों द्वारा प्रस्तुत की गई रचनाओं के विश्लेषण के क्रम में प्रगतिशील समीक्षा का

विकास हुआ। समीक्षा रचना पर आधारित होने पर भी साहित्य के विकास का अनिवार्य पक्ष है। इसी कारण प्रगतिशील समीक्षा को प्रगतिशील आंदोलन से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। प्रगतिशील समीक्षा के विकास में समालोचकों और सृजनशील रचनाकारों का समान योगदान स्वीकार किया जाता है। रेखा अवस्थी ने प्रगतिशील समीक्षा की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए कहा -- "छायावाद की तुलना में प्रगतिवाद चूंकि प्रगतिशील लेखक संघ के सामूहिक संगठन से परिचालित एक साहित्यिक आंदोलन था अतः उसके घोषणा-पत्र, परिपत्र, परिसंवाद, बैठकों की बहसें, सामूहिक रूप से पास किए गए प्रस्ताव आदि भी प्रगतिशील समीक्षा के अंग हैं।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि प्रगतिशील समीक्षा प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन का एक अभिन्न अंग है जिसकी बोधगम्यता के अभाव में प्रगतिशील समीक्षा का पूर्ण ज्ञान असंभव है।

साधारणतः मार्क्सवाद द्वारा प्रेरित समाजवादी सामाजिक चिंतन की दृष्टियों का विकास सर्जनात्मक और समीक्षात्मक क्षेत्रों में आधुनिक साहित्य के उदय के साथ ही मिलता है। यथार्थ चित्रण की नयी परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। इस युग के रचनाकारों और विचारकों की प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि उनकी जीवंत वास्तविकता में निहित रही जिसके कारण उन्होंने साम्राज्यवाद का विकृत रूप और पराधीन देश का आर्थिक शोषित रूप प्रकट करने में सफल रहे हैं। जिससे साहित्य की सार्थकता

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 275

जन-समूह की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप दिखाई देती है। भारतेन्दु युग की सामाजिकता के सन्दर्भ में जाति का सामाजिक नैतिक अभ्युत्थान साहित्य का मूल दायित्व रहा परन्तु द्विवेदी युग में आकर साहित्य सामाजिक जीवन से पूर्णतः सम्बद्ध हो गया। रामप्रसाद त्रिवेदी का कहना है -- "भारतेन्दु और द्विवेदी युग में काव्य तथा उपन्यास के अतिरिक्त साहित्य समीक्षा में भी प्राचीन आध्यात्मिकता की अपेक्षा, एक व्यावहारिक आदर्श की ओर विशेष रूप से झुकाव लक्षित होता है।"[1]

हिन्दी की आधुनिक समीक्षा पाश्चात्य समीक्षा साहित्य के सम्पर्क से अपनी परम्परागत आधार पर प्रगतिवाद तक आते-आते एक सार्वभौम दृष्टिकोण स्वीकार कर चुकी थी। इसका आधार सामाजिक यथार्थवाद का सिद्धांत रहा। अर्थात् हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में भारतेन्दु युग से प्रगतिवाद तक समीक्षा के अनेक रूप उभरते रहे। भारतेन्दु युग में हिन्दी समीक्षा पत्र-पत्रिकाओं में विवेचन के रूप में तथा द्विवेदी युग में प्रभाववादी तुलनात्मक समीक्षा का रूप पुस्तकों में प्रस्तुत होता रहा। सन् 1930 के पश्चात् समीक्षा के क्षेत्र में मार्क्सवादी प्रभावित समीक्षायें विभिन्न लेखों और निबन्धों में व्यक्त होने लगी थी। 1933 में कलकत्ता से प्रकाशित "विश्वामित्र" में अख्तर हुसैन रायपुरी का "साहित्य और क्रांति" शीर्षक प्रकाशित लेख यथार्थ समाज राजनीति क्रांति स्वाधीनता संघर्ष आदि से साहित्य के सम्बन्ध को लेकर चर्चा का विषय बना। रेखा अवस्थी के अनुसार इस लेख का महत्व यह रहा है कि इससे हिन्दी के जागरूक लेखकों और प्राचीनता भक्त साहित्यकारों में वैचारिक संघर्ष आरंभ हो गया था। इसका उत्तर इलाचन्द्र जोशी ने "जन-साधारण के साहित्य का आदर्श" नामक निबन्ध द्वारा दिया। इस वैचारिक संघर्ष में अख्तर हुसैन

---

1. प्रगतिवादी समीक्षा -- रामप्रसाद त्रिवेदी -- पृ. 88

रायपुरी ने अज्ञेय, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि का डटकर सामना करते हुए प्रगतिशील आलोचनात्मक दृष्टि को प्रस्तुत किया।

साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि की प्रखरता, आचार्य शुक्ल के माध्यम से आयी है। उन्होंने अपनी गहरी सूझ-बूझ, लोकोन्मुखता, व्यापक अध्ययन, गहरी पैठ, काव्य मर्मज्ञता और ठोस चिंतन द्वारा व्याख्यात्मक आलोचना के रूप को प्रतिष्ठित किया। इस सम्बन्ध में रेखा अवस्थी का यह कथन देखा जा सकता है -- "सन् 1940 तक की हिन्दी समालोचना का इतिहास देखने से पता चलता है कि सामंती रूढ़िवाद से पोषित शास्त्रीय मानदण्डों एवं अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, आनन्दवाद आदि के विरुद्ध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जबरदस्त विचारधारात्मक संघर्ष चलाया।"[1] इसका अभिप्राय यह हुआ कि हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में प्रगतिशील आंदोलन की पूर्ण सक्रियता से पूर्व ही आचार्य शुक्ल द्वारा प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष से विशिष्ट पृष्ठभूमि का निर्माण कार्य आरम्भ हो चुका था। इस सम्बन्ध में डॉ. शिव कुमार मिश्र का कहना है -- "आचार्य शुक्ल ने अपनी साहित्यिक मान्यताओं द्वारा आगामी मार्क्सवादी चिंतन के लिए हिन्दी में अनुकूल भूमिका का निर्माण किया।"[2] आचार्य शुक्ल ने श्रेष्ठ साहित्य की वास्तविक प्रभाव क्षमता की बोधगम्यता से पाठक को परिचित कराया तथा साहित्य के स्वरूप, प्रयोजन और उसके सामाजिक प्रभाव के सन्दर्भ में वैज्ञानिक दृष्टि को प्रस्तुत किया है। आचार्य शुक्ल ने साहित्यकार को भावात्मक स्तर पर लोक-हृदय से सम्बद्ध मानते हुए कविता की वास्तविक सार्थकता सहृदय में कर्म उत्तेजना की उत्पत्ति और लोक-मंगल में कर्म उत्तेजना की उत्पत्ति और लोक-मंगल की सक्रियता को महत्व दिया। आचार्य शुक्ल

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 276
2. मार्क्सवाद साहित्य चिन्तन -- शिवकुमार मिश्र -- पृ. 477

लोकमंगल को मनुष्य के जीवन का सच्चा सौन्दर्य और उसके कर्म का प्रेरक बताते हैं। आचार्य शुक्ल के इस प्रगतिशील दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य और समीक्षा के क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारों के प्रवेश हेतु अनुकूल साहित्यिक और वैचारिक वातावरण निर्मित हुआ है। इसके अलावा आचार्य शुक्ल की चिन्तन दृष्टि का हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन से अत्यधिक सामीप्य मिलता है जिसे मार्क्सवादी साहित्य चिन्तकों ने साभार स्वीकार करते हुए आचार्य शुक्ल की इस स्वच्छ प्रगतिशील परम्परा को विकसित किया है। इसी कारण डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील आंदोलन को उसकी पूर्ववर्ती साहित्यधारा तथा उससे सम्बद्ध पृष्ठभूमि से जोड़कर देखते हैं। इस सन्दर्भ में रेखा अवस्थी का कहना है -- "रामविलास शर्मा ने हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा के ऐतिहासिक कार्यभार को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की सामंतवाद विरोधी एवं व्यक्तिवाद विरोधी भूमिका से जोड़कर अपने जातीय साहित्य चिन्तन के प्रगतिशील तत्वों को आगे बढ़ाया।"[1]

आचार्य शुक्ल हिन्दी के पहले समीक्षक थे जिन्होंने पश्चिम की पतनशील व्यक्तिवादी सौन्दर्य दृष्टि एवं कलावाद या अभिव्यंजनावाद का विरोध किया। प्रगतिशील समीक्षा से पहले प्रचलित लोकोत्तर आनन्द के रसवादी सिद्धांत की अलौकिकता के माध्यम से सामंती रूढ़िवादी संस्कारी समीक्षक यथार्थ का विरोध करते रहे। आचार्य शुक्ल ने पश्चिम के कलावाद और भारतीय आनन्दवाद को एक साथ अपना निशाना बनाया। डॉ.रामविलास शर्मा, आचार्य शुक्ल की हिन्दी आलोचना को देन स्वीकार कर परम्परा के महत्व को उजागर करते हुए कहते हैं -- "हिन्दी साहित्य में शुक्ल जी का महत्व उपन्यासकार प्रेमचन्द या कवि निराला के समान है। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- पृ. 276

कविता के माध्यम से प्रेमचन्द और निराला ने। शुक्ल जी ने न तो भारत के रूढ़िवाद को स्वीकार किया, न पश्चिम के व्यक्तिवाद को। उन्होंने बाह्य जगत और मानव जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्य सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देश-भक्ति तथा जनतंत्र की साहित्यिक परम्परा का समर्थन किया।"[1]

इससे सिद्ध होता है कि प्रगतिशील समीक्षा के विकास में आचार्य शुक्ल का योगदान अमूल्य रहा है जिस प्रकार उपन्यासकार प्रेमचन्द और कवि निराला ने मार्क्सवादी न होते हुए भी प्रगतिशील साहित्य के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया है उसी प्रकार आचार्य शुक्ल ने भी स्वयं मार्क्सवादी न होने पर भी अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सामाजिकता और यथार्थ को विशेष महत्व देते हुए लोकमंगल की दृष्टि द्वारा पक्ष-रहित समीक्षा के मानदण्डों को प्रस्तुत कर प्रगतिशील समीक्षा के विकास की पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। उनके लोकमंगल एवं जातीय स्वत्व के सिद्धांतों ने समाजवादी यथार्थवाद की मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि का विकास किया और प्रगतिशील समीक्षा ने साहित्य से रस और सूक्ष्म तत्वों की खोज़ की सीमाओं को पार कर उदात्त जन-मंगल के दृष्टिकोण को सामाजिक यथार्थवाद से समन्वित कर प्रस्तुत किया है।

आचार्य शुक्ल ने समीक्षा के क्षेत्र में सौन्दर्य बोध और रस ग्राहिणी शक्ति के द्वारा साहित्य संस्कार और रुचि को उत्पन्न किया तथा सौन्दर्य बोध और रसानुभूति को शुद्ध आनन्द की स्थिति से लोकमंगल की

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 7

उदात्त सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार की। साथ ही सामाजिक कल्याण-युक्त साहित्य को लोकमंगल की साधनावस्था बताया। शुक्ल जी की इस स्थापना से समीक्षा निष्क्रिय व्याख्या की सीमा से निकलकर सक्रिय परिवर्तनकारी समाज-शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हुई। प्रगतिशील समीक्षा ने शुक्ल जी की इस विरासत को अपनाकर साहित्य द्वारा जनता को संघर्ष के लिए शक्ति देने के उद्देश्य को अपनाया। इस सम्बन्ध में डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि -- "शुक्ल जी के लोक-मंगल का लोक ही प्रगतिवाद में जनता हो गया यह परिवर्तन परिस्थितियों के अनुकूल था।"[1] इस प्रकार आलोचना को सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि द्वारा एक सुनिश्चित ऐतिहासिक, सामाजिक साहित्य सिद्धांत का रूप प्राप्त हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अतिरिक्त आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे समीक्षकों की अनेक साहित्यिक मान्यताओं और विचारों से भी हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन के विकास में सहायता प्राप्त हुई है। आचार्य वाजपेयी की मानवीय लौकिक दृष्टि उन्हें मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन के समीप लाती है। उन्होंने मूल्यांकन के सामाजिक प्रतिमान को महत्व प्रदान करते हुए साहित्य और कला में सामाजिकता का समर्थन किया। तथा साहित्य और कला की व्यक्तिवादी एवं कलावादी प्रवृत्तियों की तीखी आलोचना की, उनका यह दृष्टिकोण मार्क्सवादी साहित्य चिन्तकों की ही भाँति पश्चिम के बुर्जुआ आधुनिकतावादी कलादृष्टियों एवं विचारधाराओं का सशक्त प्रतिवाद करते हुए जीवन के स्वस्थ सामाजिक मूल्यों से परिपूर्ण सर्जनात्मकता को महत्व

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ -- डॉ. नामवर सिंह -- पृ. 93

प्रदान करता है। वाजपेयी जी पश्चिम के ह्रासशील जीवन-मूल्यों का विरोध करते हुए आस्था और विश्वास को बल देते हैं तथा साहित्य को विशिष्ट वस्तुपरक माना। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की यह दृष्टि और विचार मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन की दिशाओं के अनुकूल रहीं। डॉ. शिवकुमार मिश्र आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी का मार्क्सवादी साहित्य चिंतन की परम्परा के विकास में योगदान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -- हिन्दी साहित्य के अंतर्गत विद्यमान व्यक्तिवादी कलावादी विचारधाओं एवं प्रगति विरोधी प्रतिक्रियावादी जीवन-मूल्यों के विरोध में सक्रिय हिन्दी की मार्क्सवादी साहित्य समीक्षा को उन्होंने बाहर से शक्ति पहुँचाई और इस प्रकार प्रतिक्रियावादी दृष्टियों को जड़ से उखाड़ फेंकने के उसके अभियान में आवश्यक और अत्यधिक मूल्यवान सहयोगी भूमिका निभाई।[1]

जहाँ एक ओर आचार्य वाजपेयी जी ने हिन्दी की मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन की परम्परा के विकास में बाहर से शक्ति प्रदान की वहीं दूसरी ओर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी इस धारा को पुष्ट करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आचार्य द्विवेदी जी ने मनुष्य को साहित्य संस्कृति कला समाज और जीवन के मुख्य केन्द्र में प्रतिष्ठित कर मानव-जीवन की वास्तविकता को साहित्य और कला में अभिव्यक्त करने का पक्ष लिया। आचार्य द्विवेदी जी का मानवतावादी चिन्तन, साहित्य और कला को नये परिप्रेक्ष्य, नव्यतम संदर्भों से दीप्त उच्चतम सामाजिक मूल्यों से परिपुष्ट, वैज्ञानिक और आधुनिक अर्थों में प्रगतिशील रहा है। द्विवेदी जी का यह दृष्टिकोण अनेक सन्दर्भों में हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन से सम्बद्ध रहा।

---

1. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन -- डॉ. शिवकुमार मिश्र -- पृ.480

इनके अतिरिक्त अनेक प्रगतिशील जीवन-मूल्यों एवं स्वस्थ सामाजिक कला मूल्यों की प्रतिष्ठा में मार्क्सवादी साहित्यिक दृष्टिकोण और प्रगतिशील चिन्तन की दृष्टि रखने वाले विचारकों ने प्रतिक्रियावादी और प्रगतिगामी जीवन-मूल्यों और कला-मूल्यों का विरोध करते हुए इस साहित्य-चिन्तन की धारा के विकास को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। समीक्षा के क्षेत्र में सन् 1930-40 के मध्य आये परिवर्तनों को तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं, विशेषकर "हंस", "इन्दु", "मतवाला", "भारत", "माधुरी", "जागरण", "सुधा" आदि में देखा जा सकता है। परन्तु आलोचना का व्यवस्थित रूप से विकास सन् 1940 के बाद की आलोचनात्मक कृतियों में मिलता है। इस सम्बन्ध में रेखा अवस्थी का कथन द्रष्टव्य है --
"रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, चन्द्रबली सिंह, अमृतराय, प्रकाश चन्द्र गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, रांगेय राघव, रामेश्वर शर्मा, महेन्द्र भटनागर, हँसराज रहबर, मन्मथनाथ गुप्त आदि की कृतियाँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक विवादों एवं प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा-पत्रों, अधिवेशन के प्रस्तावों एवं गोष्ठी परिसंवादों के व्यवस्थित अध्ययन से ही प्रगतिशील समीक्षा का सही स्वरूप खड़ा होता है।"[1]

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- पृ. 277

1.5 प्रगतिशील समीक्षा के मानदण्ड

प्रगतिवाद के उद्भव के पूर्व हिन्दी समीक्षा ने भारतेन्दु युग में प्रशंसामूलक विवेचन, द्विवेदी युग में प्रभावशाली तुलनात्मक समीक्षा तथा शुक्ल युग में व्याख्यात्मक आलोचना का रूप ग्रहण किया परन्तु प्रगतिवाद ने हिन्दी समीक्षा को उदात्त जनमंगल के दृष्टिकोण से समन्वित कर उसे सामाजिक यथार्थ-वाद की भूमि पर प्रतिष्ठित किया। अर्थात् प्रगतिशील आलोचना सर्वाधिक महत्व समाजवादी यथार्थ को देती है। डॉ. नामवर सिंह ने प्रगतिवाद के नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए कहा है कि "प्रगतिवाद ने अपने नाम के साथ ही यह संकेत कर दिया कि साहित्य प्रतिगामी अथवा प्रतिक्रियावादी भी होता है। प्रगतिशील शब्द सापेक्ष अर्थ का बोधक है कोई भी घटना प्रवाह किसी की तुलना में प्रगतिशील होगा।"[1] इसी कारण प्रगतिशील समीक्षक ने साहित्यकार का यह कर्तव्य माना है कि वह साहित्य की प्रगति के लिए प्रतिक्रियावादी तत्वों की आलोचना करे और उन्हें मिटाये। इसी दृष्टि से प्रगतिवादी समीक्षकों ने सम्पूर्ण साहित्य की परम्परा और समकालीन साहित्य का विश्लेषण किया है। प्रगतिशील समीक्षा का प्रमुख मानदण्ड साहित्यिक निर्माण की सौद्देश्यता रही है अर्थात् सामाजिक यथार्थ का सही और मार्मिक उद्घाटन करना रहा है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण यथार्थ के माध्यम से बुनियादी सत्यों की पहचान कर समाज में व्याप्त मरणोन्मुखी पुरानी शक्तियों और नवीन जीवन्त शक्तियों के संघर्ष को प्रस्तुत करता है।

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ -- डॉ. नामवर सिंह -- पृ. 94

प्रगतिशील समीक्षा की प्रमुख माँग रचना में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ पूँजीवाद को समाप्त कर समाजवाद की स्थापना करने वाली शक्तियों को अपनाने की भी रही है। प्रगतिशील समीक्षा मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण अतीत के ग्रंथों की परीक्षा उनके ऐतिहासिक सामाजिक सत्यों में युगीन सम्बन्धों के स्थान पर कल्पना के द्वारा शाश्वत महल बनाने वाले साहित्य को नकली और निर्जीव मानती है। और साहित्य में अध्यात्म की आड़ में शोषकों की अत्याचार मूलक वर्ग संरचना का समर्थन करने वाली नीति का विरोध करती है। प्रगतिशील समीक्षा साहित्य में वर्ग-चेतना की अभिव्यक्ति की खोज़ करती है। प्रगतिशील समीक्षा का शुद्ध रसवाद या भाववाद से विरोध रहा है।

डॉ. नामवर सिंह का कहना है -- "प्रगतिवादी समीक्षा ने आरम्भ में प्राचीन प्रतिक्रियावादी रूढ़ियों के साथ समस्त प्राचीन परम्परा को ही प्रतिक्रियावादी सिद्ध कर दिया क्योंकि उन्हें रूढ़ि और परम्परा का अन्तर नहीं सूझा इसी कारण उन्होंने धार्मिक आवरण में व्यक्त भक्ति काव्य में छिपी हुई ऐतिहासिक विषय-वस्तु अथवा जनवादी भावधारा को नहीं देखा तथा छायावादी कविता की पलायन-भावना का विरोध करते हुए समूचे छायावाद की आलोचना करने पर उतारू हो गये परन्तु कालान्तर में प्रगतिवादी आलोचकों ने तुलसी साहित्य और छायावाद पर स्वस्थ प्रगतिशील समीक्षाएँ लिखकर ऐतिहासिक दृष्टि और परम्परा का सही मूल्यांकन किया। इस दृष्टि से रामविलास शर्मा के तुलसीदास और निराला-पंत सम्बन्धी निबन्ध महत्वपूर्ण माने गये हैं।"[1]

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ -- नामवर सिंह -- पृ. 94

प्रगतिशील समीक्षा प्रणाली ने परम्परा के प्रतिगामी तत्वों को अलगकर उसमें अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित और विकसित होने वाले प्रगतिशील तथा जीवन्त तत्वों को उभारा है परम्परा के मूल्यांकन की दृष्टि से प्रगतिशील समीक्षकों ने समकालीन साहित्य में फैले आध्यात्मिक कुहासे, कुंठावादी प्रतिमानों और यौन भावना को अपनी समीक्षा दृष्टि द्वारा दूर करने का प्रयास किया है। साहित्य के विकास में बाधक अस्वस्थ साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रगतिशील समीक्षा प्रणाली ने स्वस्थ सामाजिक रुचि और संस्कार के माध्यम से समाप्त किया है। और प्रगतिशील समीक्षा ने श्रेष्ठ रचना के लिए साहित्यकार को जनता का पक्षधर होना अनिवार्य माना है। नामवर सिंह साहित्य को वर्गों से ऊपर निष्पक्ष मानने वालों का खण्डन करते हुए वाल्मीकि, व्यास, तुलसी, प्रेमचन्द आदि श्रेष्ठ साहित्यकारों में उच्चकोटि की मानवतावादी भावनाओं का उदय दलितों और शोषितों की पक्षधरता के कारण होना स्वीकार करते हैं।

प्रगतिशील समीक्षा की यह स्थापना रही है कि रचना में सौन्दर्य वास्तविकता के अधिकाधिक चित्रण से आता है। सामयिकता के माध्यम से ही शाश्वत साहित्य की रचना मानी गई। लेखक की रचना में रसोद्रेक की अधिकाधिक उत्पत्ति का स्त्रोत व्यापक सामाजिक सम्पर्क और अनुभव को बताया है। प्रगतिशील समीक्षा लेखक में वास्तविकता की बोधता सामाजिक समस्याओं में उसकी सफल भागीदारी से मानती है। क्योंकि श्रेष्ठ कृतिकार अपनी समझ-बूझ द्वारा संकलित बुद्धि से सूक्ष्म मानवीय सम्बन्धों और रागात्मक स्थितियों का चित्रण करता है।

प्रलेस में परम्परा-भंजन को नकारवाद मानने वाले दल और जातीय परम्परा, विरासत और संस्कृति का द्वन्द्वात्मक विश्लेषण करते हुए

जन-संस्कृति के निर्माण हेतु जीवन्त उपादानों को महत्व देने वाले दल के मध्य संघर्ष रहा। इन दो धाराओं के संघर्ष में पहली धारा का प्रतिनिधित्व शिवदान सिंह चौहान और रांगेय राघव कर रहे थे तथा दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, चंद्रबली सिंह, हंसराज रहबर आदि रहे थे। अर्थात मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांतों के आधार पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण के नकारात्मक-सकारात्मक या द्वन्द्वात्मक होने के सम्बन्ध में प्रगतिवादियों में वैचारिक संघर्ष रहा है। यूरोपीय दादावाद, अति-यथार्थवाद, फ्रायडवाद, प्रकृतवाद आदि धाराओं के प्रभाव से परंपरा भंजन की प्रवृत्ति के कारण अराजकतावादी साहित्यिक परिवेश का निर्माण हो रहा था। कुछ प्रगतिशील लेखक फ्रायडवाद की ओर और कुछ मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट रहे। इसी कारण कुछ प्रगतिशील लेखकों ने तुलसीदास को सामंतवाद एवं ब्राह्मणवाद का चाकर माना और छायावाद को पलायनवादी एवं जन-विरोधी साहित्य बताया। ऐसे साहित्यकार पुराने का विरोध और नए का समर्थन करना ही मार्क्सवादी विचारधारा मानते थे। ऐसे ही लेखकों में शिवदान सिंह चौहान ने छायावाद की समीक्षा में परम्परा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया हैं। परन्तु रामविलास शर्मा ने अपने दृष्टिकोण की वैज्ञानिकता सिद्ध करने के लिए कबीर, तुलसीदास, भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचन्द, आचार्य शुक्ल, वृन्दावन लाल वर्मा, निराला, प्रसाद आदि कृतिकारों का मूल्यांकन किया और प्रगतिशील साहित्य को हिन्दी भाषी जाति के सांस्कृतिक स्वत्व से जोड़ा है। इन दो दलों के वैचारिक संघर्ष के क्रम में अनेक सैद्धांतिक निबन्ध लिखे गये और डॉ. शर्मा ने अपनी मार्क्सवादी समीक्षा दृष्टि के द्वारा हिन्दी साहित्य की विविध धाराओं, पक्षों और साहित्यकारों तथा उनके साहित्य की समाज सापेक्षता, युग बोधता, परम्परा का विकसित रूप, जन-पक्षधरता आदि

पक्षों को उभार कर व्यावहारिक समीक्षा के द्वारा प्रगतिशील समीक्षा का विकास किया है। डॉ. शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य में जनपक्षधरता, जनता के साम्राज्य विरोधी और सामंतवाद विरोधी संघर्ष को व्यक्त कर जातीय परम्परा के सम्बन्ध में अपने प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। किन्तु इलाचन्द्र जोशी कालिदास और चंडीदास को साहित्य सर्जना विवेचना नामक ग्रंथों में व्यभिचार, दमित यौन प्रवृत्ति एवं स्वार्थ परायणता के चितेरे घोषित करते हैं और अज्ञेय "त्रिशंकु" नामक निबन्ध संग्रह में यूरोप की पतनोन्मुखी संस्कृति के व्याख्याता इलियट का दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहे थे।

रचना में व्याप्त सौन्दर्य और शक्ति के जिस स्त्रोत को भाववादी समीक्षक रचयिता की प्रतिभा और ईश्वर प्रदत्त मानते थे उसे प्रगतिवाद ने जनता से प्राप्त शक्ति बताया जिस कारण प्रगतिशील समीक्षक का कहना है -- लेखक में शक्ति जनता से आती है, जनता के साथ उसका सम्बन्ध जितना घनिष्ठ होता है उसमें उतनी ही अधिक रचना शक्ति आती है और उसकी रचना में उतना ही अधिक सौन्दर्य बढ़ता है।[1]

साहित्य में वस्तु और रूप के बीच द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध स्थापित करने, यथार्थ और गतिशील यथार्थ, यथार्थ के पतनशील तत्व और जीवन्त तत्व, प्रकृतिवादी चित्रण, आलोचनात्मक यथार्थवाद, क्रांतिकारी रोमांटिसिज्म, छायावादी पतनशील रूमानियत तथा समाजवादी यथार्थवाद आदि का रचनात्मक स्तर पर चयन करने के लिए प्रगतिशील आलोचनात्मक

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ -- नामवर सिंह -- पृ. 96

चिंतन तथा मार्क्सवादी सौन्दर्य-शास्त्र का सृजनात्मक विकास आवश्यक माना गया है। क्योंकि जातीय और अंतर्जातीय प्राचीन और समकालीन, जनवाद और समाजवाद के बीच के अंतर्विरोध का हल निकाल कर ही प्रगतिशील समीक्षा कलात्मक मानदण्ड़ों का निर्माण कर सकती थी।

इस समय शिवदान सिंह चौहान और रामविलास शर्मा के बीच संघर्ष चल रहा था। जहाँ एक ओर चौहान समाजवादी यथार्थवाद के कलात्मक मानदण्ड़ों को व्यावहारिक रूप दे रहे थे वहीं दूसरी ओर रामविलास शर्मा ने कविता के संदर्भ में शब्दों के चयन, रूप और वस्तु के सम्बन्ध की समस्या को हल करने विचार, भाव, इंद्रिय बोध, रूचि, सौन्दर्य वृत्ति आदि के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रस्तुत किया है। हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा ने रीतिकालीन साहित्य हालावाद, अज्ञेय - जैनेन्द्र - इलाचन्द्र जोशी आदि के सेक्स चित्रण आदि पर पतनशील वर्ग की कामुकता, भोगवादी लालसा, और निष्क्रिय निकम्मे अवकाश भोगी चित्रणों के कारण प्रहार किया है। मुक्तिबोध की "कामायनी : एक पुनर्विचार", त्रिलोचन की धरती पर मुक्तिबोध की समीक्षा, "निराला" पर रामविलास शर्मा की पुस्तक तथा चन्द्रबली सिंह को "लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य" नामक निबन्ध संग्रह समाजवादी यथार्थवाद के सौन्दर्य चित्रण संबंधी मानदण्ड़ों का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करने वाला माना गया है।

प्रगतिशील समीक्षकों में कृति-समीक्षा के सन्दर्भ में दो प्रकार का दृष्टिकोण रहा है -- कृतित्व का विचारधारा के आधार पर मूल्यांकन और समाज-सापेक्ष कलात्मक मानदण्ड़ों के आधार पर। प्रगतिशील समीक्षक यदि कोई लेखक स्वतंत्र रूप से व्यवस्था का समर्थक और प्रतिक्रियावादी

विचारधारा का प्रचारक हो तो उसे प्रतिक्रियावादी और जो समाजवादी विचारधारा का प्रचार करते हैं परन्तु भाव, इंद्रिय बोध आदि कलात्मक चित्रण कमज़ोर होने पर भी उसे प्रगतिशील और श्रेष्ठ साहित्यकार मानने लगे थे। इस दृष्टिकोण का विरोध करते हुए रामविलास शर्मा कहते हैं -- गलत विचारों के बावजूद भी कोई लेखक श्रेष्ठ कलाकृति दे सकता है। अतः यदि कोई लेखक प्रतिक्रियावादी विचारधारा प्रस्तुत करता है तो उसे नज़र अंदाज करके भाव इंद्रियबोध चित्रण के आधार पर कृति का मूल्यांकन करना चाहिए। इस दृष्टिकोण से रामविलास शर्मा ने कालिदास, तुलसीदास, निराला और प्रसाद का तथा पंत के पल्लव, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या आदि काव्य संग्रहों का मूल्यांकन किया है।[1] किन्तु रांगेय राघव, यशपाल आदि तुलसी के साहित्य में व्याप्त रामोपासन भक्ति को अवसरवादी रूप में देखते हुए उन्हें प्रतिक्रियावादी बताते हैं। जिसका विरोध करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं -- "तुलसीदास केवल भक्त नहीं है वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि भी हैं ...उन्होंने जन-साधारण के सौन्दर्य बोध की जैसी सुकुमार व्यंजना की है वह हिन्दी साहित्य में अनुपम है।"[2]

इसके अलावा प्रगतिशील लेखकों में यौन नैतिकता को लेकर तीखा वैचारिक संघर्ष चला है क्योंकि कुछ साहित्यकारों द्वारा मार्क्सवाद और फ्रायड़वाद का समन्वय किया जा रहा था। ऐसे साहित्यकारों में अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी आदि प्रमुख रहे हैं। इनके अतिरिक्त यशपाल, मुल्कराज आनन्द, पहाड़ी, नरोत्तम नागर, कृश्न चन्दर आदि यौन चित्रण में

---

1. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य -- रेखा अवस्थी -- पृ. 284
2. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ -- डॉ. शर्मा -- पृ. 174-175

फ्रायड़वादी दृष्टिकोण से प्रभावित रहे हैं। ऐसी स्थिति में हंसराज रहबर, चन्द्रबली सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, अमृतराय आदि सामाजिक यथार्थवादी अथवा प्रगतिशील दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इसी क्रम में डॉ. रामविलास शर्मा ने यशपाल की "मार्क्सवाद" विषयक अवधारणा और स्वच्छ गिलास से स्वच्छ जल पीने सम्बन्धी धारणा की आलोचना की है।

प्रतिक्रियावादी लेखकों और आलोचकों ने प्रगतिशील साहित्यकारों द्वारा वर्ग दृष्टि का समर्थन करने के कारण प्रगतिशील साहित्य को राजनैतिक प्रचार अथवा प्रोपगंड़ा कहा। ऐसे में रामविलास शर्मा साहित्यकार और समालोचक की प्रगतिशीलता को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -- न तो साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है, न आलोचक। वे प्रगतिशील तभी होते हैं जब वे जन-साधारण का पक्ष लेते हैं।[1]

प्रगतिशील समीक्षा की दोनों धाराओं में साहित्यकार की प्रगतिशीलता की सापेक्षता या निरपेक्षता, यथार्थ या गतिशील यथार्थ के चित्रण में प्रगतिशीलता आदि के सम्बन्ध में भी संघर्ष रहा है। जहाँ शिवदान सिंह चौहान ने सत्यान्वेषी वस्तु-निष्ठा और युग-जीवन की वास्तविकता को निरपेक्ष बताया है वहाँ डॉ. रामविलास शर्मा ने युग-जीवन की वास्तविकता को खण्डित मानते हुए युग-सत्य को द्वन्द्व से परिपूर्ण माना है। प्रगतिशील समीक्षकों के द्वारा वर्ग संघर्षों की पहचान, लेखक की वर्ग-संपृक्तता, यथार्थ-बोध की अभिव्यक्ति, रचनाशीलता की परिपक्वता, सौन्दर्य-वृत्ति की तीव्रता,

---

1. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ -- डॉ. रामविलास शर्मा -- पृ.4

चित्रण की क्षमता आदि तत्वों की खोज साहित्य में की जा रही थी। इस सन्दर्भ में डॉ. नामवर सिंह के कथन को देखा जा सकता है। नामवर सिंह जी का कहना है कि "रचना के सौन्दर्य और शक्ति के स्त्रोत की खोज ही रचनात्मक समीक्षा का सही पहलू है।"[1] अर्थात् प्रगतिशील समीक्षकों ने प्रगतिशील पक्षों के उद्घाटन से रचना में कलात्मक सौन्दर्य की उत्पत्ति माना है तथा व्यापक अर्थों में प्रगतिशील समीक्षा की यही वर्गीय अंतर्वस्तु स्वीकार किया है। रेखा अवस्थी के अनुसार वर्ग संघर्ष, जातीय मुक्ति आंदोलन, नारी पराधीनता के सामाजिक पहलू और यथार्थ के गतिशील पक्षों का अंतरंग उद्घाटन ही प्रगतिशील यथार्थवाद के प्राण तत्व हैं। प्रगतिशील समीक्षा ने इन्हीं प्राण तत्वों के आधार पर साहित्य की विषय-वस्तु का विश्लेषण किया है।

प्रगतिशील समीक्षा का प्रमुख मानदण्ड साहित्य का निर्माण सोद्देश्य अर्थात् सामाजिक यथार्थ का सही और मार्मिक उद्घाटन रहा है। प्रगतिशील समीक्षा साहित्य में व्याप्त संघर्ष की खोज प्रत्येक युग की सीमाओं के अन्तर्गत करती है और साहित्य में शाश्वत, चिरन्तन, सार्वभौम सत्यों की खोज़ न कर युग की सीमाओं में बँधे प्रत्येक सामाजिक सत्यों का अनुसंधान करती है। प्रगतिशील समीक्षा पूँजीवाद को नष्ट कर समाजवाद को स्थापित करने वाली शक्तियों को बुनियादी शक्तियाँ मानती है।

प्रगतिवाद की विचारधारा मूलतः मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण प्रगतिशील समीक्षा अतीत के साहित्यिक ग्रंथों की

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ -- नामवर सिंह -- पृ. 121-22

परीक्षा ऐतिहासिक-सामाजिक सत्यों के आधार पर करती है। प्रगतिशील समीक्षा शुद्ध रसवाद या भाववाद का विरोध कर उसके प्रेरणा स्त्रोतों पर विचार करती है। प्रगतिशील समीक्षा संवेदनशीलता और चित्रात्मकता के माध्यम से ह्रासशील समाज की कुरूपता और गतिशील समाज के जीवन्त विश्वासों और अस्थिर आस्थाओं को उद्घाटित करती है और संघर्षरत जनता को नव-समाज निर्माण की प्रेरणा प्रदान करना ही साहित्य का लक्ष्य मानती है। इसी कारण प्रगतिशील समीक्षा सौन्दर्य-बोध की व्याख्या परिवर्तनशील समाज के परिवर्तनशील हृदय की सापेक्षता में करती है और साथ ही परिस्थितियों और सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न सौन्दर्य की खोज़ जनता में करती है। प्रगतिशील समीक्षा उसी साहित्य में सौन्दर्य देखती है जो नये समाज के जीवन्त विश्वासों और संघर्षों की अभिव्यक्ति करता हो। प्रगतिशील समीक्षा प्रचार की समर्थक नहीं बल्कि वास्तविकता के चित्रण की पक्षपाती रही है। और वह कला या साहित्य को सामाजिक उद्देश्य और उपयोग से परिपूर्ण एवं कला के बाह्य पक्ष को सुस्पष्ट, सामान्य, लौकिक जीवन के विभिन्न सम्बन्धों की तरह बहुमुखी और नवीन मानती है। प्रगतिशील समीक्षा छन्द, अलंकार, भाषा-शैली की जन-सामान्य के बीच से ग्रहण करने की प्रवृत्ति को जगाती है। और साहित्य में शोषक समाज के ह्रास और जनक्रांति की अनिवार्यता स्वीकार करती है। प्रगतिशील समीक्षा रस या आनन्द की सृष्टि को साहित्य का उद्देश्य न मानकर ऐतिहासिक सत्य की आवश्यकता पर बल देती हुए साहित्य को वर्ग-चेतना की अभिव्यक्ति मानती है। साहित्य-समीक्षा के क्रम में प्रगतिशील समीक्षा की दृष्टि समाज सापेक्ष रही है। यह समीक्षा लोक-जीवन की समस्त शक्तियों, विश्वासों और यथार्थवादी प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करने वाले साहित्य में सौन्दर्य की खोज़

करती है। प्रगतिशील समीक्षा ने ऐतिहासिक मूल्यों की समीक्षात्मक परंपरा के आधार पर प्राचीन से आधुनिक साहित्य तक का तुलनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस समीक्षा ने अपनी पूर्ववर्ती समीक्षा पद्धति का विकास करते हुए उसको व्यक्ति-निष्ठता, भाववादी पूर्वग्रह तथा जड़ता से मुक्त करके उसके स्थान पर स्वस्थ वैज्ञानिक बोधगम्य विकासमय वस्तुनिष्ठ और जन-कल्याणकारी ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति की प्रतिष्ठा की है।

प्रगतिशील समीक्षा द्वारा समीक्षा के क्षेत्र में स्थापित नये मानदण्डों तथा मूल्यांकन के नये आधारों को विकसित करने में दिये गये योगदान को स्पष्ट करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी का कहना है कि "प्रगतिवादी समीक्षा ने दो वस्तुयें मुख्य रूप से दी है -- प्रथम यह कि काव्य साहित्य का संबंध सामाजिक वास्तविकता से है और वही साहित्य मूल्यवान है जो उक्त वास्तविकता के प्रति सजग और संवेदनशील है, द्वितीय यह कि जो साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना ही दूर होगा वह उतना ही काल्पनिक और प्रतिक्रियावादी कहा जायेगा। न केवल सामाजिक दृष्टि से वह अनुपयोगी होगा, साहित्यिक दृष्टि से भी हीन और ह्रासोन्मुख होगा। इस प्रकार साहित्य के सौष्ठव सम्बन्धी एक नई मापरेखा और एक नया दृष्टिकोण इस पद्धति ने हमें दिया है।"[1] डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवर सिंह, अमृतराय, मुक्तिबोध, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, रमेश कुन्तल मेघ आदि हिन्दी के मार्क्सवादी समीक्षकों ने ऐसे विषयों को भी उठाया जिस पर पश्चिम के मार्क्सवादी साहित्य चिन्तकों ने उतनी केन्द्रीयता से विचार नहीं किया।[2]

---

1. प्रगतिवादी समीक्षा -- रामप्रसाद त्रिवेदी -- पृ. 116
2. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन -- शिवकुमार मिश्र -- पृ. 50।

मार्क्सवादी विचार-दर्शन और मार्क्स, एंगेल्स तथा लेनिन की साहित्य एवं कला सम्बन्धी स्थापनाएँ ही मूल रूप से पश्चिमी मार्क्सवादी साहित्य चिंतकों की साहित्य तथा कला सम्बन्धी विचारणा का आधार एवं स्त्रोत बनी है और उन्हें ही हिन्दी के मार्क्सवादी समीक्षकों ने मूलवर्ती प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी के मार्क्सवादी समीक्षकों की यथार्थ, सौंदर्य-वस्तु और रूप-तत्व की उपयोगिता, साहित्य एवं कला के वर्गीय आधार, उनके मूल्यांकन तथा साहित्येतर बुनियादी मूल्यों सम्बन्धी धारणाओं में भी पश्चिमी मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन की अनुरूपता मिलती है। प्रगतिशील समीक्षा की मूलवर्ती आकृति और आधारभूत सैद्धांतिक मान्यतायें मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन से परिपूर्ण रही है। हिन्दी में मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन प्रगतिशील समीक्षा के रूप में प्रसिद्ध है। यह अपनी पूर्ववर्ती आदर्शवादी तथा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा दृष्टि से और समकालीन मनोवैज्ञानिक एवं आधुनिकतावादी समीक्षा दृष्टियों से भिन्न अपनी मूलवर्ती मार्क्सवादी समाजवादी चेतना के कारण विशिष्ट है। मार्क्सवादी समीक्षा को डॉ. राम-विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त, डॉ. रांगेय राघव, अमृतराय, मुक्तिबोध, चन्द्रबली सिंह, नामवर सिंह, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, मार्कण्डेय एवं डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने अपने कृतित्व एवं विचारों से पुष्ट किया है इनके अतिरिक्त मार्क्सवादी-समाजवादी दृष्टि से अनुप्राणित साहित्य एवं कला को सामाजिक वस्तु मानते हुए उन्हें सामाजिक संदर्भों में मूल्यांकन करने वाले अनेक नयी पीढ़ी के प्रतिभाशाली समीक्षकों की भी प्रगतिशील समीक्षा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

अध्याय : दो

2 डॉ. रामविलास शर्मा की सैद्धांतिक अवधारणायें

2.1 मार्क्सवाद एवं प्रगतिशील साहित्य

2.2 हिन्दी नवजागरण

2.3 हिन्दी जाति

2.4 साहित्यिक तत्व विषयक अवधारणा

2.5 साहित्यैतिहासिक विषयक मान्यता

अध्याय : दो

डॉ. रामविलास शर्मा की सैद्धांतिक अवधारणायें

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के एक ऐसे समीक्षक हैं जिन्होंने मार्क्सवादी दर्शन को अपने विचारों का आधार बनाकर भौतिकवादी दृष्टिकोण और द्वन्द्वात्मक विश्लेषण पद्धति के माध्यम से हिन्दी साहित्य का समग्रता में विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की समीक्षा के क्रम में अनेक साहित्यिक तत्वों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा साहित्य और समाज का सम्बन्ध, साहित्य की राजनीति से सम्बद्धता, साहित्य में विचारों, भावों, अनुभूतियों की महत्ता और उनकी भूमिका साहित्यकार की पक्षधरता, यथार्थबोधता, साहित्य के कलात्मक तत्वों का सम्बन्ध आदि विषयों पर अपनी मौलिक अवधारणायें प्रस्तुत की हैं तथा

साहित्येतिहास लेखन के क्षेत्र में मार्क्सवादी दृष्टि से एक नवीनतम पद्धति का आरम्भ किया है।

इसके अतिरिक्त मार्क्सवाद का प्रगतिशील साहित्य से सम्बन्ध मार्क्सवादी विचारधारा और दृष्टि का प्रगतिशील साहित्य के विकास में महत्व और योगदान को मूल्यांकित किया है। और हिन्दी नवजागरण और हिन्दी जाति विषयक अपनी मौलिक अवधारणा को हिन्दी साहित्य-जगत में प्रस्तुत करने वाले शर्मा जी पहले विद्वान रहे हैं। उन्होंने अन्य जातियों की भावना के अनुरूप हिन्दी जाति की भावना और उसमें आने वाले नवजागरण को उसके साहित्यिक कार्यों के विश्लेषण द्वारा उद्घाटित किया है। विस्तृत अध्ययन इस प्रकार है --

2.1 मार्क्सवाद एवं प्रगतिशील साहित्य

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य समीक्षक होने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ मार्क्सवादी विचारक और इतिहासकार, भाषा वैज्ञानिक और जीवनीकार भी हैं। उनकी विचारधारा और समीक्षा दृष्टि का मूलाधार मार्क्सवादी जीवन-दर्शन है। उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि की समग्रता को ग्रहण कर अपनी दृष्टि में मौलिकता, पैनापन, व्यापकता और स्पष्टता आदि गुणों को समाहित किया है। उन्होंने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष और वर्ग-विभाजन को स्वीकार कर अपनी परम्परावादी दृष्टि का विकास किया है। और हिन्दी साहित्य की पारम्परिक चेतना और स्वरूप को विश्लेषित किया है। जिससे उनकी वैचारिकता व दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता सहज रूप से उभर कर आयी है।

वे साहित्य में सामाजिक यथार्थ के समर्थक रहे हैं। उन्होंने अपनी मार्क्सवादी समीक्षा दृष्टि से रचना की रचना-प्रक्रिया और लेखक की चिन्तन प्रक्रिया के प्रगतिशील तत्वों को उभारकर उसकी समाज सापेक्षता को विश्लेषित किया है। उन्होंने वैचारिक चिन्तन के क्षेत्र में वामपंथी विचारधारा की भ्रामकता को और संकीर्णतावादी प्रवृत्ति की आलोचना की है। और साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में साहित्य में निहित यथार्थबोध के साथ-साथ रोमांस बोध को भी प्रस्तुत किया है। वे शोषण के प्रति घृणा उत्पन्न करने, सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता स्वीकारने वाले साहित्य का समर्थन करते हैं।

साहित्य और कला के सम्बन्ध में उनका सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण पूर्णतः मार्क्सवादी रहा है। वे मार्क्सवादी साहित्य के रूप, उद्देश्य और महत्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -- मार्क्सवाद साहित्य का उद्देश्य मार्क्सवाद के अनुरूप ही हो सकता है अगर मार्क्सवादीका उद्देश्य समाज के विरोधों और रूपों को जाहिर करना है तो मार्क्सवादी साहित्य का उद्देश्य उन्हें मूँद ढाँक कर रखना नहीं हो सकता। अगर मार्क्सवाद का उद्देश्य यह बताना है कि समाज के विरोध और शोषण के रूप किस तरह पैदा हुए हैं, उनका बदलना लाजमी है, शाश्वत और अमर नहीं है तो मार्क्सवादी साहित्य का उद्देश्य भी यह नहीं हो सकता कि वह पूँजीवादी समाज के सम्बन्धों को शाश्वत और अमर कहकर पेश करे। ...अगर मार्क्सवाद का उद्देश्य है कि वह सभी तरह का शोषण खत्म करने में सर्वहारा वर्ग की मदद करे तो मार्क्सवादी साहित्य का उद्देश्य यह नहीं हो सकता कि वह सर्वहारा वर्ग के इस काम में सहायता न करे उसमें बाधा डाले या तटस्थ बना रहने की कोशिश करे।[1] शर्मा जी समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष को चित्रित करने वाले

---

1. प्रगति और परम्परा -- पृ. 40

साहित्य का वर्गों से परे होना अस्वीकार करते हैं। वे मार्क्सवाद को मनुष्य के व्यक्तितत्व के पूर्ण विकास का दर्शन बताते हैं। उनके अनुसार मार्क्सवाद ने मानव संस्कृति और समाज व्यवस्था के परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए इस बात पर जोर दिया है कि संस्कृति सापेक्ष रूप से स्वाधीन है।[1] उन्होंने यथार्थ-जीवन को प्रस्तुत करने वाले साहित्य को गंभीर साहित्य बताया है तथा उससे मनुष्य के हृदय में रस-सृष्टि होने और विकास की प्रेरणा मिलने का तथ्य स्वीकार किया है। उनके अनुसार यथार्थ के चित्रण में विषय-वस्तु का निर्वाचन, कुछ तत्वों का चित्रण, कुछ की उपेक्षा - यह साहित्य का मूल नियम है।[2] वे युग-चेतना से परिपूर्ण क्रांतिकारी साहित्य की रचना हेतु साहित्य की परम्परा का ज्ञान आवश्यक मानते हैं। और इतिहास के ज्ञान से ही ऐतिहासिक-भौतिकवाद का विकास तथा साहित्य की परम्परा के ज्ञान से प्रगतिशील आलोचना का विकास होने का तर्क प्रस्तुत करते हैं।[3]

प्रगतिशील साहित्य के सम्बन्ध में उनके विचार कुछ इस प्रकार हैं -- प्रगतिशील साहित्य वह है जो समाज को आगे बढ़ाता है, मनुष्य के विकास में सहायक होता है परन्तु साहित्य तभी प्रगतिशील है जब वह साहित्य है।[4] वे प्रगतिशील साहित्य को जनता की पक्षधरता करने वाला

---

1. प्रगति और परम्परा -- पृ. 12
2. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 10
3. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 11
4. प्रगति और परम्परा -- पृ. 43

साहित्य मानते हैं। उन्होंने साहित्य की प्रगतिशीलता पर विचार करते हुए प्रगतिशील भावना का समर्थन करना साहित्य का धर्म माना है। उनका कहना है कि "प्रगतिशील साहित्य जनता की तरफदारी करने वाला साहित्य है इसलिए वह उसकी जातीय, विरासत और उसकी साहित्यिक परम्पराओं की रक्षा करने के लिए भी लड़ता है।"[1] शर्मा जी की समीक्षा दृष्टि प्रगतिशील भावना को पहचानती हुई प्रगतिवाद को इस तरह परिभाषित करती है -- प्रगतिशील साहित्य की यह व्यवस्था करना उचित होगा कि मजदूर-वर्ग के नेतृत्व में रचा जाने वाला साम्राज्य-विरोधी सामंत-विरोधी साहित्य ही प्रगतिशील साहित्य है।[2] उनकी धारणा है कि अप्रगतिशील साहित्य, साहित्य नहीं होता। साहित्य की प्रगतिशीलता के लिए उसका जनता से जुड़ना और यथार्थवादी होना आवश्यक बताया है। क्योंकि उनके अनुसार साहित्य जनता की वाणी है, उसके जातीय चरित्र का दर्पण है। प्रगति पथ में बढ़ने के लिए उसका मनोबल है, उसकी सौन्दर्य की चाह पूरी करने वाला साधन है।[3] वे साहित्य को विचारों के कारण प्रगतिशील नहीं मानते बल्कि उसकी प्रगतिशीलता, संवेदन-शक्ति और भाव-सामर्थ्य के कारण स्वीकार करते हैं। उन्होंने प्रगतिशील साहित्य में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तत्वों का समावेश देखा है।

शर्मा जी की धारणा है कि प्रगतिशील लेखक का मार्क्सवादी होना वांछनीय है, उत्तम लक्षण है, क्योंकि कोई भी प्रगतिशील लेखक बिना मार्क्सवादी अवधारणाओं को समझे और मार्क्सवाद को अपनी योजना का अंग बनाये बिना भावी समाज-रचना और जनहित साधन में सफल नहीं हो

---

1. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ -- पृ. 79
2. वही, पृ. 148
3. वही, पृ. 141

सकता। अतः मार्क्सवादी प्रभाव प्रगतिशील लेखक के लिए आवश्यक है, परन्तु मार्क्सवादी प्रभाव का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि "मार्क्सवाद समाज को समझने और उसे बदलने का विज्ञान है।...मार्क्सवाद भारतीय समाज को समझने के लिए एक दृष्टिकोण देता है।...मार्क्सवाद से प्रभावित होने का यह अर्थ नहीं है कि हम साहित्य को किसी राजनीतिक कार्यक्रम से बाँध देते हैं वरन् उससे प्रभावित होने का अर्थ समाज और साहित्य की गतिविधि के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना है।[1] चूंकि उनके अनुसार "प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन में हमें मार्क्सवाद से सहायता मिलती है कि हम उसकी विषय-वस्तु और कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं।[2] वे प्रगतिशील साहित्यकार को प्रजापति कहते हैं जो वर्तमान समाज की वास्तविक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए भी अपनी दृष्टि भविष्य पर रखता है उनके अनुसार प्रजापति कवि गम्भीर यथार्थवादी होता है ऐसा यथार्थवादी जिसके पाँव वर्तमान की धरती पर हों और आँखें भविष्य के क्षितिज पर लगी हुई हैं।[3] उन्होंने साहित्य से मनुष्य को श्रेष्ठ विचार, उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने की प्रेरणा, मिलना स्वीकार किया है। उनका मानना है कि "मानव चरित्र पर किसी जाति या राष्ट्र के चित्र पर, मनुष्य के कर्ममय जीवन पर दर्शन या विज्ञान की अपेक्षा साहित्य का अधिक प्रभाव पड़ता है। साहित्य की यह सबसे बड़ी उपयोगिता है।"[4]

---

1. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ -- पृ. 14।
2. साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन -- पृ. 2।
3. स्वाधीनता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता -- पृ. 78-79
4. लोक-जीवन और साहित्य -- पृ. 1।

2.2 हिन्दी नवजागरण

नवजागरण का अर्थ समाज में उत्पन्न होने वाली नवीन परिस्थिति है। और नवजागरण शब्द साधारणतः यूरोप के मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की संक्रांति का सूचक रहा है। इस नवजागरण युग में पश्चिमी यूरोप सामंतवादी व्यवस्था से मुक्त होकर पूँजीवाद की ओर विकसित होने लगा था। परन्तु भारत में गुप्तकाल को नवजागरण का युग माना जाता है। किन्तु अधिकांश भारतीय विद्वान 18 वीं शती के पूर्वार्द्ध में अंग्रेज़ी सभ्यता के प्रसार के फलस्वरूप भारतीय समाज में नवजागरण के पदार्पण का मत व्यक्त करते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा इस तरह की मान्यताओं का खण्डन करते हुए भारत में आधुनिकता की शुरूआत भक्ति आन्दोलन से मानते हैं तथा उसे आधुनिकता का पहला चरण बताते हैं क्योंकि उनके अनुसार जनजागरण की शुरूआत तब होती है जब यहाँ बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है जब यहाँ के विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक जातियों का गठन होता है। यह सामंत विरोधी जनजागरण है। अर्थात् डॉ. शर्मा भक्तिकालीन समाज में जनभाषाओं का प्रयोग करते हुए साहित्य रचना करने तथा उस समय भारतीय समाज में आधुनिक जातियों का गठन होने तथा भक्ति साहित्य द्वारा सामंत-विरोधी चेतना का प्रसार जनजागरण में होने की प्रक्रिया को देखते हैं और उसके महत्व को सही रूप में मूल्यांकित कर भारतीय समाज में सामंत विरोधी जनजागरण का रूप उद्घाटित करते हैं। परन्तु यूरोप में सामंत विरोधी चेतना की उत्पत्ति से वहाँ मध्ययुग की

समाप्ति होती है और आधुनिक युग के आरम्भ के पूर्व की इस चेतना को नवजागरण कहा जाता है। और इसी से यूरोप में आधुनिकता की शुरूआत मानी गई है। किंतु भारतीय समाज में सामंत विरोधी चेतना या जनजागरण से आरम्भ होने वाली आधुनिकता का उदय यूरोपिय समाज की आधुनिकता से बहुत पहले हो चुका था। और इसी आधुनिकता का दूसरा चरण हिन्दी नवजागरण माना गया।

डॉ. शर्मा हिन्दी नवजागरण का आरम्भ 1857 की क्रांति से मानते हैं। अर्थात् गदर हिन्दी प्रदेश के नवजागरण की पहली मंजिल रही है। उनकी इस धारणा के पीछे उनकी मार्क्सवादी चिंतन प्रक्रिया सक्रिय रही है। क्योंकि डॉ. शिवकुमार मिश्र का कहना है कि "कार्ल मार्क्स और एंगेल्स ने सन् 1857 के महाविद्रोह के पहले और उसके दौर में भी उसके बारे में जो कुछ लिखा है वह इस बात का प्रमाण है कि वे बहुत पहले इस महाविद्रोह के राष्ट्रीय स्वरूप और मुक्ति-संग्राम वाले चरित्र को रेखांकित कर चुके थे।"[1] अर्थात् डॉ. शर्मा ने मार्क्स और एंगेल्स द्वारा रेखांकित इस महाविद्रोह के राष्ट्रीय स्वरूप और मुक्ति-संग्राम वाले चरित्र के आधार पर ही उसे हिन्दी नवजागरण का प्रथम चरण मानते हुए हिन्दी प्रदेश में नवजागरण का आरम्भ 1857 की गदर क्रांति से बताया है।

शर्मा जी के अनुसार भारत में अंग्रेज़ी राज कायम करने के सिलसिले में पलासी की लड़ाई से 1857 के स्वाधीनता संग्राम तक जो युद्ध हुए, वे जनजागरण के दूसरे दौर के अन्तर्गत है यह दौर पहले से भिन्न है-- मुख्य लड़ाई विदेशी शत्रु से है यह साम्राज्य विरोधी जनजागरण है। अर्थात्

---

1. आलोचना -- अंक-82, पृ. 50

भारतीय समाज की आधुनिकता का पहला चरण सामंत विरोधी जन-जागरण का रहा और दूसरा चरण साम्राज्य-विरोधी जनजागरण का। सम्भवतः तीसरा चरण पूँजीवाद विरोधी जनजागरण का ही होगा। परन्तु भारतेंदु युग साम्राज्य विरोधी जनजागरण से जुड़ा हुआ माना गया।

1857 के सैनिक और असैनिक नेताओं का उद्‌देश्य अंग्रेज़ों को सारे देश से निकालना था किसी एक क्षेत्र या रियासत से नहीं डॉ. शर्मा के अनुसार हिन्दी प्रदेश में नवजागरण 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है।[1] इस संग्राम में भारतीय नेताओं द्वारा राष्ट्रीय एकता का उद्‌देश्य प्रस्तुत किया गया। परन्तु भारतीय सामंतवाद इस राष्ट्रीय एकता की पहचान से हीन रहा। इसी कारण बादशाहों, नवाबों और राजाओं को एक झण्डे के नीचे संगठित करने के प्रयास को सामंत विरोधी प्रयास माना है। और जनता ने अपने सामूहिक प्रयास द्वारा सामंती शासन का तख्ता उलट दिया था। इस संग्राम का संचालन सेना में कार्यरत सिपाहियों और सूबेदार रूपी किसानों द्वारा किये जाने के कार्य को महत्वपूर्ण मानते हुए शर्मा जी गैर फौजी किसानों द्वारा भी संघर्ष में सक्रिय प्रवेश करने की बात कहते हैं। उनके अनुसार इस संग्राम में असाम्प्रदायिक राष्ट्रीय रूप की स्थापना की गई है। और उन्होंने संग्राम का मुख्य क्षेत्र हिन्दी भाषी प्रदेश को माना है। तथा अंग्रेज़ों द्वारा अहिन्दी प्रदेशों के सिपाहियों की सहायता से संग्राम का दमन सफलतापूर्वक करने के प्रसंग को उभारा है।

शर्मा जी का कहना है कि "सन् 57 का स्वाधीनता संग्राम हमारा जातीय संग्राम था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जितने लोक-गीत विभिन्न जनपदों में हमारे यहाँ रचे गये, उतने अन्य प्रदेशों में कुल मिलाकर

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण -- पृ. 9

भी नहीं रचे गए। शर्मा जी भारत में अंग्रेज़ी राज को सबसे बड़ा जमींदार, नवाबों और राजाओं को कठपुतली बनाकर नयी सामंती व्यवस्था करने वाला सामंतवाद वर्ग मानते हैं जिसने किसानों को लूटने वाली नयी जमींदारियाँ स्थापित कर पुराने जमींदारों को बेदखल किया तथा माल गुजारी बेहिसाब बढ़ाया और ज़मीन का इजारा कर साहूकारों और जमींदारों सहित अपने हितों की रक्षा के लिए पुलिस, फौज आदि साधनों का निरंकुश प्रयोग किया है। अंग्रेज़ी राज की कुव्यवस्था के विरुद्ध गदर और हिन्दी नवजागरण स्वाधीन भारत में नयी व्यवस्था के संघर्ष का प्रतिबिम्ब रहा है। परन्तु शर्मा जी भारत में अंग्रेज़ों के मुख्य सहायक यहाँ के सामंतों को मानते हैं और प्रमाण स्वरूप उनका कहना है कि सन् 57-58 में कश्मीर से लेकर हैदराबाद तक और महाराष्ट्र-राजस्थान से लेकर बंगाल तक के जमींदारों और राजाओं-नवाबों ने अंग्रेज़ों की मदद की। ... हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी राज सबसे बड़े जमींदार की भूमिका निबाह रहा था यह नया जमींदार पुराने जमींदारों से कहीं अधिक क्रूर और शोषक था।[1]

शर्मा जी अंग्रेज़ों की आय का मुख्य स्त्रोत किसान का श्रम बताते हैं तथा 1857 के इश्तहारों में अंग्रेज़ीराज में किसानों, मज़दूरों और व्यापारियों आदि की स्थिति का विश्लेषण मिलने और स्वाधीनता संग्राम के नेता अंग्रेज़ी राज की आर्थिक नीति से परिचित होने की बात कही है। उनके अनुसार "इश्तहारों के अध्ययन से भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन का गदर के इतिहास का सम्बन्ध व्यक्त होता है।" उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखकों को 1857 से जोड़ने वाली दो मुख्य चीज़ें -- राष्ट्रीय स्वाधीनता का उद्देश्य और अंग्रेज़ी-राज के स्वरूप की पहचान को मानते हैं। और इसी कारण वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण - भूमिका - पृ. 10-11

युग को हिन्दी नवजागरण का दूसरा चरण तथा द्विवेदी युग को तीसरा चरण बताते हैं। 1868 में "कविवचन सुधा" का प्रकाशन आरम्भ हुआ और 1870 में "लेवी-प्राण-लेवी" ब्रिटिश विरोधी लेख प्रकाशित होने तथा भारतेन्दु युगीन साहित्य गदर से प्रभावित मानते हैं। इस साहित्य में किसानों को लक्ष्य करके उन्हें संगठित और आंदोलित करने की दृष्टि से गद्य-पद्य की रचना किया जाना स्वीकार किया है और इस समय साहित्य का माध्यम शहरी तथा जनपदीय बोलचाल और उपभाषायें बनने तथा हरिश्चन्द्र द्वारा साहित्य में गदर के इश्तहारों के विषयों को प्रस्तुत करने की बात कही है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा"कविवचन सुधा" में भारतीय किसान मज़दूरों की दयनीय दशा का उल्लेख बहादुर शाह द्वारा निकाले गये इश्तहारों से लिया गया है।" उदाहरण स्वरूप शर्मा जी ने 9 मार्च 1874 के कविवचन सुधा के लेखांश को प्रस्तुत किया है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में व्याप्त स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की भूमिका की शुरूआत गदर की चेतना से मानी गयी है। और इस विषय को भारतेंदु ने 23 मार्च 1874 की कविवचन सुधा में प्रस्तुत किया है।

शर्मा जी के अनुसार गदर के इश्तहारों में "अंग्रेज़ों की कथनी और करनी की भिन्नता के विषय में विशेष रूप से बल दिया गया है। और गदर के नेताओं का लक्ष्य सम्पूर्ण भारत की स्वतंत्रता के अनुरूप भारतेन्दु का भी लक्ष्य रहा है। जिसे व्यक्त करते हुए उन्होंने 6 जुलाई 1874 की "कविवचन सुधा" में लिखा है -- "जिस प्रकार अमेरिका को उपनिवेषित होकर स्वाधीनता प्राप्त हुई वैसे ही भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है।"[1]

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण -- भूमिका - पृ. 14

हिन्दी नवजागरण का तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी युग को मानते हैं जिसका समय 1900-1930 तक रहा अर्थात् द्विवेदी युग का आरम्भ सरस्वती के प्रकाशन से होकर उससे द्विवेदी जी के अलग होने तक रहा है। शर्मा जी का कहना है कि "महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की सही पहचान तभी हो सकती है जब हम एक तरफ गदर और भारतेन्दु युग से उसका सम्बन्ध पहचाने और दूसरी तरफ छायावादी युग, विशेष रूप से निराला के साहित्य से उसके सम्बन्ध पर ध्यान दें।"[1] उन्होंने द्विवेदी युग का महत्व अन्य साहित्यकारों की तरफ भाषा को परिमार्जित करने में नहीं देखा बल्कि उन्होंने सरस्वती के सम्पादन का सामाजिक महत्व स्वीकार किया है। और साथ ही उन्होंने द्विवेदी जी का महत्वपूर्ण कार्य भाषा को परिष्कृत करनामाना है। वे हिन्दी नवजागरण की प्रासंगिकता सिद्ध करते हुए कहते हैं --"भारत के राष्ट्रीय नवजागरण का सम्बन्ध सामान्यतः राजाराम-मोहन राय से जोड़ा जाता है, हो सकता है, बंगाल के लिए यह सही हो। आवश्यक नहीं कि हर प्रदेश में वैसी ही प्रक्रिया घटित हुई हो।" द्विवेदी जी अँग्रेज़ी को शिक्षा माध्यम बनाने के प्रबल विरोधी थे। वह बुद्धिवाद और वैज्ञानिक विचार पद्धति के समर्थक थे और रहस्यवाद के विरोधी थे। वह भारत के उद्योगीकरण के पक्षपाती थे। उनके लेखन के अध्ययन से विदित होता है कि हिन्दी नवजागरण की अपनी विशेषताएँ हैं, वह बंगाल या गुजरात के नवजागरण से भिन्न हैं। ये विशेषताएँ भारतेन्दु युग से भी मिलती हैं द्विवेदी जी की युगान्तरकारी भूमिका यह है कि उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से अनेक समस्याओं का विवेचन गहराई से किया है। भारतेन्दु युग में पुरानी व्यवस्था में परिवर्तन की जो माँग धीमी रही है वह द्विवेदी युग में अधिक उग्र और अधिक व्यापक हो गई है। आचार्य द्विवेदी जी को समकालीन

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण -- भूमिका -- पृ. 15

अर्थ-तंत्र, राजनीति, इतिहास और समाज-शास्त्र का गहरा ज्ञान रहा है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "हिन्दी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए उनके कार्य का मूल्यांकन व्यापक हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में ही संभव है। ... सरस्वती के माध्यम से उन्होंने लेखकों का ऐसा दल तैयार किया जो इस नवीन चेतना के प्रसार कार्य में उनकी सहायता करें। अपने अथक परिश्रम से उन्होंने सरस्वती को एक आदर्श पत्रिका बना दिया।"[1] उनके अनुसार द्विवेदी जी के साहित्यिक कृतियों का उद्देश्य साहित्य-क्षेत्र में हिन्दी गद्य का विकास करना, आधुनिक हिन्दी को विविध विषयों के विवेचन का माध्यम बनाना, कविता में ब्रजभाषा की जगह खड़ी-बोली को प्रतिष्ठित करना तथा साहित्य से रीतिवाद को बाहर निकालना रहा है। उन्होंने छायावादी साहित्य को द्विवेदी युग के प्रति विद्रोह का साहित्य मानने का विरोध किया है। वे छायावादी कवियों की विचारधारा की अभिव्यक्ति हेतु कहते हैं -- "निराला ने अंग्रेज़ीराज, जमींदारी-प्रथा, किसान-आंदोलन, वर्णाश्रम-धर्म, नारी की पराधीनता भाषा की समस्या आदि समस्याओं को साहित्य में प्रस्तुत किया है जिसे देखने से पता चलता है कि हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में निराला का लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है। अतः छायावादी चिंतन सर्वत्र द्विवेदी-युग का विरोधी नहीं उसका अनुवर्ती है।"[2] इसके साथ ही शर्मा जी हिन्दी नवजागरण का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं -- "नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरम्भ हुआ,

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण - भूमिका - पृ. 16-17
2. वही, पृ. 18

वह भारतेन्दु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य-विरोधी, सामंत-विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में और पुष्ट हुई। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा उसकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रांतिकारी रूप में व्यक्त हुई।"[1]

शर्मा जी देशी नवजागरण को अंग्रेज़ों की देन मानकर, गदर में सिपाही और सामंतों का निज स्वार्थ के लिए संघर्ष, करना कहने वाले और अंग्रेज़ों द्वारा पुरानी पद्धति का नाश कर नयी पद्धति को जन्म देने के कारण पुरातन पंथी वयवस्था के लिए कारीगरों द्वारा संघर्ष करने के विचार प्रस्तुत करने वाले विद्वानों से प्रश्न करते हैं कि ऐसा संघर्ष महाराष्ट्र, तमिलनाडु और बंगाल में क्यों नहीं हुआ जो बहुत पहले अंग्रेज़ीराज में मिला लिये गये थे परन्तु गदर में अवध जनपद में किसानों और सिपाहियों ने सबसे व्यापक संघर्ष किया वह एक वर्ष पूर्व ही अंग्रेज़ीराज में मिलाया गया था। अर्थात् शर्मा जी ने हिन्दी प्रदेश में अन्य भारतीय प्रान्तों की अपेक्षा सामंत विरोधी चेतना का उग्र रूप पाये जाने और जनवादी चेतना की बहुलता को देखा है। इसी कारण उन्होंने 1857 की क्रांति को हिन्दी का जातीय संग्राम और भारत का राष्ट्रीय संग्राम माना है और उसका प्रभाव सम्पूर्ण देश पर होने के साथ-साथ हिन्दी भाषी प्रदेश पर सबसे ज्यादा होना देखा है। शर्मा जी सन् 1857 के इस संग्राम के जातीय चरित्र की पहचान करने वाले और उसे उभारने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति माने गये हैं।

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण - भूमिका - पृ. 19

शिवकुमार मिश्र का कहना है कि "19वीं शताब्दी के भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक नवोत्थान को नवजागरण कहने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को है। उन्हें इस बात का भी श्रेय है कि उन्होंने सबसे पहले 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हिन्दी साहित्य के नये युग को हिन्दी नवजागरण की एक नयी संकल्पना से जोड़ा।"[1] शर्मा जी हिन्दी नवजागरण को बंगाल या गुजरात के नवजागरण से भिन्न मानते हैं। और उसे गाँधी वादी विचारधारा से अलग कर कहीं आगे बढ़ी हुई चेतना वाला आंदोलन बतलाते हैं। उनके अनुसार "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से महावीर प्रसाद द्विवेदी तक हिन्दी नवजागरण के नवसूत्रधार पुराने चर्खे-कर्घे वाले भारत का स्वप्न नहीं देखते। वे देश में आधुनिक उद्योग-धन्धों के विकास के पक्षपाती हैं। गाँधीवादी विचारधारा से हिन्दी नवजागरण का यह भेद उल्लेखनीय है।"[2] उन्होंने हिन्दी नवजागरण को मूलतः बुद्धिवादी और रहस्यवाद विरोधी माना है। तथा इसकी प्रखर सामंत विरोधी चेतना के साथ ही अंग्रेज़ी की संरक्षक भूमिका के विरोध को भी इस आंदोलन की सबसे उल्लेखनीय विशेषता बतलाया है। वे हिन्दी-प्रदेश के नवजागरण के जातीय और राष्ट्रीय महत्व को समझते हुए उसे एशिया के नवजागरण का सूत्रधार माना है।

---

1. आलोचना अंक-82, पृ. 49
2. वही

2.3 हिन्दी जाति

जाति शब्द सामाजिक गठन के नये रूप का द्योतक है। जिसके अन्तर्गत सांस्कृतिक एकता समाहित रहती है तथा विभिन्न जनपदों को समन्वित करने वाली प्रमुख धारा जातीय भाषा होती है। वे किसी भी जाति का निर्माण अनेक जनपदों के समन्वय से मानते हैं। क्योंकि उनके अनुसार जनपदों का समन्वय सामंती व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारिक पूँजीवाद के विकास के साथ नगरों और गाँवों में आपसी विनिमय की दृष्टि से होता है इस प्रक्रिया में स्वामित्व प्राप्त करने वाली जनपदीय भाषा जातीय भाषा का स्वरूप ग्रहण करती है। शर्मा जी सांस्कृतिक पक्ष को महत्व देते हुए धर्म और जाति का पार्थक्य स्पष्ट करते हैं। उन्होंने धर्म एक होने पर भी जाति में भिन्नता स्वीकार की है। जैसे बंगाली मुसलमान और हिन्दुस्तानी मुसलमान अलग-अलग है। वे हिन्दी शब्द से एक भाषा का बोध होने तथा उसके बोलने वालों की पहचान होने की बात कहते हैं।

डॉ. शर्मा जातीय आधार धर्म और जाति को नहीं बल्कि एक वर्ग विशेष में प्रयुक्त भाषा-भाषीय जन-समुदाय से मानते हैं। जैसे -- महाराष्ट्रीय जाति का अभ्युदय, वैसे ही हिन्दी जाति का अभ्युदय। जैसे अन्य जातियों की क्षमता और सजीवता उनके साहित्य में देखने को मिलती है वैसे ही हिन्दी जाति की क्षमता और सजीवता उसके साहित्य में दिखाई देगी। साहित्य को जातीय विकास से जोड़ने का अर्थ है सामाजिक परिस्थितियों से उसके सम्बन्ध को पहचानना।[1] जिस प्रकार भारत देश के

---

1. हिन्दी जाति का साहित्य -- पृ. 16

अन्य प्रान्तों की भाषाओं और उनके सांस्कृतिक विशेषताओं या गुणों के आधार पर वहाँ की जनता को जाति कहा जाता है उसी प्रकार हिन्दी भाषा प्रदेश की जनता को हिन्दी जाति कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि शर्मा जी ने "हिन्दी जाति" शब्द की अवधारणा में विशेष वर्ग समुदाय के सांस्कृतिक पक्ष को महत्व देते हुए उसकी भाषा को प्रमुखता प्रदान की है। और उन्होंने तमिलनाडु, महाराष्ट्र, बंगाल, आन्ध्र प्रदेश जैसे जातीय प्रदेशों में प्रयुक्त बोलियों के अनुरूप ही हिन्दी के क्षेत्र में अनेक जनपदीय बोलियों का व्यवहार स्वीकार किया है। उनका मानना है कि "जाति का निर्माण एक सामाजिक प्रक्रिया है यह प्रक्रिया व्याकरण के नियमों के अनुसार घटित नहीं होती।" बल्कि वे लिखते हैं -- जैसे हिन्दी जाति के साहित्य का इतिहास है वैसे ही हिन्दी जाति की सभ्यता का इतिहास है। ... हिन्दी जाति के बृहत सांस्कृतिक इतिहास का ही अंग है हिन्दी जाति के साहित्य का इतिहास।"[1]

शर्मा जी अपनी हिन्दी जाति विषयक अवधारणा को प्रतिपादित करते हुए उसे अन्य जातियों के समान ही आधुनिक पूँजीवादी आर्थिक सम्बन्धों के विकास का परिणाम मानते हैं तथा सामाजिक प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने किसी जाति के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के लिए गण समाजों के सांस्कृतिक इतिहास से जनपद और जाति के रूप की बोधगम्यता स्वीकार की है। उनके अनुसार हिन्दी जाति की स्थिति आधुनिक यूनानी और इतावली जातियों की स्थिति के समान रही है। वे प्राचीन भारत में भरत, कोसल और मगध इन तीन गण समाजों की निर्णायक भूमिका

---

1. हिन्दी जाति का साहित्य -- पृ. 25

स्वीकार करते हुए भरतगण का सम्बन्ध प्राचीन वैदिक भाषा और संस्कृति से मानते हैं। और ऋग्वेद में उनका निवास स्थान सरस्वती और यमुना के बीच वाले प्रदेश को बताते हैं। उन्होंने भरतगण का पुरूगण से समन्वय होने से कुरूगण का निर्माण होने का तर्क दिया है। उनके अनुसार "भरतगण यज्ञवादी संस्कृति का उपासक था और मगध इसका परमविरोधी और वेद-विरोधी मत मतान्तरों का मुख्य केन्द्र रहा तथा मगध जैन और बौद्ध धर्मों का प्रवर्तन केन्द्र भी रहा है। बौद्धों ने तर्क-शास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया और जैन दार्शनिकों ने अनेकान्तवादी तर्क-पद्धति का प्रवर्तन किया है। इसके अतिरिक्त शक्ति-पूजा से सम्बन्धित मतों का चलन मगध और पड़ोसी गणों में अधिक रहा। भारत में सबसे पहले संघबद्ध धर्म और संघबद्ध सामंती राज्य विस्तार मगध द्वारा किया जाना स्वीकार किया। शर्मा जी ने मगध और भरतगणों के बीच कोसल गणों के लोगों को कर्मकाण्डी और वेद-विरोधी मतों के प्रचारक नहीं बल्कि मुख्यतः कवि और कविता-प्रेमी जन बताया है। और रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का इनसे घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्त किया क्योंकि कोसल गणवासी पुराणों के विद्वान और कथावाचक रहे हैं। और इनमें वाल्मीकि और वेद व्यास जी ने काव्य परम्परा को देवोपासना से नहीं बल्कि मानवतावादी धारा से जोड़ा है। इन दोनों कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से राम और कृष्ण को महापुरूषों के रूप में लोकप्रिय बनाकर समस्त वैदिक देवताओं और बौद्ध मत का महत्व कम कर दिया है। और इन्हीं रूपों को उपासना का आलम्बन बनाया है। महाभारत के गीता अंश द्वारा वैदिक यज्ञ-संस्कृति के स्थान पर आत्मवाद, योग और परमात्मा के रूप में कृष्ण को प्रतिष्ठित किया गया: डॉ. शर्मा के अनुसार "कोसल के लोग कथावाचक और कथा-प्रेमी होने के कारण उन्होंने यज्ञ, वेद-मंत्रों और बौद्धों के तर्क-शास्त्र को कविता के माध्यम से प्रायः निरस्त्र किया है।

उन्होंने साहित्य की शक्ति को तर्क-शास्त्र से अधिक और महत्वपूर्ण माना है तथा महाभारत में भारत-राष्ट्र की कल्पना कविता के माध्यम से करने के अद्भुत प्रयास और पुराणों में भारत-भूमि को कर्म-भूमि मानने की अवधारणा को व्यक्त किया है। वे इसे नैमिषारण्य की परम्परा मानकर इसमें काव्य, पुराण, इतिहास और कथावाचन के द्वारा देश को एक सूत्र में बाँधने के प्रयास को उभारते हैं। परन्तु इस पौराणिक परम्परा में अतिरंजित परंपराएँ और अन्धविश्वास होना भी स्वीकार किया है। उन्होंने भारतीय भाषाओं में विकसित साहित्य की परम्परा पर रामायण और महाभारत का प्रभाव निरन्तर गहरा होने और वैदिक काव्य की परम्परा वेदों के साथ ही समाप्त होने के प्रसंगों को उभारा। वे महाभारत और पुराण को भारतीय राष्ट्रीयता का आदि स्त्रोत और महाभारत तथा रामायण को समस्त भारतीय काव्य का आदि स्त्रोत मानते हैं। उन्होंने इनका प्रभाव आधुनिक भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत काव्यों और नाटकों पर भी प्रत्यक्ष देखा है। और संस्कृत के प्रमुख केन्द्र जनपदों को ही हिन्दी भाषी प्रदेश बताया है। शर्मा जी लोक-संस्कृति का निर्माण और प्रसार लोक भाषाओं के माध्यम से ही संभव मानते हैं और भारतीय धर्म-व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों को भी प्रस्तुत किया है। आर्थिक विकास के कारण शहरी कारीगरों और ग्रामीण किसानों में उत्पन्न सामंत विरोधी प्रखर चेतना का प्रमुख और आदि प्रतिनिधि कबीर को माना है। क्योंकि उन्होंने धार्मिक विद्वेष और ऊँच-नीच के भेद-भाव की तीव्र आलोचना की है। शर्मा जी उनमें वैराग्य और निराशा के भावों के साथ विह्वल आनन्द की अभिव्यक्ति तथा हिन्दी प्रदेशों के बाहर भी प्रभाव देखते हैं। वे जायसी के साहित्य की लोकप्रियता को भी दर्शाते हैं।

शर्मा जी तुलसी को अपने युग का सबसे अधिक ज्ञानी, कबीर को भक्त, सूरदास को जायसी के समान सौन्दर्य प्रेमी कवि बताते हैं। वे सूरदास के गीतों में नवीन लोकप्रियता और मीरा के गीतों में तीव्र आत्माभिव्यक्ति को देखते हैं। उन्होंने भक्ति आंदोलन में पुरानी कथाओं को नया रूप देने तथा रामायण और महाभारत के वीरत्वपूर्ण मानवतावाद का पुनर्जन्म होने की बात कही है। सूर और तुलसी के युग के बाद विघटित सामंतवाद का परिणाम देव, बिहारी, मतिराम की काव्य परम्परा को माना है तथा उसका विकृत रूप नायिका-भेद, अतिशय अलंकरण, चमत्कार प्रदर्शन आदि में देखा है और भूषण के काव्य को रीतिवादी घेरे को तोड़ने वाला बताया है।

डॉ. शर्मा हिन्दी की जातीय परम्परा के विकास के विश्लेषण के क्रम में 19वीं सदी के साहित्य का विवेचन कर भारत में अँग्रेज़ों द्वारा अपनाई गई भाषा-भेद की नीति और धर्म-भेद की नीति में समानता को दर्शाया है। उन्होंने उर्दू नामक विशिष्ट बोली का सबसे बड़ा कवि गालिब को बताते हुए उसकी कविता को फारसी की दरबारी कविता और सूफी कविता से प्रभावित माना है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्यिक गतिविधियों के लोक रूपों में जनपदीय भाषाओं में साहित्य-रचना करने की प्रवृत्ति देखी है। और महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा सरस्वती के माध्यम से भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों की परम्परा का विकास कर सामाजिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों की तीव्र आलोचना करने के प्रसंगों को उद्घाटित किया है। इसके अलावा मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा हिन्दी प्रदेश की जनता को रूढ़िवाद से मुक्त कर उसकी जातीय विशेषताओं की पहचान करने तथा रीतिवाद विरोधी

प्रवृत्ति अपनाने की बात कही है। और द्विवेदी युग के लेखकों में प्रेमचन्द को भारतीय साहित्य का युगान्तकारी भूमिका निभाने वाला साहित्यकार माना है तथा उनकी सामंत विरोधी दृष्टि जन-भाषा और संस्कृति की अभिव्यक्ति देशकाल और युगीन परिस्थितियों और समस्याओं को व्यक्त करने वाले प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द के समकालीन समर्थ गद्य लेखक और कवि निराला को समान धर्मा-युग के श्रेष्ठ कवि बताया है।

शर्मा जी हिन्दी जनता की संस्कृति के विकास के विश्लेषण के क्रम में साहित्य के साथ-साथ अन्य कलाओं के विकास को विश्लेषित करते हैं। और साथ ही भारत की अन्य जातीय प्रदेशों की अपेक्षा हिन्दी प्रदेश की जनता में जातीय चेतना का अभाव, जात-बिरादरी के मजबूत बन्धन, जनपदीय अलगाव, धार्मिक विद्वेष, बोलियों में भेद, राजनीति में साहित्य और संस्कृति की अबोधता, भाषावर प्रांत का सिद्धांत असफल होने तथा प्रशासनिक दृष्टि से सर्वाधिक विभाजित क्षेत्र होने आदि खामियों को उद्घाटित करते हैं।

शर्मा जी साहित्य के जातीय रूप और उसकी जातीय विशेषताओं से सम्बन्धित समस्या के विषय में कहते हैं कि "भाषा साहित्य का रूप है हमारे साहित्य का जातीय रूप हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में अनेक बोलियाँ बोली जाती है इनमें खड़ी बोली हमारी जातीय भाषा बनी। हिन्दी भाषी प्रदेश में जातीय चेतना का प्रसार बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और आन्ध्र जैसा न होने का कारण वहाँ के पिछड़ेपन को माना गया है; क्योंकि सामंतवाद का गहरा प्रभाव

बड़ी-बड़ी ताल्लुकेदारियाँ, वर्ण-व्यवस्था की कट्टरता हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव और अंग्रेज़ों की कूट-नीति के कारण हिन्दी भाषी प्रदेशों में औद्योगिक और सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध रहा है। शर्मा जी के अनुसार "हिन्दी साहित्य की जातीय विशेषताओं और उसके सहज विकास के सबसे बड़े शत्रु वे हिन्दी वाले ही हैं जो रूढ़िवाद के गुलाम है और हिन्दी को तंग सामंती दायरे से बाहर निकलने नहीं देना चाहते।"[1] वे अपनी वर्ग-संघर्ष की दृष्टि के द्वारा जातीय सम्मान की भावना का सही विकास रूढ़िवाद का विरोध करने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से जुड़ने का तर्क प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी जातीयता के विकास के अवरोधों का विश्लेषण करते हुए अंग्रेज़ी भाषा और संस्कृति, उनकी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति, शिक्षा-नीति आदि को हिन्दी जातीयता के विकास को अवरोधित और कुंठित करने वाले कारण माना है तथा हिन्दी भाषी प्रदेशों के प्रति अंग्रेज़ों की पक्षपात-पूर्ण नीति का कारण वहाँ 1857 की क्रांति होना बताया है। और मैकाले की शिक्षा नीति से हिन्दी जातीय सम्मान की भावना कुंठित होने के प्रसंग को उभारते हुए शर्मा जी कहते हैं कि "जो लोग हिन्दी का हित चाहते हैं और जिनमें जातीय सम्मान की भावना है, उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि वे अपने लेखों में अरबी-फारसी,अंग्रेज़ी, संस्कृत आदि के विद्वान होने का हिन्दी भाषा में प्रमाण प्रस्तुत न करें।" वे जातीय संस्कृति के विकास का गहरा सम्बन्ध औद्योगिक विकास, किसानों की दशा में सुधार, साक्षरता आदि से दर्शाते हैं। उन्होंने हिन्दी की जातीय संस्कृति के विकास हेतु अंग्रेज़ी के गलत प्रभाव स्वरूप व्याकरण की लापरवाही करने भाषा की प्रकृति की पहचान न कर हिन्दी के स्वरूप को बिगड़ने की प्रवृत्ति के प्रति सावधान किया है।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 178

शर्मा जी हिन्दी की जातीय अवधारणा को स्पष्ट करते हुए हिन्दी भाषा और साहित्य में उसके विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को उभारते हैं तथा हिन्दी की सांस्कृतिक विरासत का विश्लेषण कर पूँजीपति वर्ग द्वारा जातीय सम्मान की भावना से अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी जातियता के विकास के अवरोधों को युग सापेक्षता के आधार पर उभार कर शर्मा जी हिन्दी की जातीयता या जातीय संस्कृति के विकास हेतु हिन्दी भाषी जनता से अपना अलगाव दूर करके एक ही राज्य या प्रान्त में संगठित होने की जो अवधारणा प्रस्तुत करते हैं वह एक सीमा तक अनुचित है उनका हिन्दी भाषी जनता से आपसी अलगाव दूर करने तथा संगठित होने की बात कहना पूर्णतः सही है परन्तु एक ही राज्य या प्रांत में संगठित होने की भौगोलिक सीमा से परिपूर्ण दृष्टि अनुचित है क्योंकि हिन्दी भाषी जनता भारत के प्रत्येक प्रांत में फैली हुई है,अतः उसका केन्द्रीयकरण असंभव है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा हिन्दी की जातीय संस्कृति की परंपरा के विकास को विश्लेषित कर हिन्दी जाति की अवधारणा प्रस्तुत करते है तथा अन्य जातियों से उसकी समानता, उसके सामाजिक विकास की प्रक्रिया, सांस्कृतिक विकास के विभिन्न पहलुओं आदि काव्य की विकसित धारा का स्वरूप, भाषिक विकास का रूप, लोक-संस्कृति के विकास में व्याप्त लोक-चेतना से परिपूर्ण साहित्य की उत्पत्ति आदि विशेषताओं को व्यक्त किया है। उन्होंने हिन्दी के भक्तिकालीन प्रमुख कवि और उनके साहित्य का विकास, उनकी परम्परा का आधुनिक विकसित रूप और आधुनिक साहित्यकारों द्वारा अभिव्यक्त जातीय चेतना और साम्राज्यवाद तथा सामंत विरोधी प्रवृत्ति, जनवादी साहित्य-धारा का उदय, जनवादी चेतना का

प्रसार जातीय भावना की उत्पत्ति, जन-सामान्य के संघर्ष-पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति करने की शक्ति का विकास, सामाजिक संघर्ष और आधुनिक ट्रेजेड़ी की अभिव्यंजना, हिन्दी प्रदेश की रूढ़ियों और परम्पराओं का वास्तविक रूप आदि को उद्‌घाटित किया है। अर्थात् शर्मा जी ने भारतीय समाज के अन्य प्रादेशिक जातियों के विकास के अनुरूप हिन्दी जाति के विकास और उसकी चेतना को प्रस्तुत किया है।

2.4 साहित्यिक तत्व विषयक अवधारणा

डॉ. रामविलास शर्मा की सैद्धांतिक मान्यताएँ भौतिकवादी जीवन-दर्शन पर आधारित रही है। उनका कहना है कि "वैज्ञानिक भौतिक-वाद के अनुसार मनुष्य प्रकृति की उपज है और विचार चेतना मानव मस्तिष्क की उपज ज्ञान का आधार मनुष्य का प्रत्यक्ष अनुभव है तथा वैज्ञानिक भौतिक व्यवहार अनुभव और प्रयोग से परे इलहाम द्वारा ज्ञान प्राप्ति का दावा नहीं करता है।"[1] अपनी इसी दृष्टि से वे साहित्य-लेखन की महत्ता स्पष्ट करते हुए कवि के लेखन से सम्बद्ध विषय को कवि की इच्छा के साथ-साथ परिस्थितियों पर निर्भर मानते हैं क्योंकि लेखक का व्यक्ति समाज के संघर्ष में विकसित होकर पुष्ट होता है। उन्होंने शोषण के प्रति घृणा उत्पन्न करने सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता लेने वाले साहित्य का समर्थन किया है। और लेखक तथा जनता का सम्बन्ध स्पष्ट कर कला को समाज का समष्टि रूप प्रस्तुत करने वाला दर्पण बताया है। वे लेखक द्वारा अभिव्यक्त मानवीय

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ.4

भावनाओं की गहन अनुभूति, उन भावों के संयोजन की प्रक्रिया और उनकी अभिव्यक्ति में अपनाई गई शैली इत्यादि कलात्मक तत्वों का समग्रता में विश्लेषण प्रस्तुत किया है और साहित्य का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हुए समाज की आर्थिक सामाजिक स्थिति का परिणाम ही साहित्य बताते हैं।

डॉ. शर्मा रचना की श्रेष्ठता की कसौटी को व्यक्त करते हुए कहते हैं -- रचना जो है, वह विषय-वस्तु, भाव-बोध के अलावा एक कला भी है। ...साहित्यकार जो है वह कलाकार है और कला मूलतः संगठन है। रचना जो है वह निरपेक्ष नहीं होती। यहाँ भी डाइलेक्टिक्स काम करता है। साहित्य जो है वह आधी रचना है, आधी अनुकृति। आप कितना ग्रहण करते हैं बाहर से, यह तो वस्तु है और उसे कितना क्रिस्ट करते हैं यह आपकी कलात्मक क्षमता पर निर्भर है। इन दोनों के संयोग के बिना आप {लेखक} बहुत बड़े कलाकार नहीं हो सकते।[1] उन्होंने कलाकृति में व्याप्त अनुभव और सौन्दर्य-बोध को उसके रूप पर भी निर्भर माना है और मनुष्य के भाव जगत को उसके इंद्रिय बोध से अधिक व्यापक और सार्वजनिक बताया। और उसके विचार जगत से भाव-जगत को अधिक व्यापक और सार्वजनिक स्वीकार किया। क्योंकि उनके अनुसार "उच्च साहित्य में महान् विचारों, गंभीर भावों और सूक्ष्म इंद्रिय बोध का समन्वय मिलता है।"[2] वे मनुष्य की चेतना में सबसे व्यापक स्तर उसके इंद्रिय-बोध को स्वीकार भाव और विचारों की अपेक्षा इंद्रिय-बोध को स्थायी बताते हैं। उन्होंने साहित्य का स्थायीत्व समाज की प्रगति में माना है। तथा साहित्य में समाज की

---

1. साहित्य और संस्कृति -- पृ. 124
2. दस्तावेज - 23/24 -- पृ. 6 और 7

गतिविधियों की पहचान, समाज की प्रगतिशीलता से सम्बद्धता प्रतिक्रियावादी शक्तियों का विरोध आदि का समायोजन देखा है।[1] वे साहित्य में शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा से इंकार कर साहित्यकार की सामायिक परिस्थितियों के चित्रण से पूर्णतः सम्बद्धता दर्शाते हैं। उनका कहना है कि "शाश्वत एक सापेक्ष शब्द है ऐसा साहित्य जो एक युग के बाद भी टिकाऊ हो तो उससे मेरा कोई विरोध नहीं है। जो अपने युग से जितना ही सम्बद्ध होता है वह उतना ही टिकाऊ होता। यह द्वन्द्ववाद है जो जितना गहराई से देखता है अपने युग को, वह उतना ही उस तात्कालिकता में से शाश्वत निकालता है। दोनों में कोई अन्तर्विरोध नहीं है।

शर्मा जी साहित्य के स्थायीत्व का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि साहित्य के सभी तत्व समान रूप से परिवर्तनशील नहीं है इंद्रिय-बोध की अपेक्षा भाव और भावों की अपेक्षा विचार अधिक परिवर्तनशील है। युग बदलने पर जहाँ विचारों में अधिक परिवर्तन होता है वहाँ इंद्रिय-बोध और भाव-जगत् में अपेक्षाकृत स्थायित्व रहता है।[2] उन्होंने विषय-वस्तु और रूप के सम्बन्ध को प्रकट करते हुए उच्च कोटि के विचार, भावावेश और यथार्थ के गहरे ज्ञान के अभाव में कला को निखारने के प्रयास को व्यर्थ बताया है। उनके अनुसार "मनुष्य का इंद्रिय-बोध, उसके भाव, उसके विचार, उसका सौन्दर्य बोध कला की विषय-वस्तु है।"[3] वे साहित्य की विषय-वस्तु और रूप का सम्बन्ध समाज से मानते हैं,और साहित्य का शिल्प उसके विभिन्न रूप, सामाजिक विकास से ही संभव बताते हैं। उन्होंने कला की समाज

---

1. साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन -- पृ. 17
2. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य -- पृ. 35-36
3. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 30

सापेक्षता को उभारते हुए लिखा है -- "कला की विषय-वस्तु न वेदांतियों का ब्रह्म है, न हेगल का निरपेक्ष विचार। मनुष्य का इंद्रिय-बोध, उसके भाव, विचार उसका सौन्दर्य-बोध कला की विषय-वस्तु है। सामाजिक विकास की परिस्थितियों से कला की विषय-वस्तु प्रभावित होती है, एक सीमा तक नियंत्रित होती है किन्तु वह आर्थिक जीवन का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है। इसीलिए विभिन्न युगों, विभिन्न जातियों और विभिन्न वर्गों के सौन्दर्य बोध में भिन्नता के साथ समानता भी होती है, इसीलिए अनुकूल सामाजिक परिस्थितियों के होते हुए भी यह आवश्यक नहीं कि उच्च कोटि की कला का निर्माण भी हो जाए।"[1] उन्होंने साहित्य में यथार्थ-जीवन और विचारों के प्रति मनुष्य की भावना उसकी रागात्मक प्रतिक्रिया को भी देखा है।

शर्मा जी विज्ञान और दर्शन से साहित्य के रूप को पृथकता दर्शाते हुए लिखते हैं -- "साहित्य के रूप की विशेषता उसका इंद्रिय गठन है। साहित्य के रूप की यह ऐन्द्रियता *(Sensuousness)* उसे दर्शन और विज्ञान के रूप की सूक्ष्मता *(Abstraction)* से भिन्न करती है।"[2] वे साहित्य की विषय-वस्तु और रूप को एक-दूसरे को प्रभावित करने वाले बताते हैं क्योंकि विषय-वस्तु नियामक है उसकी आवश्यकताओं के अनुसार रूप निर्मित होता है किन्तु यह भी सही है कि रूप विषय-वस्तु का नियमन भी करता है। उन्होंने रूप और विषय-वस्तु के परस्पर सम्बन्ध की अवहेलना करके रूप पर जोर देना ह्रासकालीन पूँजीवादी साहित्यकारों की विशेषता बताया है। वे कृति के कलात्मक सौन्दर्य का निखार उसकी विषय-वस्तु की

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 31-32
2. लोक-जीवन और साहित्य -- पृ. 10

सामाजिकता से सम्बद्ध मानते हैं। अर्थात् विषय-वस्तु या कला को एक-दूसरे पर आश्रित मानते हुए भी विषय को ही अधिक महत्व प्रदान करते हैं। और कलावादियों की दृष्टि का विरोध करते हुए लिखते हैं -- "प्रत्येक कला कृति सामाजिक यथार्थ को लेकर चले ताकि समाज में प्रगतिशील तत्वों की प्रतिस्थापना और भावी विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।...कला को जीवन से काटकर देखना उसे अराजकतावादी बनाना है क्योंकि कला के ऊपर सामाजिक प्रभावों को नियामक न मानने से अंत में कला भी अराजक बन जाएगी।"[1] वे दो विरोधी तत्वों की एकता में रस की उत्पत्ति देखते हैं। वे रस की द्वन्द्ववाद के आधार पर व्याख्या करते हुए पाठकों में साधारणीकरण नाम की क्रिया होने पर भी उनका रसानुभव अलग-अलग तरह का मानते हैं। उन्होंने रसों का सम्बन्ध व्यावहारिक जगत से बताया है। तथा साधारणीकरण के सम्बन्ध में व्यंग्यात्मक शैली में कहते हैं -- "साधारणीकरण एक ऐसा मंत्र है जिससे शोषक और शोषित किसी की भी पूजा करने से मनुष्य विश्व-प्रेम तक पहुँच जाता है।"[2]उन्होंने साहित्य में अश्लीलता, निराशावाद तथाकथित प्रयोगवाद यानि घटिया और फूहड़ साहित्य को परम्परा से विलग माना है और अंग्रेज़ी के निम्न साहित्य की छिछली नकल, साम्प्रदायिकता आदि प्रवृत्तियों की नकल बताया है। वे राष्ट्रीय गौरव से परिपूर्ण साहित्य को ही जनता का साहित्य कहते हैं।

शर्मा जी सौन्दर्य और उसकी कलात्मक सत्ता पर विचार करते हुए उसकी व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करते हैं -- "प्रकृति, मानव-जीवन

---

1. प्रगति और परम्परा -- पृ. 126
2. वही, पृ. 155

तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है। ...मनुष्य का सौन्दर्य-बोध उसके सामाजिक-जीवन का ही परिणाम है। सौन्दर्य-बोध आर्थिक जीवन से प्रभावित होता है किन्तु वह उसका प्रतिबिम्ब नहीं है।"[1] अर्थात् उन्होंने सौन्दर्य शास्त्र का मानव-जीवन से गहरा सम्बन्ध माना है। और सौन्दर्य के उद्गम के सम्बन्ध में कहते हैं -- मनुष्य का सौन्दर्य-बोध उसके सामाजिक-जीवन का ही परिणाम नहीं है उससे भी पहले वह उसके प्राक मानवीय विकास का परिणाम है। किन्तु कला का उद्देश्य उन्होंने जनता की उन्नति, जनता को आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष में सहयोग द्वारा नये समाज के निर्माण में सहायक माना है। वे विषय-वस्तु और रूप के संतुलन की आवश्यकता दर्शाते हुए कहते हैं --"साहित्य का विकास दो परस्पर सम्बद्ध स्तरों पर होता है एक है सौन्दर्य प्रतीति का स्तर, हमारे ज्ञान का स्तर और दूसरा है भाव-जगत् इंद्रिय-बोध हमारे सौन्दर्य-बोध का स्तर। इनमें संतुलन कायम रखना आवश्यक होता है इस संतुलन को भुला कर न तो उच्च कोटि का साहित्य रचा जा सकता है, न यथार्थवाद का सही विवेचन किया जा सकता है।"[2] उन्होंने सौन्दर्य की कसौटी में आने वाले परिवर्तन को भी उजागर किया है। उनके अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति और समाज में वर्गों की उत्पत्ति से सौन्दर्य की सत्ता वस्तुओं से हटकर मनुष्य का मन या आत्मा कर दी गयी है। और वस्तुओं को शाश्वत सौन्दर्य का प्रतीक बना दिया गया है।

शर्मा जी राजनीति का साहित्य से सम्बन्ध दर्शाते हुए राजनीति को साहित्य का आधार मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार किसी

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 29
2. वही, पृ. 16

भी देश की राजनीति, संस्कृति तथा आर्थिक व्यवस्था के आधार के बिना टिक नहीं सकती। वे संस्कृति को राजनीति से अछूता रखने वालों का उद्देश्य एक निराधार संस्कृति की सृष्टि करना बताते हैं। चूंकि राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन के साथ संस्कृति में भी परिवर्तन होता है। उनके अनुसार मार्क्सवाद में शुद्ध साहित्य कला या रस की गुंजाइश नहीं है। इसके अलावा उनका मानना है कि मनुष्य और परिस्थितियाँ एक दूसरे की नियामक नहीं हैं बल्कि दोनों का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है। और साहित्य सापेक्ष रूप में स्वाधीन होता है।[1] क्योंकि उनके अनुसार "राष्ट्रीयता मुख्यतः संस्कृति और इतिहास की देन है इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है।"

शर्मा जी युग सापेक्षता की अभिव्यक्ति हेतु साहित्य और परिवेश की आन्तरिक छवि को उद्घाटित करते हैं और सौन्दर्य की सत्ता जीर्ण और मरणशील तथा जीवन्त और उदीयमान तत्वों के भीतर ही माना है। उनके अनुसार समाज और साहित्य का सम्बन्ध प्राचीन मूल्यों और नये मूल्यों का सम्बन्ध सीधा और सरल न होकर संश्लिष्ट और पेचीदा होता है।[2] वे साहित्य के विकास में प्राचीन विचारधाराओं के अनेक तत्वों का समायोजन स्वीकार करते हैं। इसका अभिप्राय कदापि यह नहीं है कि उन्होंने साहित्य में मात्र विचारों को विशेष महत्व दिया है बल्कि उन्होंने साहित्य का उद्देश्य प्रस्तुत करते हुए -- "नये कवि को सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित हो, सांस्कृतिक विरासत के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनाना अति आवश्यक माना है। क्योंकि उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य थोड़े से गिने-चुने

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 12
2. साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन -- पृ. 22

सम्पत्तिशाली लोगों का मनोरंजन करना नहीं है बल्कि जनता के आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष को अभिव्यक्त करना रहा है।

शर्मा जी साहित्य में यथार्थ चित्रण को महत्व देते हुए साहित्यकार द्वारा पुरानी मान्यताओं से परिचित होना और उनके श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण करने की आवश्यकता को दर्शाते हैं। क्योंकि डॉ. शर्मा का कहना है कि "मानव-कार्यों के चित्रण से काव्य में सहज नाटकीयता आ जाती है यदि कविता केवल हृदय का उद्‌गार मात्र न होकर मानव-जीवन का व्यापक दर्पण है तो उसमें घटनाओं, चरित्रों, स्थानों आदि का चित्रण और वर्णन अवश्य होगा। इस तरह की कविता मुख तक भी हो तो वह नाटकीय होगी।"[1] उन्होंने सूर और मीरा के पदों में तुलसी, रसखान रहीम आदि के छन्दों में अधिकतर यही नाटकीयता पायी है। अँग्रेज़ी की रोमांटिक कविता के प्रभाव से कविता को आत्मोद्‌गार मानने का चलन-सा हो गया था। उनके अनुसार पूँजीवादी विचारधारा में व्यक्तिवाद को जो प्रमुखता दी जाती है जिसका अर्थ व्यक्तित्व का विकास नहीं होता क्योंकि यह विकास भर-पूरे सामाजिक जीवन पर निर्भर है उसका असर भी इस आत्मोद्‌गार पर रहा है। परन्तु हर मुक्तक लिखने वाला व्यक्तिवादी ही हो यह ज़रूरी नहीं है आत्मोद्‌गार का लोक-पक्ष हो सकता है स्वातः सुखाय और लोक-हिताय में कोई अनिवार्य शत्रुता नहीं है।[2]

साहित्य के अन्य रूपों को देखते हुए हिन्दी में नाटकों का विकास अपेक्षाकृत कम होने की बात कही। और हिन्दी में रंगमंच न होने से

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 182
2. वही, पृ. 184

भारतेन्दु के पश्चात् नाटकों का उचित विकास न होना स्वीकार किया है। उन्होंने नाटक और काव्य दोनों ही का उद्देश्य रस-संचार माना है पात्रों का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़ना नाटक और प्रबन्ध दोनों की ही विशेषता रही है। परन्तु पात्रों के वचनों और चेष्टाओं द्वारा दर्शकों में रस-संचार करना नाटकों की अपनी विशेषता मानी गई। उनके अनुसार रीति-काव्य की तरह नाटक लिखने के लिए भी लक्षण ग्रंथों की रचना हुई थी।

डॉ. शर्मा उपन्यास विषयक विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं -- उपन्यास की विशेषता उसका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण है। चूँकि उपन्यास में जितने विस्तार से समाज की गतिविधि का चित्रण किया जा सकता है, उतने विस्तार से न तो कविता में संभव है, न नाटक में। यही कारण है कि साहित्य में यथार्थवाद के विकास के साथ-साथ उपन्यास भी उसका मुख्य रूप बन गया है। उन्होंने उपन्यासकार का कर्तव्य व्यक्तिवाद के दायरे में चक्कर न लगाकर भिन्न-भिन्न वर्गों की प्रवृत्तियों का चित्रण करना बताया और आचार्य शुक्ल के मनोवैज्ञानिक निबन्धों को विश्लेषण के क्रम में वैचारिक धाराओं के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए पश्चिम के मनोविज्ञान की मूल प्रवृत्ति व्यक्तिवाद को लेकर चलने वाली, मुख्य स्थान व्यक्ति को समाज से, उसके वर्ग से अलग करके उसके मनोविकारों का अध्ययन करना बताया है। उनके अनुसार "मनोविज्ञान की कुछ धाराएँ जड़ भौतिकवाद को लेकर चली है वैज्ञानिक भौतिकवाद के विपरीत ये धाराएँ मनुष्य को निष्क्रिय पदार्थ मानकर उसकी स्वतंत्र इच्छा शक्ति और चिंतन को कोई जगह न देकर उसे परिस्थितियों का नपातुला परिणाम मात्र मान लेती है।" अर्थात् शर्मा जी ने जड़ भौतिकवादी विचारधारा का

मनोवैज्ञानिक आधार स्पष्ट करते हुए *Behavierist* बिहेवियरिस्ट धारा को यांत्रिक भौतिकवाद की धारा माना है जो मनुष्य की हर क्रिया को परिस्थितियों की प्रतिक्रिया मानकर चलती है। उन्होंने इसी अवैज्ञानिक विचारधारा से मिलता-जुलता फ्रायड आदि के मनोविश्लेषण को माना है जो प्रायः मनुष्य की हर क्रिया के पीछे उसकी दमित कामवासना का खेल देखता है।

डॉ. शर्मा अपने मनोविश्लेषणवादी विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि "भारतीय भाववादी दर्शन का रूझान ज्ञान और भावना को मनुष्य के सामाजिक जीवन और उसके सामाजिक व्यवहार से अलग करके देखने का है। यह रूझान भारतीय दर्शन की एकमात्रधारा नहीं है बल्कि उसकी प्रवृत्ति साहित्य को लोक-जीवन से अलग करके देखने, रस या आनन्द को मानव-संस्कारों से दूर रखने, शुद्ध कला या लोकोत्तर आनन्द की व्याख्या करने की ओर रही है।" शर्मा जी भारतीय भावधारा और दर्शन की प्रवृत्तियों को विश्लेषित कर साहित्य के तत्वों से उसकी सामंजस्यता को व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार "मनुष्य के भावों का विधान संसार की रूपगति में हुआ है उसका आधार मनुष्य का भौतिक जीवन है, उससे अलग हम शुद्ध आत्मा की तरह विशुद्ध भावों या इंस्टिंक्ट की कल्पना नहीं कर सकते। जबकि बहुत से पश्चिमी विचारकों का इंस्टिंक्ट यानी अपरिवर्तनशील मूल भाव आत्मा का ही पर्यायवाची रहा है। वे भावों की सत्ता को अनुभूति पर निर्भर मानते हुए अनुभूति को विषय-वस्तु और बाह्य जगत से सम्बद्ध बताते हैं। और मनुष्य की काल्पनिक अनुभूति को भी बाह्य जगत् की ही प्रतिच्छवि स्वीकार करते हैं। उन्होंने सत्ता का ज्ञान विशुद्ध आत्मानुभूति नहीं बल्कि लोकबद्ध माना है। और कविता का विकास मनुष्य

के भावों और उनकी व्यंजना का विकास लोक के ही भीतर बताते हैं इसीलिए भावों में जो विभिन्नता दिखाई देती है वह लोक की ही विभिन्नता, मनुष्य के व्यवहार और बाह्य जगत् की विभिन्नता का ही परिणाम स्वीकार करते हैं। अर्थात् भावों की सत्ता को जीवन या लोक का आधार मानकर अनुभूति के द्वन्द्व से ही प्राणी के जीवन का आरम्भ बताते हैं। तथा यह द्वन्द्व सुख और दुख का माना गया है। चूँकि मूल अनुभूति ही विषय भेद के अनुसार नये-नये भाव पैदा करती है। शर्मा जी भाव की विभिन्नता मनुष्य की इच्छा से और विषय-बोध से मानते हैं। क्योंकि आत्मगत और वस्तुगत दोनों ही तरह के कारणों से भावों का विकास होता है। किंतु इस तरह के भावों की कोई विशुद्ध आत्मगत सत्ता नहीं होती है उनकी विभिन्नता का विकास विषय-बोध पर निर्भर करता है क्योंकि मनुष्य के भाव उसके सामाजिक जीवन से उत्पन्न होते हैं। परन्तु हर मनोविकार का कोई न कोई वस्तुगत कारण होता है और काव्य का सम्बन्ध मनोविकारों से है तथा मनोविकारों का सम्बन्ध मनुष्य के व्यवहार जगत् से। इसीलिए डॉ. शर्मा मानते हैं कि व्यवहार जगत् का ज्ञान प्राप्त किए बिना कोई भी शुद्ध आत्मानुभूति के बल पर कवि नहीं बन सकता। उन्होंने मनुष्य की भावधारणा की क्षमता को उसके ऐतिहासिक विकास का परिणाम बताया उनके अनुसार मनुष्य को जो भावना शक्ति मिलती है वह एक दीर्घ परम्परा का फल है और अपने नये संस्कार जोड़कर मनुष्य उसे आगे भी बढ़ाता चलता है। इसे उन्होंने मनुष्य की वासना, सहृदयता, उसकी रस ग्राहिका शक्ति के विकास का वैज्ञानिक सिद्धांत माना है। वे भावों में बाह्य जगत के अलावा मनुष्य की आत्मगत चेतना इच्छा आदि के योग की भी एक वस्तुगत सत्ता स्वीकार करते हैं जो ऐतिहासिक विकास का ही परिणाम

है। अर्थात् विषय-वस्तु के विचार से और मनुष्य की अपनी इच्छा के विचार से भी भाव की वस्तुगत सत्ता सिद्ध होती है इसीलिए भावों को प्रकट करने वाली कविता भी एक वस्तुगत व्यापार है जिसका वैज्ञानिक अध्ययन संभव माना है। किंतु पूँजीवादी नैतिकता के आधार पर व्यक्ति की स्वाधीनता के नाम पर स्वार्थ-वृत्ति का प्रसार किया गया है। और पश्चिम के कुछ मनोवैज्ञानिकों ने समाज विशेष के वर्ग-सम्बन्धों में पनपने वाली स्वार्थपरता को शाश्वत नियम का रूप दिया है। उनके लिए मनुष्य का कोई काम निःस्वार्थ होता ही नहीं है। शर्मा जी के अनुसार रिचर्डस के मनोविज्ञान का आधार भी व्यक्तिवाद है वह कविता का लक्ष्य मनुष्य के मनोविकारों में संतुलन मानता है। किंतु शर्मा जी जीवन में भावों की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं क्योंकि भावों की छानबीन का काम सामाजिक महत्व का है, कविता मनुष्य के भावों को प्रतिबिम्बित करती है इसीलिए उसे भी मानव-जीवन की प्रवर्तक मानना होगा। इसके अलावा वे संस्कृति का आधार मानव सम्बन्ध मानते हैं उसका प्रभाव मानव सम्बन्धों पर पड़ता है। चूँकि साहित्य केवल भाव परिष्कार ही नहीं करता वह किन्हीं मानव सम्बन्धों को दृढ़ या कमजोर भी करता है। इस तरह किसी समाज व्यवस्था को कायम रखने या उसे निर्मूल करने में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान स्वीकार किया गया।

डॉ. शर्मा के अनुसार "साहित्य की अनुभूति भावों की अनुभूति है। भावों की अनुभूति वास्तविक जीवन में मनुष्य के व्यवहार-जगत् में होती है। अर्थात् साहित्य के व्यापक प्रभाव का कारण भावना की लोक-सामान्य भूमि को माना है। क्योंकि रस-दशा लोक-हृदय में लीन होने की दशा का ही नाम है इसलिए साहित्य का भाव-जगत् जन-साधारण का

भाव-जगत् होना आवश्यक बताते हैं। उन्होंने साहित्य में आत्माभिव्यक्ति वहीं तक मान्य माना है जहाँ तक वह लोक-जीवन की भी अभिव्यक्ति करता है। वे साहित्य की प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हुए साहित्य में लोकहित विरोधी तत्वों की अभिव्यक्ति से साहित्य की व्यापकता समाप्त होने की बात कहते हैं। और उन्होंने बुद्धि को कोसना वर्तमान सभ्यता अर्थात् पूँजीवादी सभ्यता और सामाजिक जीवन के बनावटीपन पर पर्दा डालना बताया है। क्योंकि उनके अनुसार बुद्धि अपने विशेष मनन और चिंतन द्वारा जिन तथ्यों का निरूपण करती है कवि उन्हीं को गोचर और मार्मिक रूप में सामने रखता है। भावना का आधार अज्ञान नहीं ज्ञान ही है ज्ञान ही भावों के संचार के लिए मार्ग खोलता है। अतः साहित्य विचार शून्य, विचारों से तटस्थ, ज्ञान के प्रति उदासीन क्रिया नहीं है बल्कि श्रेष्ठ साहित्य सदा ज्ञान प्रसार के भीतर भाव-प्रसार के मार्ग पर चलता है। इसी कारण शर्मा जी कहते हैं कि साहित्य के भाव-जगत् के एक छोर पर विचार और बौद्धिक चिंतन है तो दूसरे छोर पर इंद्रिय-बोध और मूर्तिमत्ता है। वे साहित्य को अन्य कलाओं से पूर्णतः असम्बद्ध मानने का विरोध करते हुए साहित्य और शिल्प, स्थापत्य आदि की सामान्य भूमि गोचरता को मानते हैं। उनके अनुसार गोचरता के साथ सौन्दर्य है और सौन्दर्य के साथ मनुष्य की वासना का संस्कार और आनन्द है। इस कारण साहित्य को ललित कलाओं से एकदम अलग नहीं किया जा सकता, न साहित्य-मीमांसा से सुन्दर शब्द निकाले जा सकते हैं।[1] शर्मा जी कुछ पाश्चात्य विचारकों द्वारा साहित्य को गोचरता, इन्द्रिय-बोध और रूपरंग की सुन्दरता तक सीमित कर देने का विरोध करते हुए सौन्दर्य का अर्थ केवल इंद्रिय-बोध से लेना अनुचित मानते हैं। क्योंकि वे

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना — पृ. 200

साहित्य या कला की गोचरता का सिद्धांत ज्ञान-शास्त्र का परिणाम मानते हैं और मनुष्य के बौद्धिक चिंतन का विकास इंद्रिय ज्ञान के आधार पर ही स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार ज्ञान की पहली सीढ़ी इंद्रिय-बोध है। साहित्य इस सीढ़ी को पूरी तरह कभी नहीं छोड़ता है वैज्ञानिक चिंतन जहाँ बौद्धिक व्यवसायात्मक है वहाँ साहित्य इंद्रिय-बोध का सहारा लिए रहता है। उसके कलात्मक सौन्दर्य का यह भी एक आधार होता है। वे भाव-जगत को विषय-बोध से पृथक नहीं मानते तथा साहित्य की अनुभूति को शुद्ध भावानुभूति नहीं बल्कि इंद्रिय-बोध से सम्बद्ध बताया क्योंकि विचार से भाव ज्यादा व्यापक होता है, भाव से इंद्रिय-बोध। उनके अनुसार इस गोचर आधार के कारण साहित्य विज्ञान की अपेक्षा ज्यादा व्यापक और प्रभावशाली होता है। वे कल्पना का आधार इंद्रिय-बोध मानते हैं। और जो चिंतन और विचार अरूप लगते हैं उनका आधार भी रूपमय जीवन बताते हैं। तथा रूप विधान में चाक्षुष-ज्ञान को मुख्य स्वीकार करते हैं। अर्थात शर्मा जी बौद्धिक चिन्तन, इंद्रिय बोध और भावना को समन्वय को साहित्य की विशेषता समझते हैं। तथा साहित्य के भाव-पक्ष पर विचार करने के क्रम में क्रोचे की स्थापनाओं की भी समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार "क्रोचे की मूल स्थापना यह है कि उसने कला की अभिव्यंजना के उस व्यवसाय को बाह्य प्रकृति और अन्तःप्रकृति दोनों से परे जो आत्मा है उसकी अपनी निज की क्रिया है इस जगत और जीवन से स्वतंत्र।" क्रोचे की इस बात को भारतीय अध्यात्मवादियों से जोड़ा है।

2.5 साहित्येतिहास विषयक मान्यता

भारतीय समाज निरन्तर पतन की ओर नहीं बढ़ता गया बल्कि उसकी संस्कृति एक विकासमान समाज की संस्कृति है जिसके कारण सभ्य-असभ्य जातियों की देवोपासना में भिन्नता दिखाई देती है। परन्तु कर्मपरक ज्ञान मार्ग में कर्म के साथ बुद्धि और हृदय के योग से भक्ति का विकास हुआ है। शर्मा जी ने भक्ति को मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों के अनुकूल माना है। वे आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण करने वाले कर्मों की ओर जनता को भक्त कवियों द्वारा ले जाने की बात कहते हैं और इसीलिए भक्तिकाल को लोक-जागरण कहना उचित बताते हैं। उनके अनुसार "कबीर, जायसी, सूर और तुलसी का युग लोक-जागरण का युग है यह जागरण पश्चिमी एशिया के कई देशों के लोक-जागरण से जुड़ा हुआ है। ...ये सारे कवि वीरगाथा-काल और रीतिकाल के कवियों की परिपाटी से अलग रहकर रचनाएँ करते हैं। इन्हीं की तरह वीरगाथा-काल और रीतिकाल के अन्य रूढ़ि-मुक्त कवि हैं। ऐसे रूढ़ि मुक्त कवि भक्ति काल में भी हुए जैसे वीरगाथा काल के अमीर खुसरों और विद्यापति, भक्तिकाल के नरोत्तमदास, रहीम और सेनापति तथा रीतिकाल के आलम और घनानन्द उल्लेखनीय माने गये हैं। शर्मा जी इन कवियों को रीतिवादियों से दूर और भक्त कवियों से सम्बद्ध बताते हैं। और इन्हें एक साथ पढ़ने से लोक-जागरण के प्रसार और उसकी विविधता की जानकारी होना स्वीकार करते हैं। खुसरों से घनानन्द तक लोक-जागरण के समानान्तर रीतिवादी काव्यधारा को प्रवाहित देखा है। उनके अनुसार रीतिवादी काव्यधारा को सामने रखकर ही लोक-जागरण वालीधारा का महत्व समझा जा सकता है।

इस विषय में अपनी समझ को परिपक्व करने के लिए उन्होंने आचार्य शुक्ल जी के विश्लेषण से आधार स्वीकार किया है। शुक्ल जी ने इतिहास के आरम्भ में ही "काल विभाग" के संदर्भ में लिखा है कि "यद्यपि इन कालों की रचनाओं के विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थी। जैसे भक्ति काल या रीतिकाल को ले तो उसमें वीर रस के भी अनेक काव्य मिलेंगे जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग की होगी जिस ढंग की वीरगाथा काल में हुआ करती थीं। "डॉ. शर्मा के अनुसार "यदि भक्ति काल या रीतिकाल में राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग से होती थी जिस ढंग से वीरगाथा काल में तो इन तीनों कालों में प्राप्त होने वाले इस ढंग अथवा रीति का अध्ययन एक साथ करना उचित होगा।"[1] श्रृंगार रस की कविता वीरगाथा काल से लेकर केशव, मतिराम, बिहारी तक अपने विशेष ढंग से रची जाती रही। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन, अलंकार प्रियता, चमत्कारवाद आदि इस कविता की विशेषताएँ रही हैं। ये विशेषताएँ वीर और श्रृंगार दोनों रसों के काव्यों में है इसलिए दोनों को रीतिवादी काव्य कह सकते हैं दूसरा ढंग विद्यापति और सूरदास का रहा है दोनों ने श्रृंगार रस की कविता रची है और यह कविता रीतिवादी श्रृंगार से भिन्न स्तर की है। सूरदास को विदयापति से सम्बद्ध बताते हुए भी शर्मा जी ने सूर को भक्त और विद्यापति को श्रृंगारी कवि माना है और रीतिवादी श्रृंगार काव्य से भिन्न रीति-मुक्त श्रृंगार-काव्य की धारणा की आवश्यकता दर्शायी है। इस धारणा के अनुसार विदयापति से लेकर घनान्द तक काव्य की एक ही प्रशस्त काव्य-धारा दिखाई देती है। उन्होंने तुलसी की बरवै रामायण,

---

1. लोक-जागरण और हिन्दी साहित्य -- पृ. 12

रामचरित मानस और कवितावली के अनेक श्रृंगार परक अंश को इस धारा से सम्बद्ध बताया है। परन्तु लोक-जागरण में रीति-मुक्त श्रृंगार, सूफियों की प्रेम-मार्गीय साधना, तुलसी की भक्ति, कबीर का व्यंग्य और रहीम के वचन हैं। इसीलिए लोक-जागरण नाम की यह सार्थकता है उसके अन्तर्गत हम हिन्दी के समस्त रीति-मुक्त काव्य का अध्ययन एक साथ कर सकते हैं।[1] डॉ. शर्मा प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानन्द की कोटि में करते हैं और घनानन्द की तन्मयता के कारण उन्हें सूर और तुलसी जैसे भक्त कवियों से जोड़ते हैं। उनके अनुसार "जिस काव्य-धारा पर विशेष ध्यान देना है वह लोक-जीवन से सम्बद्ध विभिन्न मानव सम्बन्धों को प्रतिबिम्बित करने वाली रीति-मुक्त धारा है हिन्दी काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि वही है हिन्दी भाषी भू-भाग में सर्वसाधारण की चेतना का सबसे प्रकाशमान रूप इस काव्य में है। यह काव्य हमारी लोक-संस्कृति का अभिन्न अंग है। और भारतेन्दु से लेकर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तक का साहित्य उसी लोक जागरण का अगला विकास है।"[2]

शर्मा जी आचार्य शुक्ल द्वारा व्यक्त इतिहास लेखन सम्बन्धी सूत्रों को विकसित करते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की सर्वथा नवीन दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं। जिसके अन्तर्गत उन्होंने भारतीय साहित्य विकास की प्रक्रिया में दो प्रकार की धाराओं लोक-जागरण और रीतिवादी काव्य धारा को देखा है। जिसमें से लोक-जागरण की धारा जन-सामान्य के जीवन से सम्बद्ध रही और रीतिवादी धारा सामंतवर्ग, चमत्कारवाद से परिपूर्ण जन-विरोधी मानी गयी है। शर्मा जी इन दोनों

---

1. लोक-जागरण और हिन्दी साहित्य -- पृ. 12

2. वही, पृ. 13

धाराओं को समानान्तर दिशा में रखकर अध्ययन के द्वारा इतिहास-लेखन की आवश्यकता को दर्शाते हैं और साथ ही साहित्य के इतिहास-लेखन की अनेक समस्याओं पर भी विचार करते हैं। उन्होंने साहित्येतिहास विवेचन के क्रम में हिन्दी साहित्य के इतिहास में कालविभाजन की समस्या साहित्य के जातीय रूप और उसकी जातीय विशेषताओं की समस्या, साहित्य की विविध विधाओं के रूपों की समस्याओं को प्रस्तुत किया है।

डॉ. शर्मा साहित्येतिहास लेखन की समस्याओं के विवेचन के क्रम में पहली समस्या कालविभाजन की मानते हैं जो आवश्यक-सामग्री की उपलब्धि के अभाव में उत्पन्न होती है। और इतिहास-लेखन की दूसरी समस्या हिन्दी की अनेक बोलियों में रचित समृद्ध साहित्य के विस्तृत अध्ययन के बिना हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखने में कठिनाई होना बताते हैं। उनके अनुसार हिन्दी साहित्येतिहास के साथ भाषा-विज्ञान और सांस्कृतिक इतिहास आदि की अनेक समस्याओं पर विस्तार से विचार करने की जरूरत है। वे साहित्येतिहास-लेखन की कठिनाईयों को उभारते हुए उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। और साहित्येतिहास-लेखन हेतु पूर्व की खोज़ों से लाभ उठाने तथा अनुसंधान-परक कार्य करने काल क्रमानुसार रचना के स्थान निर्धारण की नीति को लोचनीय बनाने की आवश्यकता को दर्शाते हैं।

अध्याय : तीन

डॉ. रामविलास शर्मा का काव्यालोचन

3.1 वाल्मीकि : मानवीय संवेदना के कवि

3.2 कालिदास : सामंती परिवेश का उदात्त चरित्र

3.3 मध्यकालीन भक्ति साहित्य बनाम संत-साहित्य

3.4 तुलसी-साहित्य : सामंती मूल्यों का अतिक्रमण

3.5 मध्यकालीन भक्ति-काव्य और गेयता

3.6 संत-काव्य की विद्रोही भूमिका

3.7 भक्ति आंदोलन : जातीय उत्थान का प्रतीक

3.8 रीतिकालीन साहित्य : सामंती पतन का द्योतक

3.9 आधुनिक कविता : नवीन चेतना की अभिव्यक्ति

3.10 प्रसाद-काव्य : लोक-कल्याण की कामना

3.11 पंत की कविता : मध्यवर्ती-पंथ और समझौतावादी प्रवृत्ति से परिपूर्ण

3.12 निराला-काव्य : विद्रोही-चेतना की अभिव्यक्ति

3.13 महादेवी साहित्य : प्रेम और वेदना का समन्वय

3.14 दिनकर का काव्य : यथार्थ दर्शन और काल्पनिक श्रृंगार का मिश्रण

3.15 बच्चन की कविता : वेदना की टीस और आशा की उमंग

3.16 उत्तर छायावादी काव्य : यथार्थवादी भूमि पर अंकुरित

3.17 अज्ञेय का काव्य : छायावादी रूझानों से आच्छादित

3.18 गिरिजा कुमार माथुर : छायावादी सौंदर्य और क्रांति के पक्षधर

3.19 मुक्तिबोध साहित्य : आत्म-संघर्ष और रहस्यवादी रूझानों से ग्रस्त

3.20 शमशेर का काव्य : रूमानियत और रीतिवाद का संगम

3.21 प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य-साहित्य : विरोधी वृत्तियों से विकसित

3.22 केदार की कविता : क्रांतिकारी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का काव्य

3.23 नागार्जुन : राजनीतिक जागरण और लोक-संस्कृति के कवि

3.24 त्रिलोचन-काव्य : जातीय चेतना और संघर्षशील जनता का साहित्य

3.25 नयी कविता के विकास के विभिन्न सोपान

अध्याय : तीन

डॉ. रामविलास शर्मा का काव्यालोचन

डॉ. रामविलास शर्मा की काव्य समीक्षाओं के अध्ययन की सुविधा के लिए तीन भागों में बाँटा जा सकता है -- प्राचीन काव्य-विषयक समीक्षा, मध्यकालीन काव्य-विषयक समीक्षा और आधुनिक काव्य-विषयक समीक्षा। यह सामग्री मुख्यतः प्रवृत्ति-मूलक और व्यक्ति-मूलक दो रूपों में मिलती है। शर्मा जी ने हिन्दी साहित्य की किसी भी विधा की व्यवस्थित और क्रमबद्ध समीक्षा नहीं की है बल्कि समय-समय पर उनके द्वारा लिखे गये समीक्षात्मक लेख ही काव्यालोचन के विश्लेषण हेतु प्राप्त होते हैं। इसका कारण संभवतः यह रहा है कि उन्होंने अपने समय के विवादास्पद विषयों को ही समीक्षा के लिए चयन कर उनसे सम्बद्ध भ्रान्त अवधारणाओं

का खण्डन किया है। उनका समीक्षा साहित्य समाज और युगीन परिप्रेक्ष्य से पृथक नहीं रहा बल्कि वह मानव-जीवन और समाज की गतिविधियों से सम्बद्ध होने के कारण उनकी साहित्यिक अवधारणायें, उनकी समीक्षा-दृष्टि साहित्य के सांस्कृतिक इतिहास को व्यक्त करती है। जिसे वे हिन्दी जाति का साहित्य कहते हुए उसके जातीय सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार अन्य जातियों के समान ही हिन्दी जाति का भी विकास आधुनिक पूँजीवादी आर्थिक सम्बन्धों का परिणाम रहा है। भारतीय सामाजिक प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए उन्होंने सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण में भरत, कोशल और मगधगणों की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की है। वे भरतगण का सम्बन्ध प्राचीन वैदिक भाषा और संस्कृति से, मगध का वेद विरोधी मतमतान्तरों से और कोशलगण का रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध दर्शाते हैं। वाल्मीकि और वेद-व्यास द्वारा आरम्भ की गई काव्य परम्परा को देवोपासना न मानकर मानवतावादी धारा का प्रतिपादन करने वाली दर्शाते है इन दोनों कवियों द्वारा अपने काव्य के माध्यम से राम और कृष्ण को महापुरूषों के रूप में लोकप्रिय बनाकर वैदिक देवताओं और बौद्धमत को निर्मूल किया गया है। शर्मा जी ने इस सांस्कृतिक विकास की साहित्यिक परम्परा के अनेक कवियों और काल विशेष की प्रवृत्तियों पर आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अतः उनके द्वारा समीक्षित काव्य साहित्य के विवेचनात्मक अध्ययन हेतु उनकी परम्परावादी दृष्टि को मूल सूत्र रूप में लेकर उनके बिखरे हुए लेखों को व्यवस्थित ढंग से साहित्य के कालक्रमानुसार अध्ययन का आधार बनाया जा रहा है। क्योंकि उन्होंने भारतीय समाज के विकास की प्रक्रिया को उभार कर साहित्य की शक्ति को तर्क-शास्त्र और उपासना से भी अधिक महत्व दिया और भारत-भूमि को कर्म-भूमि मानने की अवधारणा स्पष्ट कर काव्य

पुराण, इतिहास और कथावाचन द्वारा देश को एकता के सूत्र में बाँधने के अमूक शस्त्र की उत्पत्ति को दर्शाया है।

3.1 वाल्मीकि : मानवीय संवेदना के कवि

डॉ. रामविलास शर्मा ने रामायण और महाभारत को समस्त भारतीय काव्य का आदि स्त्रोत बताया है। रामायण में वैदिक काव्य की देवोपासना के बदले मानव चरित्र को विषय बनाने तथा मानवीय शक्ति की असमर्थता एवं वेदना के सहानुभूति-पूर्ण चित्रण के कारण उन्होंने रामायण की तुलना ग्रीस के महाकाव्य इलियट की गाथाओं से की है। और रामायण में वाल्मीकि का नैतिक धरातल ऊँचा होने पर भी उन्हें आदर्शवादी मानते हुए उनके हृदय में क्रौंच पक्षी के रुदन-विलाप से उत्पन्न करुणा को सहृदयता का परिचायक बताया। डॉ. शर्मा के अनुसार "संसार से विरक्त होने पर भी वाल्मीकि का हृदय क्रोध और करुणा के भाव से दूर नहीं रह पाया है और न ही उदासीन तपस्वी सांसारिक घटनाओं के प्रति तटस्थता की नीति अपना सके हैं। बल्कि क्रौंची का करुण स्वर सुनकर योग द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध करने के बदले वाल्मीकि ने करुणा से अभिभूत होकर व्याध को श्राप दिया है।"[1]

डॉ. शर्मा ने वाल्मीकि ऋषि के मन में मानव-सुलभ भावों की उत्पत्ति को ही प्रथम श्लोक का जन्म स्त्रोत बताया है। और जितेन्द्रिय

---

1. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य -- पृ. 90

ऋषि के मन में क्रोध से उत्पन्न क्षुब्धता को दर्शाया है। उन्होंने वाल्मीकि द्वारा व्याध की अपेक्षा क्रौंच के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के पक्षपात को साहित्यकार का आवश्यक गुण मान तटस्थता को निर्मूल एवं अमानवीय सिद्ध किया है। वे वाल्मीकि द्वारा भाव सौन्दर्य और शब्द संगीत को अभिन्न रूप से मानव हृदय की श्रेष्ठ भावनाओं के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति को भी उजागर करते हैं। साथ ही साहित्यिक विशेषताओं की सामाजिक जीवन और साहित्यकार के व्यक्तित्व से सम्बद्धता स्वीकार करते हैं। डॉ. शर्मा ने वाल्मीकि की सहानुभूति पीड़ितों के प्रति और क्रोध शोषक अत्याचारियों के प्रति माना है। तथा वाल्मीकि कवि को मानवता का समर्थक बताया है। उन्होंने वाल्मीकि के रामायण में युग सापेक्षता की खोज करते हुए उनके श्लोकों में विस्मय आह्लाद, सुन्दर श्लोकों की मधुरता, वेदना-करुणा, रचनात्मक सौन्दर्य आदि की कालजयिता को विशेष महत्व दिया है। वाल्मीकि द्वारा अपना काव्य राज-दरबार का गायन या पुरोहित गीत न बनाकर समाज के चार वर्णों के अध्ययन योग्य बनाने में उनकी दृष्टि की वर्ण निरपेक्षता का महत्व स्वीकार किया है। रामायण का अन्त दुःखद होने तथा सीता परित्याग की दुखद करुणा-युक्त स्थिति की सफल अभिव्यक्ति को सहज मानवीय भावों को उजागर करने वाला बताते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार वाल्मीकि रामायण में सीता परित्याग की घटना का अत्यन्त कारुणिक चित्रण हुआ है। इस कारुणिकता के कारण ही रामायण का उत्तरांश महाकाव्यों का विषय बना। परन्तु सीता परित्याग में वाल्मीकि ने व्यवस्था की क्रूरता की जिस प्रकार यथार्थ अभिव्यक्ति की है उसका परवर्ती साहित्यकारों में अभाव देखा गया है। डॉ. शर्मा वाल्मीकि रामायण में कवि की व्यवस्था विरोधी भावों की तीव्र अभिव्यक्ति देखते है।

वाल्मीकि द्वारा सीता में मानवीय सुलभ गुणों की सहज अभिव्यक्ति करने के प्रसंगों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने वाल्मीकि को मानवीय जीवन की सूक्ष्म भावात्मक अभिव्यक्ति करने वाले कवि रूप में और रामायण को मानवीय करुणा तथा दारुण जीवन की अभिव्यक्ति करने वाले काव्य के रूप में महत्व दिया है। समाज-सापेक्ष दृष्टि के द्वारा डॉ. शर्मा ने तत्कालीन समाज व्यवस्था में नारी-जीवन की दारुण स्थिति और करुण अवस्था के वास्तविक रूप को उभारने वाले प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। वे वाल्मीकि के राम के द्वारा रावण से युद्ध करने का कारण अपने चरित्र और वंश की कीर्ति की रक्षा मानने की अवधारणा को विशेष रूप से रेखांकित करते हुए राम द्वारा सीता की मुक्ति के लिए युद्ध न कर अपने को उच्च कुल का घोषित करने और सीता को त्याज्य बताने की कटु आलोचना करते हैं। तथा राम द्वारा सीता को लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव व विभीषण किसी के भी साथ रहने के लिए कहना न केवल सीता का बल्कि लक्ष्मण और सुग्रीव का भी घोर अपमान मानते हैं। उन्होंने लक्ष्मण की निष्काम तपस्या के सम्मुख राम की इस कल्पना को अत्यंत आलोचनात्मक चारित्रिक प्रवृत्ति बताया है। इसके साथ ही डॉ. शर्मा द्वारा सीता का पृथ्वी में समाहित होने में नारी की उस दारुण अपमान की गाथा मानना जो अभी तक समाप्त नहीं हुई वास्तव में उनकी नारी जाति सम्बन्धी दृष्टि और उसकी वेदना की अनुभूति को व्यक्त करने वाली उक्ति मानी जा सकती है। डॉ. शर्मा ने कौशल्या की करुण व्यथा से सम्बद्ध प्रसंगों में करुणा और क्रोध का समायोजन देखा है। और वाल्मीकि रामायण के संवादों की नाटकीयता का महाभारत के अतिरिक्त अन्यत्र अभाव पाया है। रामायण में सामाजिक नियम मानव-सुलभ सहृदयता के आड़े आने से, इसके विरोध और परस्पर संघर्ष से ही यह

नाटक दुखान्त बना है। डॉ. शर्मा ने लक्ष्मण के विद्रोह में मानवीय सहृदयता के मार्ग में बाधा बनने वाले सामाजिक नियमों के प्रति तिरस्कार और मानवीय सहानुभूति की पक्षधरता स्वीकार की है। और उन्होंने रामायण के अनेक संवादों में व्यंग्य का निखार मानवीय सहानुभूति को उभारने के लिए प्रयुक्त बताया है। वे वाल्मीकि द्वारा प्रतिपक्ष को उचित रूप में दर्शाने की प्रवृत्ति को उजागर कर सुग्रीव और बालि के चित्रण में तथा रावण के तेज के वर्णन में कवि की तटस्थता और नाटकीय प्रतिभा को अकाट्य प्रमाण मानते हुए भरत द्वारा राम की पादुकाओं की अर्चना को त्याग और निस्वार्थता का चरम उदाहरण बताते हैं। उन्होंने कवि वाल्मीकि द्वारा राम के हृदय में भरत के चरित्र सम्बन्धी शंका उत्पन्न करने के प्रसंग को भरत के त्याग में चार चांद लगा देने वाली अभिव्यक्ति माना है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने वाल्मीकि रामायण की कलात्मक विशेषताओं को उभारते हुए उसमें चित्रमयता, संवादों की निपुणता, उदात्त भावों की व्याप्ति, संवादों की नाटकीयता, व्यंग्यात्मकता की सफलता, विशेष प्रकार की गरिमा और वैभव का समायोजन राम-रावण युद्ध के वर्णन में प्रयुक्त उपमाओं की विशेषताओं को उभारा है। इसके अलावा उन्होंने श्लोकों की गेयता, अविराम-प्रवाहमयता, संवादों का कलात्मक गठन, सर्गों के अंत में बड़े छन्दों का प्रयोग, मधुर शब्दावली द्वारा विचित्र सौन्दर्य की अभिव्यक्ति आदि के रेखांकित किया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार 'वाल्मीकि द्वारा देव-काव्य की स्पर्धा में मानव-काव्य की रचना कर आदर्श चरित राम के माध्यम से सामाजिक

विधान की रक्षा का मूल-मन्त्र प्रस्तुत किया गया है। और उस सामाजिक विधान की कठोरता से मनुष्य की कोमल भावनाओं की टकराहट से उत्पन्न संघर्ष को ही रामायण की नाटकीयता का मुख्य कारण बनाया है। साथ ही उनका यह मानना है कि कवि वाल्मीकि ने अपनी मौलिक भावनाओं के बल पर ही अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी है। इसी कारण वे रामायण को भारतीय काव्य संस्कृति का आदि स्त्रोत मानते हैं।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने वाल्मीकि रामायण की समीक्षा करते हुए उनके साहित्य के प्रगतिशील तत्वों को उभारा है तथा वाल्मीकि के द्वारा अपनाये गये वर्णनों, चरित्र-चित्रण, युगीन परिस्थितियों, समकालीन व्यवस्था और सामाजिक दृष्टिकोण को विषय-वस्तु बनाने, सहज मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने, नारी की दारूणिक अवस्था का चित्रण करने, व्यवस्था की कठोरता से मानवीय कोमल भावनाओं की टकरावट, वर्ण-भेद नीति की अस्वीकृति, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति न्याय के लिए प्रेरणा देने वाले तत्वों की अभिव्यक्ति को उभारते हुए कवि की तटस्थता, पक्षधरता, मानवीय सहानुभूति आदि को विशेष महत्व दिया है। इससे डॉ. शर्मा के हृदय की सहज अनुभूति और नारी की दयनीय अवस्था के प्रति सहानुभूति का परिचय मिलता है। उन्होंने समाज व्यवस्था से पीड़ित नारी की यथार्थ अवस्था को उभार कर न केवल वाल्मीकि के चित्रण-कौशल को उद्घाटित किया है बल्कि अपनी समाज के पीड़ित वर्गों के प्रति आत्मीयता और उनकी दारूण अवस्था के लिए दोषी व्यवस्था के प्रति आक्रोश को भी व्यक्त किया है।

3.2 कालिदास : सामंती परिवेश का उदात्त चरित्र

डॉ. रामविलास शर्मा कालिदास को वाल्मीकि की परंपरा का कवि मानते हैं। उनके अनुसार कालिदास भारतीय साहित्य के ऐसे स्थायी कवि रहे हैं जिन्हें सहृदय काव्य मर्मज्ञों ने शताब्दियों से कवि कुल गुरु माना है।

डॉ. शर्मा कालिदास के साहित्य में प्रचलित समाज व्यवस्था द्वारा पोषित एक निश्चित दृष्टिकोण की गहरी छाप को उनके काव्योत्कर्ष में बाधक बताते हैं। वे कालिदास के साहित्य में अनेक अस्थायी तत्वों का समावेश भी स्वीकार करते हैं। कालिदास के साहित्य में युद्ध आदि के वर्णन में अतिरंजित चित्रों और कल्पना चमत्कार की बाहुल्यता को दर्शाते हुए उन्होंने उसमें कवि प्रतिभा की अपेक्षा परम्परा का निर्वाह स्वीकार किया है। और कालिदास की चमत्कार प्रदर्शन की शैली को उनकी प्रकृति-वर्णन की सहज शैली से पूर्णतः भिन्न माना है। तथा कालिदास द्वारा युग विशेष की रूढ़ि का अनुसरण करने के कारण उत्साह और तन्मयता का अभाव देखा है। इसे उनके काव्य का स्थायी तत्व नहीं बल्कि राजाश्रय प्राप्त कविता की रूढ़ि से उत्पन्न दोष बताया है। परन्तु बहु-पत्नी प्रथा, पुरुषों की व्यभिचारी प्रवृत्ति और वेश्या-वृत्ति आदि की अभिव्यक्ति को उनके साहित्य के अस्थायी तत्व माना है। क्योंकि कालिदास ने मद् विह्वल रमणियों का उल्लेख अधिक किया है। डॉ. शर्मा के अनुसार "कालिदास के कामीजन श्रृंगार रस में ऐसे डूबते हैं कि सिर उठाने का नाम नहीं लेते। उनके आदर्श भोगी भगवान् शंकर हैं जो आदर्श योगी भी हैं।"[1] इसका प्रमाण

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 55

प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कालिदास द्वारा अभिव्यक्त रघुवंशी राजा अग्निवर्ण की भोगी प्रवृत्ति और क्षयरोग को भोगवाद का परिणाम बताया है। उनके अनुसार यह रोग उस समाज व्यवस्था में लग चुका था जिसमें एक अवकाश भोगी वर्ग दूसरों की अर्जित सम्पत्ति के बल पर भोग के सिवा दूसरी बात सोच ही न सकता था।

वे कालिदास के साहित्य की प्रवृत्तियों और विशेषताओं को उभारते हुए कालिदास की सामाजिक विचारधारा को वाल्मीकि और व्यास से पिछड़ी हुई तथा योग के विषय में उनका दृष्टिकोण उपनिषदों की तुलना में पिछड़ा हुआ मानते हैं। और तुलसीदास में इसी चमत्कारवाद के विरोध में भक्ति-मार्ग प्रतिष्ठित होने की बात कही है।

डॉ. शर्मा के अनुसार कालिदास के समाज की विशेष धार्मिक उपज पुराण थे। पुराणों से महाकवि ने अपने काव्य-सौन्दर्य की सामग्री के साथ-साथ काव्य को पुराण बनाने वाली अनेक प्रवृत्तियाँ स्वीकार की जो उनके काव्य सौन्दर्य को घटा देता है। कालिदास ने अनेक पौराणिक रूढ़ियों के साथ-साथ काव्यगत रूढ़ियों का भी अनुसरण किया जिसके परिणाम स्वरूप अतिरंजित आलंकारिक वर्णन इत्यादि दोष उत्पन्न हुए हैं। डॉ. शर्मा कालिदास की काव्य-कला के अध्ययन में तत्कालीन समाज-व्यवस्था को विश्लेषण की अनिवार्यता स्वीकारते हुए कहते हैं -- उस व्यवस्था को भुलाकर एक महान् कवि में व्याप्त चमत्कारवाद की व्याख्या करना कठिन होगा। क्योंकि उस समाज-व्यवस्था ने महाकवि की चेतना को सीमित कर दिया जिसके कारण उनके द्वारा वर्णित राजाओं के चरित्र-चित्रण पर उनके विचारों

का प्रभाव दिखाई देता है वे वाल्मीकि की तरह अपने आदर्श पात्रों के मानवत्व की घोषणा नहीं कर पाये है। वाल्मीकि के पात्रों की मानसिक अन्तर्द्वन्द्वता का कालिदास के पात्रों में अभाव देखा गया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "युद्ध में अनेक चमत्कार दिखाने वाले राजा वास्तव में निष्क्रिय लगते हैं उनकी सक्रियता प्रायः भोग्या नारी को देखकर जागृत होती है उनकी मुख्य मानसिक व्यथा विरह जन्य होती है। जबकि स्त्रियाँ वात्स्यायन की प्रयोगशाला की सजीव मानव-मूर्तियाँ हैं। उनमें प्राचीन महाकाव्यों की वीर नारियों के से दर्प और संघर्ष की क्षमता नहीं है। कालिदास के समाज में नारी का व्यक्तित्व दबा दिया गया और वीर नारियों का स्थान वेश्याओं और अभिसारिकाओं ने ले लिया, अन्य नारियाँ अधिकतर प्रेमिका मात्र रह गई थी। इस कारण डॉ. शर्मा ने चरित्र-चित्रण में कवि-कुल गुरु को आदि-कवि से बहुत पीछे मानते हुए इसका कारण तत्कालीन समाज व्यवस्था से कालिदास की कला के गहरे संबंध को बताया है। कालिदास की अद्भुत उत्प्रेक्षाओं में, साधारण काव्य प्रवाह में, और प्रत्येक छन्द में कोई विशेष आलंकारिक चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति देखी गई है इसी कारण उनके कथा-वर्णन में वाल्मीकि की-सी ओजपूर्ण प्रवाहमयता और व्यास की-सी काव्य गरिमा का अभाव मिलता है। डॉ. शर्मा ने तुलसीदास की तुलना में कालिदास का काव्य-जगत चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सीमित माना है। और उन्हें श्रृंगार रस की अपेक्षा अन्य रसों के वर्णन में कम सफलता मिलने की बात कही है। उन्होंने वाल्मीकि और तुलसी के साथ न्याय हेतु कालिदास की ऐतिहासिक सीमाओं का ज्ञान अति आवश्यक माना है। डॉ. शर्मा के अनुसार "कालिदास ने अपने से पूर्व की प्राचीन व्यवस्था से बहुत कुछ पाया ही नहीं बल्कि उनके समय की व्यवस्था की,

उसकी धार्मिक और साहित्यिक रूढ़ियों की गहरी छाप उनके काव्य पर दिखाई देती है किन्तु वह सदा उसके उत्कर्ष में सहायक नहीं रही है।"[1] इसी कारण वे मानते हैं कि कालिदास का काव्य-साहित्य एक ओर पूर्ण विकसित प्राचीन समाज-व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है और दूसरी ओर वह उसकी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों और निर्जीव रूढ़ियों की प्रतिक्रिया भी है। उन्होंने वर्गयुक्त समाज के अनेक महान् साहित्यकारों की तरह कालिदास में भी अनेक प्रकार के अंतर्विरोध देखे हैं। ये अन्तर्विरोध उनके धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण में, उनके राजनीतिक और सामाजिक विचारों में, उनके सौन्दर्य-बोध और भाव-जगत् में सर्वत्र न्यूनाधिक मात्रा में मिलते हैं। इसीलिए कालिदास को सामंती व्यवस्था का चारण समझना उनकी दृष्टि में बहुत बड़ा भ्रम है।

कालिदास का साहित्य उस काल की समाज व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करता है और साथ ही उसका बहुत बड़ा भाग उस व्यवस्था से मुक्त होकर एक कल्पना-लोक की सृष्टि भी करता है। इस कारण कालिदास के साहित्य में प्राप्त होने वाली समस्त विशेषताओं को उस युग का सामाजिक यथार्थ मानना अनुचित होगा।

वे कालिदास की काव्य-प्रवृत्तियों के आधार पर कहते हैं कि "कालिदास एक महान् रोमांटिक कवि हैं और विश्व के प्रथम रोमांटिक कवियों में से हैं। उनकी रोमांटिक वृत्ति नर-नारी के प्रेम के वर्णन में, प्रकृति चित्रण में, उनके सूक्ष्म इंद्रिय-बोध में और पौराणिक गाथाओं के सौन्दर्य-वादी उपयोग में

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 58

सर्वत्र दिखाई देती है।"[1] कालिदास को प्रथम रोमांटिक कवि बताते हुए डॉ. शर्मा ने दांते से पूर्व कालिदास द्वारा व्यक्तिगत प्रेम की प्रतिष्ठा करने की बात स्वीकार की है। और कालिदास के नायकों को बहुपत्नीवान होने पर भी किसी एक के प्रति विशेष प्रेम-घनिष्ठा को दर्शाते हुए उनके अनेक चरित-नायकों का उल्लेख किया है। वे कालिदास द्वारा वर्णित प्रेम के स्वरूप का स्पष्टीकरण देते हुए अन्य रोमांटिक कवियों की तरह कालिदास में भी प्रथम दर्शन से अद्भुत प्रेम की अभिव्यक्ति मानते हैं। तथा उनके द्वारा प्रथम-दर्शन से उत्पन्न प्रेम वर्णन के साथ ही दीर्घ साहचर्य युक्त प्रेम की अभिव्यंजना देखते हैं। उन्होंने कालिदास के स्त्री-पुरूष दोनों तरह के पात्रों में समान रूप से विरहाग्नि और कथा प्रसंगों में प्रेम की रहस्यवादी व्यंजना का संकेत पाया है।

"यौवन और सौन्दर्य से कालिदास के प्रेम का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।" और भोगवाद के अतिरिक्त उनमें भरे-पूरे जीवन की आनन्द कामना को भी देखा है। शारीरिक सौन्दर्य के वर्णन में कालिदास प्रत्यांगों की सौन्दर्य अभिव्यक्ति के साथ ही समग्र रूप के आभास हेतु उसे अपार्थिव कल्पनालोक की वस्तु बना देते हैं। और अन्य कवियों की भाँति प्रकृति में नारीत्व का आरोप करके प्राकृतिक उपमानों से नारी की तुलना कर रूपजन्य आनन्दातिरेक की व्यंजना की है। उन्होंने अंग्रेज़ कवि कीट्स की अपेक्षा कालिदास के लिए मूर्त-रूप को जीवित और स्पंदनशील बताया है। क्योंकि कालिदास के लिए सप्राण प्रकृति और चेतन मनुष्य में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसी कारण कालिदास का हृदय प्रकृति की जीवन क्रिया से तन्मय हो जाता है।

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 59

जहाँ एक ओर हिन्दी और संस्कृत के अनेक समीक्षकों ने कालिदास को सामंती व्यवस्था का पक्षधर और राजाओं का चाटुकार कहते हुए उनके साहित्य सौन्दर्य में प्रेम की स्वच्छधारा के स्थान पर वासना-युक्त प्रेम की अभिव्यक्ति को ही महत्व दिया है वहाँ डॉ. शर्मा ने कालिदास के सौन्दर्य बोध का मूलाधार उनका जीवन-प्रेम बताया है जो उनके साहित्य में सर्वत्र दिखाई देता है। डॉ. शर्मा के अनुसार इसका अर्थ यह नहीं कि वे विश्व में किसी अगोचर चेतना के दर्शन करते हैं बल्कि उनके लिए यह जीवन घोर-गोचर, इंद्रिय-बोध से अभिन्न रहा है। इसी कारण उन्होंने कालिदास द्वारा विलास और वैभव की अभिव्यक्ति करने के बाद भी उन्हें भौतिकवादी कवि से भी ज्यादा धरती के निकट माना है। और उनके साहित्य में पायी जाने वाली सुगन्ध और गंधोच्छ्वास को भारत-भूमि से सम्बद्ध बताया है। मेघदूत में भारत के ग्राम, नगरों और प्रकृति के प्रति अपूर्व अनुराग को देखा है। इन्दुमती के स्वयंवर में राजाओं के परिचय के बहाने भारत के सभी भागों की प्रकृति का परिचय दिया गया है जिसे वे कालिदास के मानववाद में देश-भक्ति के बीज बताते हैं; क्योंकि मानव और प्रकृति में जीवन-विकास की यह रहस्यमय क्रिया कालिदास को समान रूप से आकर्षित करती है। इसी कारण कालिदास इंद्रियबोध के साथ मूलतः जीवन के प्रति अनुराग प्रकट करते हैं। मानव ही नहीं जीवमात्र को अपने भीतर समेट लेने वाली कालिदास की करुणा का स्त्रोत व्यापक जीवन के प्रति गंभीर अनुराग रहा है। अर्थात डॉ. शर्मा ने कालिदास के साहित्य में प्रकृति और जीवन को एक-दूसरे के पूरक रूप में देखा है और कालिदास के रूप रस गंधमय सौन्दर्य को निर्जीव नहीं बल्कि अतींद्रिय चेतना की ओर काल्पनिक उड़ान भरने वाला बताया है। तथा उन्हें सूक्ष्म इंद्रिय-बोध और मार्मिक करुणा से समृद्ध जीवन का अद्वितीय कवि माना है।

"कालिदास अद्वैत सत्ता में विश्वास करते हैं किन्तु यह सत्ता-गोचर संसार का तिरस्कार नहीं करती।" जिसका प्रमाण कालिदास द्वारा अभिज्ञान शाकुन्तलम् के आरंभ में शिव की वन्दना में प्राकृतिक उपादानों को प्रत्यक्ष रूप में दिखाने में मिलता है। कालिदास विश्व को शिवमय मानने के कारण उनकी सहानुभूति का क्षेत्र व्यापक रहा है। वे वैराग का उपदेश न देकर वैरागी बनने की रूढ़ि का अनुसरण करते हैं। तथा प्रकृति और मानवीय जीवन को अपनी कला का आधार बनाते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार अपने इस अद्वैतवाद के कारण वह पौराणिक गाथाओं का काव्योचित उपयोग करते हैं। न कि पुराणवादियों की तरह सैकड़ों देवताओं में अन्ध-विश्वास उत्पन्न करते हैं।[1] कालिदास रोमांटिक इसलिए है कि वह उस बीते हुए युग का स्वप्न देखते हैं किंतु युगानुकूल महाकवि में एक तीक्ष्ण बौद्धिकता के भी दर्शन होते हैं। इस प्रखर बौद्धिकता के कारण उनकी लोकोत्तर कल्पना के साथ यथार्थवादी प्रवृत्ति का मिश्रण हो गया है। अर्थात् डॉ. शर्मा ने कालिदास की कल्पना में बौद्धिकता का समावेश स्वीकार किया है। और उनकी उपमाओं में संसार की विभिन्न वस्तुओं का साम्य देखने की सहज क्षमता होने के कारण उनके अधिकांश उपमानों को उनके सूक्ष्म इंद्रियबोध और सौन्दर्य ग्राहिका-वृत्ति का परिचायक बताया है। तथा उनकी कलात्मक श्रृंगार वृत्ति को सुकुमार संवेदनाओं से परिपूर्ण माना है।

कालिदास की सहानुभूति जगह-जगह सामंती व्यवस्था और सामंती काव्य परम्परा की रूढ़ियों का खंडन करती है। और नारी का सम्मान करने में वह वाल्मीकि की परम्परा का अनुसरण करते हुए वे नारी

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 66 और 67

सौन्दर्य के प्रशंसक होने पर भी मातृत्व की वन्दना करते हैं। डॉ. शर्मा कालिदास के साहित्य की युग सापेक्षता को उभारते हुए कहते हैं -- "अपने युग को प्रतिबिम्बित करने में कालिदास निष्क्रिय नहीं है उनकी अपनी मेधा, सहृदयता, जीवन दर्शन की क्षमता अपना पूर्ण चमत्कार दिखलाती है।" इसी कारण कालिदास को वाल्मीकि और व्यास को छोड़ कोई अन्य साहित्यकार पार नहीं कर पाया है। कालिदास में उदात्त चरित निर्माण की अद्भुत क्षमता होने पर भी डॉ. शर्मा ने उनकी प्रतिभा को सौन्दर्योपासक लिरिक कवि की प्रतिभा माना है। किन्तु उन्हें तुलसी के समान जनवाणी से परिचित नहीं बताया। डॉ. शर्मा ने रामायण और महाभारत में व्याप्त मनुष्य की विजय की उद्दाम आशा, करुणा, संघर्ष-प्रियता, श्रृंगार के अतिरिक्त मनुष्य जगत के विविध और गंभीर चित्रण आदि का कालिदास के साहित्य में अभाव देखा है। परन्तु युग के प्रभाव के कारण भोगवाद के प्रति कवि का आग्रह सार्वजनीन होते हुए भी अनेक स्थलों पर अपरिष्कृत लगता है। किन्तु कालिदास ने मानव-मूल्यों को सहेजकर उन्हें अनेक दिशाओं में अधिक विकसित किया है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि कालिदास के भोगवाद को रीतिकालीन कवियों ने अपनाया किन्तु वे छाया ही छू सके। उनके सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध को कोई पा नहीं सका। इसके अतिरिक्त कालिदास की देन को उजागर करते हुए वे लिखते हैं -- नारी के प्रति सम्मान भावना, मातृत्व का आदर, जीवन मात्र से सहानुभूति, देश की प्रकृति से अगाध स्नेह, विश्व-जीवन का स्पन्दन सुनने की शक्ति, आत्मविभोरगेयता, भाषा पर असाधारण अधिकार, उनकी चरितगत नम्रता आदि कलात्मक विशेषताएँ साहित्य के लिए

कालिदास की महत्वपूर्ण देन रही है। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ पर कालिदास का गहरा प्रभाव है और तुलसीदास लिखते समय निराला महाकवि के अध्ययन में डूबे हुए थे।

3.3 मध्यकालीन भक्ति साहित्य बनाम संत साहित्य

डॉ. रामविलास शर्मा कालिदास के साहित्य की विकसित परम्परा के रूप को संत साहित्य में देखते हुए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हैं। डॉ. शर्मा ने अंग्रेज़ीराज की स्थापना से पूर्व भारतीय साहित्य में देशव्यापी धारा संत साहित्य को मानकर इसका स्त्रोत भारतीय जनता के हृदय को बताया है। और संत साहित्य के निर्माताओं का उदय जनमानस के मध्य से उत्पन्न लोक-भाषा के व्यवहार द्वारा जनजागरण हेतु माना है। वे संत साहित्य के भेद उपभेदों को स्वीकार न कर प्रेम तत्व की धारा के आधार पर जायसी, तुलसी, मीरा और कबीर आदि में समानताएँ देखते हुए उन्हें एक ही धारा के संत साहित्यकार मानते हैं। साथ ही उन्होंने मानव-मात्र की समानता तथा मानव-प्रेम को उनके प्रेम का सूत्र बताया। और संतों द्वारा ऊँच-नीच, जाति-वर्ग और धर्म के नाम पर मानव से घृणा करने वाली विचारधारा का विरोध करने वाली प्रवृत्ति को उभारा है।

डॉ. शर्मा मायावाद को संत-साहित्य का सबसे कमज़ोर पहलू मानते हुए संत-साहित्य की धारा को मानव-प्रेम की प्रतिष्ठा करने वाली और सांसारिक सुखद सम्बन्धों को गौरवान्वित करने वाली बताते हैं।

उनके अनुसार संत-साहित्य की प्रबल धारा ने समाज के पीड़ित और संस्कृति के वंचित जन-मानस को जगाया और अपने निर्गुणवाद द्वारा उन्होंने मंदिर-मस्जिद, वेद-पुराण और कुरान के विरुद्ध चुनौती दी है। इससे संतों की धार्मिक सहिष्णुता और रूढ़िवाद-विरोधी प्रवृत्ति उजागर होती है। इस सम्बन्ध में डॉ. शर्मा का कहना है कि "संत साहित्य हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने वाला, उनकी धार्मिक कट्टरता की कटु आलोचना करने वाला, जाति-प्रथा और ऊँच-नीच का भेद-मिटाने वाला साहित्य रहा है।"[1] अपनी इस अवधारणा के आधार पर मध्यकालीन भारत में नारी जागरण का प्रतीक अमर गायिका मीरा को मानते हुए उन्होंने संतों द्वारा नारी को साधना में बाधक समझने पर भी सूर, तुलसी चंडीदास आदि कवियों में नारी के प्रति संवेदना व्याप्त होने तथा उनके प्रेम और सौन्दर्य के गीत प्रस्तुत करने के प्रसंगों को उभारा है। और संत साहित्य को नयी जातीय-चेतना का साहित्य बताया है। जिसकी पृष्ठभूमि में डॉ. शर्मा की जातीय चेतना और परम्परावादी समीक्षा दृष्टि को क्रियाशील देखा जा सकता है। उनके अनुसार जातीय चेतना भाषा प्रेम के रूप में अभिव्यक्त होती है। और उन्होंने संत-कवियों द्वारा दरबारी वीर रस का मार्ग छोड़कर प्राचीन महाकाव्यों के आधार पर वीर-भावना का संचार करने और कलात्मक सौंदर्य को विकसित करने के प्रसंगों को विशेष महत्व प्रदान किया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि जिस प्रकार कालिदास ने अपने समय की व्यवस्था में बँधकर भी अपनी पूर्ववर्ती महाकाव्य परम्परा को अनेक औदात्य-पूर्ण अभिव्यक्तियों से विकसित किया है उसी प्रकार संत-साहित्य ने भी दरबारी वीर रस का मार्ग छोड़कर स्वयं को प्राचीन काव्य परम्परा से जोड़ा है जो संत साहित्य

---

1. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य -- पृ. 97

का अपने समय में क्रांतिकारी कार्य माना जा सकता है। यहाँ डॉ. शर्मा ने अपनी परम्परावादी दृष्टि के द्वारा वाल्मीकि से आरम्भ हुई लोक-जागरण की धारा का विकास कालिदास से होते हुए संत साहित्य में प्रवाहित होना दिखलाया है। वे संत साहित्य के लोक पक्ष को उभारते हुए उनकी कला का मूलाधार लोक संस्कृति को मानते हैं और तुलसी तथा जायसी की चौपाइयों, कबीर के दोहों और साखियों, मीरा के भजनों को जन-संस्कृति का साहित्यिक रूप बताते हैं।

जहाँ डॉ. शर्मा ने संतों के साहित्य रूपों को जातीय साहित्य का रूप माना है वहीं संत कवियों की अपनी गेयता, माधुर्य और सरलता के द्वारा दरबारी साहित्य को परास्त होते हुए भी देखा है। और संत-साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को उभारते हुए संत साहित्य की जनवादी-धारा द्वारा सामंती बन्धनों का विरोध करके सहज मानवता की प्रतिष्ठा करने, जनता की जातीय और जनवादी चेतना को पुष्ट कर उसके क्रोध, आशा और विजय कामना को वाणी देने और नयी जन-संस्कृति का निर्माण करने आदि प्रसंगों को उभारा है। जिससे संत-साहित्य की सामंत विरोधी, रूढ़ि-विरोधी, अन्धविश्वास और जन-विरोधी परंपराओं का खण्डन करने वाली प्रवृत्ति प्रस्तुत होती है। डॉ. शर्मा ने संत-साहित्य द्वारा उत्पन्न जन-चेतना, जन-जागरण और जनता में शक्ति के संचारण की प्रक्रिया को महत्व दिया है तथा नारी समाज, पीड़ित वर्ग का चित्रण, लोक-भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने में जातीय चेतना को देखा है। जिसे इन की साम्यवादी समीक्षा दृष्टि का परिचायक माना जा सकता है।

3.4 तुलसी-साहित्य : सामंती मूल्यों का अतिक्रमण

तुलसीदास की साहित्य-समीक्षा के क्रम में उनके सामाजिक महत्व को उजागर करने हेतु डॉ. शर्मा उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक मानते हैं। तुलसी का समय मुगल साम्राज्य के वैभव का काल रहा है। इस समय तुलसी द्वारा हिन्दू धर्म की रक्षा इस्लाम से नहीं बल्कि अपने आतंरिक शत्रुओं, मतमतान्तरों, द्वेष, कलह, अन्धविश्वास से की गई है। डॉ. शर्मा के अनुसार उस समय मुख्य संघर्ष सामंत और किसान के मध्य रहा है जो मुगल शासकों के युद्धों और कट्टर धार्मिक नीतियों के कारण छिपा रहा है। क्योंकि उस समय वर्ग-संघर्ष की अपेक्षा अन्य समस्यायें मुख्य रूप से उभर कर आई हैं। इसी कारण डॉ. शर्मा ने मध्यकालीन साहित्य से वर्ग-संघर्ष के स्पष्ट चित्रण की अपेक्षा करना अनुचित माना है। किंतु उन्होंने मध्यकालीन साहित्य को इससे मुक्त भी नहीं माना बल्कि उस समय के साहित्य में वर्ग-संघर्ष दूसरे रूपों में अभिव्यक्त होने की बात कही है। और तुलसीदास किये गये कलिकाल के चित्रण को काल्पनिक नहीं बल्कि उस युग का यथार्थ चित्रण बताया है।

डॉ. शर्मा की वर्ग चेतनावादी दृष्टि से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि समाज-व्यवस्था में हर समय वर्ग-संघर्ष का अस्तित्व विद्यमान रहता है किंतु कुछ विशेष परिस्थितियों में ही वह मुख्य रूप से उभर कर आता है। उन्होंने तुलसी द्वारा अपने आप को पतितों का सिरताज कहने और अन्नकष्ट, महामारी, बाहुपीड़ा आदि का यथार्थ चित्रण करने में तत्कालीन समाज की दीन-हीन अवस्था और दुखियों तथा पीड़ितों के प्रति

उनकी सहज सहानुभूति की अभिव्यक्ति माना है। और अयोध्या-काण्ड में भरत के चित्रण को देखते हुए उसे सहृदयता का अद्वितीय प्रतीक बताया है। उन्होंने उत्तरकाण्ड में रामराज्य की कल्पना और कलियुग की यथार्थता को तुलसी के साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वय माना है।

वे तुलसी के साहित्य में व्याप्त समाज के रूप और उसकी समस्याओं को उभारते हुए कलियुग के वर्णन में वर्णाश्रम धर्म के नष्ट होने पर क्षोभ प्रकट करने तथा व्यापक समस्याओं के प्रति सतर्क होकर उनका वर्णन करने की प्रवृत्ति को तुलसी की युग-चेतना स्वीकार करते हैं। और उनके सामाजिक वर्णन उपमाओं तथा शब्द-चयन आदि को भौतिक पृष्ठभूमि के प्रति जागरूकता का परिचायक बताते हैं। उन्होंने तुलसी द्वारा की गई ब्राह्मणों और पुरोहितों की आलोचना को वास्तव में पुरोहित शोषण-प्रक्रिया पर कुठाराघात मान वर्णाश्रम धर्म और नारी की पराधीनता को अभिव्यक्त करने वाले प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने विनय पत्रिका में उच्चतम भक्ति पदों की व्याप्ति, उपास्य-देव के प्रति स्पष्टवादिता, अपार-वेदना-पूर्ण आत्म-निवेदन तथा आश्रयदाताओं और उनके चाटुकारों के प्रति अवज्ञा, उद्दंड व्यक्तित्व का प्रदर्शन आदि विशेषताओं को तुलसी साहित्य से उद्घाटित किया है। और तुलसी को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक साहित्यकार मानते हुए उनके साहित्य में समाधानों की खोज़ की है। तथा उनकी भक्ति में नैतिकता और सामाजिकता का समन्वय देखा है।

डॉ. शर्मा तुलसी साहित्य की कलात्मक विशेषताओं को उभारते हुए उनके साहित्य में अवधी भाषा के ग्रामीण प्रयोगों को रीति-कालीन साहित्य परम्परा से तुलना कर तुलसी की भाषा, छन्द और अलंकार

सम्बन्धी नीति को क्रांतिकारी बताते हैं। अर्थात उन्होंने तुलसी की साहित्यिक विशेषताओं की परवर्ती साहित्य की अपेक्षा क्रांतिकारी माना है। और तुलसी साहित्य में मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के संदर्भ में अपूर्व दृष्टि और मान्यताओं को उद्घाटित किया है। उनके अनुसार जहाँ सभी भक्त कवि काम,क्रोध, मद, लोभ की जड़ काटने के लिये लड़ते रहे है वहीं तुलसीदास उन्हें मर्यादित करने के लिए संघर्ष करते रहे हैं। अर्थात तुलसीदास नैतिक मूल्यों को मर्यादा में बाँधकर चलते हैं। डॉ. शर्मा तुलसी की भावात्मक अभिव्यंजना और दृष्टि को अन्य भक्त कवियों से पृथक रूप में देखते हुए उनके साहित्य में मानवीय भावों की सहज अभिव्यक्ति की वाल्मीकि रामायण की तरह बताया है। तथा इसकी पुष्टि हेतु विभिन्न संदर्भों को उभारकर संसार त्यागियों के विपरीत तुलसी के आदर्श-पात्रों द्वारा सांसारिक कार्यों में सम्मिलित होकर समाज की मर्यादा को स्थापित करने की बात कही है। तथा राम और सीता के प्रथम मिलन में काम और लोभ दोनों की मर्यादा संतुलित रूप में उभरने, रावण में मद की अतिशयता, परशुराम का बल,मद आदि प्रसंगों में मानवीय भावों की सहज अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को उजागर किया है। और उन्होंने तुलसीदास द्वारा व्यर्थ का पाण्डित्य प्रदर्शन करने वाले संतों का खण्डन कर सच्चे ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने की प्रवृत्ति को महत्व दिया है। मानस में परशुराम को क्रोध का अवतार बनाकर उनके क्रोध से हास्य रस की सृष्टि करने और लक्ष्मण के स्वाभाविक और मर्यादित क्रोध से तुलना करने की दृष्टि को भी उभारा है। डॉ. शर्मा का कहना है कि तुलसीदास ने जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की है वे जनता का मनोबल दृढ़ करने वाले और उसे संघर्ष के मार्ग पर आगे बढ़ाने वाले रहे हैं। क्योंकि तुलसीदास ने सांसारिक जीवन को मिथ्या मानकर

वैराग्य और योगदर्शन को महत्व नहीं दिया बल्कि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की मनुष्य के सांसारिक जीवन में व्याप्ति स्वीकार कर नैतिक मूल्यों की स्थापना कर लोक-संघर्ष का समर्थन किया है। उनके अनुसार कलिकाल और काकभुशुण्डि के प्रतीकों के अलावा कवितावली और विनयपत्रिका में तुलसी द्वारा व्यक्त अपने कष्टों के वर्णन से लोक-दशा का पता चलता है। और उन्होंने गोस्वामी जी द्वारा दरिद्रता को रावण मानकर उसके शासन वर्ग द्वारा सम्पूर्ण समाज पीड़ित होने की बात कहने के प्रसंग को महत्व दिया है। साथ ही वे तुलसी द्वारा न्याय और समता की व्यवस्था का आदर्श जनता के सम्मुख रखकर लोक-संघर्ष की प्रेरणा देने और सुख तथा समृद्धि की व्याख्या करने की अवधारणा या उद्देश्य को उजागर करते हैं।

डॉ. शर्मा तुलसी को एक ऐसा भक्त मानते हैं जिसने अपने युग की साधारण जनता के लिए ज्ञान मार्ग को कठिन समझकर भक्ति का सरल मार्ग प्रशस्त किया है। किंतु तुलसी की भक्ति का दृढ़ आधार उनका ज्ञान रहा है। उनकी दार्शनिक दृष्टि की प्रमुख विशेषता उनकी जीवन में आस्था और जीवन को सुखी और सार्थक बनाने वाली लोकोन्मुखी प्रवृत्ति को माना है। क्योंकि तुलसी ने जीवन से विमुख होकर संसार को क्षणभंगुर मान वैरागियों की तरह मृत्यु के गीत नहीं गाये बल्कि सांसारिक जीवन में ही समस्त बन्धनों से मुक्त होने की बात कहते हैं। वे लोक का मोह और परलोक की चिंता से मुक्त होकर सुख की नींद करने वाले भक्त रहे हैं। डॉ. शर्मा ने तुलसी को विशुद्ध निर्गुणवादी या सगुणवादी नहीं माना बल्कि ब्रह्म जगत् और जीव के प्रति तुलसी के विचारों में तारतम्यता देखी है।

उन्होंने तुलसी के काव्य में सांसारिक मनुष्य के कष्टों का कारण दरिद्रता को मान कर मानस, विनय पत्रिका, कवितावली में वर्णित दरिद्रता और कलिकाल के वर्णन को उभारा है। और तुलसी की भक्ति का सामाजिक उत्पीड़न से घनिष्ठ सम्बन्ध दर्शाया है। वे तुलसी को हिन्दी का ऐसा पहला कवि बताते हैं जिनकी रचनाओं में कवि का व्यक्तित्व उभर कर आया है। तुलसी के व्यक्तित्व का एक पक्ष उनका दैन्य, दूसरा पक्ष उनका गर्व और आत्म-सम्मान की भावना को मानते हुए उनमें साहित्य-रचना के सौन्दर्य का ज्ञान देखा है। डॉ. शर्मा तुलसी के युगान्तरकारी महत्व को उजागर करते हुए लिखते हैं कि "वे हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में विख्यात हैं और अपनी रचना रामचरित मानस के द्वारा उन्होंने हिन्दी को संस्कृत के समकक्ष महत्व प्रदान किया।"[1] उन्होंने तुलसी की भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में हृदय को विगलित करने वाली करुणा के स्त्रोतों को पाया है और उन्हें अपने दुख-सुख की बातों का कवित्व-पूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने वाला बेजोड़ कवि बताया है। तथा उनके साहित्य में व्याप्त गेयता, आत्मविभोर तल्लीनता, मार्मिक आत्म-निवेदन को अन्यत्र दुर्लभ माना है।

डॉ. शर्मा तुलसी की मानवीय सहानुभूति को उनकी भक्ति का अभिन्न अंग स्वीकार करते हुए राम, लक्ष्मण, सीता, भरत आदि के चरित्र में भारतीय जनता की शूरता, धैर्य, त्याग, स्नेह आदि गुणों की उदात्त अभिव्यंजना स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार तुलसी की करुणा भरत और कौशल्या के चित्रण में और उनकी मानवीय सहानुभूति निषाद, शबरी तथा ग्राम-वधुओं में दिखाई देती है।[2] तुलसी के साहित्य की जन-पक्षधरता को

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 69
2. वही, पृ. 70

उभारते हुए उन्हें अपने युग का सर्वहारा बताया है। तथा उनकी दुखानुभूति से उनकी भक्ति का साधारणीकरण माना है। क्योंकि उनके अनुसार "तुलसी की भक्ति सम्पत्ति-हीनों की सम्पत्ति रही है।" उन्होंने मध्यकालीन भक्ति में मानवतावाद की पराकाष्ठा को तुलसी की भक्ति में और तुलसी द्वारा भक्ति के माध्यम से भक्त को भगवान् से बड़ा बनाने के कार्य में देखा है। परन्तु वे वर्णाश्रम धर्म के समर्थक पुरोहितों से तुलसी को भी पीड़ित बताते हैं और उन्होंने तुलसी की राम-भक्ति का एक कारण जातिहीन व्यक्तियों को प्रभु द्वारा अपनाये जाने की प्रवृत्ति को व्यक्त कर तुलसी को कुलीनता और जातिवाद का समर्थक मानने की धारणा का खण्डन किया है। तुलसी के राम पर उच्च वर्णों के प्रतिपक्षपात अपनाने का दोष लगाते हुए डॉ. शर्मा ने तुलसी के रामराज्य को वर्णहीन नहीं माना है। किन्तु तुलसी की भक्ति को पुरोहितों का इज़ारा तोड़ने वाली बताते हैं। क्योंकि तुलसी ने समाज के इतरजनों का पक्ष लेकर राम के प्रेम के आधार पर उनकी समानता की घोषणा की थी। जिससे तुलसी की भक्ति का सामंत-विरोधी मूल्य व्यक्त होता है। तुलसी ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्रियों के लिए भी उपासना का द्वार खोला है। और डॉ. शर्मा ने ढोर-गँवार शूद्र पशु-नारी वाली पंक्ति को अप्रासंगिक ढंग से समुद्र के प्रसंग में आ जाने की बात कहते हुए इसे उन लोगों की करामात बताया है जो नारी पराधीन है और उसे स्वप्न में भी सुख नहीं है, मानने को तैयार नहीं थे।

उनके अनुसार तुलसी ने अपने साहित्य के सर्व-श्रेष्ठ नायक राम द्वारा एक पत्नी-व्रत का पालन करवाकर परिस्थितियों पर क्षोभ व्यक्त करते हुए आदर्श समाज का स्वप्न देखा है। और सामंती समाज की रूढ़ि को तोड़ते हुए राम और सीता में विवाह से पूर्व प्रेम की उत्पत्ति को दर्शाकर

मर्म कवि हृदय का परिचय दिया है। तुलसी को भक्त होने के साथ-साथ प्रेम और सौन्दर्य का कवि मानते हुए उनके द्वारा वर्णित विवाह मण्डप में सीता की तन्मयता का सजीव और सूक्ष्म चित्रण के संदर्भ को अतुलनीय बताया है। क्योंकि तुलसी ने बरवे छन्दों में अवध के ग्राम-गीतों की मिठास डालकर जन-साधारण के सौन्दर्य-बोध की सुकुमार व्यंजना की है। वे तुलसी का योगवादियों के साथ विरोध बताते हुए भी निर्गुणवादियों से एक सीमा तक कोई अन्तर नहीं मानते हैं। क्योंकि तुलसी नाम और रूप को ब्रह्म की दो उपाधियाँ स्वीकारते हैं। और उनकी स्थापनायें भाववादी दर्शन के प्रतिकूल रही हैं। वे तुलसी की रचनाओं में माया की चर्चा और बहुदेवोवाद के चित्रण के आधार पर तुलसी की दृष्टि को संसार को मिथ्या मानने और देवी-देवताओं के अस्तित्व में आस्था रखने वाली मानना अनुचित बताते हैं। उनके अनुसार तुलसी का उद्देश्य विभिन्न मतावलम्बियों को राम की भक्ति के आधार पर एक करना रहा है। क्योंकि तुलसी के मानस में शैव, शाक्त और वैष्णव तीनों मतावलम्बियों को संतुष्ट करने वाली सामग्री का समायोजन मिलता है। तुलसी की दृष्टि उदारतावादी होने के साथ-साथ उनकी भक्ति मानवतावाद में डूबी हुई है। और उन्होंने प्राचीन महाकाव्यों की मानवतावादी परम्परा को अपने साहित्य में विकसित किया है। क्योंकि राम तुलसी की आशाओं के केन्द्र के अतिरिक्त मनुष्य के समस्त नैतिक गुणों का प्रतीक भी रहे हैं। डॉ. शर्मा तुलसी के राम को भारतीय जनता के नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाला चरित्र मानते हुए उनके चरित्र में पितृ-भक्ति, भातृ-प्रेम, मानवीय सहानुभूति, त्याग की भावना, निस्स्वार्थता, दलितों के प्रति प्रेम, न्याय की पक्षधरता, सहनशीलता, वीरता, पराक्रम, विनय आदि गुणों का समावेश देखते हैं और राम के चरित्र को आत्म-पीड़ा द्वारा निष्क्रिय प्रतिरोध का खण्डन करने वाला बताते हैं। मानस में व्यक्त वेदना को सामंती समाज के

मनुष्य की वास्तविक पीड़ा मानकर तुलसी के साहित्य में अन्यायियों, अत्याचारियों के प्रति व्यंग्य, दलितों और पीड़ितों, स्त्रियों और बालकों के प्रति सहानुभूति का भाव देखा है। तथा तुलसी को मानव आत्मा का एक कुशल शिल्पी सिद्ध किया है।

वे तुलसी की मानवीय सहानुभूति का आधार सामाजिक यथार्थ को मानते हुए सामाजिक संघर्ष में उनकी पक्षधरता जनता के प्रति स्वीकार करते हैं। तुलसी द्वारा जनता की दरिद्रता उसके क्लेशों का यथार्थवादी वर्णन करने, दुष्ट राजाओं की निन्दा करने और भारतीय जनता की आशाओं को मूर्त रूप देने की कल्पना करने की प्रवृत्ति को उजागर कर उनके स्वप्नों को श्रमिक जनता की धरोहर और मानव-प्रेम को उनकी कविता का स्त्रोत बताया है।

डॉ. शर्मा तुलसी की साहित्यिक अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए बताते हैं कि उनके लिए साहित्य सामंतों के मनोरंजन का साधन, निरुद्देश्य प्रयोग या अलंकार शास्त्र के उदाहरणों की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि प्रेम और आनन्द को प्रवाहित करने वाला स्त्रोत तथा विचारों और चिन्तन का योग है। तुलसी की स्थापनाओं को साहित्य के प्रति सामंती विचार-धाराओं और पूँजीवादी साहित्य-सिद्धांतों से संघर्ष करने के लिए मार्ग प्रशस्त करने की शक्ति से परिपूर्ण हैं।

उनके अनुसार "तुलसी का ब्रह्मवाद, बहुदेवोपासना स्वान्तस्सुख: शान्तये रचना करना एक धार्मिक आवरण है जो सामंती व्यवस्था के भीतर

पुष्ट होने वाले जातीय आंदोलनों पर पड़ा हुआ दिखायी देता है।" वे उन्हें जातीय जन-साधारण के सर्व-श्रेष्ठ कवि मानते हुए उनकी कविता की आधारशिला जनता की एकता को बताते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की कलात्मक प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए डॉ. शर्मा कवितावली के आरम्भ में रचित सवैयों के सम्बन्ध में कहते हैं -- "इन मनोहर छन्दों में भावों की कुन्द जैसी शुभ्रता शब्दों की पल्लवों जैसी कोमलता, उपमाओं की चपला जैसी चमक, अनुप्रासों की मोतियों जैसी लड़ियाँ, ध्वनि की घुंघरारी लटों जैसी लपेट सवैया की कुण्डलों जैसी झूमती हुई गति, लला के बोलो जैसी कवि की सरलता, निछावर होने वाले प्राणों जैसी उसकी तन्मयता यह सिद्ध करती है कि मध्यकालीन भारत ने संस्कृति के कालजयी मूल्यवान तत्वों की रचना की है।"[1] ये तत्व सामंती वर्ग-सम्बन्ध को सांस्कृतिक रूप में प्रतिबिम्बित कर भक्त और भगवान् की कल्पना के सामाजिक आधार की ओर संकेत करते हैं। तुलसी समाज में व्याप्त जनता और शासक वर्ग के सम्बन्धों के आधार पर नारी की पराधीनता और पुरूषों के दासत्व, को उजागर कर दास-प्रथा का आधार भाग्यवाद को बताते हैं। क्योंकि तुलसी सामंती समाज के प्रतिक्रियावादी कवि रहे हैं। डॉ. शर्मा तुलसी के मानवतावाद का आधार सामाजिक सम्बन्धों से पैदा होने वाली पराधीनता और व्यथा के चित्रण और उसके विरूद्ध करूणा और सहानुभूति को प्रस्तुत करना मानते हैं। उनके अनुसार तुलसी ने जाति-प्रथा पर निर्भर सामंती वर्ग की कलई खोल दी है और घमण्डी ब्राह्मणों, दुष्ट-राजाओं की छल-बल की नीति को अपने चरित्रों के माध्यम से हास्यास्पद बनाया है। और उनके द्वारा स्त्री सहज अति पावन, आकर्षक रूप के अतिरिक्त पराधीनता और व्यथा से पीड़ित

---

1. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य -- पृ. 99

रूप में भी अभिव्यक्त हुई है। वे तुलसी द्वारा अपने साहित्य में नारी का पर पूजा का रूप और पराधीनता का बन्धन तोड़ने वाले रूप में एक साथ अभिव्यक्ति को मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अतुलनीय व्यंग्य बताते हैं।

3.5 मध्यकालीन भक्ति काव्य और गेयता

डॉ. रामविलास शर्मा मध्यकालीन हिन्दी कविता में गेयता का गुण सर्वाधिक मानते हुए उसे उसकी लोकप्रियता का कारण माना है। वे मध्यकालीन कवियों, विशेषकर संत कवियों द्वारा सांस्कृतिक जागरण हेतु भाषा अलंकारों के प्रयोग के माध्यम से अपनी वाणी द्वारा उत्पन्न की गई चेतना को चमत्कार-पूर्ण बताते हैं। उनके अनुसार तुलसी, रहीम, सूर, गिरधर आदि कवियों की उक्तियों में जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण वह साहित्य जन-सामान्य में अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। और इस लोकप्रियता का एक और कारण गीतों का वास्तविक तत्व धार्मिक न होकर सामाजिक होना स्वीकार किया है। तथा ब्रजभाषा के काव्य में अभूत-पूर्व गेयता उत्पन्न होने का कारण व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति माना है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "मध्यकालीन भारत संत कवियों की वाणी द्वारा एक महान् सांस्कृतिक चेतना में बँध गया था।" नानक, चण्डीदास, नरसी और तुलसी को जनपदों की एकता को दर्शाने वाला बताया है। वे ब्रजभाषा द्वारा मध्यकालीन विशाल साहित्य की रचना करने और उसका प्रभाव मध्यकाल से विकसित होता हुआ समस्त भारतीय नवीन भाषाओं पर

पड़ने की बात स्वीकार करते हैं। उन्होंने दरबारी कविता की एकरसता, रूढ़िप्रियता और निष्प्राणता का सबसे बड़ा कारण जातीयता के विकास में पृथक पुरानी परिपाटी पर समाज और साहित्य को चलाने का प्रयास माना है। और जायसी, मंझन, कुतुबन आदि प्रेममार्गिय संत कवियों द्वारा इसी परिपाटी को तोड़ने का प्रयास करते हुए पाया है।

इसके अलावा मध्यकालीन साहित्यकारों द्वारा उत्पन्न की गई जातीय चेतना और साहित्य में गेयता को विश्लेषित करते हुए तुलसी में अपनी दृष्टि से भाषा का भावी विकास देखा है और नवीन जातीयता तथा नयी भाषा की चेतना के अभिव्यक्त सुन्दर रूपों को उभारा है। डॉ. शर्मा मानस में गेयता का गुण देखते हुए तुलसी में कविता के सहज प्रवाह की समझ, काव्य-सृष्टि में स्वाभाविक उद्रेक, मानसिक संतुलन और उल्लास, चाटुकार कवियों की निन्दा, आनन्द, प्रेम की उमगती हुई काव्य सरिता आदि विशेषताओं को देखते हैं। और उनके साहित्य में गेयता का आधार अवध की सुन्दर प्रकृति, देशज शब्द, ग्रामीण आचार-विचार की अभिव्यक्ति में और कविता के सहज प्रवाहमयता में माना है। तुलसी के काव्य में प्रबन्ध निर्माण, चरित्र-चित्रण आदि होने पर भी गेयता की प्रधानता देखी गई है। और इस गेयता का आधार मानवीय करुणा और सहानुभूति को माना है। गेयता का छन्दों के प्रयोग पर प्रभाव होने के साथ-साथ दोहा और चौपाइयों में स्वरों का उतार-चढ़ाव तथा स्वर और अलंकारों का अद्भुत प्रयोग मिलता है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "मध्यकालीन कवियों में गोस्वामी तुलसीदास ही ऐसे कवि हैं जिनका व्यक्तित्व कविता में उभरकर नहीं आता बल्कि उस पर छा जाता है तथा तुलसी दास का वह व्यक्तित्व जिसमें व्यंग्य और हास्य-प्रियता के साथ अथाह करुणा और सहानुभूति है। उनकी गेयता का अटूट स्त्रोत है। उसी स्वांत: से मध्यकालीन बन्धनों में जकड़े हुए मनुष्य ने अपनी अभिव्यक्ति का एक नया सन्देश पाया था।"

तुलसीदास के साहित्य में गेयता के स्त्रोत की खोज के पश्चात डॉ. शर्मा मध्यकालीन कवियों में गेयता के पदों और गीतों की रचना करने वालों में सूरदास को अद्वितीय बताते हैं। वे सूरदास के व्यक्तित्व की छाप तन्मयता में स्वीकारते हुए उसकी खोज यशोदा और गोपियों के रूप में ढूँढ़ते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार "सूरदास की गीतात्मकता साधारण-जीवन के सामान्य शब्दों में प्रकट हुई है। और सूरदास की भाषा का आधार बोल-चाल की ब्रजभाषा की अपूर्व व्यंजना शक्ति का समायोजन और सहज स्वाभाविक शब्दावली का प्रयोग रहा है। सूरदास के साहित्य में व्याप्त नाटकीयता और गेयता का अद्भुत सम्मिश्रण अन्यत्र दुर्लभ माना है। और जीवन की विषमता की बोधगम्यता, पराधीन नारी से सहानुभूति आदि को सूर की तल्लीनता और उनकी मर्मस्पर्शिता का रहस्य स्वीकार किया है।

डॉ. शर्मा मध्यकालीन निषेधों के प्रति नारी का प्रबल विद्रोह मीरा के पदों में देखते हैं। और मीरा के पदों में नाटकीयता, नैतिकता के बन्धनों से उत्पन्न होने वाली वेदना का आभास और गेयता के गुण का समायोजन स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार मध्यकालीन भारत में आलम

रसखान, रहीम आदि मुसलमान कवियों का प्रेम कविता की परम्परा से अटूट सम्बन्ध रहा है। और इन गायकों के प्रतीकों में भिन्नता होने पर भी प्रेम की भूमि, उत्सुकता और भाव-भूमि में एकता दिखाई देती है। उनकी जीवटता या सच्ची मनुष्यता को हिन्दू-मुसलमानों में अटूट सांस्कृतिक भाई-चारा स्थापित करने वाला बताया है। उन्होंने जहाँ कबीर में जाति प्रथा और धार्मिक भेद-भाव का विरोधी देखा वहीं सूर और रसखान में सामाजिक निषेध के परे प्रेम की प्रतिष्ठा का मार्ग पाया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "मध्यकालीन हिन्दी कविता एक विशाल सागर है जिसकी सबसे बड़ी तरंगे संत कवियों की बानी रही है। और हिन्दी भाषा के उस स्वर्ण-युग में इन कवियों द्वारा प्रेम और सहानुभूति की स्थापना कर सामाजिक बन्धनों से मनुष्य की मुक्ति का प्रयास किया गया है। और यही उनकी गेयता का सबसे बड़ा आधार और लोकप्रियता का कारण रहा है।

3.6 संत-काव्य की विद्रोही भूमिका

डॉ. शर्मा संतों को दरबारी कवियों के विपरीत लक्षण-ग्रंथों, नायिका-भेद, अलंकारवाद का रास्ता छोड़कर मनुष्य की व्यापक और सहज भावनाओं का चित्रण करने वाले बताया है. संतों के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उनके द्वारा काम-क्रोध, मद,लोभ आदि को मनुष्य का शत्रु मानने, योग-ध्यान के पालन का विरोध करने आदि प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया है। डॉ. शर्मा के अनुसार संत साहित्य का सामाजिक आधार जुलाहों,

कारीगरों, किसानों और व्यापारियों का भौतिक जीवन रहा है। इसी कारण उन्होंने संत-साहित्य को देश की विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न धारा और सार्वदेशिक विराट सांस्कृतिक आंदोलन माना है। और संत साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध सामंती शक्ति का ह्रास और सामंती ढाँचे को कमजोर करने वाली परिस्थितियों से बताया है। उन का कहना है कि जिस समय भारतीय सामंतवाद को व्यापारिक शक्तियाँ समाप्त कर रही थी उसी समय सूर और तुलसी ने, प्रेममार्गी सूफियों ने लाखों मनुष्यों को उनके ग्रामीण और जनपदीय अन्ध-विश्वासों से अलग, नये सूत्रों में बाँधना शुरू किया।[1] संतों की भाषा में अनेक बोलियों के शब्दों के प्रयोग का कारण उनकी भ्रमण प्रवृत्ति में खोज़ा गया।

उनके अनुसार संतों का लोक-धर्म सामंती व्यवस्था को कमजोर करता है क्योंकि सामंती व्यवस्था में धरती पर सामंतों का अधिकार या तो धर्म पर उन्हीं के समर्थक पुरोहितों का। सन्तों ने धर्म पर से पुरोहितों का यह इजारा तोड़ा।[2] परन्तु वर्ग-युक्त समाज में बहुधा सामाजिक संघर्ष धार्मिक रूप ले लेता है। और सामंतों के खिलाफ जनता के संघर्ष ने धार्मिक ठेकेदारी के विरुद्ध संघर्ष का रूप लिया था। इसी कारण किसी आंदोलन के धार्मिक रूप को देखकर उसकी भीतरी ऐतिहासिक विषय-वस्तु को भूलना अनुचित बताते हैं। उन्होंने संत-कवियों में सुसंगत दृष्टिकोण का अभाव और अनेक असंगतियों की व्याप्ति स्वीकार की है। और मध्यकालीन साहित्य पर भाग्यवाद, मायावाद, निष्क्रियता आदि का प्रभाव उसके ऐतिहासिक कारणों से माना है। तथा संत-साहित्य के लोक-जीवन और अलौकिक-जीवन के उपेक्षित पक्षों को उजागर

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 47
2. वही, पृ. 47

किया है। वे बौद्ध और वेदान्ती दार्शनिकों द्वारा संसार को मिथ्या और दु:ख का कारण मानने की अवधारणा की अपेक्षा संत-साहित्य में संसार त्याग की प्रवृत्ति, उससे विमुखता, मनुष्य से दूर ईश्वर की खोज़ करने वाले महात्माओं पर व्यंग्य करने आदि संदर्भों की अभिव्यक्ति को विशेष महत्व देते हैं। और साकार ब्रह्म की उपासना के बहाने संत-कवियों द्वारा मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करना देश की संस्कृति के महत्व का सूचक बताया है।

डॉ. शर्मा संत साहित्य में मानव-मूल्यों की खोज़ करते हुए संत साहित्य को भारतीय जनता के प्रेम, घृणा, आशाओं और वेदना का दर्पण मानते हैं और सूर के साहित्य के अनुपम सौन्दर्य के महत्व को उभारते हुए अणुबम के विनाशकारी युग में सूर द्वारा कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करना ध्वंस और विनाश के विरुद्ध मानव को सजग करने वाली चुनौती बताया है। उनके अनुसार सामंती गायकों ने जहाँ नायिकाओं के नख-शिख और हाव-भाव के वर्णन से अपने अन्नदाताओं की निम्न वासनाओं को ही उभारा था वहाँ सूरदास ने साहित्य में यशोदा और कृष्ण के नवीन और लोकप्रिय पात्रों की अवतारणा की तथा जनता के श्रेष्ठ संस्कारों को निखारा है। तथा सूर द्वारा राधा और गोपियों के प्रेम में भारतीय नारी के हृदय में छिपी हुई प्रेम की प्यास की अभिव्यक्ति माना है। क्योंकि सामंती समाज में जाति-प्रथा, कुण्डली-चक्र, दहेज और सम्पत्ति के अनेक बन्धन-बाधायें होने पर भी निर्धन जनता में राधा और कृष्ण का-सा प्रेम लौकिक-जीवन में, अपने लौकिक रूप में विद्यमान रहा है। सूर, मीरा, चण्डीदास आदि कवियों द्वारा इसी वास्तविक प्रेम के गुण, प्रेम की लगन, विरह की व्यथा, सामाजिक बन्धनों की अवहेलना, राधा और कृष्ण के प्रेम में चित्रित की गई है।

3.7 भक्ति आंदोलन : जातीय उत्थान का प्रतीक

डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात तुर्कों के आक्रमण से पूर्व दक्षिण से मानते हुए भारत के अतिरिक्त यूरूपिय देशों में भी इसका रूप देखते हैं। और उन्होंने विभिन्न देशों में भक्ति-आंदोलन की उत्पत्ति का कारण समाज व्यवस्था की सामान्य परिस्थितियों की समानता को स्वीकार किया। उनके अनुसार "भारतीय समाज व्यवस्था में भूमिपतियों के प्रधानता होने के साथ-साथ धर्म, संस्कृति और शिक्षा आदि का कार्य पुरोहित वर्ग द्वारा हस्तगत कर समाज व्यवस्था में धर्म और संस्कृति को कर्मकाण्ड से बाँधकर श्रमिक जनता को नरक का भय दिखाने वाली परिस्थिति में भक्ति-आंदोलन का जन्म हुआ है। इसका नेतृत्व भारतीय भाषाओं और यूरोपीय भाषाओं का प्रयोग करने वाली जनता के द्वारा संस्कृत और लैटिन के विरोध में किया है। इस आंदोलन से धर्म और संस्कृति पर से पुरोहित वर्ग का एकाधिकार टूटा और इस आंदोलन में कर्म के बदले प्रेम को महत्व दिया गया है। जाति और जन्म के भेद के बिना ईश्वर की भक्ति और धार्मिक-साधना सबके लिए सुलभ हुई है। डॉ. शर्मा के अनुसार "भक्ति-आंदोलन मध्यकालीन समाज-व्यवस्था में जनता का सामंत विरोधी सांस्कृतिक आंदोलन था।"[1] उन्होंने संतों, सूफियों और भक्तों को एक ही आंदोलन का अंग बताते हुए उनमें प्रेम-तत्व की समानता, धार्मिक रूढ़िवादिता और कट्टरता का विरोध और सेवा-भाव देखा है। भक्ति-आंदोलन अपने व्यापक रूप में सामंत विरोधी रहा है। उनके अनुसार भक्ति-आंदोलन का सर्वत्र संबंध लोक-भाषाओं से रहा है। तथा भक्ति-आंदोलन सामंती समाज की विषय

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 69

परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था इसलिए उसमें जनता की वास्तविक दशा का चित्रण मिलता है, भक्त कवियों की करुण पुकार तत्कालीन जनता की ही करुण पुकार रही है।[1] इसी कारण उनका मानना है कि भक्ति-आन्दोलन ऐसा अखिल भारतीय आंदोलन रहा जो दूसरी शती से आरंभ होकर सर्वव्यापी बन गया था और भक्त-कवियों ने विभिन्न प्रदेशों की राष्ट्रीय एकता को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया है। और संभवत: तुलसीदास के युग में विभिन्न प्रदेशों के साहित्यकार एक-दूसरे की विचार-धाराओं से जितना परिचित थे उतना आज नहीं है। डॉ. शर्मा ने तुलसीदास को भारत का श्रेष्ठ भक्त-कवि, भक्ति-आंदोलन का निर्माता और उसी भक्ति आंदोलन की महान् उपलब्धि माना है।[2] तुलसी के साहित्य का सामाजिक महत्व दर्शाते हुए भक्ति-आंदोलन द्वारा स्थापित भावात्मक एकता में फैलाव और गहराई को देखा है तथा इस एकता को प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से स्थापित होने वाली बताया है। वे भक्ति-आंदोलन को अखिल भारतीय आंदोलन के साथ-साथ प्रदेशगत जातीय आंदोलन भी मानते हैं। और उसमें देश और प्रदेश, राष्ट्र और जाति की सांस्कृतिक धाराओं का एक साथ विकास देखा है तथा इसे भक्ति-आंदोलन की व्यापकता और सामर्थ्य का रहस्य बताया है। उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म और जाति प्रथा की तीव्र आलोचना आधुनिक साहित्य की अपेक्षा भक्ति-साहित्य में अधिक माना है। उन्होंने भक्ति-आंदोलन को राष्ट्रीय एकता स्थापित करने वाला जातीय और अखिल भारतीय आंदोलन मानते हुए भक्तिकालीन साहित्यकारों के साहित्य में भक्त और संत, वेद-पुराण और कुरान, प्रेम-ज्ञान, वैराग्य, निर्गुण-सगुण आदि के संदर्भों में कुछ भेद होने पर भी उन्हें एक व्यापक आंदोलन का अंग दर्शाया है।

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 69
2. वही, पृ. 90

डॉ. शर्मा भक्त-साहित्यकारों के रहस्यवाद को लोक-धर्म से जोड़कर ज्ञान-नेत्र खुलने से उनका हृदय आनन्द विह्वल होने और आनन्द को मानव-प्रेम से जोड़ने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं। और उन्होंने प्रेम की भावात्मक एकता द्वारा कबीर, सूर, जायसी और तुलसी को एक सामान्य भाव-भूमि पर खड़ा कर दिया है। इन कवियों में एक सामान्य दार्शनिक भूमि और साहित्य की सामाजिक विषय-वस्तु की समानता भी देखी है। डॉ. शर्मा द्वारा तुलसी को इस आंदोलन का श्रेष्ठ कवि मानने का कारण यह है कि तुलसी ने निर्गुण-पंथियों और सगुण मतावलम्बियों को, वैष्णव और शाक्तों को एक करके भक्ति के आधार पर जन-साधारण के लिए धर्म को सरल और सुलभ बना पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़ों को हिला दिया था।

डॉ. शर्मा भक्ति की उत्पत्ति मुसलमानों की पराधीनता से उत्पन्न निराशा से मानने की धारणा का खण्डन करते हुए गुप्त सम्राटों के युग में वैष्णव मत का प्रचार होना और तमिलनाडु भक्ति-आंदोलन का केन्द्र रहने का तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि "भक्ति-आंदोलन विशुद्ध देशज आंदोलन है वह सामंती समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था वह मूलतः इस सामंती समाज-व्यवस्था से विद्रोह का साहित्य है।[1] उन्होंने भक्ति-आंदोलन से सम्बद्ध साहित्य का विश्लेषण करते हुए तुलसी के साहित्य में निष्क्रियता का अभाव और उनके राम में उन्हीं की मानवीय छवि देखी है। उनके अनुसार "तुलसी ने जैसे समस्त संसार को सियाराममय देखा था वैसे ही राम चरित मानस के हर पात्र में तुलसी के मानस का कुछ न कुछ अंश विद्यमान है।"[2] इसके अलावा उन्होंने भक्ति-आंदोलन और तुलसीदास का

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- डॉ. शर्मा -- पृ. 93-94
2. वही, पृ. 94

भारतीय नवजागरण के संदर्भ में महत्व उजागर करते हुए उनकी सांस्कृतिकधारा का विकास रवीन्द्रनाथ और निराला के साहित्य में देखा है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने जातीय अवधारणा की पुष्टि करने वाले विचारों के परिप्रेक्ष में भक्ति-आंदोलन के अखिल भारतीय और जातीय स्वरूप को स्पष्ट किया है। और उसे भारतीय नवजागरण का स्त्रोत मानकर भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन के सही रूप और पृष्ठभूमि को उजागर किया है।

3.8 रीतिकालीन साहित्य : सामंती पतन का द्योतक

डॉ. शर्मा भक्ति-साहित्य की समीक्षा के द्वारा उसके सही रूप को उजागर करने के साथ-साथ उसकी विरोधी काव्य-धारा अर्थात् रीति-काव्य परम्परा को हिन्दी की लोक-जागरणवादी धारा की विरोधी प्रवृत्ति मानते हुए उसका विकास वाल्मीकि के समय से उसके विरुद्ध चलने वाली चमत्कारवादी काव्य-धारा के अंग रूप में होना स्वीकार करते हैं। इसी कारण उन्होंने रीति काव्य परम्परा का प्रवृत्ति-मूलक अध्ययन करते हुए उस परम्परा को हिन्दी भाषी प्रदेश के सामंत वर्ग की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा मानकर इस सामंत-वर्ग की व्याप्ति ब्रजभाषा काव्य के अभ्युदय से पूर्व की माना है। और इस काव्य परम्परा को संस्कृत से भी प्राचीन बताते हुए केशवदास आदि आचार्यों द्वारा संस्कृत से अपने सिद्धांत, भाव, चमत्कार वर्णन-शैली आदि ग्रहण करने के प्रसंगों को उभारा है। डॉ. शर्मा ने ब्रज काव्य परम्परा के अभ्युदय के समय सामंत-वर्ग द्वारा जातीय विकास के मार्ग

में बाधक बनने और संस्कृत काव्य के उत्कर्ष काल की अपेक्षा ब्रजभाषा काव्य परम्परा में सामंत वर्ग का अधिक पतन देखा है। तथा भारतेन्दु युग के नवीन सूत्रपात को इस परम्परा का विरोधी बताया। और प्रमाणस्वरूप बालमुकुन्द गुप्त द्वारा खड़ी-बोली के लिए संघर्ष करते हुए ब्रजभाषा काव्य की पतनशील परम्परा का विरोध करने की दृष्टि को उभारा है।

डॉ. शर्मा रीतिकाल के विरोध को आचार्य शुक्ल की आलोचना की मुख्य प्रवृत्ति और छायावादी कवि निराला के लेखों का आधार बताते हैं। और इस काव्य परम्परा के विरोध में ही हिन्दी आलोचना की प्रगतिशीलधारा का विकास हुआ है। परन्तु भारतेन्दु युगीन काव्य परम्परा पर इसका काफ़ी प्रभाव दिखाई देता है। परन्तु डॉ. शर्मा मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, दिनकर, सुमन, नरेन्द्र आदि की रचनाओं द्वारा विकसित काव्य परम्परा को इसकी विरोधी बताते हैं। परन्तु यह रीति-काव्य परम्परा पूर्णतः समाप्त नहीं हुई बल्कि इसका विकास मनोविज्ञान और काव्य-कौशल की दुहाई देने वाले साहित्यकारों के साहित्य में माना है।

डॉ. शर्मा ने भक्ति-काव्य परम्परा को दरबारी काव्य रुचि की विरोधी बताया है। और रीति-काव्य की परम्परा को शाश्वत साहित्य की परम्परा नहीं बल्कि विशेष परिस्थितियों में प्रफुल्लित धारा मानते हुए सामंती व्यवस्था के साथ उसका विनाश अवश्यम्भावी बताते हैं। तथा इस रीतिकाव्य परम्परा के विरोध में कार्य करने वाले कवि और आलोचकों को नयी जनवादी चेतना के विकास में सहायक, संस्कृति को सामंतीगर्त से

उभारने वाले तथा नये जातीय स्तर का विकास करने वाले प्रगतिशील साहित्यकार मानते हैं। डॉ. शर्मा रीति ग्रंथकारों को रीतिवादी नहीं बल्कि चमत्कारवादी बताते हैं। तथा दरबारी कवियों द्वारा संस्कृत से चमत्कारवादी धारा ग्रहण करने के प्रसंगों को उभारा है।

डॉ. शर्मा ने आधुनिक समीक्षकों द्वारा समीक्षित नायिका भेदी-काव्य-साहित्य का विश्लेषण करते हुए अलंकारों और नायिकाओं के विभाजन और विवेचन में प्रयुक्त तर्क-पद्धति में तत्व-ग्रहण कम और बौद्धिक कलाबाजी की अधिकता को प्रकट किया है। तथा सामंती समाज के पुरोहितों का शास्त्रार्थ, तर्क-शैली, चमत्कार-प्रदर्शन की लक्षण-ग्रंथों में व्याप्ति और मानव-जीवन के व्यापक दर्शन और तत्व-ग्रहण की कमी को उभारा है। और संस्कृत-रीति-ग्रंथों की अपेक्षा हिन्दी अलंकार ग्रंथों में मौलिकता का अभाव देखा है। परन्तु ब्रजभाषा की रीति-काव्य-परम्परा के सैद्धांतिक पक्ष को कमजोर तथा विशेष वर्ग-व्यवस्था के परिप्रेक्ष से सम्बद्ध बताया है। डॉ. शर्मा नायिका-भेदी साहित्य के सामाजिक मूल्य का विश्लेषण करते हुए रीतिकाव्य के सैद्धांतिक पक्ष की कमज़ोरी पहचान कर उसके नये समर्थकों द्वारा मनोविज्ञान को नये सैद्धांतिक आधार रूप में खोजने के प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. शर्मा के अनुसार कवि और उनके आश्रय-दाताओं द्वारा नारी को नायिका से अधिक कुछ न समझने की दृष्टि को मनोवैज्ञानिक सच्चाई के रूप में उनकी कृतियों में स्पष्ट देखा जा सकता है। तथा रीति-काव्य के आचार्यों के लिए करुणा का महत्व न होने और साहित्यकारों की जनता के दुख-दर्द से उदासीन रहकर नायिकाओं की गिनती करने की प्रवृत्ति को

उभारा है। रीति-काव्य रचना की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं -- अनेक अच्छे कवि, युग की परिस्थितियों से बहुत कुछ मजबूर होकर, सामंती अभिरुचि के अनुकूल कविताएँ लिखते रहे थे पर इनमें सभी कवि घटिया नहीं है न एक ही कवि की सभी रचनाएँ घटिया है।[1] अपनी इस अवधारणा के अनुरूप डॉ. शर्मा केशवदास के अनेक छन्दों में जहाँ कृत्रिमता है वहाँ राम प्रवीण पर लिखे हुए दोहों में केशव की तन्मयता को देखते हुए उन्हें श्रेष्ठ भावुक कवियों की पाँति में स्थान देना उचित मानते हैं। और केशव की रामचंद्रिका के अनेक छन्दोंमें यथेष्ट ओज की व्याप्ति को भी उभारते हैं। परन्तु मतिराम की अनेक रचनाओं में एक रोमांटिक कवि की सहृदयता को देखा है किन्तु देव के अनेक छन्दों में चमत्कार-प्रदर्शन के अलावा सजीव चित्रमयता को उद्घाटित किया है।

डॉ. शर्मा प्रकृति सम्बन्धी रीति-कवियों की अनेक रचनाओं में जीवन का उल्लास, त्यौहारों और उत्सवों के वर्णन में ग्राम-जीवन की झलक उक्ति चातुर्य से परिपूर्ण पंक्तियों, दोहे, कुण्डलियों आदि में लोक-संस्कृति की अभिव्यक्ति आदि विशेषताओं को प्रस्तुत करते हैं। और रीति-काव्य परम्परा के लोक-जागरण से सम्बद्ध कवियों की भाषा सरल, अस्पष्टता और दुरूहता के अभाव से परिपूर्ण मानी है। उन्होंने रीतिकालीन साहित्यकारों द्वारा किये गये शब्द-चयन को साहस और चतुराई का परिचय देने वाला बताया है। और छन्द रचना तथा शब्द-योजना में निराला की श्रेष्ठ पदावली का-सा लालित्य देखा है। परन्तु भूषण द्वारा अपने आश्रय-दाताओं के सम्बन्ध में लिखी गई कविता को जातीयता, वीरता तथा आत्म-

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 100

त्याग से प्रेरित होने के साथ-साथ उनके मूल में महती-प्रेरणा धन की भी माना है। और भूषण को अपने नायक की वीरता और दानशीलता से समान रूप से प्रभावित बताया है। डॉ. शर्मा के अनुसार भूषण ने अपने किसी भी नायक पर उसकी जीवन-घटनाओं के तारतम्य को ध्यान में रखते हुए कविता नहीं लिखी बल्कि एक या अधिक घटनाओं को लेकर सुन्दर मुक्तक की रचना की है। और घटनाओं की ओर संकेत-मात्र करके आगे बढ़ जाते है।"[1] भूषण की काव्य विशेषताओं के साथ-साथ उनकी कमियों को उजागर करते हुए डॉ. शर्मा ने घटना का सांगोपांग वर्णन न करने तथा घटनाओं का बार-बार दोहराने, प्रसंगों में नवीनता की अपेक्षा पुरानी रूढ़ियों की लकीर पिटने की बात कही है। और कुछ निश्चित अलंकार और बँधे वर्णन तथा विचारों की पुनरावृत्ति किये जाने, अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन होने से यथार्थ वर्णन में असत्यता का भ्रम उत्पन्न होता है। किंतु भूषण के काव्य में सच्ची वीर पूजा की भावना अनेक छन्दों में फूट पड़ने का भी महत्व स्वीकार किया है। डॉ. शर्मा के अनुसार भूषण के दोष उनके देश और काल के दोष रहे हैं और उनके गुण सार्व-देशिक तथा सर्वकालीन रहे हैं। और उनकी कविताओं में ओज-पूर्ण प्रवाहमयता, अतिशयोक्ति के समन्वय से प्रवाहित देखी गयी है। वीर रस के अतिरिक्त भूषण के साहित्य में व्यंग्यात्मकता, चमत्कार चित्रमयता आदि विशेषताओं का समायोजन स्वीकार किया है।

---

1. भाषा युग-बोध और कविता -- पृ. 42

3.9 आधुनिक कविता : नवीन चेतना की अभिव्यक्ति

डॉ. रामविलास शर्मा आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा के विकास को व्यक्त करने के क्रम में भारतेन्दु के पश्चात् की काव्य-धारा के अन्तर्गत आने वाले परिवर्तनों की तुलना रीतिकालीन साहित्य-धारा से करते हैं। उनके अनुसार "रीतिकालीन साहित्य की धाराओं के अनुरूप आधुनिक हिन्दी कविता में ग्राम्य और दुलारे दोहावली जैसी रचनाएँ एक साथ प्रस्तुत हुई है। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के पहले दशक में हिन्दी साहित्य में तीन धाराएँ स्वीकार की हैं जैसे -- रत्नाकर, मिश्रबन्धु और पद्म सिंह द्वारा प्रतिपादित रीतिवादी धारा, मैथिलीशरण गुप्त महावीर प्रसाद द्विवेदी, गोपालशरण सिंह आदि द्वारा विकसित सुधारवादी धारा और छायावादी धारा। पहली दोनों धाराओं में साम्राज्य-विरोधी चेतना अधिक प्रखर में छायावादी-धारा में दिखाई देती है।"[1] शर्मा जी ने भारतेन्दु की परम्परा का विकसित रूप मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती में देखा है। इस परम्परा में रचित प्रबन्ध कार्यों का छायावादियों पर भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है। परन्तु छायावाद के प्रभाव को विश्लेषित करते हुए गुप्त जी की रचनाओं के सम्बन्ध में उनका कहना है कि "जयद्रथवध छायावाद के विकास से पहले रचा गया है और साकेत पर छायावाद की छाया दिखाई देती है तथा उर्मिला की करुणा छायावादी-सी है। इसी कारण गुप्त जी की रचनाओं में अन्तर दिखाई देता है। और भारत-भारती को समस्या-पूर्ति का एक छोर मानते हैं। सुधारवादी काव्य-धारा के संबंध

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- द्वि. ख. पृ. 55।

सुधारवादी काव्य-धारा के सम्बन्ध में उनका कहना है कि "यह व्यक्तिवादी धारा नहीं है और न ही इसमें कवि-हृदय की व्यक्तिगत भावनाओं की प्रधानता रही है। और न ही कवि की भाव-धारा का केन्द्र स्वयं कवि रहा है बल्कि उसकी कविता का केन्द्र जनता रही है।" परन्तु छायावादी कविता ने इस परम्परा को बदल दिया है। सामाजिक परिस्थितियों के प्रति नवयुवक कवि का विद्रोह भी करूण रस में भीगकर निकलने लगा तथा सामाजिक परिस्थितियों एवं अहंकार के मेल से अतृप्त पिपासा का जन्म हुआ और यह अतृप्त पिपासा ही विश्व-वेदना बनकर आध्यात्मिक रूप में अभिव्यक्त हुई है। डॉ. शर्मा प्रसाद के आँसू काव्य को हिन्दी की वेदना-धारा का उद्गम मानते हैं। तथा आधुनिक हिन्दी कविता में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय देखते हुए गुप्त जी का "गुरुकुल" निराला की "समर में अमर कर प्राण" कविता, प्रसाद के बौद्धिकालीन नाटक आदि में विभिन्न संस्कृतियों का मिलन स्पष्ट होने की बात कहते हैं। बच्चन के गीत अत्यंत लोकप्रिय होने पर भी उसे एक पतनोन्मुख परम्परा के अंतिम गीत मानते हैं।

डॉ. शर्मा के अनुसार प्रसाद जी ने हिन्दी कविता में पुरानी भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित किया है तथा प्रसाद जी का व्यक्तित्व करूणा और प्रेम के संदेश में आँसूओं की वेदना से अधिक व्यक्त हुआ है परन्तु आँसू प्रसाद जी की अन्य रचनाओं से छोटी होते हुए भी उसमें वेदना की धारा उमड़ पड़ती है और नाटकों में प्रेम के सन्देश के साथ संघर्ष भी व्यक्त हुआ है। उन्होंने पंत की विश्व-बन्धुत्व की भावना में प्रसाद को साम्यता देखते हैं। तथा पंत द्वारा विश्व-मैत्री से पूर्ण एक सुन्दर संसार की कल्पना

करने और प्रगतिवाद से भी उनके काल्पनिक संसार के सौन्दर्य में कमी न आने की बात कही है। वे निराला को अद्वैतवादी होने पर भी पंत और प्रसाद से भी बढ़कर व्यक्तिवादी बताते हैं और परिमल की एक कविता में अद्वैत अहम के ही विकसित रूप में देखते हैं। निराला जी के इसी अहं का चित्रण राम की शक्ति-पूजा और तुलसीदास में मिलता है। तुलसीदास का मानसिक संघर्ष और विद्रोही व्यक्तित्व तथा राम के रूप को निराला के ही दो रूप स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. शर्मा का कहना है कि "यह छायावाद का अतिविकृत रूप है, जब व्यक्तिवादी कवि परिस्थितियों से हार कर अपने व्यक्तित्व को ही नष्ट कर लेना चाहता है।"[1]

प्रगतिशील कवियों में बहुत से वेदनावादी और छायावादी कवि रहे हैं। इसी कारण उनकी मानवीय करुणा सम्बन्धी कवितायें छायावादी वेदना का रूपान्तर बन गयी है। परन्तु प्रगतिशील कविता में छायावाद के आलम्बन तथा स्थायी संचारी भाव भी मिलते हैं। वे पंत द्वारा मार्क्स और गांधी पर रचित कविताओं को छायावादी बताते हैं।

डॉ. शर्मा ने छायावादी धारा से सम्बद्ध साहित्य को साम्राज्य-विरोधी चेतना के निखार का साहित्य कहा है। इतिहास के प्रति छायावादी दृष्टिकोण को राजनीतिक आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक क्रांति से भी प्रभावित मानते हुए निराला, प्रसाद और पंत के दृष्टिकोणों की भिन्नता को छायावाद के अंतर्विरोध का प्रमाण बताया है। डॉ. शर्मा के अनुसार छायावाद भारत में आमूल सामाजिक क्रांति की आकांक्षा का साहित्य है वह वर्णगत उत्पीड़न का विरोधी, शूद्र और नारी की समानता का

---

1. भाषा, युग-बोध और कविता -- पृ. 176

समर्थक, धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विध्वंसक साहित्य है। वे छायावाद को नए सामंत विरोधी मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा का साहित्य मानते हुए जाति-प्रथा और साम्प्रदायिक विद्वेष से विभाजित समाज में मानवीय एकता की पुकार का साहित्य बताते हैं। और उसे बाह्य जगत् के अंतर्विरोधों तथा मनुष्य के अन्तर्जगत के नए रहस्यों को उद्घाटित करने वाला साहित्य मानते हैं। उन्होंने रहस्यों को उद्घाटित करने वाला साहित्य मानते हैं। उन्होंने मनोवैज्ञानिक अन्वेषण की दृष्टि से छायावादी साहित्य को अत्यंत समृद्ध, निरन्तर एवं नवीन प्रयोगशीलता का साहित्य मानकर नये-नये काव्य रूप, नया छन्द-विधान, नई प्रबन्ध -पटुता, अनेक प्रकार की शैलियों का व्यवहार आदि को उद्घाटित किया है। वे छायावादी कवियों में व्यक्तिगत और वस्तुगत स्तर पर परस्परा विरोध तथा उनकी विचारधारा, भाव-बोध और कलात्मक क्षमता में विशेष अन्तर देखते हैं।

डॉ. शर्मा के अनुसार "छायावाद भारत के नव-पूँजीवादी अभ्युदय के साथ उत्पन्न हुआ, उसने सामंती परम्परा का विरोध कर साहित्यकारों में नये प्रकार और विकास की भावना को उत्पन्न किया है।"[1] वे छायावाद को सामंत-विरोधी बताते हुए उसे द्विवेदी युग के प्रति विद्रोह समझने की धारणा को गलत मानते हैं तथा छायावादियों की जनवादी विचारधारा के आधार पर उसे द्विवेदी-युग का विरोधी नहीं बल्कि अनुवर्ती दर्शाते हैं। उन्होंने छायावादी कवियों द्वारा स्वाधीनता आंदोलन का विजय-घोष सबसे पहले सुनने की बात कही है। वे छायावाद को विकासमान

---

1. प्रगति और परम्परा -- पृ. 73

आधुनिक भारतीय संस्कृति के अंतर्विरोधों का साहित्य बताते हुए इन अंतर्विरोधो का एक कारण परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व को मानते हैं। और छायावादी कवियों द्वारा शिक्षित मध्य-वर्ग के काव्य-बोध में परिवर्तन करने और अपने काव्य में प्रकृति और मानव के पार्थिव मांसल सौन्दर्य का नया उद्घाटन करने की प्रवृत्ति को उजागर करते हैं। तथा इसी आधार पर उन्होंने छायावादी काव्य को नये रीति-विरोधीगोचर सौन्दर्य का काव्य बताया है। और उसके मूर्ति-विधान को रूप-रस-गन्ध के संसार की इस नई पहचान का ही परिणाम माना है। उनके अनुसार छायावादी काव्य मनुष्य के नवीन उन्मुक्त भाव-लोक का साहित्य है। और दार्शनिक चिंतन की दृष्टि से यह युग तुलसीदास के बाद का सबसे समृद्ध युग रहा है। अर्थात डॉ. शर्मा ने छायावाद में सांसारिकता की ओर उन्मुख प्रबल भाव-धारा के साथ-साथ विचार-धारा की भी अभिव्यक्ति स्वीकार की है। और साथ ही छायावाद को रीतिमुक्त कल्पना का काव्य कहा है। जो मनुष्य की मानसिक क्षमताओं में कल्पना-शक्ति को महत्वपूर्ण स्थान देता है। इसी कारण छायावादियों की कल्पना अपार्थिव छायालोक में घूमने के साथ-साथ यथार्थ का घनीभूत अनुभव प्रस्तुत करती है।

डॉ. शर्मा छायावाद को आत्मगत अनुभूतियों का साहित्य मानते हुए उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के प्रति सजगता को पूर्वा पर काव्य से अधिक बताते हैं। उनके अनुसार छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह रहा है यही उसका मजबूत पहलू है परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्वावधान में हुआ था इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई थी।

उन्होंने छायावाद के वर्गीय आधार को स्पष्ट करते हुए छायावादी साहित्य में स्वतंत्रता आंदोलन में आने वाले परिवर्तनों की अभिव्यक्ति को उभारा है और उसमें सन् 30 के पश्चात् आने वाले परिवर्तनों पर सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव देखा है। डॉ. शर्मा छायावाद की पूर्ण अस्वीकृति का अर्थ भारतीय साहित्य की समूची विकासशील परम्परा की अस्वीकृति मानते हैं। और छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को उजागर करते हुए शेली, रवीन्द्रनाथ और निराला के युगों की परिस्थितियों में साम्यता देखते हैं। तथा विद्रोह और पलायन की असंगति को छायावाद के अन्य अंगों में स्वीकृति देते हैं। उनके अनुसार प्रकृति वर्णन में छायावादी कवि मध्यकालीन कवि कल्पना की परिधि से बाहर आकर प्रकृति से निकट सम्पर्क स्थापित करता है। तथा वह प्रकृति को मानवीय संदर्भ में देखता है और मानव-जीवन से उसका नया सम्बन्ध स्थापित करता है। दूसरी ओर वह प्रकृति को रहस्यमयी भी बना देता है जिससे वह अरूप होकर अपना अस्तित्व ही मिटा देती उस अरूप के बाहर और कुछ नहीं रह जाता, जीवन से पलायन करके वह प्रकृति की गोद में सुख की नींद सोना चाहता है।[1] इसके साथ ही उनका कहना है कि छायावादी कवि स्त्री-स्वाधीनता का समर्थक है, मध्यकालीन दासता का वह विरोध करता है, वह दो हृदयों के मिलन और विछोह के गीत गाता है, नारी को विलास व्यापार की पूँजी मात्र नहीं समझता।[2] यहाँ डॉ. शर्मा ने रीतिवादियों से छायावादियों के भाव-सौन्दर्य की भिन्नता को उजागर किया है। और उनके कला कौशल को उभारते हुए छायावादी कवियों द्वारा आत्म-निवेदन हेतु सुकोमल पदों

---

1. भाषा युग-बोध और कविता -- पृ. 180-181

2. वही, पृ. 181

वाले गीतों और उदात्त भावनाओं की व्यंजना के लिए छन्दों के नये-नये समन्वय प्रस्तुत करने की बात कहते हैं। उनके मुक्त-छन्द में नयी-गति, नयी-लय, नये-प्रवाह का परिचय मिलता है। और नये प्रतीकों का प्रयोग दुरूहता सहित किया गया है। उनके अनुसार छायावादी कविता में पराजय और पलायन की भावनायें, विद्रोह, विजय, मानव-मात्र के प्रति सहानुभूति के स्वर आदि प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। वे प्रसाद को यौवन और सौंदर्य के कवि होने पर भी उनमें वासना का अंत निराशा में कम होकर जीवन की कामना में अधिक होना स्वीकार करते हैं। और निराला के अद्वैतवाद में व्यक्तित्व की प्रधानता देखते हैं। उन्होंने व्यक्ति और समाज को संघर्ष को निराला की रचनाओं का प्रेरणा-स्त्रोत बताया है। किंतु पंत की पहली कविता में स्त्रैण भावना की अभिव्यक्ति स्वीकार करते हुए उनके व्यक्तिवाद को कल्पना-लोक की ओर ले जाने वाला मानते हैं। परन्तु महादेवी वर्मा को वेदना और रूदन की अनुपम कवयित्री बताते हुए उनकी वेदना में व्यक्ति की प्रधानता देखी है।

डॉ. शर्मा के अनुसार छायावादी कवियों के अलावा नये गीतकारों में अतृप्त वासना छाया-मात्र न रहकर स्थूल रूप में व्यंजित हुई है। नरेन्द्र शर्मा की रचनाओं में जीवन की ऊब और ईर्ष्या का भाव देखा है परन्तु बच्चन जी की मनोदशा को विकृत बताया है। क्योंकि बच्चन में ऊब और निराशा मृत्यु कामना में परिणत हो जाती है। इनके अतिरिक्त अतृप्त वासनाओं पर अंकुश न रख प्रलय मचाने वाले कवियों में सुधीन्द्र, अंचल आदि का उल्लेख किया है। वे प्रगतिशील कविता का प्रधान लक्ष्य व्यक्ति की करूणा को उजागर करना मानते हुए निराला की भिक्षुक कविता को इसका श्रेष्ठ उदाहरण बताते हैं।

3.10 प्रसाद-काव्य : लोक-कल्याण की कामना

डॉ. रामविलास शर्मा जयशंकर प्रसाद जी के विचारक पक्ष को विशेष महत्व देते हुए उनके दार्शनिक पक्ष को अत्यंत सुलझा हुआ बताते हैं। उनके साहित्य में बिखरे हुए दार्शनिक विचारों की सबसे बड़ी विशेषता कल्पना-लोक में विचरण का अभाव मानते हुए उनकी कामायनी को जगत की मंगल-कामना करने वाली दर्शाते हैं। उनके अनुसार प्रसाद जी का दार्शनिक दृष्टिकोण लोक-मंगल को कभी भी ओझल नहीं होने देता है। क्योंकि प्रसाद संसार से अलग अरूप सौन्दर्य की खोज न कर संसार को दुःख का कारण मानने वालों की आलोचना करते हैं तथा सत्य और सौन्दर्य का दर्शन इसी जगत में करते हैं।

शर्मा जी प्रसाद द्वारा भाषा और विचारों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्वीकार करने के प्रसंग को उजागर करते हुए उनके द्वारा दर्शन का आधार ज्ञान और क्रिया की एकता को मानने की धारणा को प्रस्तुत करते हैं। जो मनुष्य को उचित कर्म मार्ग की ओर प्रेरित करने वाला रहा है। डॉ. शर्मा प्रसाद जी की शैली में सादगी होने के साथ-साथ विचारों में गहराई, वर्ग-युक्त साम्य-युक्त समाज-व्यवस्था का समर्थन आदि विशेषताओं को उभारते हुए उनके सामाजिक दृष्टिकोण को उनके दार्शनिक विचारों का पूरक बताते हैं।

डॉ. शर्मा प्रसाद जी के मानववाद को उनके अद्वैतवाद का सहज विकसित सामाजिक रूप, मानते हुए कामायनी के विषय-वस्तु को भौतिक

जगत् के मानव की संस्कृति तथा कामायनी को कामगोत्रजा स्वीकार किया है। और प्रसाद जी द्वारा भोगवादी और वैरागी व्यापार एक ही व्यक्ति में दिखाकर उसके उद्गम स्थल की ओर संकेत करने की प्रवृत्ति को देखा है तथा गर्भवती श्रद्धा और उसके पुत्र के वर्ण में व्यक्त मानव-प्रेम को उजागर कर उसकी तुलना सूर और तुलसी द्वारा अभिव्यक्त भारतीय जनता के प्रेम से की है। प्रसाद के साहित्य से जन-सामान्य और स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति को उभारते हुए शर्मा जी प्रसाद द्वारा वर्ग-संघर्ष का अंत वर्ग-हीन समाज की प्रतिष्ठा में करने की धारणा को उद्घाटित किया और साथ ही भारतीय संस्कृति का सहज विकास वर्ग-हीन समाज में और शोषण-मुक्त मानव की प्रतिष्ठा में देखा है। उनका कहना है -- प्रसाद जी का चिंतन गांधीवादी दृष्टि के विरुद्ध वर्ग शांति के बदले वर्ग-हीन समाज का आदर्श स्थापित करने वाला रहा है। इसके अलावा उन्होंने प्रसाद द्वारा साहित्य को सक्रिय प्रतिरोध का साधन बनाने तथा पूँजीवादी नेताओं की कार्य-नीति के आदर्श को न मानने के अनेक प्रसंगों को उभारा है। शर्मा जी प्रसाद के साहित्य की सोद्देश्यता का कारण साहित्य में मूल-वस्तु के रूप में अनुभूति की अभिव्यक्ति को स्वीकार करते हैं।

3.11 पंत की कविता : मध्यवर्ती-पंथ और समझौतावादी प्रवृत्ति से परिपूर्ण

डॉ. शर्मा पंत के विचारों का विश्लेषण करते हुए उनके द्वारा आधुनिक भौतिकवाद को अधूरा मान उसको अध्यात्मवाद से जोड़कर पूर्ण करने की धारणा को व्यक्त किया और पंत द्वारा संस्कृति को धर्म और राजनीति के बीच की चीज़ मानने के विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं। साथ ही उनके संस्कृति विषयक विचारों को उद्धृत कर उनकी संस्कृति को राजनीति और

बुद्धि से भी स्वतंत्र बताया। और उनके सहज-बोध द्वारा जनवादी शक्तियों के संघर्ष को और साम्राज्यवादी युद्ध को एक ही मानने की आलोचना की। शर्मा जी ने पंत में साम्राज्यवाद और समाजवादी देशों के भले-बुरे प्रभाव का उल्लेख कर अपने मध्यवर्ती पन्थ को राजनीति पर लागू करने की प्रवृत्ति देखी है। और पंत के राजनीतिक दृष्टिकोण को उजागर करते हुए उनके द्वारा सारी दुनिया को पूँजीवाद, समाजवाद और मध्य-पन्थ में बाँटने तथा साम्राज्य-विरोधी और साम्राज्यवादी दलों के अलावा तीसरे दल को निर्माणावस्था में दर्शाते हुए उसमें भारत को रखकर संसार के राजनीतिक और आर्थिक आंदोलनों से पृथक कर देने की दृष्टि को उभारा।

शर्मा जी के अनुसार पंत जी के दर्शन में मार्क्सवाद से समन्वय नहीं बल्कि समन्वय के नाम पर अंधविश्वासों की प्रतिष्ठा है और पंत की अंतर्चेतनावादी संस्कृति संसार में लोकतंत्रवादी शक्तियों के संघर्ष को पहचानती है। जिसके प्रमाणस्वरूप डॉ. शर्मा ने स्वर्ण-धूलि की रचनाओं में लोक-शक्तियों के संघर्ष की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है और पंत द्वारा संघर्षशील जनता को वर्ग सहयोग का उपदेश देने की बात स्वीकार की है। उनका कहना है कि "मार्क्सवाद को तिलांजलि देकर पंत जी की राजनीति जनता को गुलामी की शिक्षा देकर, संस्कृति का कवच पहनाकर, पूँजीवादी परिस्थितियों से ऊपर उठ भूत और अध्यात्म के बीच मध्यवर्गी मार्ग की यात्रा करना चाहती है।"[1]

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 81।

डॉ. शर्मा पंत जी के राजनैतिक विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए "भारतीय संस्कृति बनाम मार्क्सवाद" में पंत जी द्वारा अपने युग को राजनीतिक दृष्टि से जनतंत्र का युग और सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व मानवता अथवा लोक मानवता का युग मानने की धारणा को व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार पंत जी जनवादी राजनीति से विरोध न मानते हुए भी उसके साधनों से असंतुष्ट तथा मानव मन की सीमाओं से पीड़ित हैं तथा वे मनुष्य-जीवन के क्रांतिकारी परिवर्तनों को भूकम्प, बाढ तथा महामारी की तरह भयानक मानते हैं और वे क्रांति के अदम्य-वर्ग को सांस्कृतिक संतुलन के द्वारा रोकना चाहते हैं क्योंकि क्रांति की अदम्य वेग देखकर पंत जी मानव मन की दयनीय सीमाओं से पीड़ित हो जाते हैं।[1] इसी कारण शर्मा जी ने पंत को विशेषकर मार्क्सवादी राजनीति और भारतीय संस्कृति के समन्वय के पक्षपाती बताया है। और पंत द्वारा "उत्तरा" की भूमिका में मार्क्सवाद को एक व्यापक समतल सिद्धांत की तरह स्वीकार करने के प्रसंग को उद्घाटित किया है। उनके अनुसार पंतजी मार्क्सवादी क्रांति और वर्ग-संघर्ष को ऊबड़-खाबड़ मान उसे निकालकर मार्क्सवाद को समन्वय के लिए उपयोगी बनाना चाहते हैं। पंत की इस धारणा की पृष्ठभूमि में मार्क्सवादी राजनीति का मोटा अर्थ वर्ग-युद्ध का सिद्धांत लगाने की दृष्टि को सक्रिय देखते हैं। शर्मा जी का मानना है कि मार्क्स द्वारा मजदूर वर्ग को शोषण के तमाम चक्र-व्यूह का परिचय देकर उसे इतिहास को बदलने के लिए सचेत करने वाली वर्ग-चेतना पंत को घोर अचेतन लगती है। इसी कारण पंत को वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत अमान्य रहा है।

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 122

डॉ. शर्मा पंत जी द्वारा मार्क्सवाद के दर्शन पक्ष का खण्डन करने के बाद उसके लोक-पक्ष का समर्थन करते हुए कहे गये कथन का विवेचनात्मक अध्ययन कर पंत द्वारा अवैज्ञानिक वर्ग-संघर्ष के बदले वैज्ञानिक वर्ग-सहयोग, मार्क्सवाद के वैज्ञानिक आदर्शवाद को स्थापित करने और राज्य-सत्ता के परस्पर सम्बन्धों से सम्बद्ध प्रश्न न उठाने वाले लोक-तंत्र में, सर्वहारा के अधिकारों के लिए न लड़ने वाले जनहित या सर्वहारा पक्ष में तथा अपने हित में राज्य-सत्ता को न रचने वाली जनता में विश्वास करने की प्रवृत्ति को उद्धृत करते हैं। और साथ ही पंत जी की इन शर्तों की पूर्ति न होने पर उन्हें क्रांति फासिज्म, महामारी और भूकम्प की तरह सर्वनाशक लगने के प्रसंग को प्रस्तुत किया है। शर्मा जी ने पंत की मार्क्सवादी समझ और दृष्टिकोण तथा विचारों का विश्लेषण कर व्यंग्यात्मक ढंग से उसकी वास्तविकता को उधेडकर रख देते हैं। और उनके वैज्ञानिक आदर्शवाद का विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं मानते बल्कि उनकी कविताओं को उद्धृत कर उनके द्वारा वैज्ञानिक आदर्शवाद या लोक-तंत्र के पक्ष का समर्थन करने के प्रसंगों को व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार पंत जी लोक-संघर्षों से राजा-प्रजा दोनों की रक्षा करना चाहते हैं और दोनों को ही शोषक-शोषित का भेद-भाव भूलकर जीवन विकास के नियमों से अनुशासित होने का उपदेश देते हैं।[1]

शर्मा जी पंत की लोक पक्ष-धरता, लोकहित की भावना और लोक-कल्याणकारी विचारों को उद्घाटित कर उनकी संस्कृति तथा उनके अंतर्मन की चेतना को राजनीति से परे न मानते हुए उनकी कविताओं

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 127

में विशेष प्रकार की पंतवादी राजनीति का रूप देखते हैं। उनके अनुसार पंत की विशेषता इस बात में रही है कि वे कांग्रेसी राजनीति जनता में तिरस्कृत होने के समय में उसे सांस्कृतिक लिबास पहनाकर मार्क्सवाद के लोक-पक्ष से भारतीय संस्कृति का समन्वय करने के नाम पर, उन्होंने बुद्धिजीवियों के एक हिस्से को उस राजनीति के असर में रखा। और शर्मा जी पंत का ऐतिहासिक महत्व यह मानते हैं कि पूँजीवादी राजनीति छोड़कर जब अधिकांश बुद्धिजीवी मजदूर वर्ग की साम्राज्य विरोधी नीति की ओर बढ़ रहे थे तब पंत जी ने अपने को मार्क्सवाद का समर्थक कहकर हिन्दी साहित्य पर उस पूँजीवादी राजनीति का असर कायम रखा।[1] और इसका प्रमाण शर्मा जी पंत की युगान्त और युगवाणी में मानते हैं तथा पंत की रचनाओं में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पूँजीवादी नेतृत्व संकट में पड़ने की प्रतिध्वनि की अभिव्यक्ति स्वीकार की है। इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा छायावादी कवियों में पंतजी को हिन्दी साहित्य की जातीय विकास से सबसे कम परिचित बताया और पंत के काव्य-सौन्दर्य की रचना शक्ति पर निराला जी द्वारा पल्लव की आलोचना करते हुए यथेष्ट प्रकाश डालने के महत्व को स्वीकार किया। डॉ. शर्मा के अनुसार पंतजी ने हिन्दी के पिछले साहित्य की तरह पल्लव की भूमिका में एक नकारवादी दृष्टिकोण, भक्त-कवियों के प्रति अन्याय-पूर्ण दृष्टिकोण और ब्रजभाषा तथा काव्य के प्रति पक्षपात-पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने पंत जी में जातीय विरोधी कॉस्मोपालियटन संस्कार पल्लव तक पूर्णत: पल्लवित न होने के कारण ही सौंदर्य की अभिव्यक्ति मानी है।

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 127

डॉ. शर्मा जी के अनुसार ग्राम्या में पंत जी ने जनता के प्रति बौद्धिक सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया और अनेक सुन्दर रचनाएँ की हैं। परन्तु स्वर्णाभ में छायावाद के कल्पना-लोक से धरती पर उतरने की घोषणा कर पंत जी द्वारा एक नये मसीहा की भूमिका स्वीकार करने की बात कही है और पंत जी द्वारा मार्क्सवाद को भारतीय संस्कृति से समन्वित करने, क्रांति और वर्ग-संघर्ष से मुक्त करने, उपनिवेशों में साम्राज्य विरोधी संघर्ष की भूमिका से मुक्ति देने के प्रसंगों के प्रयोग को उजागर किया है। वे पंत द्वारा भारतीय संस्कृति को हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा से मुक्त कर उसे भारतीय रूढ़िवाद और कांग्रेसी वर्ग-सहयोग की विशेष राजनीति से बाँध देने के कार्य की आलोचना करते हैं। और पंत जी के इस समन्वय को प्रगतिशील कहना वर्ग-सहयोग की राजनीति और भारतीय रूढ़िवाद को ही प्रगतिशील कहना बताया है।[1]

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा का कहना है कि पंत जी के लिए भारतीय संस्कृति निर्वाणोन्मुख आदर्शों का प्रतीक है वहीं पूर्ण पुरुष और विकसित मानव भी है। इसका प्रमाण पंत द्वारा गांधी को लक्ष्य कर लिखी गई कविता की पंक्तियों को उद्धृत कर प्रस्तुत किया है। और पंत द्वारा संसार, ऐतिहासिक भौतिकवाद और वेदान्त को समझने का प्रयास असफल होता दर्शाया है। उनके अनुसार साहित्य की परम्परा की तरह पंत जी का दृष्टिकोण जातीयता का बहिष्कार करने वाला रहा है। वह एक ओर निर्वाणोन्मुख आदर्शों को पूजने के कारण रूढ़िवादी है, तो

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 128

दूसरी ओर संस्कृति के प्रगतिशील तत्वों को अस्वीकार करके अंग्रेज़ी भक्त होने के कारण कॉस्मोपॉलिटन है। इस दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति की न रक्षा होती है न उससे उसका विकास संभव है।[1]

शर्मा जी पंत के प्रगति-विरोधी और जनविरोधी विचारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पंत जी का दृष्टिकोण जन-साधारण को सांस्कृतिक तत्व का निर्माता स्वीकार नहीं करता है बल्कि वह भारत के जन-सामान्य को मूढ़ असभ्य अशिक्षित निर्धन मानता है। उनके अनुसार जनता के लिए मूढ़ और असभ्य जैसे विशेषणों का प्रयोग साम्राज्यवादी करते हैं न कि देश-भक्त। वे पंत जी की पूर्ण सहानुभूति बौद्धिक और हार्दिक सूक्ष्म नाड़ी मनोविज्ञान तथा निवार्णोन्मुख आदर्शों के प्रति देखते हैं और ग्रामीण जनता को मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव रूप में देखने के दृष्टिकोण को बौद्धिक बताते हैं। डॉ. शर्मा का कहना है कि जैसे पीलिया के रोगी को सब कुछ पीत और रक्तहीन दिखाई देता है वैसे ही रूढ़िवाद के उपासक कवि पंत को ग्राम जनता रक्त मांसहीन मृत संस्कृति का अवयव मात्र दिखाई देती है। लेकिन जन-संस्कृति का निरादर उसी कॉस्मोपॉलिटन दृष्टिकोण की विशेषता है जो भारतीय दर्शन, भक्ति-काल और छायावाद की प्रगतिशील विरासत को अपनाने से इंकार करता है।[2] तथा प्राचीन आध्यात्मवादियों और यांत्रिक भौतिकवादियों की तरह पंतजी के लिए मनुष्य की चेतना वस्तु-जगत का अंग न होकर उससे भिन्न और निरपेक्ष सत्ता होना स्वीकार

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 129
2. वही, पृ. 130

किया है। वे पंत जी की संस्कृति को राजनीति से परे न होकर एक विशेष तरह की राजनीति का रूप बताते हैं जो शासक वर्ग की हिंसा पर पर्दा डालकर पीड़ित जनता के विरोधी को हिंसा कहकर उसे विरोध करने से रोकती है। शर्मा जी के अनुसार पंत की संस्कृति न तो वर्गों से परे हैं, न परिस्थितियों से बल्कि वह पूँजीवादी वर्ग की संस्कृति रही है। क्योंकि पंत जी अपनी सत्ता को संघर्ष से ऊपर रखना चाहते हैं इसी कारण डॉ. शर्मा ने पंत जी का ध्येय जीवन संघर्ष से परे रहना बताया है। उनके अनुसार पंत जी वर्गों और नैतिक दृष्टिकोणों से ऊपर उठकर सौन्दर्य देखने का आग्रह करते हैं किंतु वे नैतिक दृष्टिकोणों के संघर्ष से तटस्थ नहीं है बल्कि सर्वहारा वर्ग के नैतिक दृष्टिकोण का विरोध करके पूँजीवादी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।[1]

शर्मा जी पंत की काव्य चर्चा करते हुए चिदम्बरा में पंत जी के युगवाणी से अतिमा तक की रचनाओं का संकलन मानते हैं और इसकी भूमिका में आलोचकों को दिये गये उत्तर की व्याप्ति और अपने विकास का परिचय समाहित होना स्वीकार किया है। तथा पंत द्वारा अपने काव्य को युग के महान् संघर्ष का काव्य कहने के दावे की सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं। और शर्मा जी पंत द्वारा युग संघर्ष को वर्ग-संघर्ष तक ही सीमित न मानने की धारणा को सही मानते हैं। किन्तु साथ ही डॉ. शर्मा वर्ग संघर्ष के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष चित्रण के बिना युग संघर्ष का चित्रण अधूरा और एकांगी बताते हैं।

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 134

पंत द्वारा अपनी काव्य चेतना को मध्य युगीन नैतिक बौद्धिक अंधकार से संघर्ष करने वाली मानने की अवधारणा की समीक्षा करते हुए शर्मा जी पंत की भक्ति सम्बन्धी पंक्तियों को उनकी मार्क्सवाद सम्बन्धित सूक्तियों की तरह नीरस और गद्यात्मक बताया है। और पंत जी के काव्य में समन्वित भौतिकवाद तिरोहित होना और अध्यात्मवाद शेष रह जाने की भी बात कही है। पंत द्वारा अपने कृतित्व को छायावाद के बहिरंग को संवारने और उसे कोमल-कांत कलेवर की शोभा प्रदान करने में सहायक होने के तर्क की समीक्षा करते हुए डॉ. शर्मा पंत द्वारा लिखित पल्लव की भूमिका में रीतिकालीन परम्परा का तीव्र विरोध करने, भक्त कवियों की मान्यताओं पर छींटा-कशी करने तथा परिवर्तन जैसी कविताओं में संसार और जीवन के प्रति अपनी धारणा व्यक्त करने के प्रसंगों को उद्धृत कर पंत की उक्त अवधारणा का खण्डन किया है। इसके अलावा पंत द्वारा छायावाद को भारतीय जागरण की चेतना का सर्वात्वाद मूलक कैशोर समारंभ मानने की धारणा को खतरनाक बताते हुए छायावाद द्वारा सामंतवाद की प्रौढ़ काव्य-धारा, रीतिकालीन नायिका-भेद को निर्मूल करने समाज और विश्व के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करने और सौंदर्य संबंधी मानदण्डों को बदलने तथा पलायन और रूदन के साथ क्रांति के आह्वाहन का स्वर समाहित होने का तर्क प्रस्तुत करते हुए पंत की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति की आलोचना की है। परन्तु पंत द्वारा सम्पादित "रूपाभ" के माध्यम से हिन्दी कविता की यथार्थवादी-धारा को प्रोत्साहित करने और नरेन्द्र शर्मा, दिनकर सुमन, गिरिजाकुमार माथुर आदि दूसरी पीढ़ी के कवियों द्वारा इस धारा को प्रशस्त करने में विशेष योगदान देने का महत्व स्वीकार किया है। और पंत जी द्वारा अपनी मार्क्सवादी दृष्टि युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओं में व्यक्त करने तथा अपनी नवीन जीवन-दृष्टि की

प्रतिक्रियाओं को उन्मुक्त रूप से वाणी देने के कार्य को सही बताया। किंतु डॉ. शर्मा ने निराला को पंत से अधिक जीवन-संघर्ष के निकट और मार्क्सवाद से दूर होने पर भी युग की क्रांतिकारी चेतना को काव्य में आस्था और संघर्ष के उदात्त स्वर में व्यक्त करने का श्रेय दिया है। और पंत जी की दृष्टि में मार्क्सवाद और गांधीवाद का समन्वय होने से उनकी दृष्टि में उलझाव उत्पन्न होना स्वीकार किया है।

डॉ. शर्मा पंत द्वारा अपने कृतित्व, सम्पादन और गद्य रचनाओं से नयी यथार्थवादी धारा के शक्ति सम्पन्न बनाने में दिये गये योगदान को महत्वपूर्ण मानते हैं। और पंत को अपने मन को टटोलने वाले कवि तीक्ष्ण-बुद्धि के आलोचक बताया। और पंत जी के काव्य की चर्चा करते हुए सौवर्ण में पंत जी के दो काव्य रूपक होने, प्रथम रूपक में स्वर्दूत द्वारा महायुद्ध की विभीषिका की ओर संकेत करने और सारी समस्यायें लोक-जीवन का प्रतिनिधि सौवर्ण द्वारा हल करने तथा दूसरे काव्य-रूपक में स्वप्न और सत्य में कलाकार का यथार्थवादी मित्र द्वारा शोषित कंकालों की भूखी चीत्कार की ओर ध्यान आकर्षित करने की बात कही गई। डॉ. शर्मा के अनुसार "स्वप्न और सत्य" में समस्या का विवेचन और समाधान सौवर्ण से भी अधिक काल्पनिक रहा है। परन्तु शब्द-चयन में अधिक संयम शब्द अर्थ की सामीप्यता आदि विशेषतायें देखी गई। शर्मा जी का कहना है कि पंत जी के सामने वर्ग-संघर्ष महायुद्ध की तैयारियों की वास्तविक समस्यायें हैं, इन समस्याओं पर जहाँ-तहाँ उन्होंने समर्थ पंक्तियाँ लिखी हैं, व्यक्तिवादियों पर उनका व्यंग्य भी यथेष्ट मार्मिक है किंतु वे समस्याओं का गलत विवेचन करते हैं, ह्रास और अभ्युदय की शक्तियों में

भेद नहीं करते इसलिए उनका समाधान भी निस्तेज और काल्पनिक रह जाता है।[1]

पंत द्वारा लिखित परिवर्तन कविता की समीक्षा करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं कि बहुत कम कवियों ने युद्ध और शांति की समस्या पर ऐसी प्रभावशाली पंक्तियाँ लिखी हैं कवि पंत ने व्यंग्य का पुट देकर छन्द के ओजपूर्ण प्रवाह से अपनी प्रतीक-योजना को अतिशय समृद्ध किया है। इसके अतिरिक्त पल्लव की रचनाओं में प्रकृति के अनेक यथार्थ और मार्मिक चित्रों की अभिव्यक्ति, ग्राम्या में इस प्रवृत्ति का विकास तथा उसके बाद की रचनाओं में यथार्थवादी प्रवृत्ति की क्षीणता और रहस्यवादी-धारा की प्रबलता को दर्शाया और वाणी की रचनाओं में जहाँ-तहाँ यथार्थवादी क्षीण-धारा के दर्शन होने की बात कही। इस काव्य-संग्रह की रचनाओं में कुतूहलता की अधिकता, प्रकृति के सहज सौन्दर्य की कमी, यथार्थ-द्रष्टा, प्रकृति-प्रेमी कवि की सिसकियों की अभिव्यक्ति, कवि की उच्च-दृष्टि और प्रेरणा की अभिव्यक्ति देखी गई है। शर्मा जी के अनुसार पंत का रहस्यवाद जनता के दुख-दर्द में उसका सहायक न होकर उसकी वास्तविक समस्याओं का काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करता है। तथा जनता को उसकी अपनी भौतिक समस्याओं को हल करने से विमुख करना कवि का उद्देश्य रहा है। शर्मा जी का मानना है कि छायावाद के यथार्थ चिंतन को छोड़कर पंत जी ने भारत और विश्व की विकास-मान शक्तियों के विरोध में रहस्यवाद का झंडा लिये खड़े हैं।[2]

---

1. भाषा युग-बोध और कविता -- पृ. 132
2. वही, पृ. 137

3.12 निराला-काव्य : विद्रोही चेतना की अभिव्यक्ति

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार निराला का जन्म रूढ़िवादी परिवार में होने पर भी उनके व्यक्तित्व ने "परिमल" और "अनामिका" जैसी रचनायें साहित्य को प्रदान की हैं। निराला ने दो महान् सांस्कृतिक धाराओं से प्रेरणा ली है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन जैसी सांस्कृतिक धाराओं का निराला की आरम्भिक रचनाओं पर विशेष प्रभाव रहा है। शर्मा जी के अनुसार रामकृष्ण मिशन ने निराला को अद्वैतवाद प्रदान किया। परन्तु निराला के व्यक्तित्व में संसार और मनुष्य जीवन की मिथ्या तथा उसकी सेवा सम्बन्धी मानसिक संघर्ष रहा है जो उनकी कविता "अधिवास" में दिखाई देता है। तथा परिमल की अधिकांश रचनाओं में अद्वैतवाद को चुनौती देने वाली रही है। किन्तु "भिक्षुक", "दीन" आदि रचनाओं में क्रांतिकारी सहानुभूति का परिवर्तित रूप करुणा का उभार मिलता है। और अनामिका संग्रह की "जीवन-चिरकालिक क्रन्दन" रचना में जीवन की कटुता-प्रखर वेदना की प्रबल अभिव्यक्ति देखी गई है। शर्मा जी ने कवि निराला को प्रेम और सौन्दर्य का कवि माना है क्योंकि वह स्वर्गीय प्रिया की याद और वेदना को ही अभिव्यक्त नहीं करते बल्कि उसके रूप लावण्य को भी उभारते हैं। इस कारण उन्हें वासना और सौन्दर्य के द्वार पर गुंजार करने वाला कवि बताया गया। तथा प्रमाणस्वरूप निराला की रचनाओं में "सोती हुई" प्रिया को जगाने या उसके कक्ष के द्वार खुलवाने का भाव देखा गया है।

निराला की कविताओं में युगों-युगों से स्त्री-पुरुष दोनों के कंठों से उभरने वाली मानव-सुलभ वाणी और मानव-सुलभ व्यापार की

परिणति ब्रह्मानन्द सहोदर कहे जाने वाले आनन्द में अभिव्यक्त होती हुई दिखाई देती है। तथा निराला की सौंदर्य सम्बन्धी कविताओं में तृप्ति का विशेष महत्व मिलता है। इसका सुन्दर निदर्शन "गीतिका" में बताया गया। शर्मा जी "जुही की कली" में नवयुवक कवि की एक मनोरम सौन्दर्य स्वप्न का अंकन देखते हैं तथा इस रचना को कवि द्वारा अमरत्व प्रदान किया जाना स्वीकार करते हैं। और इस रचना में प्रयुक्त अमर प्रतीकों को अस्थाई प्रेम और सौंदर्य से उबे हुए रोमांटिक कवि की कल्पना बताते हैं। परन्तु "जागृति में सुप्ति थी" कविता को सौन्दर्य के नवीन चित्रों की अभिव्यक्ति करने वाली रचना मानते हैं। उनके अनुसार "यहाँ पर निर्दोष जूही की कली के बदले वह नागरी प्रिया है जिसके मौन अधरों पर सुरापान के चिह्न विद्यमान हैं।"[1]

शर्मा जी ने "परिमल" में प्रकृति के नवीन चित्रों की अभिव्यक्ति और "गीतिका", "अनामिका" "नये पत्ते", "बेला" आदि में बादलों पर रचित रचनाओं की बाहुल्यता को व्यक्त किया है। और निराला की वर्षा विषयक कविताओं में ब्रज-भाषा के श्रृंगारी गीतों की झलक देखते हैं। उनके अनुसार बादल राग की छठी कविता कवि की अत्यंत लोकप्रिय रचना है और अपनी क्रांतिकारी व्यंजना और उदात्त स्वर सौंदर्य में उसे बेजोड़ रही है। क्योंकि उसमें विप्लव का भैरव नाद होने के साथ-साथ बादल किसान के द्वारा आह्वाहित है। निराला की "विधवा" कविता में छायावादी उपमानों के साथ-साथ कवि की सामाजिक सहानुभूति तथा "व्यथा की भूली हुई कथा" में यथार्थवादी कवि का सच्चा स्वर मिलता है। "भिक्षुक" कविता को अतुलनीय मानते हुए "कप" कविता में दलितों के प्रति सहानुभूति

---

1. निराला साहित्य-संदर्भ -- सं. सुधाकर पाण्डेय -- पृ. 13

उत्पन्न करने वाला प्रतीक-योजना देखी गई है। निराला ने अपनी बहुत-सी कविताओं में विप्लव का राग गाकर सहनशीलता और अनन्त में लय होने का उपदेश दिया है। उनकी कविता "भर देते हैं ये इष्ट-देव करुणा की किरणें" कवि के क्षुब्ध हृदय को पुलकित करने वाली और "हमें जाना है जग के पार" गीत में छायावाद की पलायन प्रवृत्ति दिखाई देती है। डॉ. शर्मा ने परिमल की रहस्यवादी कविताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए निराला पर रवीन्द्रनाथ से अधिक विवेकानन्द का प्रभाव देखा है। जो "देवि तुम्हे मैं क्या दूँ", "एक बार बस और नाच तू श्यामा" आदि रचनाओं में देखा गया है। इन कविताओं में कवि द्वारा भावुकता के आँसुओं के बदले जीवन की दारुण व्यथा को गहरे रंगों में अंकित किया गया है।

इसके अतिरिक्त निराला की "दिल्ली" और "खंडहर" कविताओं में पुरातन वैभव के प्रति भावुक सहानुभूति और "शिवाजी का पत्र", "गुरु गोविन्द सिंह", "जागो फिर एक बार" नामक कविताओं में हिन्दू पुनर्जागरणवादी राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति देखी गयी है। शर्मा जी के अनुसार "परिमल" की रचनाओं में छायावादी प्रवृत्तियों के साथ-साथ अविश्वास और मानवीय प्रेम और श्रृंगार का स्वर सुनाई देता है। किंतु तुलसीदास में निराला द्वारा इतिहास पर नई दृष्टि डालने तथा मध्यकालीन समाज के पतन और शूद्रों पर हुए अत्याचार को इस कथा की पृष्ठ-भूमि स्वीकार करने की बात कही है। और इसमें मूल चित्र गोस्वामी तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व का देखा है। तथा नारी का तेजोमय रूप तुलसी के जीवन की महान् प्रेरणा मानी है। इस सुगठित लम्बी कविता की छंद-बद्धता में कवि का ओजगुण व्यक्त होने से उनकी कला का नया विकास होने, चित्र सौंदर्य

में इतिहास में इतिहास और मनोविज्ञान के भावों की मूर्तवत्ता देखी है। डॉ. शर्मा ने निराला द्वारा "तुलसीदास" काव्य में व्यक्त तुलसी के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का और उनकी वैचारिकता का विश्लेषण कर तुलसी का प्रकृति सम्बन्धी वर्ण-व्यवस्था विषयक और शूद्रों की पक्षधरता आदि को विशेष रूप से उभारा है। तथा इस काव्य में प्रयुक्त भाषा को काव्यात्मक शैली से परिपूर्ण बताया। और तुलसी के मोहभंग की अवस्था को विशेष महत्त्व दिया है। क्योंकि डॉ. शर्मा के अनुसार तुलसी की चेतना में भारत की सोई हुई महिमा जागी। एक बार जड़ से चेतन का, अन्धकार से प्रकाश का, पराधीनता का स्वाधीनता से संग्राम होगा। एक ओर कवि की सरस्वती होगी, दूसरी ओर प्रजा-पीड़कों का छल-प्रपंच। जैसे सूर्य एक-एक बिन्दु जल जोड़कर वर्षा के बादल बनाता है, वैसे ही मत-मतान्तरों में बँटे हुए जनों को मिलाकर कवि नये समाज का निर्माण करेगा। आज देशकाल के सर से विद्ध होकर अशेष छवि-शाली कवि जागा है ...कविता के आरम्भ में जो सांस्कृतिक सूर्य अस्त हो गया था, वह पुनः उदित हुआ और रत्नावली ही प्राची दिगन्त उर में पुष्कल रवि रेखा बन गई।[1] अर्थात् डॉ. शर्मा ने तुलसी काव्य में व्यक्त तुलसी की चेतना जागृति की स्थिति को विशेष रूप से सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ से सम्बद्ध कर उसकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया है। और निराला जी के नये चरित्र-चित्रण और नाटकीय घटना संगठन का परिचय दिया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "इसके पहले किसी भी छायावादी कवि ने इस तरह की गाथा न लिखी थी क्योंकि चरित्र-चित्रण के साथ उन्होंने

---

1. निराला -- सं. इन्द्रनाथ मदान -- पृ. 81

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का बराबर ध्यान रखा है। और मध्यकालीन समाज की मूल समस्या को उन्होंने अच्छी तरह पहचान लिया है।"[1] शर्मा जी का मानना है कि निराला ने तुलसी को अपने समय की परिस्थितियों और विलासी वातावरण के प्रभाव से अछूत नहीं रखा है बल्कि रत्नावली में उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक हृदास का प्रतीक रही है। डॉ. शर्मा का कहना है कि कवि निराला ने अपने काव्य "तुलसीदास" में रत्नावली के शब्दों में तुलसीदास को नहीं वरन् साहित्य और संस्कृति की समस्त रीतिकालीन परम्परा को धिक्कार है और रत्नावली के योगिनी रूप में मध्यकालीन नारी का नायिका भेद वाला रूप जलकर भस्म हो गया।[2]

इसके अतिरिक्त निराला की काव्य-कला की अभिव्यक्ति करते हुए उनकी कविता में अद्यान्त चित्रमयता उदात्त चरित्र-चित्रण, कथोपकथन में ओजमयता, स्वाभाविकता छंदों की प्रवाहमयता, सुन्दर उपमाओं और रूपकों की छटा की व्याप्ति स्वीकार कर काव्य में सुन्दरता और सार्थकता की समानता को देखा है। शर्मा जी इस कविता की विशेषता यह बताते हैं कि यह आरम्भ के बन्द में सांस्कृतिक सूर्यास्त के चित्रण से अंतिम-बन्द में पुष्कल रवि रेखा की झांकी तक सम्पूर्ण कविता एक विशाल रूपक में बँधी हुई है और ऐसा निर्माण सौन्दर्य नई कविता के अद्भुत रहा है। निराला के इस काव्य को छायावादी काव्य के अत्यन्त पुष्ट और विकसित रूप को अभिव्यक्त करने वाला माना है।

---

1. निराला -- सं. इन्द्रनाथ मदान -- पृ. 82
2. वही

डॉ. शर्मा के अनुसार तुलसीदास से मिलती-जुलती कविता राम की शक्ति-पूजा है। जहाँ पहली रचना में राम चरित्र के निर्माता कवि तुलसीदास का चित्रण था इस कविता में राम ही नायक है पहली कविता में उन्होंने मध्यकालीन समाज का सत्य दिया था, इस कविता की पृष्ठभूमि पौराणिक है परन्तु उनका सत्य कवि के इसी जीवन का है।[1] शर्मा जी ने तुलसी काव्य और राम की शक्ति-पूजा काव्य की आधार भूमि, कथा-वस्तु और परिस्थिति की तुलनात्मक समीक्षा कर राम की शक्ति-पूजा की विशेषताधिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध को माना है। और इस पंक्ति की सार्थकता कवि जीवन पर अधिक लागू होने की बात कही। वे राक्षस, वानर लंका समुद्र तट आदि को एक विशाल सेटिंग मात्र मानकर वास्तविक संघर्ष राम के हृदय में देखते हैं। उनका कहना है कि "तुलसीदास में कवि एक हद तक तटस्थ है, राम की शक्ति-पूजा पर कवि के अपने व्यक्तित्व की छाप है। किंतु इस काव्य जैसी नाटकीयता का अन्य रचनाओं में अभाव देखा है। उनका मानना है कि यहाँ निराला ने अपने जीवन की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष और विजयकामना को नाटकीय रूप दिया है।[2] उनके अनुसार रिाला के राम में ब्रह्म की पूर्णता के बदले मनुष्य की अपूर्णता, अधीरता, मोहितता, दुःख-पीड़ा आदि मानवीय प्रवृत्तियों का समावेश रहा है जो उन्हें शक्ति की साधना की प्रेरणा देती है। शर्मा जी राम के रूप में कवि द्वारा जीवन की परिस्थितियों को एक बार फिर चुनौती देना स्वीकार करते हैं। किंतु शक्ति द्वारा राम का हाथ पकड़ना एक मनोमुग्धकारी चमत्कार मात्र मानते हैं परन्तु राम के संघर्ष के चित्र की प्रभावशीलता को उनकी विजय से अधिक प्रभावकारी बताया है।

---

1. निराला -- सं. इन्द्रनाथ मदान -- पृ. 83
2. वही, पृ. 87

वे कवि के जीवन के संघर्ष को सत्यता और विजय की कामना की अपूर्णता को व्यक्त करने वाला मानते हैं। इस काव्य में चरित्र-चित्रण की वैविध्यता दिखाते हुए हनुमान का महाकाश में चढ़ने के ओजपूर्ण वर्णन को अनूठा बताया है। प्रकाश और अंधकार का चित्रमय सम्मिश्रण, प्रतीक व्यंजना की अद्‌भुतता देखी है। और राम की शक्ति-पूजा का महान् आशावादी सन्देश युद्ध के लिए, विजय के लिए मनुष्य द्वारा पुनः चेष्टा करना बताया है क्योंकि मनुष्य का मन पराजित होकर भी पराजय स्वीकार नहीं करता।

शर्मा जी निराला की कविताओं में व्याप्त जीवन की अनुभूति की बोधगम्यता हेतु उनकी अन्य रचनाओं, सरोज-स्मृति, वनबेला और गीतिका में व्यक्त कवि के जीवन का विश्लेषण करना आवश्यक मानते हैं। क्योंकि कवि का उत्कृष्ट आत्म-निवेदन इन रचनाओं में नाटकीय रूप में अभिव्यक्त हुआ है। डॉ. शर्मा ने सरोज-स्मृति में राम की शक्ति-पूजा की तरह अपने से प्रबल शत्रु का युद्ध-कौशल देखने वाले नायक की व्याप्ति स्वीकार की है; तथा इसमें भी समर का वर्णन समाहित माना। इस काव्य के संबंध में उनका कहना है कि "सरोज-स्मृति" हिन्दी की एकमात्र प्रसिद्ध एलेजी या शोक-गीत है। जो कवि द्वारा अपनी कन्या के निधन पर रची गई है।[1]

इस कविता में कवि के जीवन की सच्चाई प्रकट होने के साथ-साथ कवि का रूप उत्साही वीर का तथा दारुण मार्ग में नियति को चुनौती देने वाला रहा है। शर्मा जी के अनुसार सरोज-स्मृति का अन्त राम की शक्ति-पूजा के आशावाद से नहीं होता बल्कि निराला अपने

---

1. निराला -- सं. इन्द्रनाथ मदान -- पृ. 89

मस्तक को झुकाकर कर्म पर वज्रपात सहने के लिए तत्पर होते हैं और वे शीत से भ्रष्ट होते हुए शतदल के समान विफल कार्यों से कन्या का तर्पण करते हैं।

शर्मा जी इसे यथार्थ-जीवन की एक नई और कटु अनुभूति बताते हैं और इसे एक महानाटक माना है जो पाठक के हृदय में अपार करुणा और सहानुभूति की सृष्टि करता है। सरोज की जीवन-गाथा को स्वयं कवि की दुःख-गाथा बताया है जिसमें कवि का व्यक्ति पराजित होकर भी संघर्षरत दिखाई देता है। यह कविता कही-अनकही बातों से तिक्त और यथार्थ सत्य को अंकित करती है इसमें कवि द्वारा मातृ रूप की कल्पना करने और मातृ-वियोग का भव्य रूप अभिव्यक्त होने के प्रसंगों को महत्वपूर्ण माना।

पृथ्वी के यथार्थ को आकाश की कल्पना से सुन्दर मानने की भावना की अभिव्यक्ति वनबेला और नरगिस में देखी गई है। शर्माजी के अनुसार वनबेला के आरम्भ में निराला ने पृथ्वी और सूर्य के प्रणय व्यापार का वर्णन किया है। साथ ही निराला द्वारा सामाजिक विषमता से उत्पन्न ग्लानि को भुलाकर बेला के जीवन की सार्थकता व्यक्त करने के संदर्भ को प्रस्तुत किया है। नरगिस में ईर्ष्या-भाव तिरोहित होने तथा पार्थिव सौन्दर्य द्वारा अभिभूत होने की बात कही। उन्होंने निराला की कविताओं में महाकाव्य का गुण स्वीकार कर उसमें उस उदात्त भावना की व्याप्ति सिद्ध की है जो अंग्रेज़ी में एपिक क्वालिटी कही जाती है। वे निराला के गीतों और मुक्तकों में आत्म-निवेदन के साथ नाटकीयता का

समावेश मानते हैं क्योंकि निराला अपने प्रति तटस्थ होकर अपनी अनुभूतियों का चित्रण करते हैं जिससे उनकी रचनाओं में आत्मीयता और नाटकीयता का अद्भुत सम्मिश्रण मिलता है।

निराला की काव्य-रचनाओं का समीक्षात्मक विश्लेषण कर शर्मा जी कहते हैं -- निराला के काव्य में छायावादी अलंकरण सौन्दर्य अपने चरम विकास को प्राप्त करने के साथ-साथ उसमें एक-दूसरे युग के आविर्भाव की झलक मिलती है। वे निराला की निस्वार्थता, वेदना पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, यथार्थवादी अनुभूति आदि की सहज अभिव्यक्ति को उनकी काव्य विशेषतायें मानते हुए राम की शक्ति-पूजा को महाकाव्य या खंड-काव्य न होकर एक लम्बी कविता होना स्वीकार करते हैं और उसमें छन्द का गठन, भाषा की ओजपूर्ण शैली और संयत प्रवाह, भावों की असाधारण गरिमा आदि की व्याप्ति देखी है। निराला द्वारा पौराणिक उपाख्यान की काव्य में सजीव कल्पना करना पाश्चात्य एपिक के अनुकूल बताया है। महाकाव्य के पात्रों की तरह चरित्र-चित्रण का प्रभाव, संकेत व्यंजनाओं से मूल अर्थ की अभिव्यक्ति, छंद और भाषा का संगठन, चारित्रिक घात-प्रतिघात, मानसिक संघर्ष आदि के कारण यह कविता पुरातन और आधुनिक काव्य में अद्वितीय मानी गयी।

डॉ. शर्मा के अनुसार "कवि निराला का ध्येय अपराजेय समर में युद्ध के अनिश्चित परिणाम की बोधता और राम का मानसिक संघर्ष व्यक्त करना है।" इस कविता में युद्ध राम-रावण दो व्यक्तियों का नहीं बल्कि विश्व में सतत क्रियाशील शक्तियों का संघर्ष रहा है। प्रतीकों की

सांकेतिकता, चरित्रों की मानवीयता, राम की आक्रांत अवस्था, आशा की क्षीण ज्योति आदि विशेषताओं को उभारते हुए डॉ. शर्मा ने राम के मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति हेतु कवि निराला द्वारा प्रयुक्त ओजपूर्ण और सांकेतिक प्राकृतिक दृश्यों की सेटिंग को विशेष को विशेष महत्व दिया है। संघर्ष के मध्य राम को सीता का स्मरण हो आना राम की निर्बल मानवसिक अवस्था का द्योतक बताया। और सीता की वियोग व्यथा की अभिव्यक्ति में कवि की भावुकता, हनुमान में शक्ति उद्वेलित होने में ओज, युद्ध में बाणों के श्रीहत होने में विनाश और निर्माण, मानसिक क्रियाओं में गतिशीलता और वेगमयता को देखा है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला के काव्य में आदर्शवादी और यथार्थवादी प्रवृत्तियों में संघर्ष और उनके काव्य-विकास के क्रम में यथार्थवादी, जनवादी तथा प्रगतिशील पक्ष के प्रबल होने के साथ-साथ रहस्यवाद और छायावाद के क्षीण होने की प्रक्रिया देखी है। गीतिका में संकलित प्रेम और श्रृंगार से परिपूर्ण गीतों में निराला की कला का निखार देखा है। निराला के साहित्य में स्वाधीनता-प्रेम का स्वस्थ भाव-बोध और कला दृष्टि से अनेक कविताओं में पाया है जिसमें विशुद्ध प्रचारात्मक रचनायें भी रही जैसे -- "न आये वीर जवाहर लाल" शीर्षक कविता निराला की अनेक कविताओं में वक्तृत्व कला का पूर्ण विकास, व्यापक चित्रात्मकता, नाटकीयता का उत्कर्ष, रीति-विरोध, जनवाद के नये स्तर दिखाई देते हैं। निराला की अंतिम कविता "पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है" में कवि के मन की अच्छी और सही झलक पाते हैं। परन्तु निराला की कला का सम्बन्ध यथार्थवादी प्रवृत्ति से स्वीकार करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं --

नये पत्ते में निराला की कला का हृास नहीं विकास है, जीवन को नये ढंग से देखने और चित्रित करने का प्रयास है।[1] और उन्होंने निराला के नये पत्ते की कविताओं में द्वितीय विश्व महायुद्ध में फासिस्ट शक्तियों की पराजय और साम्राज्यवादी शक्तियों की परती तथा सोवियत संघ की विजय के बाद देश में आये क्रांतिकारी जन-उभार का चित्रण देखा है। और निराला की क्रांति सम्बन्धी भाव धारा के प्रवाह को सन् 47 के पश्चात भी गतिशीलता के आधार पर निराला का अन्य प्रगतिवादियों से अन्तर माना है। किंतु निराला की अनेक कविताओं में अद्वैतवादी दर्शन की तरह-तरह से अभिव्यक्ति तथा नारी के प्रति आकर्षण देखा है। और साथ ही डॉ. शर्मा को सौन्दर्य और उल्लास के साथ-साथ दुःख और मृत्यु का भी कवि माना है। तथा निराला का संघर्ष उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से देखा है। निराला के काव्य में भक्ति पक्ष को उभारते हुए उनके स्वाधीनता-प्रेम के स्वरूप भारत को उनकी भक्ति का आधार बताया। तथा कांग्रेसी स्वाधीनता आंदोलन और निराला की राजनीतिक चेतना में अन्तर स्पष्ट करते हुए शर्मा जी निराला के स्वाधीनता-प्रेम को सामाजिक क्रांति से सम्बद्ध माना है। इसी कारण निराला की राजनीतिक चेतना उनकी अनेक कविताओं में सामाजिक क्रांति की चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला के काव्य साहित्य की सूक्ष्म विश्लेषणात्मक समीक्षा कर उसकी अनेक विशेषताओं को उभार कर कवि की मौलिकता, नवीन साहित्यिक दृष्टि, प्रगतिशील तत्वों एवं संदर्भों को उद्घाटित किया। तथा भाषा और भावों का गठन, कला की सूक्ष्मता,

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- द्वि.ख., पृ.45।

ओजपूर्ण स्वर सौंदर्याभिव्यक्ति की कला, स्वर-व्यंजनों की सजावट, शब्दों की अभिव्यंजना, उदात्त स्वर चरित्र-चित्रण की लघुता आदि के साथ-साथ निराला की दार्शनिक दृष्टि उनका वैचारिक-पक्ष, सामाजिक-राजनीतिक चेतना मानवीय सहानुभूति, यथार्थ-प्रियता, संघर्षशीलता, राष्ट्रीय-प्रेम आदि विशेषताओं को उभार कर हिन्दी काव्य की यथार्थवादी धारा के विकास में उनके महत्व को उद्घाटित कर उनके योगदान की अतुलनियता को प्रस्तुत किया है।

3.13 महादेवी साहित्य : प्रेम और वेदना का समन्वय

डॉ. रामविलास शर्मा महादेवी वर्मा के साहित्यिक जीवन का आरम्भ छायावाद के मध्यकाल से मानते हुए उनके काव्य की विशेषताओं में अन्तर्मुखी अनुभूति, अमांसल सौन्दर्य, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिंतन, पंखों और पंखुडियों से चुरायी हुई कला, वायवी-वातावरण आदि को उभारते हैं। और महादेवी के काव्य में पीड़ावादी पलायनवादी तत्व की व्याप्ति को स्वीकार कर उसकी उत्पत्ति और स्थिति के सही कारण की खोज़ के लिए उसके विरोधी तत्वों पर दृष्टिपात कर दोनों के परस्पर सम्बन्ध को जानने की आवश्यकता दर्शाते हैं। महादेवी वर्मा की आकांक्षा, मानवीय-प्रेम, मानवीय-सौंदर्य की आकांक्षा की व्याप्ति, लेखिका का नारीत्व की सामाजिक सीमाओं के भीतर विकास के लिए छटपटाहट आदि को देखा है। और महादेवी की नारी प्रकृति की एक सरस विशेषता हठ मानते हुए उनके काव्य में अध्यात्मवादी अभिमान, अद्भुत श्रृंगार-भावना, मिलन के क्षणों की विह्वलता और भाव-व्यंजना, नारी-सुलभ शंका, उत्सुकता की चित्रमयता, असीम दृढ़ता आदि विशेषताओं की व्याप्ति स्वीकार की है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा ने महादेवी द्वारा जीवन में कठिनाईयों का, विशेषकर सामाजिक विरोध और अपवाद का सामना करने और महादेवी की कर्मठता, समाज-सुधार और जन-संपर्क की सीमाओं की व्याप्ति श्रृंखला की कड़ियाँ, स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र आदि कृतियों में देखा है और महादेवी के कवि और गद्यकार रूप को अभिन्न बताया है। महादेवी नये साहित्यिक और सामाजिक आंदोलन से घनिष्ठता का,अभाव का कारण संसार के प्रति महादेवी के दृष्टिकोण की अवैज्ञानिकता तथा उनके मनोबल और कर्म-सम्बन्धी इच्छा शक्ति की सीमाओं को माना है।

शर्मा जी के अनुसार महादेवी जी में जन-साधारण के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं रही बल्कि पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति भी रही है। क्योंकि महादेवी ने इस बल पर ही समाज के पीड़ितजनों के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किये हैं। महादेवी वर्मा छायावादी कवयित्री होने के कारण उनमें छायावाद के निराशावादी, पलायनवादी पक्ष के साथ-साथ जीवन और सौन्दर्य की आकांक्षा का स्वस्थ मानव-प्रेमी और सौन्दर्य-वादी पक्ष एवं विरोधी आत्मा की व्याप्ति देखी जा सकती है किंतु दृष्टिकोण और मनोबल की सीमाओं के कारण उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति का अभाव देखा गया है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा ने छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए छायावादी साहित्य और आंदोलन के परिप्रेक्ष में महादेवी वर्मा के काव्य-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन कर उसकी विशेषताओं या प्रवृत्तियों को उभारा है।

3.14 दिनकर का काव्य : यथार्थ दर्शन और काल्पनिक श्रृंगार का मिश्रण

डॉ. रामविलास शर्मा ने "उर्वशी" को दिनकर जी की सर्वोत्कृष्ट रचना मानते हुए दिनकर के सर्वोच्च शिखर और भगीरथ प्रयास का परिणाम बताया। उनके अनुसार यह प्रयास अक्षय कवि का असफल महत्वाकांक्षी प्रयास नहीं है बल्कि यह एक ऐसे कवि का प्रयास है जो कुरुक्षेत्र में पर्याप्त सफलता पाकर उस सफलता से संतुष्ट न होकर नये-चिंतन और नई अनुभूतियों की ओर बढ़ा है, उसने नई समस्याओं से उलझने और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करने का साहस दिखाया है।[1]

शर्मा जी इसमें कल्पना और यथार्थ दर्शन और श्रृंगार का अद्भुत सम्मिश्रण मानते हैं और इसे अधिकांश महत्वपूर्ण कलाकृतियों के समान निर्दोष नहीं माना बल्कि उसमें कामायनी, राम की शक्ति-पूजा और पल्लव से अधिक दोष देखे हैं। वे इसमें दिनकर द्वारा अपने पूर्ववर्ती साहित्य में अभिव्यक्त संदर्भों के साथ-साथ नवीनतम विचारों की अभिव्यक्ति करने की दृष्टि को उजागर करते हैं। उन्होंने उर्वशी को श्रृंगार रस का परम्परागत आलम्बन स्वीकार करते हुए उसमें उदात्त-भंगिमा की व्याप्ति का समायोजन दर्शाया है। दिनकर की कविता की स्वर-योजना को उदात्त होने पर भी अधिक गंभीर और तरलता में प्रसाद से साम्यता रखते हुए भी मौलिकता से परिपूर्ण बताया है।

---

1. साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन -- पृ. 113

उर्वशी काव्य में चरम भावोत्कर्ष पुरूरवा और उर्वशी के द्वारा प्रेम के आस्वाद के साथ अपनी अनुभव-जन्य अनेक समस्याओं पर विचार करने के प्रसंग में माना है यह चिन्तन प्रक्रिया उनके काम-सुख भोग के वर्णन को संस्कृत-ब्रजभाषा कवियों के श्रृंगार-वर्णन से विलग करती है और रीतिकालीन नायिका भेदी परम्परा से ऊपर उठाती है।[1] शर्मा जी के अनुसार इस काव्य में कवि अपनी ओर से कुछ नहीं कहकर दूसरों से कहलाता है। उनके अनुसार उर्वशी का प्रेम तभी सफल होता है जब वह मानवी के समान पुत्रवती होती है जब उसका मानवी के समान धरती पर रहना असंभव हो जाता है तब उसके प्रेम का भी अन्त हो जाता है किन्तु सापेक्ष चेतना के क्षेत्र में पुरूरवा और उर्वशी की संयुक्त सृष्टि, उनके पुत्र कर्ममय जीवन में बँधे रहकर उस अजस्र चेतना-प्रवाह को आगे बढ़ने का बल देता है यही जीवन की मनुष्य की सापेक्ष रचना और कर्म की ज्ञान और कर्म के चिरन्तन समन्वय की विजय है।[2]

डॉ. शर्मा पुरूरवा के उपदेश में आस्था के स्वर को उसकी सामयिक सार्थकता की व्याप्ति स्वीकार कर मनुष्य को बाँध रखने वाली अजस्र जीवन-प्रवाह के परोक्ष और प्रत्यक्ष छोर को मिटाने वाली धारा का संचार देखते हैं और उर्वशी काव्य का मर्म संकेत मानव जीवन की सापेक्ष प्रवाहमयता के परे ज्ञान का कोई अमानवीय निरपेक्ष स्त्रोत न होना बताया है। उनका मानना है कि "जीवन की स्वीकृति और मानव-जीवन में आस्था के कारण आनन्द की आकांक्षा के साथ अतृप्ति के उद्वेग को व्यक्त करने के

---

1. साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन -- पृ. 115
2. वही, पृ. 117

कारण, निरपेक्ष-ज्ञान की तृषा के साथ सापेक्ष-ज्ञान की उदात्त अभिव्यंजना के कारण, उर्वशी काव्य को आधुनिक हिन्दी काव्य का कीर्ति-स्तम्भ है। दिनकर द्वारा उर्वशी में व्यक्त दार्शनिक समस्याओं की चर्चा को स्वाभाविक माना है। और पुरूरवा और उर्वशी की कथा में रुचि का कारण उनका मानवीय भावनाओं का प्रतीक होना रहा है। क्योंकि दिनकर ने इस काव्य की भूमिका में पुरूरवा को सनातन नर का और उर्वशी को सनातन नारी का प्रतीक बताया है। शर्मा जी का कहना है कि "भूमिका से भिन्न काव्य में उर्वशी सनातन नारी मात्र का प्रतीक न होकर कल्पना-लोक की वीरांगना के रूप में अधिक दिखाई देती है। वह नारी से अधिक नारी की कल्पना है इसीलिए वह भूत,भविष्यत और वर्तमान की बाधाओं से अपने को मुक्त मानती है। इसीकारण डॉ. शर्मा ने उर्वशी को सनातन नारी का प्रतीक न मानकर अनन्त यौवन और सौन्दर्य की कल्पना का प्रतीक स्वीकार किया है तथा काव्य में कल्पना और यथार्थ का संघर्ष स्पष्ट देखा है। उन्होंने कवि द्वारा चित्र-लेखा के माध्यम से गृहस्थ-धर्म का महात्म्य घोषित करने के प्रसंग को उभारा है किंतु साथ ही इस गृहस्थ धर्म की इस काव्य में पराजय और श्रम का अभाव देखा है। उनके अनुसार पुरूरवा और उर्वशी को विलास व्यापार के अलावा और कोई श्रम या कार्य नहीं रहा है।

इस काव्य में प्रकृति से विच्छिन्न होकर ईश्वर प्राप्ति असम्भव मानी गयी है और उर्वशी जीवन को निरूद्देश्य मानती है, उर्वशी का यौवन अनन्त होने के कारण उसे काम धर्म पालन के अलावा कोई अन्य धर्म नहीं दिखाई देता है किंतु पुरूरवा का यौवन कालान्तर में परिवर्तित होकर बुढ़ापे को प्राप्त करता है इसी कारण डॉ. शर्मा ने इस काव्य में

अमृत के साथ थोड़ा गरल होना स्वीकार किया है वे पुरूरवा की दार्शनिक युक्ति का विश्लेषण करते हुए मनुष्य देह से प्रेम करके अदेह सौन्दर्य तक पहुँचने की पुरूरवा की धारणा को उजागर करते हैं उनका कहना है कि "आज के युग में प्लेटों की देह से अदेह तक पहुँचने की प्रक्रिया काम नहीं देती है।" उन्होंने उर्वशी और पुरूरवा की उक्तियों में अतृप्ति और निराशा या भुलावा और प्रवंचना का समायोजन स्वीकार किया है और दिनकर की सामंतवादी दृष्टि की समीक्षा करते हुए उर्वशी काव्य को च्यवन की नहीं बल्कि पुरूरवा की गाथा कहा है। इस काव्य में व्यक्त दार्शनिक और सामाजिक समस्याओं में अत्यन्त उलझाव, श्रृंगार-वर्णन प्राचीन परिपाटी से भिन्न होने पर भी पुरानी कल्पनाओं और पुराने ढंग की अलंकार-योजना को कई जगह खटकता हुआ पाया है। उन्होंने उर्वशी काव्य की समीक्षा करते हुए भाषा और दार्शनिक चिन्तन के सदोष होने पर भी उर्वशी को एक महान् कृति बताया है परन्तु कुरूक्षेत्र और सामधेनी में नयी पीढ़ी के मानसिक संघर्ष के सुन्दर चित्रण में कवि द्वारा देश के बुद्धिजीवी वर्ग की वैचारिक दिशा और लेखकों की मनोदशा में समाहित समस्याओं और उसके समाधान की पद्धति को दर्शाया गया है।

डॉ. शर्मा कवि दिनकर द्वारा नोआखली और बिहार के हत्याकांड में हुए भयानक नरसंहार का वास्तविक चित्रण करने तथा "आग की भीख" कविता में बंगाल के अकाल से आंदोलित हृदय की पीड़ा, बेबसी और छट-पटाहट को व्यक्त किये गये प्रसंगों को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने दिनकर की कविताओं में भविष्य के प्रति आशा, जनजागरण का स्वागत, राष्ट्रीय गौरव और स्वाधीनता-संग्राम की परम्परा का विकसित

रूप प्राप्त होने की बात कही है और दिनकर की वाणी में स्पष्टता और गंभीरता के बदले जनता में अविश्वास और कभी-कभी साम्प्रदायिक-द्वेष भी प्रतिध्वनित होने तथा "रसवन्ती" और "हुंकार" में परम्परा का उदात्त स्वर अभिव्यक्त होना स्वीकार किया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "दिनकर उन कवियों में हैं जिन्हें मनुष्य और उसकी शक्ति में विश्वास है। उनके अतिरंजित चित्रों के बावजूद यह विश्वास उनके राग का प्रधान स्वर है। उनके स्वर की शक्ति का, उदात्त भाव-व्यंजना का यही मूल स्रोत है।"[1] इसके अलावा उन्होंने दिनकर की अकाल और युद्ध सम्बन्धी कविताओं में बेबसी और छटपटाहट की भावना, भावों की ऐंठन और मसोस अभिव्यक्त होना स्वीकार किया और इसे दिनकर के कुरुक्षेत्र के सर्वनाश के रूप में भी प्रस्तुत किया है। मनुष्य की हत्या और उसके रक्तपात से कवि का हृदय झकझोर उठता है। शर्मा जी द्रौपदी की प्रतिहिंसा की भावना से पाठकों में सहानुभूति उत्पन्न न होने तथा युद्धोपरान्त पाण्डव शिविर में उत्पन्न हर्ष-ध्वनि में युधिष्ठिर को नियति का व्यंग्य सुनाई देने आदि से सम्बद्ध प्रसंगों को विशेष महत्व देते हैं। और उनका कहना है कि कुरुक्षेत्र कृति में एक विवादी स्वर के समान साम्य और बन्धुत्व की भावना छन्दों में मुखरित हुई है। इस भावना को शर्मा जी ने देश की जनता के उस बन्धुत्व की सूचक बताया है जो जनसंहार के बाद भी निष्क्रिय और निष्प्राण नहीं हो पायी है। उनके अनुसार कुरुक्षेत्र के चौथे सर्ग में भीष्म के चिंतन में परिवर्तन दिखाई देता है जिसके कारण वे युधिष्ठिर और स्वयं को युद्ध के लिए दोषी मानते हैं। शर्मा जी मनुष्य से निराश होकर देवता को अपनी रक्षा के लिए नारी का पुकारना देश के पतन का लक्षण बताते हैं। डॉ. शर्मा का मानना है कि

---

1. भाषा, युगबोध और कविता – पृ. 197

भीष्म अपने ही द्वन्द्व को सुलझाने के लिए कौरवों को दैहिक शक्ति और पाण्डवों को हृदय दिया है और प्रमाण स्वरूप भीष्म द्वारा नीति और सहृदयता के संघर्ष को स्पष्ट करने के प्रसंग को उभारते हैं। तथा पंचम-सर्ग में कवि द्वारा अपने को संक्रांति काल का प्राणी मानने, इतिहास का अन्ध-भक्त न होने और युधिष्ठिर तथा भीष्म दोनों के ही मुँह से कवि द्वारा एक सुखी शांत संसार की कल्पना करने के प्रसंगों को उभारा है। दिनकर ने जिसे बुद्धि और हृदय का संघर्ष बताया उसे डॉ. शर्मा ने वर्गों का संघर्ष माना है। परन्तु सातवें सर्ग में युधिष्ठिर को ज्ञान प्राप्त होने और भीष्म द्वारा मनोभावों को दुहराकर शंकाओं का समाधान करने की बात कही गई और भीष्म द्वारा युधिष्ठिर से कुरुक्षेत्र के श्मशान को छोड़कर मानव समाज को त्याग और बलिदान का नया पथ दिखाने के संदर्भ में दिये गये उपदेश को रेखांकित किया है। और शर्मा जी समाज की सारी अव्यवस्था का आधार श्रम-फल की चोरी मानते हैं परन्तु कवि दिनकर जीवन की समस्याओं को सुलझाने में सच्चा मनुष्यत्व बताते हैं और सामाजिक संघर्ष से पलायन करने वालों के प्रति कवि की सहानुभूति नहीं रही है उनके द्वारा मनुष्य की इंद्रियों को जीवन का प्रमाण मानते हुए उन्हें सत्य के लिए घातक न बनाने की बात कही गई।

डॉ. शर्मा कुरुक्षेत्र काव्य की समीक्षा करते हुए कुरुक्षेत्र के समस्त चिंतन का निष्कर्ष मनुष्य को सत्य और अनित्य मान सत्य का स्रोत तपोवन या समाधि नहीं बल्कि कर्म-भूमि मानना बताते हैं। और कुरुक्षेत्र के विचारों में उलझन का कारण कवि का राष्ट्रीय स्वाधीनता को वर्गहीन समाज के निर्माण में सहायक होने के सम्बन्ध का स्पष्ट न होना और

दिनकर की दृष्टि में स्वाधीनता-संग्राम जनता की लड़ाई का ही एक हिस्सा होने का स्पष्ट ज्ञान न होना माना है।

3.15 बच्चन की कविता : वेदना की टीस और आशा की उमंग

डॉ. शर्मा बच्चन के काव्य-प्रयोग पर विचार करते हुए निशा-निमंत्रण, एकांत-संगीत, आकुल अन्तर आदि के बाद सतरंगिनी काव्य का प्रकाशन स्वीकार कर उसमें उत्साह, गति और प्रणय की उमंग को देखते हैं। और निर्माण की आकांक्षा कांटों की याद के साथ चलने की उत्कण्ठा तथा संतरंगिनी के सातों रंगों को उजागर किया है। वे सतरंगिनी की चमक-दमक आशा-उल्लास के नीचे वेदना की गहरी छाप को उभरते हुए देखते हैं तथा संतरंगिनी की अधिकांश कविताओं में राह चलने की बात होने पर भी राह का अभाव मानते हैं। उनके अनुसार "कवि की संवेदना का क्षेत्र सीमित होने के कारण उसमें अपने सचेत प्रयत्न से विश्व की विकलता दूर करने में आस्था नहीं रही है।"[1] और डॉ. शर्मा ने "निर्माण" नामक गीत को इस संग्रह की सबल रचनाओं में से एक माना है क्योंकि इसमें कवि ने अपने विषाद को किसी छलना से न भूला कर स्वतंत्र रूप से उसकी स्याही पर निर्माण के रंगीन चित्र बनाये हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा इस काव्य-संग्रह के सम्बन्ध में कहते हैं कि इसमें कवि की संवेदना उसके प्रणय-संसार में इधर-उधर मँडराती

---

1. भाषा युगबोध और कविता -- पृ. 214

है, उसमें सामाजिक अथवा सामूहिक संवेदना का अभाव है किंतु सतरंगिनी के अन्त की कुछ कविताओं में उन्होंने एक नयी सामाजिक चेतना के दर्शन किये है और कवि द्वारा अपने भाग्यवाद को चुनौती देने और मानव के सचेत प्रयास की सफलता में विश्वास प्रकट करने की बात कही है।

डॉ. शर्मा का मानना है कि सतरंगिनी में बच्चन ने छंदों के नये बन्द रचने के साथ-साथ काव्य रूपों में नये प्रयोग किये हैं किन्तु चित्रों में पुरानापन और कहीं-कहीं पुरानी नीति सम्बन्धी कविताओं की झलक होने पर भी बहुत से गीतों में गठन की कमी होने की बात कही है परन्तु साथ ही कोमल, निर्माण विश्वास आदि गीतों को बच्चन की रचनाओं में सर्व-श्रेष्ठ बताया है और हिन्दी गीति-काव्य में उनका स्थान असंदिग्ध माना है। साथ ही "बुद्ध और नाचघर" तथा अन्य कविताएँ" नामक काव्य-संग्रह में कवि द्वारा पाठक से बातचीत करने पर भी उनकी कविताओं का सुरीलापन कम न होने तथा नया ओज उत्पन्न होने के प्रसंग को महत्वपूर्ण बताया है। और कवि की बोली की सादगी में अलंकारों की चमक-दमक छिप जाने की बात कही है। उसके हृदय में देश-भक्ति और आत्म-विश्वास के नये स्पन्दन होना स्वीकार किया तथा कुछ कविताओं में जैसे "हिन्दू और मुसलमान" में कवित्व कम, प्रवचन अधिक बताया और सबसे प्रभावशाली कविताएँ व्यंग्य और व्यक्तिगत अनुभवों से परिपूर्ण माना है।

शर्मा जी ने इंग्लैण्ड से सम्बन्धित कविता "तुम्हारी नजरों वे उनकी नजरों में तुम" में कवि द्वारा स्वयं के भारतीय होने की तीव्र अनुभूति करने राजाओं की संस्कृति पर व्यंग्य करने का आधार कवि की निरन्तर

निखरती हुई सामाजिक चेतना को बताया है। और कवि द्वारा वर्तमान समय की विषमता देखकर उसकी कृत्रिम सभ्यता और खोखलेपन के रहस्य को समझकर उस पर मार्मिक प्रहार करने की दृष्टि को उजागर किया है। किन्तु उन्होंने बच्चन जी की सभी कविताओं को एक स्वर का नहीं माना है बल्कि सामाजिक-चेतना के साथ अनेक कविताओं में कवि की नयी संवेदनाओं की झलक मिलने की बात कही है।

बच्चन जी द्वारा अनूदित ओथेलो के अनुवाद की भाषा सरल होने पर भी उससे शेक्सपियर की काव्य-प्रतिभा का अनुमान न होने और न ही कवि बच्चन द्वारा इयागो के व्यंग्य को प्रतिबिम्बित कर सकने या ओथेलो के आवेग और भावों को सही रूप में प्रस्तुत कर पाने में सफल होने की बात कही है अर्थात् डॉ. शर्मा ने बच्चन जी द्वारा किये गये इस अनुवाद कार्य में अनेक गलतियाँ, भूलें और भ्रामकता-पूर्ण अभिव्यक्तियों की प्रस्तुति माना है और एक दो स्थानों पर अनुवाद में शेक्सपियर का मूल मूर्ति-विधान ही बदल जाना स्वीकार किया। बच्चन द्वारा नाटक की भूमिका में दी गई अवधारणा को अभिव्यक्त कर उन्होंने कवि की अवधारणाओं को उनके अनूदित कार्यों पर आरोपित कर उसकी प्रासंगिकता को उभारा है और व्यंग्यात्मक शैली में कवि बच्चन द्वारा अपने ही उसूल भूल जाने की बात कही है। परन्तु वे बच्चन द्वारा मानस की शैली में गीता का अनुवाद अवधी में करने के प्रसंग को उभारते हुए उसमें कथा-प्रसंग का अभाव, शैली के सहारे उपदेशों से काव्य को परिपूर्ण करने की पद्धति, शैली की ओजहीनता और कृत्रिम अवधी का प्रयोग शब्दों के प्रयोग की बहुलता, उलझी हुई वाक्य संरचना, अर्थाभाव आदि कमियों को उद्घाटित किया है और बच्चन द्वारा गीता के अनुवाद के संबंध में मंगला-चरण में लिखी गई बातों की प्रासंगिकता सिद्ध की है।

3.16 उत्तर छायावादी काव्य : यथार्थवादी भूमि पर अंकुरित

डॉ. शर्मा छायावादी युग के उत्तरकाल में हिन्दी कविता के विकास की दिशा की ओर ध्यानाकर्षित करते हुए छायावादी कवियों द्वारा कविता की भाषा के रूप में खड़ी-बोली को प्रतिष्ठित करने, काव्य से चमत्कारवादी, नायिका-भेदी परम्परा को निर्मूल करने, प्रकृति, नारी सामाजिक परिवर्तन आदि विषयों पर नए दृष्टिकोण से लेखन, सौंदर्य-बोध के परिष्कृत रूप को, नई छन्द-योजना, नए मूर्ति-विधान से हिन्दी कविता को समृद्ध करने की प्रवृत्तियों को उभारते हैं। और उन्होंने छायावाद के उत्तरकाल में छायावादी कवियों द्वारा पुरानी भाव-धारा से विलग होकर यथार्थवाद की नई भूमि की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है।[1] अर्थात् डॉ. शर्मा ने छायावादी कवियों की यथार्थवाद की ओर संक्रमण करने की प्रवृत्ति को उभारते हुए प्रसाद की तितली, निराला की देवी, चतुरी चमार, बिल्लेसुरबकरिहा, महादेवी के रेखाचित्र को इसका प्रमाण बताया है। और युग-जीवन की माँग तथा स्वप्न-लोक वासी कल्पना के अंतर्विरोध को पंत जी द्वारा स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त करने के प्रसंग को उभारा है। वे इस अंतर्विरोध को पहचान कर पंत जी द्वारा ग्राम्या में यथार्थवादी दृष्टि से काव्य-रचना करने के प्रयास को देखते हैं परन्तु अरविन्द दर्शन के कारण पंत की रचनाओं में छायावादी कवियों द्वारा छोड़ा गया रहस्यवाद पुनः स्थान पा गया। किन्तु यथार्थवाद की प्रकृति पंत की ग्राम्या में, निराला की बेला, नये पत्ते आदि कविता-संग्रहों में तथा गिरिजाकुमार

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 167 व 168

माथुर, सुमन, नरेन्द्र, दिनकर, केदार आदि कवियों की बहुत-सी रचनाओं में मिलता है। डॉ. शर्मा प्रगतिशील काव्य-साहित्य का संबंध इसी यथार्थवाद से मानते हुए उसकी ओर छायावाद का स्वाभाविक संक्रमण आरम्भ होने की बात कहते हैं। तथा प्रगतिशील कविता द्वारा छायावादी काव्य की अस्पष्टता, भाषा की दुरूहता, निराशावादी भावनाओं और पलायनवादी प्रवृत्ति को दूरकर जीवन में आस्था, दलित और शोषित जनता की मुक्ति की उत्कंठा, सामाजिक दायित्व की भावना आदि की अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति को विशेष महत्व दिया है। परन्तु उन्होंने विचार-पक्ष की अस्पष्टता और कलात्मक शिथिलता को प्रगतिशील कविता की कमजोरी बताया है। और इसी के कारण मार्क्सवाद से गांधीवाद या अरविन्दवाद के समन्वय की दृष्टि उत्पन्न हुई। पंत की ग्राम्या से बच्चन के बुद्ध और नाचघर तक यथार्थवाद की धारा अनेक विषमताओं का सामना करते हुए विकसित होने के प्रसंग को प्रस्तुत किया है। तथा डॉ. शर्मा ने प्रयोगवाद को इन विषमताओं में एक विषमता बताया है। साथ ही यथार्थवादी काव्य धारा के विकास पथ में एक और विषमता ऐतिहासिक भौतिकवाद की गलत समझ को माना है। उनके अनुसार इस विषमता का मूल सूत्र यह स्थापना है कि संस्कृति किसी समाज-व्यवस्था के आर्थिक सम्बन्धों का विचारधारागत प्रतिबिम्ब है। किन्तु उनका कहना है कि समाज-व्यवस्था में आर्थिक संबंधों की प्रमुख भूमिका होने पर भी हर समय हर परिस्थिति में आर्थिक सम्बन्धों की भूमिका प्रमुख और नियामक हो यह आवश्यक नहीं है। परन्तु उनका मानना है कि मानव-चेतना सापेक्ष रूप से स्वतंत्र होने के कारण अपनी रचनात्मक क्षमता का परिचय किन्हीं विशेष परिस्थितियों में देने के कारण उसकी भूमिका आर्थिक सम्बन्धों की तुलना में गौण न होकर नियामक भी

हो जाती है।[1] डॉ. शर्मा का कहना है कि इस गलत अवधारणा के कारण ही पंत की युगान्त-युगवाणी पद्य को कविता की संज्ञा देकर आधुनिक हिन्दी काव्य का सिरमौर बताया गया है। और इसी गलत अवधारणा और दृष्टि के कारण हिन्दी आलोचकों द्वारा आधुनिक हिन्दी-काव्य की यथार्थवादी धारा के विकास के लिए प्रयोगवाद सम्बन्धी उपर्युक्त स्थापना के कारण प्रयोगवाद की पहचान कर उसे निर्मूल करने में कठिनाई रही है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की इस गलत समझ को डॉ. शर्मा ने यांत्रिक भौतिकवाद बताया है। और साथ ही अनेक प्रगतिशील कवियों और आलोचकों द्वारा काव्य के अनेक तत्वों को भुलाकर विचार-धारा सम्बन्धी तत्व को ही प्रधानता देते हुए विचारधारा को ही आर्थिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब मानना, संस्कारों और कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा करना आदि को यांत्रिक भौतिकवाद के लक्षण बताया है।[2] इससे प्रभावित लेखकों का शीघ्र प्रयोगवाद के सम्पर्क में आना तथा मनोवैज्ञानिक गहराई और कला का निरपेक्ष सौन्दर्य व्यक्तिवादी रचनाओं में दिखाई देने आदि प्रसंगों को उभारते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं व्यक्तिवाद और यांत्रिक भौतिकवाद दोनों ही साहित्य की मूल प्रकृति, कला के आधारभूत नियमों का उल्लंघन करने वाले तत्व रहे हैं जो यथार्थवादी धारा के पथ की विषमता भी रहे हैं। और रहस्यवाद, आधुनिक-विज्ञान की प्रगति और राजनीतिक आंदोलन की माँगों के प्रतिकूल होने का कारण असफल रहा है। और प्रयोगवाद विरोधी-काव्य के मूल तत्व छन्द सौन्दर्य, सरस शब्दावली चित्रमयता का विकास हिन्दी-काव्य की जातीय परम्परा के विकासक्रम में देखा जा सकता है। क्योंकि प्रयोगवाद समर्थक विचारधारा

---

1. आस्था और सौंदर्य -- पृ. 170
2. वही, पृ. 171।

का मुख्य स्त्रोत व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन रहा है जिसका मुख्य कार्य समाजवाद का विरोध और शिल्प की विशेषता काव्य के सर्वस्वीकृत तत्वों का मूलोच्छेद करना रहा है। साथ ही जनता की समस्याओं की उपेक्षा उसकी विशेष प्रवृत्ति तथा कुंठा और घुटन को उसके भाव-जगत् का चिर ध्रुव स्वीकार किया है। तथा इलियट से प्रयोगवादियों का गहरा सम्बन्ध दर्शाते हुए इलियट की तरह बौद्धिकता के प्रयोगवादी हामियों द्वारा अपनी रूग्ण कल्पना से संसार को देखने, छायावाद और हिन्दी कविता के सभी स्वस्थ तत्वों का बहिष्कार करने तथा अस्वस्थ तत्व, निराशावाद और कुंठा का प्रतिनिधित्व करने की प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार हिन्दी के अनेक साहित्यकारों में स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् समाजवाद के प्रति पूर्ववत आकर्षण नहीं रहा जो पंत द्वारा स्वप्नलोक से यथार्थ की कठोर भूमि पर उतरने और उसे छोड़ पुनः स्वप्नलोक में विचरण करने के प्रसंगों से स्पष्ट होता है। वे प्रयोगवाद की शुरूआत तारसप्तक से नहीं बल्कि सन् 87 में प्रतीक से मानते हैं। और प्रयोगवाद का मूल उद्देश्य कला के लिए कला का प्रतिपादन करना बताया है। उनका कहना है कि प्रयोगवाद पर पहले चोट प्रगतिशील लेखकों ने नहीं की प्रगतिशील साहित्य पर पहले आक्रमण किया प्रयोगवादियों ने। ये प्रयोगवादी लेखक वे थे जो सन् 47 से पूर्व प्रगतिशील थे।[1] उन्होंने प्रयोगवाद शब्द की जरूरत प्रगतिवाद के विरोध में एक नये वाद को स्थापित करने की आवश्यकता के लिए हुई मानते हैं। और प्रयोग का कोई वाद न

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 3।

होने के कारण उस शब्द की व्याख्या तरह-तरह से की जाने की बात कहते हैं। 1951 में साधारणतः प्रयोगवाद शब्द का व्यवहार कविता की विषय-वस्तु या केवल वस्तु के संदर्भ में नहीं उसके छन्द, शैली आदि के संदर्भ में किया गया है। साथ ही पंत द्वारा प्रयोगवादी कविता का आरम्भ प्रसाद से मानने और सुमन द्वारा पंत की पल्लव रचना को बहुत बड़ा प्रयोगवादी काव्य मानने की धारणा को भी स्पष्ट किया है।

इसके अतिरिक्त प्रभाकर माचवे द्वारा स्वयं को प्रयोगवादी घोषित करने तथा नामवर सिंह द्वारा प्रयोगवाद की आलोचना करने के प्रसंग को उभारते हुए प्रयोगवाद की शुरुआत प्रगतिवाद पर आक्रमण से होने और प्रत्युत्तर में प्रगतिवादियों द्वारा प्रयोगवाद की आलोचना करने का तर्क प्रस्तुत किया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार सन् 87 के बाद एक ओर सामाजिक दायित्व से बचकर साहित्य रचने की प्रवृत्ति पंत के रहस्यवाद और भारत भूषण आदि के प्रयोगवाद में बलवती हुई, दूसरी ओर प्रगतिशील साहित्य में उग्र और संकीर्णतावादी रूझान प्रबल हुआ। परन्तु कला की अवहेलना करके केवल सामाजिक विषय-वस्तु पर बल देने तथा सिद्धांत के अलावा व्यवहार में चीत्कार फुत्कार से परिपूर्ण अयथार्थवादी चित्रण तथा कलात्मक सौन्दर्य के बिना अधिकांश प्रगतिशील कविताएँ रची जाने का भी उल्लेख किया है। तथा सन् 88-89 में इस शैली की रचनाओं की भरमार होने के प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। और इस प्रकार चीत्कार और फुंकार से परिपूर्ण कविताओं को डॉ. शर्मा ने प्रगतिशील कविता की पैरोड़ी बताया है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर रूझानवादी प्रगतिशील कविता की पैरोड़ी निर्मित कर रहे थे वहीं दूसरी ओर संकीर्णतावादी प्रगतिशील कवि तुलसीदास जैसे कवियों की विरासत को अस्वीकार कर उन्हें प्रतिक्रियावादी कहकर निन्दा कर रहे थे। इस कार्य हेतु उस समय प्रगतिशील लेखकों का प्रमुख साहित्यिक पत्र "नया पथ" सक्रिय रहने की बात कही है। डॉ. शर्मा संकीर्णतावादी रूझान का तीसरा पक्ष कुछ प्रगतिशील लेखकों को हिन्दुस्तान में लाल झण्डे के अतिरिक्त कुछ और दिखाई न देने वालों के वर्ग का बताते हैं। और "तिरंगे कफन" कहानी-संग्रह को इसका अच्छा उदाहरण माना है।

डॉ. शर्मा के अनुसार स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पाँच-छः वर्षों में प्रगतिशील लेखकों की उग्रता कविता को पैरोड़ी बनाने वाली, तुलसीदास जैसे कवियों को प्रतिक्रियावादी घोषित करने वाली और तिरंगे कफन की रचना कर इन्कलाब जिन्दाबाद का विरोध करने वाली धारा के रूप में विभक्त हो गयी। और प्रगतिशील लेखकों के इस आन्तरिक संघर्ष के कारण ही साहित्य को प्रगति-विरोधी दिशा में ले जाने वाले प्रयोगवाद को बल मिला है। इसी कारण डॉ. शर्मा कहते हैं -- प्रयोगवाद कविता में मूलतः जीवन की अस्वीकृति है, उसके रचयिताओं के लिए जीवन निःसार है इसीलिए निरूद्देश्य होकर वे रोते-सिसकते हैं, उन्हें सुन्दर की अपेक्षा नीरसता, आनन्द की अपेक्षा घुटन तथा बोध-अनुबोध की अपेक्षा अबोध और दुर्बोध शब्द जाल से ही अधिक प्रेम है।[1] क्योंकि प्रयोगवादी कवि अपने मर्दित अहं को समाज, परिवार आदि समस्त मानव-सम्बन्धों से मुक्त करना चाहता है। किंतु डॉ. शर्मा ने दुर्गन्ध से भरा हृदय-कूप, केंचुए जैसे बिल-बिलाते भाव, आकांक्षाओं के छाया-प्रेत, यह अयथार्थ ही प्रयोगवाद का

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 274

यथार्थ माना है और इसका पर्यायवाची शब्द स्वार्थ बताया है उनके अनुसार प्रयोगवादियों के यथार्थ की परिणति शांति-आंदोलन का विरोध करने में होती है। क्योंकि हर तरह की संगति और सामूहिक कार्यवाही से इनका अहं पीड़ित हो उठता है और कुण्ठा उसी घुटन के चीत्कार से आसमान गुंजा देती है।[1] और इनके यथार्थवाद में जनता का संघर्ष, नव-निर्माण, देश-विदेश के स्वाधीनता आंदोलन, विश्व-शांति के लिए स्थानाभाव रहा है और इनके क्षुद्र अहंवाद को राष्ट्र-विरोधी और समाज विरोधी बताया है। उन्होंने छायावादोत्तर हिन्दी काव्य-धारा के विकास का विश्लेषण करते हुए छायावाद के उत्तरकाल में छायावादी कवियों द्वारा यथार्थवादी भाव-भूमि की अभिव्यक्ति काव्य में स्पष्ट रूप में होना स्वीकार किया है और प्रयोगवादी प्रचारकों द्वारा कुंठा और घुटन की सुन्दर अभिव्यक्ति करने के प्रसंगों को उभारते हुए प्रयोगवादियों की कुंठा को एक मानसिक रोग बताया है। डॉ. शर्मा के अनुसार यथार्थवाद एक व्यापक जीवन-दर्शन है उसमें समाजवादी विचारधारा से लेकर प्रकृति के अनूठे-दृश्यों तक का समावेश संभव है उद्दीपन विभावों और रहस्यमय संकेतों से अलग सूक्ष्म संवेदनात्मक गीतों की रचना भी संभव है।[2] उन्होंने कविता में तरह-तरह के प्रयोगों की गुंजाइश को व्यक्त करते हुए शैली की विविधता भावों की अभिव्यंजना में नहीं बल्कि भावानुभूति और संवेदन के प्रकारों में देखा है और इस विविधता से हिन्दी कविता की मूल यथार्थवादी-धारा समृद्ध होने की बात कही है। तथा नयी कविता और आधुनिक हिन्दी कविता को अलग-अलग माना है।

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 279
2. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 172

तीसरी प्रकार की रचनाओं में बच्चन नरेन्द्र की उत्तर-कालीन छायावादी काव्य परम्परा से सम्बद्ध रही है जिनमें अतृप्त काम भावना की अभिव्यक्ति होने तथा नारी की कल्पना की अपेक्षा सामाजिक परिवेश में जीती-जागती नारी की झलक मिलने की बात स्वीकारते हैं। इसके साथ ही डॉ. शर्मा का कहना है कि उत्तरकालीन छायावाद की निराशा आध्यात्मिक न होकर पार्थिव है कल्पना से अधिक उस पर यथार्थ जीवन की उदासी का रंग है उसकी शब्द-योजना उर्दू से प्रभावित और बोलचाल के समीप है।[1] और इस रूमानी लहजे का बच्चन, नरेन्द्र, धर्मवीर भारती और विजयदेव नारायण साही द्वारा प्रयोग किया गया है। उनके अनुसार उत्तरकालीन छायावाद यथार्थ-जीवन से फिर भी जुड़ा हुआ है, नव रहस्यवाद उससे एकदम विच्छि हो गया है।[2]

डॉ. शर्मा चौथे प्रकार की छायावादी रचनाओं का सम्बन्ध दैहिक सौन्दर्य, रूप-लावण्य के संसार, चन्दन-गन्ध और रेशमी स्पर्श से मानते हैं। और उदाहरण हेतु बच्चन, नरेन्द्र की रूमानी रचनाओं से तथा गिरिजाकुमार की उच्छृंखल से लेकर "जो बँध नहीं सका" तक की रचनाओं से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इसके अलावा शकुन्त माथुर की कुछ पंक्तियों को उद्धृत कर माथुर की तुलना में यथार्थ को अधिक अभिव्यक्त करने वाला बताया है। और पाँचवी किस्म की रचनाओं में पुराने छायावादी कवि के भाव-बोध या शब्द-शिल्प की गहरी छाप बताया है। तथा नयी कविता लिखने वालों में जगदीश गुप्त को एकमात्र ऐसा कवि माना है जिन्होंने छायावादी भावबोध

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 68-69
2. वही, पृ. 70

के घेरे के भीतर सबसे अधिक प्रयोग किये हैं और उनके काव्य में जहाँ पंत का प्रभाव झलकता है वहाँ उनका प्रयोग कमजोर होने तथा अज्ञेय के प्रभाव में अधिक सफल होने की बात कही है।

छठीं किस्म की छायावादी रचनाओं का सम्बन्ध कुण्ठा और दर्द से माना है जिसमें अतृप्ति की मीठी पीड़ा होने के साथ-साथ उत्तरकालीन छायावाद के भाव-बोध को स्पर्श करने वाला घनत्व समाहित रहा है। इसके प्रतिनिधि कवि अज्ञेय को माना है। और उदाहरण-स्वरूप तारसप्तक की कुछ पंक्तियों को उद्धतकर अज्ञेय का प्रिय उपमान अहेरी बताया है। साथ ही जगदीश गुप्त तथा विजयदेव नारायण साही की अज्ञेय से प्रभावित पंक्तियों को तथा धर्मवीर भारती और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य की पंक्तियों में अज्ञेय के प्रभाव को उजागर किया है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "अज्ञेय के शिल्प की विशेषता यह है कि वह एक ही उपमान का प्रयोग अनेक बार करते हैं और हर बार उसमें ताजगी रहती है। इस किरण-विद्ध परम्परा को जगदीश गुप्त ने अपने कविता-संग्रह "हिमविद्ध" में निभाया और इसका प्रभाव कविता की परिधि से बाहर गद्य में भी परिलक्षित है राजेन्द्र यादव की पुस्तक मंत्रविद्ध में।"[1] इस प्रकार डॉ. शर्मा ने अज्ञेय को शब्दों का पारखी होने के साथ-साथ उन्हें ढूँढकर लाने, सहेज कर रखने और उचित स्थान पर उन्हें सजाने में पारखी कलाकार बताया है। उनके अनुसार अज्ञेय ने छायावाद की बहुत-सी बातें दोहराई हैं, कई बातें नयी भी जोड़ी हैं।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 74-75

सातवीं तथा अंतिम किस्म में डॉ. शर्मा ने उन रचनाओं को सम्मिलित किया है जो पुराने छायावाद, उत्तरकालीन कलावाद, अज्ञेय प्रभावित छायावाद आदि से मुक्त है। रूमानी परम्परा से सम्बद्ध होतु हुए भी मौलिक है हिन्दी छायावादी के लिए नयी है। यह यथार्थ को मोहक आवरण से ढँकने वाली कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ से खेलने वाली, उसे सर के बल उलटकर देखने वाली, काव्य के लिए सार्थक कल्पना बताया है और ऐसी कल्पना की अभिव्यक्ति सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की अनेक कविताओं में दिखाई देती है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने छायावादोत्तर नयी छायावादी कविता की रचना करने वालों में अनेक नयी कविता के लेखक सम्मिलित होने और उनके द्वारा नयी कविता के अलावा कई किस्म की छायावादी कविताओं की रचना करने के प्रसंगों को उजागर किया है। और 1937 के बाद की कविता में भाव-बोध की अस्थिरता को देखा है। उनका कहना है कि "उपनिषद्, वाल्मीकि, कालिदास, कबीर, चण्डीदास, माइकेल, मधुसूदन दत्त की समृद्ध परम्परा ने छायावादी रचनाओं में नया जीवन पाया। निराला प्रसाद पंत के काव्य ने रीतिवादी कुहासे को छिन्न-भिन्न करके जातीय भाषा खड़ी-बोली में नवीन प्राण-प्रतिष्ठा की, समस्यापूर्ति और नायिका-भेद के प्रभाव को समाप्त किया, काव्य प्रेमियों के सौन्दर्य-बोध को और गहरा करके भाषा की नयी शक्ति का परिचय दिया है। किंतु 30-32 तक ये प्रेरणा-स्त्रोत सूखने लगे। इस परिस्थिति में पुराने छायावादी कवियों ने नये यथार्थवाद की ओर कदम उठाये और छायावाद के प्रगतिशील तत्वों से नये यथार्थवाद का सहज मेल हुआ। परन्तु 1947 के बाद जो नया छायावाद

सामने आया उसका यथार्थवाद से जरा भी मेल न था इसके विपरीत वह यथार्थवाद के विरोध में, उससे बच निकलने के प्रयास में सामने आया था। डॉ. शर्मा के अनुसार पुराना छायावाद देश की सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुकूल था, परन्तु नया छायावाद स्वाधीन भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के प्रायः विपरीत था। इसी कारण उन्होंने प्रचार में विराट होने पर भी उसे पुराने छायावाद की अपेक्षा उथला कहा है।

3.17 अज्ञेय का काव्य : छायावादी रुझानों से आच्छादित

डॉ. शर्मा के अनुसार अज्ञेय ऐसे कवि रहे हैं जिन्होंने छायावाद की समाप्ति के पश्चात् छायावादी भावधारा को सबसे अधिक प्रवाहित किया है अज्ञेय के काव्य रचनाओं के विकास की दिशाओं को उजागर करते हुए उनका कहना है कि अज्ञेय की अनेक रचनाओं पर प्रसाद के भाव-बोध, छन्द-कौशल और शब्द-शिल्प का प्रभाव रहा है अज्ञेय ने छायावाद का विकास सदैव वैपरीत्य दिशा में नहीं किया बल्कि इस विकास का एक चरण दमित कामेच्छाओं की अभिव्यक्ति के कारण उत्तर छायावादी काव्य के समीप और नरेन्द्र बच्चन गिरिजाकुमार माथुर के भाव-बोध के निकट रहा है परन्तु दूसरा चरण ऊपर के आवेष्टन आवरण बदलता हुआ मूलतः रहस्यवाद की भूमि पर जमा रहा। शर्मा जी ने अज्ञेय के रहस्यवादी रुझान को तारसप्तक के प्रकाशन से भी पुराना माना है और "चेतना का संस्कार" शीर्षक अज्ञेय के लेख को इसका प्रमाण बताया। इस लेख में अज्ञेय द्वारा भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक ह्रास होने के प्रति चिन्ता व्यक्त की गई है।

डॉ. शर्मा का मानना है कि अज्ञेय जिस रहस्यवाद को मानते हैं वह रहस्यवाद विकास को सोद्देश्य सिद्ध करने के साथ-साथ चेतना के उर्ध्वगामी संचरण की ओर संकेत करता है और अज्ञेय ने इस चेतना के संस्कार को वैज्ञानिकों के रहस्यवाद से जोड़ दिया है। साथ ही एक ओर तथ्य उजागर करते हैं कि जहाँ पंत अरविन्द दर्शन की ओर द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के समय आकृष्ट हुए वहीं अज्ञेय द्वितीय महायुद्ध के पहले से प्रभावित रहे हैं। अप्रैल 1939 के अरविन्द अंक में प्रकाशित अज्ञेय की रहस्यवाद कविता में उनके द्वारा उनका रहस्यवाद ईश्वरोन्मुख न मानने की धारणा को व्यक्त करते अज्ञेय द्वारा अपने सीमित अहम की शक्ति को असीम शक्ति से जोड़ने की दृष्टि को उभारा। इसके अलावा साही की समीक्षा-दृष्टि का विश्लेषण कर उनके द्वारा प्रसाद और अज्ञेय की दार्शनिक दृष्टि और अनुभूति के सम्बन्ध में व्यक्त अवधारणाओं का तर्क-पूर्ण रूप से खण्डन करते हुए अनुभूति और दार्शनिक सत्य को गलत ढंग से अभिव्यक्त करने की पद्धति को उद्घाटित किया। शर्मा जी अज्ञेय की कविता "सोनमछली" डॉ. नगेन्द्र को बिम्बवाद के खण्डन और रस-सिद्धांत के समर्थन को कम शब्दों में अत्यन्त सजीव रूप में प्रस्तुत करने वाली कविता होने की अनुभूति को व्यक्त करते हुए कहते हैं -- यह कविता नामवर सिंह को डॉ. नगेन्द्र के रस-सिद्धांत को खण्डित करने वाली होने के कारण पसन्द रही है। किन्तु डॉ. शर्मा 1955 में "एनकाउण्टर" में प्रकाशित ऐलन रिडेल की कविता "गोल्ड फिश ऐट ऐन ऐंगल" कविता को उद्धृत कर दोनों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हैं और इस कविता को जडाऊ कविता का श्रेष्ठ उदाहरण बताते हैं तथा इसकी एक और विशेषता को व्यक्त करते हुए "अरी ओ करुणा प्रभामय" नामक कविता संग्रह में अज्ञेय द्वारा अनूदित जापानी कविताओं को और उनकी मौलिक

रचनाओं को एक साथ रखने पर उसमें कविता की अनुभूति हिन्दुस्तानी या जापानी होने की पहचान करना असम्भव बताया है। उनके अनुसार जड़ाऊ काम में सोन मछली को गोल्ड फिश से घटकर नहीं माना जा सकता। तथा अज्ञेय की कला का उभार प्रतीकों और उपमानों के चयन में देखा है। और उनके अधिकांश उपमान और प्रतीकों को परम्परागत माना।

डॉ. शर्मा छायावादी काव्य में प्रवाहित आलोक वर्षा को अज्ञेय के नवरहस्यवाद में विकसित देखते हुए उनके द्वारा प्रकाश की बारह-मासी झड़ी लगाने की प्रवृत्ति को उजागर कर उसे उनकी कविताओं में पुनरावृत्ति का दोष बताया। और साथ ही अज्ञेय द्वारा क्षण को विशेष महत्व देने का अभिप्राय उन्हें क्षणवादी मानना अनुचित बताते हुए उनके द्वारा क्षण में अखण्ड काल की सत्ता को वस्तुओं के सीमित रूपों में अरूप की सत्ता देखने के समान माना है। वे अज्ञेय की काव्य-रचनाओं से अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि परम्परागत मान्यता के अनुरूप अज्ञेय की रचनाओं में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत हुआ है तथा उनमें समर्पण की उद्दाम लालसा तथा पार्थिव इच्छाओं का आपर्थिव उदात्तीकरण मिलता है। और अज्ञेय की आत्मदान की भावना से आत्म उत्पीड़न और आत्म विसर्जन का घनिष्ठ सम्बन्ध बताया है।

डॉ. शर्मा अज्ञेय की वेदना का कारण उनकी दानक्रिया का पूर्णतः सम्पन्न न होना और नव-रहस्यवाद में रूढ़ि कायम करने की प्रवृत्ति को मानते हैं। वे अज्ञेय के रहस्यवाद का प्राचीन रहस्यवाद से अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सन् 20-30 की रहस्यवादी दृष्टि सामाजिक-यथार्थ से

कतराती नहीं थी बल्कि वह पुरानी कविता में संघर्ष की कठोरता और सामाजिक तथा व्यक्तिगत पीड़ा की तीव्र अनुभूति रही है परन्तु इसके विपरीत अज्ञेय का रहस्यवाद बहुत ही सुरक्षित प्रकार का रहस्यवाद रहा है जिसमें सामाजिक जीवन से पलायन करने की प्रवृत्ति पुरानी छायावादी कविता से अधिक प्रबल रही है।[1]

इस प्रकार अज्ञेय के रहस्यवाद को प्राचीन रहस्यवाद से भिन्न मानते हुए डॉ. शर्मा ने अज्ञेय का प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध को उनके काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि बताया है। अज्ञेय की प्रकृति को मनुष्य का अस्तित्व गन्दा नहीं करता है किंतु अज्ञेय के लिए प्रकृति-प्रेम और नव-रहस्यवाद की सीमित सार्थकता जडाऊ कविता के रूप में मानी है। शर्मा जी सच्ची अनुभूति तलाशने वाली नयी कविता से इस जडाऊ कविता को ज्यादा टिकाऊ बताते हैं।

3.18 गिरिजा कुमार माथुर : छायावादी सौन्दर्य और क्रांति के पक्षधर

डॉ. रामविलास शर्मा गिरिजा कुमार माथुर की कविता "एशिया का जागरण" में सामंतशाही और साम्राज्यवाद के शोषण की तीव्र अनुभूति की अभिव्यक्ति स्वीकार करते हैं। तथा इस कविता को राजनीतिक विषयक उच्च-कोटि की कविता मानते हैं। उन्होंने माथुर में जीवन, सौंदर्य और प्रेम की तीव्र चाह देखा है। उनके अनुसार माथुर जी ने अपने कवि

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 86

जीवन का आरंभ प्रेम और सौन्दर्य के स्वप्नों से किया था उन्हें प्रेम और सौन्दर्य का कवि बताते हुए वे उनकी कविता में उपमानों के नए रंगों की अभिव्यक्ति, चमत्कार की उत्पत्ति, कोमल और मनोरम प्रतीकों की प्रस्तुति आदि को महत्व-पूर्ण दर्शाते हैं। "मंजीर", "नाश और निर्माण" दो कविता-संग्रहों में से मंजीर में उनके प्रथम रोमांटिक काल की रचनाएँ होने तथा सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध और उपमा चमत्कार होते हुए भी गहराई की कमी स्वीकार की है तथा "नाश और निर्माण" में रोमांटिक रंगीनी का नाश और जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति से नए कवि का निर्माण होने के कथ्य को प्रस्तुत किया है।

डॉ. शर्मा माथुर जी द्वारा मनोबल युद्ध और युद्धोतर काल की विभीषिका में क्षीण न होकर सोवियत की जीत के सन्दर्भ में लिखी कविता में जन-क्रांति के प्रति उत्साह का भाव देखते हैं और मध्य-वर्ग की आर्थिक कठिनाइयों के चित्रण को उनकी विशेषता बताते हैं। वे माथुर जी की अनेक कविताओं की पंक्तियों को उद्धृत कर जिन्दगी की चाह, संकट की छाया, अभावों का संकट, दंगों का चित्रण आदि की अभिव्यक्ति में भावों की प्रौढ़ता के साथ-साथ कवि के व्यंग्य में निखार की प्रस्तुति को उद्घाटित करते हैं और प्रौढ़ रोमांस में कवि द्वारा प्रौढ़ों के मन के घोड़ों की दौड़, पुराणपंथी कलाकारों की रूढ़िवादी दृष्टि की अभिव्यक्ति की है तथा उनकी कविता में जीवन की भावुकता, विशेष रूप से एशिया के जागरण में उभरकर साम्राज्यवाद का क्षय-काल, उसकी पराजय अवश्य मानने की दृष्टि देखी गई है।

डॉ. शर्मा ने माथुर को नए युग का वैतालिक बताया है और उनकी कविता में क्रांति के प्रत्युषकाल की अभिव्यक्ति हेतु उदात्त शब्दावली का प्रयोग करने छायावाद और प्रगतिवाद की परम्पराओं के श्रेष्ठ तत्व मिलने, देश के प्रति अपार प्रेम, प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रति घृणा, जनता की शक्ति में विश्वास, सहृदयता कवि कौशल आशा और उत्साह की संचारित शक्ति, क्रांतिकारी भावनाओं में युग की प्रतिध्वनि आदि विशेषतायें पाया जाने स्वीकार किया है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने कवि गिरिजाकुमार माथुर के काव्य-संग्रह का परिचय देते हुए उनकी काव्य-चेतना, युग-बोधता, मानव-जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति, यथार्थ-चित्रण, कलात्मक-सौंदर्य आदि विशेषताओं को उभारा है।

3.19 मुक्तिबोध साहित्य : आत्म-संघर्ष और रहस्यवादी रूझानों से ग्रस्त

डॉ. शर्मा मुक्तिबोध में मानसिक द्वन्द्व के साथ-साथ सौन्दर्य की भूख और शोषित-जनों से सहानुभूति स्वीकार कर उनके जीवन में सौन्दर्य प्रेम और विश्व मानव के सुख-दुख के मध्य संघर्ष देखते हैं। उनके अनुसार 1942 में मुक्तिबोध मार्क्सवाद के प्रभाव में आये और साल भर के प्रयत्न से पुरानी जड़ता समाप्त करने का प्रयास किया जिसमें वे असफल रहे। शर्मा जी का कहना है कि "जिन दिनों पंत जी अरविन्द दर्शन की ओर आकृष्ट हुए उन्हीं दिनों मुक्तिबोध की कविता में रहस्यवादी रूझान प्रकट हुआ है।"[1] उन्होंने

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 133

मुक्तिबोध की कविता "कल जो हमने चर्चा की थी" में कवि द्वारा किसी मित्र के साथ ज्वालामुखियों के भीतर पैठने और लावा के उद्गम तक पहुँचने का वर्णन करने की बात कही। शर्मा जी कबीर से प्रसाद तक रहस्यवादियों द्वारा इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी और कमल का वर्णन करने की बात व्यक्त करते हुए मुक्तिबोध द्वारा उक्त कविता में अभिव्यक्त सूर्यकन्या के परिचय के संदर्भ में प्रश्न उठाते हैं। उनका कहना है कि "अग्नेशका नाम सूर्य-कन्या के रूप से सार्थक है वैसे कर्म-निष्ठा जनकन्या भी है। सूर्यकन्या इड़ा, पिंगला, कुण्डलिनी और कमल के साथ मुक्तिबोध के रहस्यवादी स्वप्न में घुलमिल गयी।"[1]

डॉ. शर्मा मुक्तिबोध की दर्शन विषयक धारणा को अभिव्यक्त करते हुए रहस्यवादी ज्ञानबोध की शक्ति और नवीन चेतना को उजागर करते हैं और मुक्तिबोध का विकासमान ज्ञान से उकता जाने तथा रहस्यवाद के रूप में पूर्ण-ज्ञान प्राप्त करने की बात कहते हैं। मुक्तिबोध के साहित्य में उपन्यासों से ली हुई शब्दावली और अनेक बिम्ब व्यक्त होते हैं। शर्मा जी का कहना है कि "मुक्तिबोध बाहर की दुनिया में जितना ही मार खाते हैं उतना ही उनका जादू-प्रेमी भावुक और भोला मन रहस्यवाद की ओर दौड़ता है जो किसी अदृश्य शक्ति या रहस्य को प्राप्त करना चाहता है जिससे उनके जीवन की सारी असफलताओं का क्षोभ दूर हो जाये।" उनके अनुसार मुक्तिबोध का रहस्यवाद कबीर या रवीन्द्रनाथ के उस अप्रतिहत आनन्द प्रवाह की तरह नहीं है जो अन्तर्मन में रोके नहीं रुकता, जो निर्झर की तरह शिला-खण्डों को तोड़ता-हटाता हुआ प्रकाश में बह निकलता है। वे मुक्तिबोध में रहस्यवाद के अनेक परम्परागत प्रतीकों की व्याप्ति स्वीकार करते हैं जिसका सम्बन्ध

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद — पृ. 134

प्रकाश और आनन्द से रहा है।

किन्तु शर्मा जी पंत और अज्ञेय से भिन्न मुक्तिबोध के मन को अंधेरे से घिरा होने तथा अंधेरे में प्रकाश खोजते भटकते हुए और आनन्द की अपेक्षा दुख की अनुभूति करने की बात करते हैं। तथा पुराने कुँए, बावड़ी, खँडहर, वीरान, पठार, खड्ड, अँधेरी तंगगलियाँ, घनेबरगद, फूटा हुआ भैरों का मंदिर आदि को उनकी आत्मा के प्रतीक बताते हैं और साथ ही इसे रहस्यवाद की उलटबाँसी कहा है। क्योंकि डॉ. शर्मा ने मुक्तिबोध की कविताओं में चढ़ने की अपेक्षा उतरने का क्रम, प्रकाश की अपेक्षा अंधेरा, आनंद से अधिक वेदना को पाया है। और मुक्तिबोध का काव्यात्मक फणिधर अर्थात् प्रज्वलंत मन तम विशेषज्ञ रहा है उसे रक्तपान करने के लिए आह्वाहन करने के प्रसंगों को भी उभारा है। मुक्तिबोध के काव्य में पायी जाने वाली उस रहस्यवाद की उलटबाँसी का एक कारण मुक्तिबोध का समाज और ब्रह्माण्ड के रहस्य मनुष्य के उपचेतन में छिपे हुए होने में विश्वास करना बताया है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि सन् 47 के बाद मुक्तिबोध के मन पर फ्रायड और युंग के मनोविश्लेषण शास्त्र का असर गहरा होता है फलस्वरूप उनके उपचेतन का संसार अंधकारमय होने के कारण कवि द्वारा बाह्य दृश्य को आत्मसात करके वस्तु सत्य बनाने का प्रयास किया गया जो उनके उपचेतन का प्रतीक रहा। मुक्तिबोध का काव्यात्मक फणिधर स्वप्न देखते हुए अपना पथ खो जाता है। शर्मा जी कवि के आत्म-संघर्ष को उभारते हुए उनके आत्म-सम्वेदन को समाज के व्यापक-तर छोर छूने वाला बताते हैं। किंतु मुक्तिबोध की "भूल और गलती" तथा शून्य कविताओं में कवि द्वारा सार्त्र

की भाव-भूमि से अलग हटकर किर्केगार्ड और काफ्का के प्रदेश में विचरण करने की बात कहते हैं तथा चम्बल की घाटी का टीला आधा अस्तित्ववादी और आधा रहस्यवादी मानते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध का मन बारी-बारी से रहस्यवादी और अस्तित्ववादी की भूमिकाएँ पूरी करता है और टीले को आन्तरिक प्रकाश से जगमगाते देखकर मुक्तिबोध का मार्क्सवादी मन टोकता है। शर्मा जी इस टोकने के स्वर में काफ़ी तेजी और सर्वहारा का लहजा पाते हैं। और इस मार्क्सवादी मन को शांत करने के लिए मुक्तिबोध द्वारा अस्तित्ववाद, रहस्यवाद और मार्क्सवाद का अस्पष्ट समन्वय किया गया है। जो उनकी कविता "एक स्वप्न कथा" में देखा गया है। शर्मा जी बाह्य शोषण और आन्तरिक पाप से एक साथ मुक्ति पाने की कल्पना को अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद का समन्वय करना बताते हैं।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "मुक्तिबोध की अन्तरमुख दशाएँ हैं अन्तश्चेतना में डूबने के उनके प्रयास। ये दशाएँ गहनतर होती हैं बाहर की दुनिया में मार खाकर अपने भीतर समाज और ब्रह्माण्ड का रहस्य ढूँढने से। आत्मग्रस्तता का एक रूप है रहस्यवाद, दूसरा रूप है अस्तित्ववाद। आत्मग्रस्तता के बावजूद और उसे साथ लिये हुए मुक्तिबोध के आत्म-सम्वेदन समाज के व्यापकतर छोर छूते हैं, इसका अर्थ है वह रहस्यवाद और अस्तित्ववाद से मार्क्सवाद का समन्वय करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु यह समन्वय हो नहीं पाता।"[1]

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 142

शर्मा जी ने मुक्तिबोध को साहित्य और राजनीति की प्रगतिशील परम्परा के प्रति अत्यन्त जागरूक रहने वाले कवि माना है तथा उनके बहुभाषी ज्ञान, हिन्दी काव्य-साहित्य का प्रेम, मराठी संतों के वाङ्मय से परिचय आदि को उनका परम्परा-बोध मानकर उससे उनकी अभिव्यक्ति उनकी कविता "अंधेरे में" तीव्र रूप में होने की बात कही है। इसके अलावा डॉ. शर्मा मुक्तिबोध में अपने दायित्व से हटने, एकांत में समाज से अलग रहकर रहस्यवादी अथवा अस्तित्ववादी चिन्तन करने की जिद को अत्यन्त गहरा बताते हैं। उनके अनुसार साहित्य और राजनीति की परम्परा का बोध कवि के विवेक को तीव्र करता है इस विवेक को मुक्तिबोध की आत्मग्रस्तता सह्य नहीं है तथा विवेक के रंदे से निजत्व छीलकर आत्मग्रस्तता दूर करके मुक्तिबोध अपना नया व्यक्तित्व गढ़ने की कोशिश करते हैं।

शर्मा जी "अंधेरे में" कविता के अन्तर्गत गांधी जी से कहलाने के रूप में मुक्तिबोध की आत्मालोचन की प्रवृत्ति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति और नयी कविता की बुनियादी कमजोरी की आलोचना व्यक्त होने की बात कहते हैं। और पागल सिर फिरे व्यक्ति द्वारा आत्मोद्‌बोधमय होकर गीत गाने में, उसके स्वर की करुणता, सरसता और हृदयग्राहिता को अभिव्यक्त करने के उपक्रम को उद्‌बोदित कर उसे मुक्तिबोध के विवेक का स्वर बताया है। तथा इस आत्म-भर्त्सना-पूर्ण प्रखर स्वर की उत्पत्ति मुक्तिबोध के विवेक से होने और अन्य कवियों में इसका अभाव पाया जाना स्वीकार किया है। उन्होंने लेखक की अपराध भावना को सामाजिक दायित्व-बोध और अपनी आत्मग्रस्तता के एहसास से और त्रास की भावना

को समाज के वास्तविक संघर्ष से उत्पन्न माना है। तथा क्रांतिकारी संघर्ष के दौरान व्यक्तित्वांतर देखना मुक्तिबोध की समस्या बताया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध का आशय यह है कि जिसे वह ढूँढ रहे हैं वह पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं हुआ, अर्द्ध अभिव्यक्त होकर अस्फुट-सा आँखों से ओझल हो गया है नया व्यक्तित्व गढ़ने की क्रिया एक दिन में सम्पन्न नहीं होती गढ़ने की क्रिया में विघ्न पड़ता है जिस कल्पना-चित्र को देखकर वे मूर्ति गढ़ते हैं, वह कल्पना चित्र ही आँखों से ओझल हो जाता है इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति खोई हुई है, आत्म-सम्भावा भी है।[1] इसे शर्मा जी ने मुक्तिबोध के व्यक्तित्व का आदर्श रूप बताया है तथा उसमें ज्ञान का तनाव ही नहीं प्रेम की अतिशयता और सकर्मकता को देखा है। और उनके द्वारा अभिव्यक्त मनु को मनुस्मृति से भिन्न उनसे सर्वाधिक परिचित कामायनी का मनु बताया और मुक्तिबोध के काव्यांशों के अतिरिक्त कामायनी एक पुनर्विचार में अभिव्यक्त विचारों के अंशों को भी अभिव्यक्त कर डॉ. शर्मा ने इसकी पुष्टि की है।मुक्तिबोध द्वारा अभिव्यक्त मनु के रूप का विश्लेषण करते हुए उन्होंने मुक्तिबोध के व्यक्तित्व से उसकी विशेष साम्यता दर्शाते हैं। उनका कहना है कि "मनुष्य सब कुछ है जो मुक्तिबोध है और होना चाहते हैं। उनकी परम अभिव्यक्ति में सकर्मक-प्रेम की अतिशयता है, मनु में भी सकर्मक साहसशीलता और गत्यात्मकता है, मनु हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठे हैं, "अंधेरे में" कविता का रहस्यमय व्यक्ति मुक्तिबोध को तुंग शिखर के कगार पर बिठा देता है। इसी व्यक्ति के अनुरूप वह अपना निजत्व गढ़ते हैं। कविता की आन्तरिक संगति इस बात में है कि उसकी शुरूआत जिस

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 146

व्यक्ति के चित्रण से होती है उसका अन्त भी उसी के उल्लेख से होता है। आरम्भ में वह मुक्तिबोध को जगाता है, कविता के अधिकांश में इस जागरण के संघर्ष की कथा है, अन्त में वह जाग चुके हैं और उस परम अभिव्यक्ति को ढूँढ़ निकालते हैं अर्थात् अपने नये व्यक्तित्व के निर्माण में तत्पर होते हैं।[1]

शर्मा जी मुक्तिबोध की काव्य-रचना के प्रतीकों और चरित्रों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व की साम्यता को दर्शाते हुए उसका विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। तिलक, गाँधी, तोलस्तोय और प्रसाद की मानवतावादी धारा मार्क्सवादी प्रभाव को साथ लेकर उनकी आत्मग्रस्तता से टकराने के प्रसंग को उभारा तथा "अँधेरे में" कविता के ताने-बाने को आत्म-संघर्ष के सूत्रों से निर्मित बताया तथा इसे मुक्तिबोध का ही नहीं उनकी पीढ़ी के और बहुत से लेखकों का आत्म संघर्ष माना है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "इस संघर्ष में जब मुक्तिबोध का आत्मग्रस्त, आत्म-सम्मोहित मन कष्ट पाता है तब उनकी कविता में गहरी व्यथा प्रकट होती है। जब उनका विवेक इस मुग्ध मन की मान्यताओं पर प्रहार करता है तब उनकी व्यंग्य-प्रतिभा निखर उठती है।" इसके अलावा मुक्तिबोध द्वारा रहस्यवादी या अस्तित्ववादी चिंतन करते समय अकेले होने और सामाजिक संघर्ष और परिवर्तन की बातें सोचते समय आत्मीयों से घिरे होने की भी बात कहते हैं। और "एकभूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन" में में उनके द्वारा सामंती परिवार के आन्तरिक उत्पीड़न, हत्या और बलात्कार का चित्र खींचने तथा "चाँद का मुँह टेढ़ा है" कविता में पूँजीवादी व्यवस्था

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 148

की पोषक-संस्कृति पर तीव्र व्यंग्य करने जन-सामान्य से सहानुभूति का चित्रण करने तथा अशिक्षितों को भीड़ मानने वालों की हँसी उड़ाने के प्रसंगों को विशेष रूप से उभारा है। चूँकि डॉ. शर्मा के अनुसार "मुक्तिबोध में एक प्रवृत्ति चीज़ों को बढ़ा-चढ़ा कर भव्य रूप में देखने की और दूसरी प्रवृत्ति उन्हें छोटा, हीन और क्षुद्र बनाकर देखने की रही है। और वे इन दोनों प्रवृत्तियों से सतर्क होकर युद्ध करते हैं।"[1] इसके अतिरिक्त शर्मा जी यथार्थ को बदलने की समस्या और स्वयं को बदलने की समस्या मुक्तिबोध के लिए एक-दूसरे से सम्बद्ध होने की बात कहते हैं।

वे मुक्तिबोध के काव्य-साहित्य की समीक्षा करते हुए "मुझे याद आते हैं मेरे लोग", "चमक की चिनगारियाँ" और"जब प्रश्न-चिह्न बौखला उठे" कविताओं में अनेक ऐसे स्थल माने हैं जिनमें परिवार और पड़ोस के लोगों के प्रति मुक्तिबोध का गहरा स्नेह आत्म-विह्वल गेयता के स्वरों में फूट पड़ते हैं। और साथ ही कवि द्वारा नीजि जीवन में अत्याधिक दुःख उठाने पर भी परिवार, पड़ोस और देश के लोगों से आत्मीयता और प्रेम देखा गया है। शर्मा जी मुक्तिबोध के व्यक्तित्व को आत्म-ग्रस्तता के बावजूद अगरबत्ती की तरह स्वयं जलकर वातावरण को अथाह मस्ती से भरने वाला बताते हैं। और मुक्तिबोध के अपराजेय मन में निराला के राम की तरह स्नेह का सम्बल पाकर वर्षों तक मृत्यु से जूझने की शक्ति देखी है। तथा मुक्तिबोध की कविताओं में अनुभूति की गहराई, सुख-दुख, आशा-निराशा, आत्म-विश्लेषण और आत्म-उत्पीड़न की अवस्था में परिवर्तित मन की दशा को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता पाया है।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 149

परन्तु मुक्तिबोध की अनेक रचनाओं में यूरोपीय साहित्य की तरह उनकी कला को ॲलीगरी में मिलने वाली बताया है। जिसमें किन्हीं अमूर्त विचारों और भावनाओं के लिए मूर्त पात्रों और वस्तुओं को निश्चित किया जाता है। इसे डॉ. शर्मा घटिया किस्म की कला बताते हैं क्योंकि वस्तुओं और पात्रों के वर्णन में यथार्थ नहीं बल्कि अमुक विचारों और भावनाओं का बीज गणित प्रस्तुत किया जाता है।

किन्तु मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त बीज-गणित खटकता नहीं है क्योंकि उनका बीज-गणित सतही नहीं है यहाँ चित्रों की अभिव्यक्ति अन्तर्मन के धरातल से उभरती हुई मानी गयी है। शर्मा जी के अनुसार मुक्तिबोध का मन जहाँ-जहाँ भटकता है उन स्थलों में एक आन्तरिक साम्य है फैन्टेसी उनके लिए अभिव्यंजना का माध्यम मात्र नहीं है बल्कि स्वप्न उनके मन की सहज वृत्ति है। वह यथार्थ को स्वप्न चित्रों में बदल कर ही उसे समझते हैं। उन्होंने बाह्य संसार से झटके लगने से कवि मुक्तिबोध के स्नायुतंत्र में तनाव उत्पन्न होने और बीज रूप में व्याप्त रोग से त्रास के सपनों की सृष्टि होने की बात कही और साथ ही कवि की वेदना के स्त्रोतों को अत्यन्त गहरा बताया। डॉ. शर्मा का कहना है कि "मुक्तिबोध के मानसिक संघर्ष का एक कारण मार्क्सवाद के प्रति उनका गहरा आकर्षण तथा उसे पूरी तरह स्वीकार न कर पाने की विवशता थी। इस विवशता के पीछे उसी तरह की विचारधाराएँ और काव्य-प्रवृत्तियाँ थी जिसके प्रभाव से प्रयोगवाद और नई कविता के आंदोलनों का प्रसार हुआ था।"[1] इसके अलावा मुक्तिबोध की मार्क्सवादी विचारधारा से सम्बद्धता दर्शाते हुए शर्मा जी मानते हैं कि उनके लिए मार्क्सवाद एक ऐसी विचारधारा न थी जिसे वह आसानी से

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 168

स्वीकार कर लेते और असुविधा होने पर उतार कर फेंक देते। उनके लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न था वह कविता के लिए जीते थे और उनकी कविता की एक बुनियादी समस्या मार्क्सवाद से उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध की थी। शोषक वर्गों के प्रति उनकी घृणा मार्क्सवाद के अलावा उनके जीवन की परिस्थितियों से पैदा हुई थी। मार्क्सवाद की विरोधी प्रवृत्तियाँ उन्हें अपनी ओर खींचती थी और इनसे वह अपना पीछा न छुड़ा पाते थे। इसी कारण उनमें मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व देखा गया है। शर्मा जी के अनुसार मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष का कारण प्रसाद समेत उन अनेक लेखकों के प्रभावों का भीतरी टकराव है जिनके नाम उन्होंने ब्रह्मराक्षस में गिनाये हैं। मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष से किसी न किसी रूप में उनके युग के अधिकांश लेखक जुड़े हुए हैं उनके इस आत्म-संघर्ष को समकालीन कवियों की रचनाओं के संदर्भ में ही पहचाना जा सकता है।

मुक्तिबोध प्रयोगवाद से हटकर 1954 में इलाहाबाद से प्रकाशित "नई कविता" के आरम्भ के साथ शुरू हुए नई कविता के आंदोलन से स्वयं को अनेक नये कवियों की तरह जोड़ते हैं। और 1958 में श्रीकांत वर्मा और नरेश मेहता के सम्पादन में प्रकाशित "कृति" में मुक्तिबोध द्वारा नई कविता के पुराने आंदोलन का विरोध करने, नई कविता को उच्च मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग में विभाजित करने के प्रसंगों को उद्घाटित किया है। मुक्तिबोध के विकास की मंजिलों को व्यक्त करते हुए मुक्तिबोध द्वारा नई कविता का पक्ष लेकर अस्तित्ववाद का विरोध प्रगतिवाद की आधार भूमि से करते हुए उसकी आलोचना करने तथा प्रगतिवाद को एकांगी कहकर उससे स्वयं को पृथक रखने की प्रवृत्ति को भी प्रस्तुत किया। शर्मा जी

मुक्तिबोध की कविता और नयी कविता में अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - "एक साहित्यिक की डायरी" में "एक लम्बी कविता का अन्त" शीर्षक रचना में मुक्तिबोध ने युद्धोत्तर काल के अवसरवाद की ओर साहित्य सम्बन्धी प्रतिक्रियावादी स्थापनाओं की आलोचना की है तथा मुक्तिबोध ने प्रगतिवाद की आधारभूमि से अज्ञेय और साही की विचारधारा की भी आलोचना की है। मुक्तिबोध द्वारा प्रगतिवाद की आलोचना करने वालों से "काव्य : एक सांस्कृतिक प्रक्रिया" नामक निबन्ध में कहे गये वाक्यों में प्रेमचन्द के प्रलेस वाले व्याख्यान की प्रतिध्वनि सुनी है। अर्थात् मुक्तिबोध का स्वर प्रगतिवाद विरोधियों की आलोचना करने वाला रहा है। इसके अलावा मुक्तिबोध द्वारा लघु-मानव और आधुनिक भाव-बोध का उल्लेख करके सीधे विजयदेव नारायण साही और उनके सहयोगियों की आलोचना करने की प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण माना है परन्तु डॉ. शर्मा ने मुक्तिबोध द्वारा प्रगतिवाद से भिन्न उसके विरोध में नयी कविता का आंदोलन प्रस्तुत करने की भी बात कही है। उनके अनुसार मुक्तिबोध न तो राजनीतिक कविताएँ लिखने के विरोधी थे और न ही प्रगतिवाद को वास्तव में राजनीतिक कविताओं तक सीमित मानते थे। बल्कि वे प्रयोगवादीधारा को पश्चिमी देशों के विचारों से प्रभावित होकर प्रगतिवाद का विरोध करने वाली मानते हैं।

शर्मा जी मुक्तिबोध की विचारधारा का विश्लेषण करते हुए कहते हैं यदि मुक्तिबोध को अध्यात्मवाद या भौतिकवाद में किसी से संतोष होता तो वह उसका समर्थन और प्रतिपादन करते। परन्तु मुक्तिबोध की स्थिति कुछ भिन्न प्रकार की ही रही है। जैसे निम्न मध्यवर्ग का लेखक अध्यात्मवाद को उच्च वर्गों की विचारधारा मानता है और अपना वर्ग

छोड़ नहीं सकता इसलिए वह भौतिकवादी विचारधारा को भी पूरी तरह स्वीकार नहीं कर सकता अर्थात् वह अध्यात्मवाद या भौतिकवाद दोनों में से किसी को भी पूरी तरह स्वीकार नहीं करता बल्कि उसकी स्थिति द्वन्द्वात्मक बनी रहती उसी तरह की मानसिक स्थिति मुक्तिबोध की भी रही वे न पूरी तरह अध्यात्मवाद को स्वीकार कर सके और न ही भौतिकवाद को। वे मार्क्सवाद से जुड़े रहे इसी कारण उन्होंने प्रगतिशील तत्वों का समर्थन और उसके विरोधियों की आलोचना की है।

डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध की कविता "अंधेरे में" स्वाधीनता-आंदोलन की पृष्ठभूमि में नयी कविता लिखने वालों को प्रस्तुत करती है। परम्परा-बोध के कारण कवि में अपराध-भावना उत्पन्न होती है इस परम्परा के एक प्रतिनिधि महात्मा गांधी हैं। उन्होंने मुक्तिबोध द्वारा स्वाधीनता आंदोलन और महात्मागांधी के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है वह साही और नामवर सिंह के दृष्टिकोण से ठीक उल्टा माना है। "अंधेरे में" कविता राजनीतिक परम्परा का जो रूप प्रस्तुत करती है वह मुक्तिबोध की अपनी राजनीतिक समझ के अनुरूप देखा गया है। वे मुक्तिबोध के राजनीतिक विश्लेषण का यह दोष मानते हैं कि उन्होंने राजनीतिज्ञों को वर्गों से अलग देखा है किन्तु उनके विश्लेषण का मूल्यवान पक्ष यह है कि उन्होंने स्वाधीनता-आंदोलन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया। शर्मा जी के अनुसार "मुक्तिबोध और साही, नामवर सिंह ने भिन्न दृष्टियों से स्वाधीनता-संग्राम को देखा है, ये दृष्टियाँ एक-दूसरे की विरोधी है।"[1]

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 179

इसके अलावा शर्मा जी का मानना है कि मुक्तिबोध ने "कामायनी : एक पुनर्विचार" में प्रसाद और कामायनी की भर्त्सना अधिक प्रशंसा कम की है। इसका कारण खोजते हुए शर्माजी कहते हैं — कामायनी का मुख्य पात्र मनु मुक्तिबोध के अनुसार सामंत व्यवस्था के शासक वर्गों का पुत्र है तथा उसमें समस्त मानवीय दुर्गुण व्याप्त है। शर्मा जी मनु को सामंतवाद और पूँजीवाद से बढ़कर साम्राज्यवाद का प्रतिनिधित्व भी करने वाला पात्र बताते हैं। तथा मनु को प्रसाद के वैश्य-वर्ग का भी प्रतिनिधि माना है। और मुक्तिबोध के मनु के प्रति विचारों को बेहद उलझे हुए बताया साथ ही मुक्तिबोध द्वारा प्रसाद की आन्तरिक वृत्तियों का संबंध मनु से जोड़ने और श्रद्धा से असम्बद्ध रखने की प्रवृत्ति को भी प्रस्तुत किया है। तथा मुक्तिबोध का जयशंकर प्रसाद और कामायनी के प्रति द्वैत-भाव उनकी मनोरचना की जड़ में देखा है। मुक्तिबोध द्वारा कामायनी में प्रगाढ़ प्रेम और हृदय विदारक संघर्ष का सह-अस्तित्व देखने की प्रवृत्ति को उभार कर दोनों विशेषताओं का समायोजन मुक्तिबोध के पिता में देखा है और कामायनी एक पुनर्विचार में खीझ और चिड़चिड़ेपन की अधिकता को उभारा है।

शर्मा जी "अंधेरे में" कविता में राजनीतिक परम्परा के बोध के साथ-साथ साहित्य की परम्परा का बोध भी देखते हैं। क्योंकि कविता का नायक मूलतः राजनीतिक कार्यकर्ता नहीं बल्कि कवि है। उनके अनुसार मुक्तिबोध न तो राजनीति में दूसरे गांधी बनना चाहते हैं और न कविता में दूसरे जयशंकर प्रसाद। परन्तु उनकी आकांक्षा यह है कि जैसे गांधी ने देश की सेवा की, वैसे ही बदली हुई परिस्थितियों में वह भी देश की सेवा करे। शर्मा जी मुक्तिबोध का गांधी की अपेक्षा प्रसाद से प्रगाढ़ भावात्मक सम्बन्ध देखते हैं। तथा उनकी कविताओं में बाह्य प्रकृति को उनके अन्तर्जगत का अंग बनने की प्रक्रिया को उजागर करते हैं। उनके अनुसार

प्रसाद के भाव-जगत् उनकी चिंतन-पद्धति, काव्य-रचना-प्रक्रिया को मुक्तिबोध ने इस प्रकार आत्मसात किया था कि उसका विवरण मुक्तिबोध के अपने कवि व्यक्तित्व का विवरण बन जाता है। उन्होंने मुक्तिबोध को हर जगह अपने जीवन की परिस्थितियों, अपने अनुभव अपनी मनोदशाएँ ध्यान में रखते हुए प्रसाद को अपने ढंग से देखते हुए पाया है। शर्मा जी का मानना है कि निराला का संघर्ष स्थिति रक्षा का संघर्ष था किन्तु मुक्तिबोध ने प्रसाद के जीवन में भी उसी प्रकार का संघर्ष देखा और प्रसाद की रचना-प्रक्रिया से गहरा तादात्म्य स्थापित कर उस पर वह अपनी रचना-प्रक्रिया आरोपित करते हैं। शर्मा जी "अंधेरे में" कविता में साहित्य की गौरवशाली परम्परा के प्रतिनिधि रूप में तोल्स्तोय को और काव्य परम्परा के प्रतिनिधि रूप में प्रसाद को पाते हैं। उनके अनुसार मुक्तिबोध के लिए मनु प्रसाद का ही प्रतिरूप है इसलिए प्रसाद का उल्लेख करने के लिए मनु का नाम देना काफ़ी है।[1] साथ ही उन्होंने इस कविता की मूल समस्या व्यक्तित्वान्तर माना है। और "एक आत्म वक्तव्य" शीर्षक कविता में "अंधेरे में" कविता के प्रतीकों द्वारा स्वयं अपने व्यक्तित्व परिवर्तन की बात लेखक द्वारा कही गई है। शर्मा जी का कहना है कि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का व्यक्तित्व परिवर्तन मुक्तिबोध के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है, यह उनकी अपनी समस्या भी है, यह समस्या "एक आत्म-वक्तव्य" में है, "अंधेरे में" कविता में है। किन्तु "एक आत्म वक्तव्य" कविता उनका प्रायः सर्वांगीण प्रतिनिधित्व करती है पूर्णतः नहीं। इस दृष्टि से "अंधेरे में" कविता उनका प्रतिनिधित्व अधिक करने वाली कविता मानी गयी है। शर्मा जी व्यक्तित्व परिवर्तन की प्रक्रिया के विरोध में मुक्तिबोध की जिद का चित्रण "अंधेरे में" कविता में देखते हैं।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 187

डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध की मुख्य समस्या अपना वर्ग छोड़कर दूसरे वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित करना है। मुक्तिबोध के लिए उनका अपना संघर्ष नयी कविता का आत्म-संघर्ष बन जाता है। उन्होंने अपनी नयी कविता के लिए आंदोलन किया, पर नयी कविता की धारा को मोड़ने में वे असमर्थ रहे। उन्होंने अटकाव का एक बहुत स्पष्ट रूप मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति को माना है क्योंकि साधारण जनता और मुक्तिबोध की कविता के बीच यह अभिव्यक्ति बहुत बड़ी खाई रही है। उन्होंने मुक्तिबोध की कविताओं की दुरूहता का एक बहुत बड़ा कारण अपना निम्न-मध्यवर्गीय स्तर छोड़ने की कठिनाई को माना है। वे मुक्तिबोध के व्यक्तित्व में भीतरी तनाव का एक कारण उन पर अनेक भाववादी विचारधाराओं का प्रभाव मानते हैं और इनमें अस्तित्ववाद को एक बताते हुए उसमें अनेक विचारधाराएँ आकर घुल-मिल जाने की बात कहते हैं। शर्मा जी के अनुसार "अंधेरे में" कविता का नायक अपनी कायरता के लिए न केवल स्वयं को धिक्कारता है वरन् शहर में मार्शल लॉ लगाने के लिए स्वयं को जिम्मेदार ठहराता है। अतिशय दायित्व-बोध का ही यह दूसरा पहलू है अतिशय अपराध-बोध।[1] और मुक्तिबोध की बंगाल पर लिखी गई कविता में भी इसी को मुख्य विषय के रूप में देखा है।

इसके अलावा शर्मा जी मुक्तिबोध में हीन और उदात्त का अंतर्विरोध देखते हैं जो कभी एक व्यक्ति में दिखायी देता है और कभी दो के बीच। जब यह दो के बीच होता है तब एक मनुष्य देवता बन जाता है और दूसरा बौना रह जाता है। "अंधेरे में" कविता में महात्मा

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 197

गांधी के सामने मुक्तिबोध अथवा कथानायक के बीच की दूरी देवता और बौने मनुष्य के बीच का फासला हो जाता है। हीन और उदात्त का भेद केवल मानिकस नहीं शारीरिक भी होता है।...एक ओर अस्तित्ववाद का लघु मानव है, दूसरी ओर रहस्यवाद का विराट पुरुष।[1] मुक्तिबोध जिस मानव-मुक्ति का स्वप्न देखते हैं वह सामान्य वर्ग-शोषण से मुक्ति और मनुष्य की साधारण सम्भावनाओं और क्षमता का विकास नहीं है बल्कि वे मानव-आत्मा की पूर्ण सत्ता की आकांक्षा रखते हैं। शर्मा जी ने "ब्रह्मराक्षस" की पंक्तियों को उद्धृत कर अतिरेकवादी पूर्णता के संदर्भ में ही मुक्तिबोध की असामान्य बेचैनी को देखा है। उनका कहना है कि "अंधेरे में" कविता में जिस रहस्यमय व्यक्ति को मुक्तिबोध खोज़ रहे हैं वह उनकी संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिमाओं की पूर्ण अवस्था है।"[2] वे ब्रह्माण्ड और इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य की क्रियाओं का एक जगह सम्बद्ध होना रहस्यवाद मानते हैं। तथा मुक्तिबोध द्वारा "सुमित्रानन्दन पंत : एक विश्लेषण" में ऐतिहासिक अनुभूति को देशकाल से परे विश्व-व्यापी अनुभूति बना देने के प्रसंग को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार अज्ञेय के समान मुक्तिबोध की कविता में अस्तित्ववाद और रहस्यवाद एक-दूसरे के बहुत पास है। अन्तर यह है कि असुरक्षित जीवन के कवि मुक्तिबोध में जगत्पीड़ा का बोध कहीं अधिक गहरा है।[3] वे उनके मन और कविताओं पर योग सम्बन्धी बातों का प्रभाव देखते हैं। और गुहाओं के अंधेरे में चलना मुक्तिबोध के मन में कही योग की बातों से और त्रास-भावना से

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 202
2. वही, पृ. 203
3. वही, पृ. 207

सम्बद्ध माना है। उन्होंने मुक्तिबोध की मनोरचना को ऐसा माना है जिसमें विवेक और तर्क-बुद्धि उनके भावों और संवेदनों से टकराती है। तथा उनके व्यक्तित्व में किसी का सहारा पाने की प्रबल आकांक्षा देखी है।

शर्मा जी मुक्तिबोध की अनेक कविताओं का विश्लेषण करते हुए उनकी रचनाओं में एक उदात्त व्यक्तित्व के पुरुष को देखते हैं जो लेखक को प्रेरित करता है, उनके मन के दरवाजों को धक्का देता है, उसके दर्शन से उसकी स्मृति मात्र से कवि आनन्द-विह्वल हो उठता है उसे मुक्तिबोध का गुरु माना है जो उनकी कविता "अंधेरे में" दिव्य-पुरुष भव्य आजानुभुज रहा है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "मुक्तिबोध जैसा कवि जो आत्म-विश्लेषण के प्रति इतना जागरूक हो, जो अपने मन की असामान्य स्थितियों को देखता रहा हो, अवचेतन के प्रति उदासीन हो यह असम्भव है। मनुष्य के अवचेतन की भूमिका अनेक प्रकार की हो सकती है, इसकी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका काव्य-रचना के संदर्भ में देखी जाती है।"[1] जिसकी पुष्टि कवि द्वारा "एक मित्र की पत्नी का प्रश्न-चिह्न" कथा में व्यक्तित्व निर्माण में चेतन मन की अपेक्षा अवचेतन मन की भूमिका को अधिक महत्वपूर्ण मानने की धारणा से होती है।

उनके अनुसार मुक्तिबोध के लिए अंधकार कविता को नाटकीय बनाने का प्रभावशाली उपकरण मात्र नहीं है वह उस स्वप्न सरिता का अभिन्न परिवेश अन्धकार में डूबा हुआ है। इसी अन्धकार का उपयोग अधिक कौशल से "अंधेरे में" कविता में किया गया है। इस

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 212

कविता में मृत्यु दल शहर की अवचेतना का मूर्त रूप-सा लगता है। शर्मा जी "चम्बल की घाटी में" कविता में टीले द्वारा स्वप्न में कहे गये कथन का आशय वायु गुरु के समान मन पर आघात कर भाव राशि, मूल्यवान विचार, अवचेतन में संचित वस्तुओं को बाहर निकालना मानते हैं। उनके अनुसार टीला प्रस्तर रूप है जो कुछ मूल्यवान है वह पत्थरी ढाँचे में कैद है इस ढाँचे के टूटने से ही मुक्ति मिल सकती है। यह ढाँचा पूँजीवादी सभ्यता का है, वर्ग संस्कारों का है, उन निषेध-भावनाओं का है जो वांछनीय संस्कारों और विचारों का दमन करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ढाँचे के अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है। डाकू की सूरत टीले की सूरत से इसलिए मिलती है कि मध्यवर्ग और पूँजीपति वर्ग दोनों सर्वहारा से भिन्न एक ही सभ्यता के अन्तर्गत है। आत्मग्रस्त मध्यवर्गीय व्यक्तित्व के साँचे के टूटने पर ही नया व्यक्तित्व प्राप्त होगा। जैसे "अंधेरे में" कविता में व्यक्तित्व परिवर्तन मूल समस्या है वैसे ही "चम्बल की घाटी में" नामक कविता में। मुक्तिबोध ने आत्मग्रस्तता की आलोचना जैसे "अंधेरे में" कविता में की है वैसे ही यहाँ।[1] इसके साथ-साथ उनके काव्य में असामान्य मानसिक स्थिति की व्याप्ति भी स्वीकारते हैं। क्योंकि उनके अनुसार मुक्तिबोध की स्वप्नशीलता क्रमशः दुःस्वप्नों में बदलती जाती है और स्वप्नशीलता उनके स्वभाव का ऐसा अंग बन जाती है कि वह यथार्थ को स्वप्न में बदले बिना उसका चित्रण कर ही नहीं सकते। वे "मुझे पुकारती हुई पुकार" कविता में और "एक साहित्यिक की डायरी" में आवाज़ें सुनते हैं।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 216

डॉ. शर्मा सिजोफ्रेनिया से ग्रस्त व्यक्ति के समान मुक्तिबोध की कविताओं में मृत्यु की कल्पना और बिजली के झटके लगने आदि क्रियाओं को देखते हैं तथा तारसप्तक में प्रकाशित उनकी कविताओं में इस असामान्य मानसिक स्थिति का बोध होना स्वीकार करते हैं। वे मुक्तिबोध के जीवन की उत्तेजना को असाधारण कोटि का मानते हैं। और उनका कहना है कि मुक्तिबोध को "अंधेरे में" कविता के नायक से अलग करके देखना असम्भव है इस कविता में एक ओर वह निम्नवर्ग से अलग होकर सर्वहारा वर्ग की संगति में व्यक्तित्व रूपान्तरण की अपनी सामान्य समस्या का विवेचन करते हैं, दूसरी ओर वह अपने उत्तेजित त्रस्त मन की असामान्य अवस्था का चित्रण करते हैं।[1] अतः शर्मा जी ने मुक्तिबोध की कविता को त्रास और आनन्द की चरम स्थितियों को समान हीन भावना और निजत्व के उदात्तीकरण की भावना के अन्तर्विरोध से त्रस्त माना है। और मुक्तिबोध की कला के क्रमिक विकास को देखते हुए उनकी बाद की कविताओं में अपेक्षाकृत अधिक नाटकीयता पाते हैं। किंतु मुक्तिबोध को मूलतः आत्मगत भावों, मनोदशाओं और निकटवर्ती परिवेश के चित्रकार बताते हैं। और मुक्तिबोध की नाटकीय कविताओं में साधारणतः एक ही व्यक्ति बोलने और दूसरों की बातचीत उस वक्ता के माध्यम से प्रस्तुत करने की कला को उनकी कहानी-कला से मिलती-जुलती मानते हैं जिसका उदाहरण उनकी कविता "अंधेरे में" कविता के कथानक के कथन से प्राप्त होता है। तथा "एक लम्बी कविता का अन्त" नामक गद्य-रचना में आदि से अंत तक लेखक को ही बोलते देखा गया है। "कल जो हमने चर्चा की थी" कविता में चर्चा का पूरा विवरण कवि ही प्रस्तुत करता है। और

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 219

"ब्रह्मराक्षस" में भी यही क्रिया दिखाई देती है। मुक्तिबोध की इस कला को डॉ. शर्मा अंग्रेज कवि ब्राउनिंग की ड्रैमेटिक मनोलोग रचनाओं से मिलती-जुलती बताते हैं।

मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं में विभिन्न पात्रों का संघर्ष चित्रित न होकर मुख्य काव्य नायक का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित होता हुआ देखा गया और विभिन्न रचनाओं के कथानायक एक-दूसरे से सम्बद्ध देखे गये हैं। डॉ. शर्मा का मानना है कि जैसा उनका आत्म-केन्द्रित व्यक्तित्व है, वैसा ही आत्म-केन्द्रित उनका काव्य है। अपनी मनोदशाओं, अपने अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कवि का प्रधान लक्ष्य है। इसलिए नाटकीय रूप के बावजूद मुक्तिबोध की काव्य-भूमि मुख्यतः प्रगीत-भूमि है।[1] परन्तु "चाँद का मुँह टेढ़ा है" संग्रह की अनेक कविताओं का अध्ययन करते समय उनकी बिम्ब-योजना पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि बिम्बों का प्रतीकार्थ बौद्धिक स्तर पर बदलता रहता है किंतु बिम्ब स्वयं बहुत कम बदलते हैं। इसका कारण यह है कि बिम्ब चेतना के जिस स्तर पर उभरते हैं, वह बौद्धिक नहीं है अतः उन्होंने मुक्तिबोध की मनोरचना समझने में उनके काव्य-बिम्ब-योजना को सहायक माना है। इस दृष्टि से बंगाल के अकाल पर लिखी हुई उनकी कविता "अपने कवि से" का महत्व अन्यतम बताया है। इसके अलावा "व्यक्तित्व और खंडहर", "अन्तदर्शन", "अंधेरे में", "मुझे याद आते हैं" कविताओं के बिम्ब-योजना को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "मुक्तिबोध की आधार भूमि है अन्तः प्रकृति से साक्षात्कार, आत्म-चेतना का प्रत्यक्ष-ज्ञान। इसी के

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 247

अनुरूप वह बाह्य संसार का आभ्यन्तरीकरण करते हैं।[1] साथ ही उन्होंने मुक्तिबोध की काव्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उनकी कविताओं में बाहरी दुनिया को उनके भावदशा के अनुरूप नहीं पाया है बल्कि अनेक कविताओं में कवि द्वारा तटस्थ होकर बाह्य संसार का चित्रण करने की प्रवृत्ति को देखा है। और उनकी अनेक कविताओं को प्रतीक योजना के कारण यथार्थ चित्रण में कमजोर पाया है। उनके अनुसार मुक्तिबोध की रचनाओं का ढाँचा और काव्य-कौशल समान नहीं रहा है। परन्तु अद्भुत के चित्रण में कवि को सर्वाधिक सफलता मिली है। क्योंकि उनके दुःस्वप्नों में त्रास है तो अद्भुत वस्तुओं के चित्रण में उतना ही कुतूहल मिश्रित हास्य है। उनकी फैन्टेसी की विशेषता यह है कि अनेक वस्तुएँ फन्टेस्टिक रूप में, अतिरंजित, विकृत, हास्यास्पद होकर प्रस्तुत होती है। जिसे शर्मा जी ने यथार्थ चित्रण का एक तरीका बताया है। जिसमें बिम्बों और प्रतीकों की आवृत्ति, शब्दों की आवृत्ति, अर्थ की आवृत्ति देखी गई है तथा उनकी अधिकांश कविताओं में वक्तृत्व कला के विकास की संभावना स्वीकार की है। और शर्मा जी ने मुक्तिबोध की छन्द-योजना, उनके भाषण कौशल के संदर्भ में अनेक स्थानों निराला की छाप देखी है। उनका मानना है कि अन्य रचनाओं में वक्तृत्व-प्रवाह बहुधा एक ही गति से चलता है, "अंधेरे में" कविता की यह विशेषता है कि उसका प्रवाह एक-सा नहीं है उसमें बड़ी विविधता है। उसमें विभिन्न शैलियों, विभिन्न कोटियों की वक्तृत्व कलाओं का मिश्रण है। इसके साथ ही शर्मा जी मुक्तिबोध की कला के विकास को दर्शाते हुए कहते हैं -- निस्सन्देह मुक्तिबोध की कला उनकी मृत्यु तक निरन्तर विकसित होती आई थी। उनके आत्म-संघर्ष

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 249

के अनेक स्तर है। एक स्तर है निम्न वर्ग की भूमि को छोड़कर सर्वहारा वर्ग से तादात्म्य स्थापित करने का। दूसरा स्तर है मन के दुःस्वप्नों, पाप-बोध, मृत्यु-चिंतन, असामान्य मानसिक स्थिति से निकलकर स्वयं को और संसार को वस्तुगत रूप से देखने का। तीसरा स्तर है अपनी काव्य-कला को निरन्तर विकसित करने का। ...मुक्तिबोध का साहित्य उस व्यक्ति का साहित्य है जो जीवन की अनिवार्य विवशताओं के बीच निरन्तर अपने विवेक के अनुसार अपने व्यक्तित्व के निर्माण में प्रयत्नशील रहता है।[1]

शर्मा जी मुक्तिबोध की नये अवसरवाद के विकास को पहचानने वाले बुद्धिजीवी मानते हैं । और उनके द्वारा अनेक बार साम्राज्यवाद का उल्लेख करने तथा उसकी प्राप्ति वाद-विरोधी स्थापनाओं का खण्डन करने की प्रवृत्ति को भी देखा है। और मुक्तिबोध द्वारा स्वाधीनता-आंदोलन और छायावादी कविता के प्रति सकारात्मक रुख अपना कर गद्य-पद्य दोनों में लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और जयशंकर प्रसाद की भूमिका को महत्वपूर्ण और नई राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण माना है। मुक्तिबोध पर विभिन्न प्रभावों का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी कहते हैं -- "मुक्तिबोध ने सन् 36 के आस-पास लिखना शुरू किया इस समय उन पर बर्गसों जैसे भाववादी विचारकों का प्रभाव था। 1942 में उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा अपनाई किंतु इस समय भी उन्होंने जो कविताएँ लिखी वे भाववादी विचारधाराओं के प्रभाव से मुक्त नहीं है। इस संदर्भ में उनकी कविता "अपने कवि से" का महत्व असंदिग्ध

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 250

माना। इसके कवि द्वारा आधुनिक मानव के भीतर से टूटने और पराजित होने तथा सहस्रशीर्ष विराट् पुरुष के रूप में काव्य में लघुमानव और महामानव के अन्तर्विरोध को सक्रिय देखते हैं।

डॉ. शर्मा "अँधेरे में" कविता के नायक को आजानुभुज दिव्य पुरुष के आदर्श रूप में कल्पित देखे हैं तथा इस दिव्य पुरुष को मुक्तिबोध की खोई हुई अस्मिता नहीं बल्कि व्यक्तित्व की असम्भवा उदात्त कल्पना बताते हैं। तथा उनकी अनेक कविताओं में व्यक्तित्व के रूपान्तरण को मुख्य समस्या के रूप में चित्रित देखा है। और मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष को सामाजिक दृष्टि से अपनी वर्ग स्थिति छोड़कर अन्य वर्ग से तादात्म्य स्थापित करने की कठिनाई से उत्पन्न माना। उनके अनुसार व्यक्ति को केन्द्र बनाने के कारण मुक्तिबोध अस्तित्ववाद का प्रभाव आसानी से ग्रहण करते हैं। शर्मा जी ने मुक्तिबोध के काव्य में जगह-जगह मिलने वाले अपराध-बोध के अतिरंजित रूप को मार्क्सवादी दायित्व बोध से भिन्न माना है। और कवि के व्यक्तित्व में अस्तित्ववादी प्रभाव के बिना भी दुःस्वप्न, पाप-बोध, त्रास की भावना, मन की असामान्य स्थिति का विद्यमान होना स्वीकार किया। उन्होंने मुक्तिबोध के अवचेतन जीवन शक्ति का उनके काव्य रचना से गहरा सम्बन्ध बताया। तथा उनकी समस्त भाववादी प्रवृत्तियों का चेतना में मार्क्सवाद से टकराव से उत्पन्न असंतुलन के संतुलन की स्थापना के असफल प्रयत्न के कारण निरंतर आक-संघर्ष की स्थिति को देखा है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि मुक्तिबोध को उनकी कविताओं से अलग करके देखना सम्भव नहीं है वो मूलतः अपने ही संघर्ष को, अपने

अनुभवों को, समस्याओं को अपनी कविता में चित्रित करते हैं। ये समस्याएँ निम्नमध्य वर्ग को छोड़कर अन्य वर्ग के साथ देने की नहीं है इनमें मुक्तिबोध की अपनी मानसिक उलझनें, मन की असामान्य दशाएँ भी शामिल हैं। वे विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करते हैं और आत्म केन्द्रित होते हुए भी वह समाज को आँखों से ओझल नहीं होने देते। उनकी स्वप्नशीलता और प्रतीक-योजना यथार्थ-चित्रण को एक हद तक कमज़ोर करती है किन्तु उनकी कला उसके विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रही।

इसके साथ ही शर्मा जी मुक्तिबोध द्वारा मार्क्सवाद की सीमाओं का अतिक्रमण न करने तथा उसकी सीमाओं में रहते हुए सर्वहारा-वर्ग की क्रांतिकारी भूमिका स्वीकार करने की बात कहते हैं। और उनकी कविता में छापेमार लड़ाई के संकेत, किसानों का अभाव, पूँजीवादी व्यवस्था से समझौता करने की आलोचना आदि की व्याप्ति देखी है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा मुक्तिबोध के काव्य की विशेषताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कर उनकी साहित्यिक देन और सीमाओं को स्पष्ट करते हैं। और उनके द्वारा प्रयुक्त नये कलात्मक प्रयोग फैण्टेसी के प्रयोग में हास्य-व्यंग्य, करुण-भावों की अभिव्यक्ति विविधता आदि को महत्वपूर्ण बताया। उन्हें रहस्यवादी, क्रांतिकारी और रोमाण्टिक बताते हुए उनके द्वारा निम्न मध्यवर्ग के शहरी जीवन से अनेक उपकरण लेने की प्रवृत्ति को उभारते हैं। भाषा और छन्द की शिथिलता होने पर भी उनकी रचनाओं में मस्ती और भाषा-छन्द की गतिशीलता को उद्घाटित किया और उनकी कविता को असुरक्षित जीवन की कविता कहते हुए उसमें भाव-बोध की अस्थिरता और विचारों की उलझन को देखा है।

3.20 शमशेर का काव्य : रूमानियत और रीतिवाद का संगम

डॉ. रामविलास शर्मा ने शमशेर बहादुर सिंह के आत्म-संघर्ष के विश्लेषण हेतु उनकी कविताओं की समीक्षा करते हुए उनके द्वारा छायावादियों से भी अधिक ज्ञानातीत सत्ता में दृढ़ आस्था को व्यक्त करने, उनके काव्य में मुक्तिबोध की तरह सूर्य-बिम्ब बिखरे होने और अज्ञेय की अपेक्षा मौन का अनुपात कम होना स्वीकार किया है और अज्ञेय के नाम लिखी कविता में कवि को स्वभावतः एक कालक्षण में सौन्दर्य की मौन अमरता की अनुभूति होने की बात कही। वे शमशेर की दुनिया को अज्ञेय से कम मुक्तिबोध से अधिक सुरक्षित बताते हैं उनके अनुसार शमशेर का मन मुक्तिबोध की भाँति रहस्यवाद से उलझा हुआ नहीं है बल्कि उनमें कीट्स और गिरिजाकुमार माथुर की-सी सघन ऐन्द्रियता, सौन्दर्य की उड़ती नजर, पार्श्व-बिम्बों का प्रयोग आदि विशेषतायें दर्शाते हुए उनकी कविता में रूमानियत और रीतिवाद का संगम देखा है।

उनका कहना है कि रूप-रस-गन्ध का मोह शमशेर के रूमानी मिजाज का सबूत देता है उनके कवि संस्कार रीतिवादी कविता और छायावादियों में पंत की रचनाओं से प्रभावित रहे हैं। वे शमशेर द्वारा रीतिवादी कविता में उर्दू की प्रेम-श्रृंगार वाली ग़ज़लें विशेष रूप से पसन्द करने तथा ग्रहण करने की प्रवृत्ति को रीतिवादी या छायावादी प्रभाव से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित मानते हैं और इसका कारण काव्य-भाषा के पद से ब्रजभाषा को हटाने के कारण रीतिवाद का खड़ी-बोली में जडे न

जमा पाना और उर्दू का रीतिवादी काव्य खड़ी-बोली में रचा जाना बताया है। शर्मा जी शमशेर द्वारा छायावादी कवियों में पंत और निराला को विशेष रूप से पढ़ने पर भी रीतिवादी संस्कारों का निर्मूल न होने की बात कहते हैं इसके अलावा शमशेर को उन कवियों से प्रभावित बताया जिनके गुरु एजरा पाउंड और टी.एस. इलियट रहे हैं। वे शमशेर के रचनाकाल का आरम्भ छायावाद का ह्रास काल तथा बच्चन और नरेन्द्र शर्मा के उत्तर छायावादी काव्य का समय से मानते हैं। उनके अनुसार अंग्रेज़ी का उत्तर छायावादी काव्य-बोध शमशेर के मन को सहज ही छूता है शमशेर मार्क्सवाद से प्रभावित होने के साथ-साथ नया-साहित्य के सम्पादक भी रहे हैं। शर्मा जी के अनुसार शमशेर का आत्म-संघर्ष उनके मार्क्सवादी विवेक और उत्तर छायावादी इलियट एजरा पाउंड वाले काव्य-बोध का संघर्ष रहा है।[1] इसके साथ ही शमशेर और मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष में काफी अन्तर मानते हुए शर्मा जी शमशेर में मुक्तिबोध की तरह रहस्यवाद सम्बन्धी उलझन का अभाव, अधिक आत्म-मुग्ध, अस्तित्ववादी प्रभाव का अभाव दर्शाते हैं तथा शमशेर के आत्म-संघर्ष को उत्तर छायावादी काव्य-बोध द्वारा व्याप्त मानते हैं। उनके अनुसार शमशेर के मन में मार्क्सवाद और इलियट-एजरा पाउंड को लेकर होने वाला द्वन्द्व सन् 47 से पूर्व और पश्चात् दोनों समय समाहित रहा है। और दूसरा सप्तक में संकलित कविताओं के साथ दिये गये वक्तव्य को शमशेर का आत्म-संघर्ष व्यक्त करने वाला बताया है। वे शमशेर में लोक-कलाकारों के समान काव्य-कला का अभाव देखते हैं। और उन्होंने शमशेर की काव्य-कला की विशेषतायें उभारते हुए गति, लय, ताल और शिल्प पर उनकी अद्भुत पकड़ को प्रस्तुत किया तथा उन्हें अक्षर के मर्म का ज्ञाता बताया है।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 92

डॉ. शर्मा का कहना है कि "मध्यवर्ग को लेकर शमशेर के मन में वैसे ही भाव है जैसे मुक्तिबोध के मन में। जितना ही प्रबल यह हीन भाव है उतना ही भव्य वह अपने मन में श्रमिक-वर्ग का चित्र बनाते हैं -- ठीक मुक्तिबोध की तरह।[1] परन्तु शर्मा जी शमशेर के रहस्यवाद का सम्बन्ध इलियट, एजरा पाउंड से होने के कारण उनका गिंसबर्ग तक पहुँचना उभारते हैं तथा उनके द्वारा भुवनेश्वर पर लिखी कविता को उद्धृत कर गिन्सबर्ग वाले चित्र से उसकी तुलना करते हैं। और इस कविता में शमशेर के रहस्यवाद को अगोचर से तुलना कर उनमें पुराने रहस्यवादी कवियों के समान भाव-विह्वलता, दार्शनिक चिंतन और बौद्धिक गुरुत्व का अभाव देखते हैं। वे शमशेर के रहस्यवाद की तुलना में रूप-रस-गंध वाले संसार के उनके पार्श्व बिम्बों को ज्यादा सुहावने बताते हैं। तथा इनमें निराला-सा ओज और घनत्व का अभाव होने पर भी नफासत, सौन्दर्य की परख और गोचर संसार का सुकुमार सम्वेदन की व्याप्ति स्वीकार करते हैं।[2]

शर्मा जी शमशेर को मूलतः यथार्थवादी कवि मानते हुए उनके हृदय से करुणा का स्त्रोत वह निकलने की प्रवृत्ति को उजागर करते हैं जिससे शमशेर की भुवनेश्वर पर रचित जैसी कविताओं की रचना होना स्वीकार करते हैं तथा इसे यथार्थवाद का एक रूप मानते हैं जिसकी ओर हिन्दी की नयी कविता का विकास होने की संभावना को व्यक्त किया है और इस कविता में शमशेर अति यथार्थवादी नहीं बल्कि यथार्थवादी कलाकार बताये गये। इस कविता में कवि द्वारा पार्श्व बिम्बों से संतुष्ट

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ.94
2. वही, पृ.97

न होकर भुवनेश्वर का भरापूरा चित्र प्रस्तुत करने की बात कही है और यथार्थ के चित्र के साथ भाव सध जाने से शिल्प में निखार आने के प्रसंग को उभारा है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "वसुधा" में कविता किसी भूमिका के बिना नाटकीय और मार्मिक ढंग से भुवनेश्वर को सीधे सम्बोधित करते हुए शुरू होती है। किन्तु "कुछ और कविताएँ" में संकलित भूमिका में कवि द्वारा स्वयं से अधिक बात करने का दोष पाया है परन्तु साथ ही शब्दों की मितव्ययता, संक्षिप्त भाषण, वाक्य-रचना और विरामों में शिल्प का मुलम्मा भी देखा है। शर्मा जी भाषा की गरिमा की बढ़ौतरी हेतु प्रयुक्त परिवर्तन, नये शब्द जोड़ने और व्याख्या का विकेन्द्रीकरण करने से कविता में त्रुटियाँ उत्पन्न होना स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि लोकगीतों की दुनिया से शमशेर जितना ही दूर है, उतना ही असफल उनका लोकगीतों का अनुकरण है। गिन्सबर्ग के लम्बे वाक्यों का अनुकरण उन्होंने ज्यादा सफलता से किया है।[1]

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा केदारनाथ अग्रवाल और शमशेर की काव्य प्रतिभा में अन्तर दर्शाते हैं कि केदार की सधी निगाह वस्तु के मर्म में उतरती है और उसका कौशल वस्तु के मर्म-ग्रहण के साथ सँवरता जाता है और केदार की कविता अपने निष्कम्प भाव-बोध के कारण सहज ही लोकगीतों का सौन्दर्य अपने अन्दर समो लेती है परन्तु शमशेर की रचनाओं में काव्य-कौशल को लेकर उधेड़बुन ज्यादा है और लोकगीत, ग़ज़ल, मुक्त-छन्द

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 99

आदि किस्में, सफलता-असफलता आदि देखा गया है और उनकी उलझनों का कारण उनके द्वारा रीतिवादी रूमानी सौंदर्य-बोध से मार्क्सवादी विवेक की संगति न बैठा पाना तथा रीतिवाद और रूमानियत से हटकर मानव करूणा की गहरी अनुभूति द्वारा अभिव्यक्त कविता को मार्क्सवाद के अनुरूप न समझना दर्शाते हैं। शर्मा जी ने शमशेर की भुवनेश्वर वाली कविता को उद्धृत करने का कारण उस कविता को आत्म सम्मोहन के दायरे से बाहर नव्य रहस्यवाद से बचती हुई, दूसरे की जिन्दगी को सहानुभूति से चित्रित करने में चमत्कृत एक अनुपम आधुनिक कविता होना व्यक्त किया है। शमशेर की दृष्टि को उजागर करते हुए वे अधिकांश कवियों की तरह उनके द्वारा नव्य रहस्यवाद को आधुनिकता का पर्याय मानने की दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं और उनके कौशल प्रेमी मन द्वारा उन्हें दिये गये धोखे का श्रेष्ठ उदाहरण भुवनेश्वर वाली कविता का परिवर्तित और परिवर्धित रूप को माना है किन्तु हर जगह शमशेर का अपना रंग देखा है।

3.21 प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य-साहित्य : विरोधी वृत्तियों से विकसित

डॉ. शर्मा के अनुसार "सन् 1938 से शुरू होने वाले सबसे पहले दौर की नई कविता छायावाद के प्रगतिशील तत्वों को अपने में समेट कर आगे बढ़ी। इस कविता के समर्थन में जिस आलोचना का विकास हुआ वह छायावाद की सीमाओं को स्वीकार करती हुई उसकी प्रगतिशील भूमिका पर गर्व करती है। वह प्रगतिवाद के विरोध में आगे आने वाली काव्य-धाराओं का डटकर मुकाबला करती थी।[1] उन्होंने नयी कविता का इतिहास

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 305

प्रगतिशील कविता के इतिहास से सम्बद्ध माना है। क्योंकि छायावादी कविता में आरंभ से ही भाषा, भाव, शिल्प आदि से परिपूर्ण एक अन्य धारा विकसित हो रही थी जो यथार्थवादी धारा मानी गई है। इस यथार्थवादी-धारा का द्वितीय महायुद्ध के समय, उसके बाद और स्वाधीनता आंदोलन के नये उत्थान के समय विशेष रूप से विकास देखा गया है। डॉ. शर्मा ने अमेरीका और ब्रिटेन के द्वारा कम्युनिस्ट विरोधी अभियान चलाये जाने की परिस्थिति में व्यक्ति की कुंठा और घुटन को मुख्य विषय बनाकर यथार्थवाद के विरोध में प्रयोगवादी कविता का प्रसार करने के प्रसंगों को उभारा है। और प्रयोगवादी कविता द्वारा छायावादी ह्रासकाल की अस्वस्थ रूझानों को अपनाने तथा स्वस्थ रूझानों का विकास प्रगतिशील कविता में होना देखा है।

किन्तु कालान्तर में नयी कविता का विकास प्रयोगवाद का सहारा लेकर तथा उससे विच्छेद करते हुए सन् 53 में प्रसारित हुआ इस नयी कविता की धारा ने स्वाधीनता आंदोलन की विरासत को और छायावाद के साथ प्रगतिशील कविता की उपलब्धियों को नकार दिया है। किंतु कम्युनिस्ट पार्टी में उत्पन्न विसर्जनवादी प्रवृत्तियों से इस धारा को बल प्राप्त हुआ है। परन्तु युद्धकाल में और उसके बाद के क्रांतिकारी जन-उभार के दौरान यथार्थवादी-धारा के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निराला और केदारनाथ अग्रवाल की मानी है। डॉ. शर्मा ने सन् 48 से 56 तक के समय को नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल द्वारा राजनीतिक दृष्टियों और शिल्प की समानता के आधार पर यथार्थवाद का विकास करने तथा अपने यथार्थवाद को स्वाधीनता से पूर्व के जन-आंदोलनों वाले

यथार्थवाद से सम्बद्ध करने के कार्य को विशेष महत्व दिया है। और प्रगतिशील कविता के उतार चढ़ाव को इसके बाद का बताया है। साथ ही उन्होंने सन् 45 से 56 तक कम्युनिस्ट पार्टी की कार्य नीतियों में आये परिवर्तनों को दर्शाते हुए पूँजीवादी विचारधारा के विकल्प के रूप में वामपंथी विचारधारा के प्रसार को नयी कविता के समर्थकों द्वारा रोकने से कविता की यथार्थवादी-धारा के विभिन्न कठिनाइयाँ उत्पन्न होने तथा वामपंथी आंदोलन के प्रचार में बाधाएँ आने की बात कही है। परंतु इन परिस्थितियों में केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन द्वारा निराला के रिक्त स्थान की पूर्ति करते हुए जनता का साथ देने और कविता की यथार्थ-वादी धारा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की गई है। उनके अनुसार प्रयोगवाद और नयी कविता ने विषय-वस्तु पर आवरण डालकर उसे शिल्प की समस्याओं तक सीमित कर दिया किन्तु प्रयोगवादियों को काव्य-क्षेत्र में क्रांति करने तथा नये मानवतावाद की नींव डालने और कविता को सभी रूढ़ियों से मुक्त कर देने का भ्रम रहा है। और उनके गलत सिद्धांत तथा उनके भ्रष्ट प्रयोग उन्हें कविता के हरे-भरे उद्यान के बदले चारों ओर खंडित गद्य के टुकड़ों से पटे हुए रेगिस्तान में ले जाते हैं। ऐसे में कुछ लेखकों को नई कविता में खोखलापन होने का आभास भी होता है।[1] परन्तु शर्मा जी ने नयी कविता का आंदोलन प्रगतिशील साहित्य के विरोध में चलाया हुआ माना है। और व्यक्ति-मूल्य का नारा लगाकर जनवादी आंदोलनों का विरोध करने पर भी दस वर्ष के भीतर ही नयी कविता की धारा का मूल्यहीन हो जाना व्यक्त किया है।

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 295

डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद नयी कविता के सूत्रधारों द्वारा तथा कम्युनिस्ट पार्टी के विघटन के पश्चात् कुछ मार्क्सवादियों द्वारा प्रगति विरोधियों से संयुक्त मोर्चा बनाकर प्रगतिशील काव्य-धारा का विरोध किया गया और ऐसे में केदार और नागार्जुन को उपेक्षित कर मुक्तिबोध को प्रतिष्ठित करने का कार्य किया गया है। नयी कविता प्रयोगवाद से भिन्न होकर एक रूढ़ अर्थ में सन् 1954 में इलाहाबाद से "नई कविता" नामक संकलन के प्रकाशन से प्रयुक्त होने लगी। डॉ. शर्मा ने आरम्भ में नई कविता का प्रयोगवाद से नाता, प्रयोगवाद पर अज्ञेय के एकाधिकार के कारण टूटने और पृथक धारा के रूप में प्रवाहित होने की बात कही है और नई धारा को बहुत कुछ अस्तित्ववाद से प्रभावित बताया। और इस नई कविता को प्रभावित करने वाले अस्तित्ववाद से मुख्य टक्कर मार्क्सवाद की होने तथा नयी कविता लिखने वालों में शमशेर बहादुर सिंह और मुक्तिबोध जैसे मार्क्सवादी कवियों की उपस्थिति को उजागर किया है। किंतु डॉ. शर्मा नयी कविता के विकास को उद्घाटित करते हुए तारसप्तक से पहले उसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार सन् 21 से 35 तक निराला का स्वर हिन्दी को नया लहजा, नया मुहावरा देने वाला रहा है। तथा पंत द्वारा अपने साहित्य में मध्यवर्ग,श्रमजीवी कृषक, मार्क्स गांधी साम्राज्यवाद जैसे विषयों की अभिव्यक्ति की गई है। तथा पंत ने ग्रामीण असंस्कृतजनों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति प्रकट की और ग्राम्या की रचनाओं में पल्लव छोड़कर भारत माता ग्रामवासिनी के समीप गये। इसके अलावा डॉ. शर्मा ने निराला की अनामिका और तारसप्तक के बीच हिन्दी कविता के विकास की दृष्टि से ग्राम्या और "मिट्टी और फूल" कविता-संग्रह को अत्यन्त महत्व दिया है।

तथा नरेन्द्र शर्मा द्वारा लोकगीतों का स्वर साधने में सफल होने और छायावाद की भाव-भूमि छोड़कर यथार्थ-चित्रण की ओर बढ़ने की प्रक्रिया को उजागर किया। साथ ही कवि केदारनाथ अग्रवाल को छायावादी कवियों से भिन्न स्तर पर अपनी कविता का विकास करने वाला कवि बताया है। उनकी कविताएँ "रेती पर ही पाव पसारे", "बैठा हूँ इस केन किनारे" तथा "चंद गहना से लौटती बार" जैसी कविताओं के प्रकाशित होने का भी उल्लेख किया है। किन्तु गिरिजाकुमार माथुर के कविता संग्रह "मंजीर" की भूमिका निराला द्वारा लिखी जाने और छन्द-रचना, शब्द-चयन और ऐन्द्रिय मूर्ति-विधान की कला निराला द्वारा सीखने तथा उसे अपने भाव-बोध के अनुरूप निखारते हुए मन की अतृप्त उत्कण्ठाओं को अभिव्यक्त कर यथार्थवाद की दिशा में विकास करने के चिह्नों को उभारा है। अज्ञेय की काव्य रचनाओं की अभिव्यक्ति का रूप दर्शाते हुए उनकी कविता "द्वितीया" में हिन्दी काव्य-क्षेत्र के यथार्थवाद का नाना रूपों में अवतरित होने, स्पष्टता-पूर्वक अपराध भावना व्यक्त करने वाली कविता लिखने तथा शब्द-चयन पर छायावादी शैली का रंग अधिक होने के प्रसंगों को उजागर किया है। और अज्ञेय को पंत-निराला की अपेक्षा प्रसाद से अधिक प्रभावित बताया। किंतु नेमिचन्द्र जैन में वैराग की भावना की अधिकता और उसमें प्रेम की व्याप्ति होने तथा भारत-भूषण अग्रवाल द्वारा पंत की तरलता को अपनाये जाने की भी अभिव्यक्ति की है।

डॉ. शर्मा पंत द्वारा छायावाद से विदा होते समय अज्ञेय नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल द्वारा छायावादी शैली में काव्य-रचना का अभ्यास करने की बात कहते हैं। उनके अनुसार निराला द्वारा

खजोहरा और कुकुरमुत्ता जैसी रचनाओं में बोलचाल की शैली नये यथार्थवाद चिन्तन के अनुरूप प्रयुक्त हो रही थी तथा खजोहरा में निराला द्वारा रवीन्द्रनाथ की प्रसिद्ध कविता विजयिनी पर व्यंग्य करने के प्रसंगों को दर्शाया है। और प्रभाकर माचवे द्वारा विशाल भारत में "चलता दर्शन" शीर्षक से प्रकाशित कविताओं को इम्प्रेशनिस्ट कहा है। डॉ. शर्मा के अनुसार पंत, निराला, नरेन्द्र की अपेक्षा प्रभाकर माचवे सन् 41 तक गांधी-वादी विचारधारा और मैथिलीशरण की भावधारा के अधिक निकट रहे हैं। किंतु मुक्तिबोध छायावादी शैली में काव्य रच रहे थे। और इससे भी भिन्न भाव-बोध वाली भिन्न शैली में शमशेर द्वारा कवितायें लिखी जा रही थी। शर्मा जी नयी कविता के विकास का विश्लेषण करते हुए 80-81 के आस-पास नेमिचन्द्र जैन, भारत-भूषण अग्रवाल मुक्तिबोध आदि की विचारधारा बदलने और मार्क्सवाद की ओर उन्मुख होने की प्रक्रिया को देखते हैं। और सन् 43-44 में पंत, नरेन्द्र, केदार, शमशेर द्वारा विकसित काव्य परम्परा के विकास के प्रवाह में तारसप्तक को एक लहर माना है। वे तारसप्तक के कवियों द्वारा यथार्थवादी ढंग से लिख रहे यौन-जीवन में विवाहित-जीवन की रंगिनी और अतृप्त प्रेम की कुण्ठा दर्शाते हैं। उन्होंने गिरिजाकुमार माथुर और नेमिचन्द्र जैन द्वारा प्रकृति और प्रेम विषयक अभिव्यक्ति करने तथा भारत भूषण की इस क्षेत्र में सबसे दुर्दशा होने के प्रसंगों को उभारा और साथ ही प्रेम और प्रगतिशील विचारधारा में कोई आन्तरिक विरोध न होने की बात कही। किंतु तारसप्तक के कवियों द्वारा कुछ समस्यायें स्वयं गढ़ लेने तथा कुछ उनकी सामाजिक स्थिति और उनकी आकांक्षाओं के द्वन्द्व से उत्पन्न बताते हुए कहते हैं "उनकी सामाजिक स्थिति मध्यवर्ग के साधारण वित्त

लोगों की थी, आकांक्षा जन-क्रांति द्वारा सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन करने की थी। इस अन्तर्द्वन्द्व के प्रति मुक्तिबोध को सबसे अधिक सचेत माना है।"[1] तथा शिवमंगल सिंह सुमन द्वारा "मास्को अब भी दूर है", "बंगाल का अकाल" आदि रचनाओं में ओज-पूर्ण वक्तृत्व कला का परिचय देने की कला को देखा।

डॉ. शर्मा तारसप्तक से पहले और बाद की अनेक प्रगतिशील कविताओं में लाल फौज की अभिव्यक्ति भौड़ी तुकबन्दी और निरर्थक शब्द-जाल द्वारा करने की कला को व्यक्त किया है। और अधिकांश प्रगतिशील मध्यवर्गीय कवियों द्वारा कविता में अपने को सर्वहारा कल्पित करके मध्यवर्ग को गालियाँ देने तथा अपनी कविताओं में कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक कार्यक्रम को ढालने का प्रयत्न देखा है। वे प्रभाकर माचवे की कविताओं को उद्धृत कर उनकी रचना में की गई भाषा विषयक अशुद्धियों को उभारते हैं और शिल्प की दृष्टि से नई कविता पर और साठोत्तरी नई कविता पर उनका यथेष्ट प्रभाव देखते हैं। प्रभाकर माचवे द्वारा केदारनाथ अग्रवाल के कविता-संग्रह "युग की गंगा" की की गई आलोचना की समीक्षा करते हुए उन्होंने दोनों की गद्यात्मकता और प्रगतिशीलता में अन्तर को उद्घाटित किया है। और माचवे को केदार की कविताओं से अधिक भूमिका में व्यक्त विचारधारा से प्रभावित बताया है। उनके अनुसार "उन दिनों नई कविता समाजवाद और यथार्थवाद वाली कविता को ही कहते थे।"[2]

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद — पृ. 21।
2. वही, पृ. 24

इसके अलावा उन्होंने केदारनाथ अग्रवाल के रंग से मिलते रंगों की अभिव्यक्ति करने और जन-जीवन से अति-निकट से परिचित होने वाले एक प्रतिभाशाली कवि के रूप में त्रिलोचन शास्त्री को देखा है। तथा उनके द्वारा नई कविता को पुरानी कविता से भिन्न रूप में दर्शाने की धारणा का समर्थन किया।

तारसप्तक के बाद "नाश और निर्माण" कविता-संग्रह के प्रकाशन के साथ ही गिरिजाकुमार माथुर को उस मंजिल तक पहुँचने की बात कही जहाँ मुक्तिबोध नेमिचन्द्र जैन पहुँच चुके थे तथा नरेन्द्र शर्मा तारसप्तक से पहले ही पहुँच चुके थे। गिरिजाकुमार माथुर द्वारा व्यथा की गहराईयों की थाह लेने तथा उपमानों-प्रतीकों से काव्य को नयी अभिव्यंजना शक्ति देने के कारण उनकी ऐसी रचनाओं को यथार्थवाद के अन्तर्गत माना है। क्योंकि माथुर जी के यथार्थ-बोध और राजनीतिक चेतना में निखार आ चुका था। डॉ. शर्मा के अनुसार "नरेन्द्र शर्मा के बाद गिरिजाकुमार माथुर ने बड़ी समर्थ राजनीतिक कविताएँ लिखी थी जो अपनी चित्रमयता में अद्वितीय थी। और विकास की यही दिशा मुक्तिबोध की थी किंतु उनका आत्म-संघर्ष औरों से विकट रहा है तथा मुक्तिबोध में यह अन्तर्विरोध तीव्र होने के कारण विघटन का रूप ले लेता है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि "मुक्तिबोध का आत्म-संघर्ष एक विभाजित व्यक्तित्व का आन्तरिक संघर्ष था। यह संघर्ष अनेक स्तरों पर अनेक परस्पर विरोधी प्रेरणाओं, आवेगों और आस्थाओं के बीच था। मुक्तिबोध अपने जीवन में बहुत ही विनम्र निःस्वार्थ और परदुखकातर थे साथ ही अहंकार की मात्रा उनमें निराला से कुछ ही कम थी।"[1]

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद --- पृ. 26

और उनमें स्वरति और आत्म-सम्मोहन की भावना गिरिजा कुमार माथुर से अधिक और अज्ञेय से कुछ कम देखी है। वे मुक्तिबोध में सामाजिक परिवर्तन के मार्क्सवादी ढंग और नजरूल इस्लाम के अतिमानवतावादी या अराजकतावादी स्वर को भी मुखरित पाते हैं। क्योंकि वह समाज-व्यवस्था से विद्रोह करने के साथ-साथ अपने से भी विद्रोह करते हैं। तथा उनमें आत्म-विश्वास और पराजय का भय समान रहा है। वे जीवन के उल्लास के साथ-साथ मृत्यु की विभीषिका से भी आकृष्ट होते हैं। "व्यक्तित्व और खण्डहर" के साथ दिए हुए नोट में मुक्तिबोध द्वारा व्यक्तित्व के विकेन्द्रित होने का उल्लेख करने तथा अवचेतन से उसका सम्बन्ध जोड़ने की बात कहने के प्रसंगों को उद्धृत किया है।

डॉ. शर्मा मुक्तिबोध के विभाजित व्यक्तित्व के सभी तत्व और उनके कवित्व की अनेक मूल भंगिमाएँ तारसप्तक में विद्यमान होना स्वीकार करते हैं। उन्होंने मुक्तिबोध के विभाजित व्यक्तित्व की वेदना को मात्र मुक्तिबोध की न मानते हुए निराला के साहित्य के अनेक प्रसंगों को उद्धृत कर दोनों कवियों में समानता को दर्शाया है। तथा नयी कविता के तारसप्तक के बाद के अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति तक के रूप का विश्लेषण करते हुए "नाश और निर्माण", युग की गंगा", "बेला"और "नये पत्ते" कविता-संग्रहों को उस काल की उल्लेखनीय रचनाएँ बताया है। और नयी कविता के विकास को दर्शाते हुए कवियों के अपने मानसिक द्वन्द्व के अलावा मूल संघर्ष संकल्प और परिस्थितियों का माना है।

3.22 केदार की कविता : क्रांतिकारी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का काव्य

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केदारनाथ अग्रवाल के साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन कर उन्हें प्रगतिशील साहित्य के विकास की परम्परा का प्रतिनिधि कवि के रूप में उभारते हैं। उनके अनुसार केदार का प्रथम कविता "संग्रह "युग की गंगा" भारतीय स्वाधीनता से पूर्व प्रकाशित हुआ है। इस काव्य-संग्रह में संकलित रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व द्वितीय महायुद्ध के बाद स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय जनता में आये क्रांतिकारी आंदोलन की गहरी छाप प्रस्तुत करने में रही है। डॉ. शर्मा के अनुसार "प्रगतिशील कविता की जिस शक्तिशाली धारा के प्रतिनिधि केदार और नागार्जुन हैं उसका गहरा सम्बन्ध सन् 46 की क्रांतिकारी चेतना से रहा है।"[1] वे "कहे केदार खरी-खरी" में संकलित चौदह कविताओं और 1947 की तीन कविताओं को "युग की गंगा" की राजनीतिक पृष्ठभूमि बताते हैं। उन्होंने केदार की कविताओं में भारतीय जनता का स्वाधीनता संघर्ष, सामंत विरोधी संग्राम का महत्व, हिंसा-अहिंसा की अभेदता, मजदूर-संघर्ष आदि विशेषताओं की अभिव्यक्ति को देखा है। केदार की "शपथ" कविता में जनवादी सरकार के निर्माण की अभिलाषा और "अंग्रेजीपियानो" में एशियाई जनवादी क्रांति की प्रगति तथा साम्राज्यवाद के नाश की अभिव्यक्ति स्वीकार की है। केदार ने अपनी कविताओं के माध्यम से अमरीकी साम्राज्यवाद के खतरों, डालर कि

---

1. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 32

स्थिति, एटमबम से डराने की अमरीकी भीरू प्रवृत्ति और अमरीकी साम्राज्यवाद की हार का उल्लास, क्रोध और हर्ष-भाव मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया है।

डॉ. शर्मा बांग्लादेश के मुक्ति-संग्राम पर रचित कविता में अमरीकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध वियतनामी जनता के संघर्ष का अन्य देशों के स्वाधीनता आंदोलनों पर पड़े प्रभाव को उभारते हैं। तथा केदार द्वारा लोक और आलोक का प्रदर्शन करने, प्रगतिशील लेखकों में व्याप्त विसर्जनवादी रुझानों को उभारने और साम्राज्य-विरोधी क्रांति की अपूर्णता तथा राष्ट्र के आत्म-सम्मान हेतु उसकी आवश्यकता प्रस्तुत करने के प्रसंगों को उद्‌घाटित किया है। और साथ ही केदार द्वारा अपनी कविताओं में जनक्रांति की प्रेरणा, क्रांतिकारीजन उभार का अभाव, मजदूरों की दारुण स्थिति और पीड़ा की अभिव्यक्ति, श्रमिकों का आह्‌वाहन, किसानों की अदम्य-शक्ति पर विश्वास आदि विशेषताओं को प्रस्तुत करने की बात कही है। शर्मा जी के अनुसार केदार की निष्ठा क्रांति के प्रति कालान्तर में कम नहीं हुई बल्कि और बढ़ी ही है। वे केदार की कविताओं में प्रलेस के विघटन और कम्युनिस्टों द्वारा सन् 1946 में असली और नकली आज़ादी से सम्बद्ध प्रश्न उठाने का प्रमाण देखते हैं। "युग की गंगा" में केदार द्वारा कांग्रेसियों का अंग्रेज़ों के प्रति प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए "राष्ट्रीय प्रतिध्वनि" में किये गये व्यंग्य को महत्वपूर्ण माना है। और भारतीय शासन तंत्र में बढ़ते भ्रष्टाचार और जन-विकास के बाधक रूप को केदार द्वारा अपनी कविताओं में उभारने के प्रसंग प्रस्तुत किये। शर्मा जी के अनुसार न्याय व्यवस्था के केन्द्र कचहरी से केदार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। और उन्होंने

इस व्यवस्था की लगातार आलोचना की है। केदारनाथ द्वारा अमीर खुसरों की शैली को आधार बनाकर राजनीतिक कविताओं की रचना करने की प्रवृत्ति को शर्मा जी ने विशेष रूप से महत्व दिया है। प्राचीन कवियों के भाव, उनकी शब्द-योजना अपनाकर केदार द्वारा व्यक्त गहरे व्यंग्य का भी परिचय प्रस्तुत किया है। वे केदार की कविताओं में बिहारी की प्रतिध्वनि, बृजभाषा की कोमलकांत पदावली का उपयोग तीखे व्यंग्य के लिए तथा तुलसीदास की शब्दावली का प्रयोग देखते हैं।

केदार शासन तंत्र के प्रभाव से मुक्त होकर उनके कार्यों की आलोचना करते हैं और उनकी रचनाओं में पूँजीपतियों, नेताओं प्रशासकों के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण और शासन-तंत्र के परिवर्तन पर जोर मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में पुनरूत्थानवादी अतीत की ओर भागने की प्रवृत्ति, जनता के पिछड़ेपन, उसके अंधविश्वासों को अभिव्यक्त किया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि कानपुर के मजदूरों से लेकर बाँदा जिले के किसानों तक से परिचित कवि केदार जन-जीवन को रूमानियत की चादर से ढंक नहीं देते बल्कि वे अपनी कविताओं में जन-सामान्य के पशुतर जीवन के चित्रों को प्रस्तुत करते हैं। उनके द्वारा अपनी कविताओं में स्वीकार किये गये विवशता के भाव में विद्रोह छिपा रहा है। डॉ. शर्मा केदार की अनेक राजनीतिक कविताओं का प्रचारात्मक बताते हुए उसकी रचना और सम्बन्ध जन-आंदोलन मानते हैं तथा इस प्रकार की रचनाओं में सरसता और कलात्मकता केदार की कविताओं की विशेषता रही है। तथा लोक-प्रचलित कविता के रूपों को अपनाते हुए उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति की शैली को लोक रुचि के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है। जिसके कारण केदार द्वारा व्यक्त किसान

का दृढ चरित्र, आत्म-विश्वास, अपराजेय रूप श्रेष्ठ राजनीतिक रचनाओं का विषय बन पाया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार केदार की चेतना मूलतः किसान की चेतना रही है। और भारतीय जनता की क्रांतिकारी चेतना और गतिविधियों की संगति केदार के प्रगतिशील कवि रूप के अभ्युदय काल की विशेषता रही है। शर्मा जी केदार की कविता को कथाकार प्रेमचन्द की विरासत का क्रांतिकारी विकास माना है और केदार की छोटे किसान के प्रति गहरी सहानुभूति होने के साथ-साथ उनकी कवि-चेतना को मार्क्सवाद के ज्ञान से पुष्ट होने और उनका प्रतिनिधि गाँव का लाहोर होने आदि प्रसंगों को उद्‌घाटित करते हैं। उन्होंने केदार की कविताओं में किसान अपने संपूर्ण परिवेश सहित उपस्थित होने की पुष्टि करते हुए "कमसिन-मेरा गाँव" कविता को उदाहरण माना है। और केदार को उगते सूरज के कवि मानकर उस सूरज को मनुष्य के श्रम का सूरज बताया है। शर्मा जी के अनुसार केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविताओं में श्रम करते हुए मजदूरों के चित्र प्रस्तुत कर "वह तोड़ती पत्थर" की परम्परा को विकसित किया है। उन्होंने केदार की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में बड़ी सुकुमार संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति तथा किसान जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण "युग की गंगा" और "लोक और आलोक" में संकलित कविताओं में व्यक्त होने के प्रसंगों को उभारा है। और साथ ही "छोटे हाथ" कविता को श्रम की अभिव्यक्ति की सबसे अच्छी कविता बताया है। शर्मा जी ने कवि के श्रम और किसान के श्रम को एक ही उद्‌देश्य से प्रेरित माना है। केदार द्वारा अवकाश भोगी वर्ग के निकम्मेपन को असह्य करते हुए अँगर को उसका प्रतीक बना कर जमींदार,

सूदखोर महाजन धनी किसान, धार्मिक अंधविश्वास आदि की आलोचना करने की प्रवृत्ति को उभारा है। जिसका वास्तविक रूप केदार की अनेक कविताओं में देखा है। उन्होंने केदार की कविताओं में कवि की बड़ी उदात्त भूमिका के चित्रण को उभारा है और उनका कहना है कि केदार जिस तरह श्रमिक जनता से सम्बद्ध है उसी तरह हिन्दी की काव्य परम्परा से सम्बद्ध है। कवि-श्रम शासन के सृष्टा हैं, कर्मठ युगवादी हैं इसलिए कवि रूप में केदार अजेय हैं।"[1]

इसके अलावा डॉ. शर्मा ने केदार के साहित्य में नयी कविता के सूत्रधार तत्वों की वास्तविकता को उभारते हुए कवि की शक्ति पर अपनी अमिट आस्था व्यक्त की है। और केदार द्वारा कविता के माध्यम से क्षणवाद की अभिव्यक्ति करने वाली कविता की आलोचना करने की प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने केदार द्वारा हिन्दी साहित्य को प्रगति से विमुख करने वाली प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों, व्यक्तिवादी विकृतियों की आलोचना करते हुए कवि-जीवन के हर दौर में कविताएँ लिखने के प्रयास की अत्यन्त सराहना की है। और हिन्दी कविता के अन्तर्विरोधों को समझने में उनका यह आलोचनात्मक योगदान माना है। इसके अतिरिक्त केदार द्वारा अवसरवादी रूझानों की सफलता-पूर्वक आलोचना करते हुए प्रगतिशील कविता की परम्परा से सम्बद्ध रहने की बात स्वीकार की है। क्योंकि डॉ. शर्मा के अनुसार केदार हिंदी की जीवन्त काव्य-परम्परा से जुड़े रहे हैं। केदार के कविता-संग्रह "लोक और आलोक" में केदार की "नागार्जुन के बाँदा आने पर" कविता में

---

1. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 52

केदार द्वारा 1946 के पश्चात् के सामाजिकपरिवेश की आलोचनात्मक अभिव्यक्ति को उजागर किया है। जिसे डॉ. शर्मा ने केदार द्वारा नागार्जुन के साथ अपने मैत्री के सामाजिक मूल्य को उजागर करना माना है। और इसे सामंत विरोधी संघर्ष में जनता का साथ देने वाले दो कवियों की मैत्री बताया है। किंतु डॉ. शर्मा ने केदार की उदासी का कारण जनता में क्रांतिकारी चेतना की कमी, सन् 46 जैसी जन-आंदोलन का अभाव को माना है। तथा केदार की ऊब का कारण हिन्दी प्रदेश का राजनीतिक पिछड़ापन बताया।

डॉ. शर्मा के अनुसार केदार भारत की अपराजेय किसान चेतना और उसके जीवन्त प्राकृतिक परिवेश के कवि हैं। केदार की सामाजिक विचारधारा की छाप उनके प्रकृति-चित्रण की कविताओं पर दिखाई देती है। शर्मा जी ने निराला की तरह केदार के लिए क्रांति एक उद्दाम प्रवाह होने की बात कही। वे केदार को किसान की साम्यवादी चेतना और प्राकृतिक उल्लास के सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने वाले कवि मानते हैं क्योंकि वह राजनीति के स्तर से और गहरे उतर कर वह अपने देश की जनता के सूक्ष्म आदि संस्कार सूत्रों से बँधे हुए हैं। शर्मा जी केदार की कविताओं की मौलिकता को हिन्दी कविता की महान् उपलब्धि मानते हुए लिरिक कविता में महाकाव्य का घनत्व अनूठा होने की बात कहते हैं। उनका कहना है कि "कहीं-कहीं ऐसा लगता है, केदार ने जान-बूझकर निराला की प्रतिध्वनियाँ अपनी कविता में संजोयी है, अपनी एकदम भिन्न शब्द-योजना और वाक्य-रचना में वैषम्य और समानता एक साथ प्रस्तुत होते हैं।"[1]

---

1. प्रगतिशील कविता और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 62

शर्मा जी केदार की कविताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए निराला के जीवन संघर्ष का सार तत्व शक्ति-पूजा में समाहित होने और केदार द्वारा उसमें सन् 46 के जन-संघर्षों की स्मृति जोड़ देने की बात कहते हैं। उन्होंने केदार के सामाजिक विद्रोह को उनके प्राकृतिक प्रेम से समन्वित किया है। तथा केदार की कविता को मानवीय संस्कारों को निखारते हुए महायुद्ध विरोधी प्रेरक शक्ति के रूप में अभिव्यक्त होने के प्रसंग को विशेष महत्वपूर्ण माना है। केदार ने अपनी कविता में प्रकृति के विभिन्न प्रपंचों के बीच सम्बन्ध स्थापित किये हैं। केदार की व्यंग्यात्मक रचनाओं में शर्मा जी "देवताओं की आत्म-हत्या" को अनुपम बताते हैं। और इस कविता का सारा वातावरण शेक्सपियर के नाटक "मिड समर नाइट्स ड्रीम" के समान माना है। इसके साथ ही डॉ. शर्मा निराला, भवभूति और शेक्सपियर को नैश जागरण के कवि मानते हुए केदार की कुछ कविताओं में इस प्रवृत्ति की व्याप्ति सिद्ध करते हैं। और केदार की आंचलित प्रकृति का महत्वपूर्ण घटक केन मानते हैं। सूरदास की तरह केदार को जीवन की स्वीकृति, आनन्द और उल्लास का कवि बताया है। शर्मा जी के अनुसार केदार की आंचलिक प्रकृति से उनका तुम एकात्म है तथा केदार वाम चेतना के आंचलिक कवि है उनकी आंचलिक प्रकृति से देशकाल की व्यापक भावनाएँ वैसे ही जुड़ी हैं जैसे इसी कोटि की सूरदास की भावनाएँ ब्रज से जुड़ी हैं।[1]

डॉ. शर्मा केदार की कविताओं से वामचेतना से परिपूर्ण पंक्तियों को उजागर कर उनमें नये यथार्थवाद वक्रभंगिमाओं से परिपूर्ण कविताओं को निराला के छायावादी गीतों की शैली के अनुरूप बताते हैं। तथा उन्होंने केदार की कविताओं में प्रकृति का सौन्दर्य, हिन्दी की

---

1. प्रगतिशील कविता और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 71

काव्य-परम्परा और केदार का दाम्पत्य-प्रेम समन्वित होने के प्रसंगों को व्यक्त किया और एक ही कविता में प्रकृति का प्रेम, कविता का प्रेम और पत्नी का प्रेम के संगम को देखा है। वे "हे मेरी" कविता से पंक्तियाँ उद्धृत कर केदार की प्रेम सम्बन्धी कविता को उनकी राजनीतिक कविता से कहीं बहुत गहरे जुड़ी हुई बताते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार जैसी निष्ठा देश की जनता के प्रति है, वैसे ही अपने जनपद की धरती के प्रति, और जीवन संगिनी के प्रति भी रही है। केदार की कविता में पके फल का स्वाद है, धरती आकाश के बदले दो व्यक्तियों के अस्तित्व की ऐसी अनुभूति है जिसमें मिलने की जरूरत नहीं, कुछ कहने की जरूरत नहीं।[1]

शर्मा जी केदार का जीवन वाक्य संसार को क्रिया-कर्ता-कर्म से परिपूर्ण करने वाला मानते हैं तथा "बैठा हूँ इस केन किनारे" केदार की 1935 में प्रकाशित कविता को हिन्दी कविता में नये यथार्थवाद की शुरूआत बताते हैं और केदार द्वारा अपनी कविताओं में भद्र-व्यवहार के खिलाफ विद्रोह की अभिव्यक्ति को उभारकर निराला और केदार की यथार्थपरक काव्य-भूमि को एक ही माना है। शर्मा जी के अनुसार केदार ने निराला से यथार्थ-जीवन का चित्रण, भाषा का ओज, घनीभूत भाव-शक्ति आदि सीखा है। तथा "केन किनारे" से "युग की गंगा" तक केदार ने यथार्थवाद का विकास किया था और दबे हुए असंतोष से लेकर जन-संघर्षों के खुले समर्थन तक काव्य-धारा की गति निर्धारित की है। केदार की कविताओं में तीन मुख्य विषयों सामाजिक-यथार्थ, प्राकृतिक परिवेश श्रृंगार और प्रेम का आपसी सम्बन्ध बड़ा गहरा रहा है।

---

1. प्रगतिशील कविता और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 75

शर्मा जी केदार की "युग की गंगा" में अभिव्यक्त क्रांतिकारी उभार का बाद की कविताओं में अभाव देखते हैं और राजनीतिक दृष्टि से "युग की गंगा" तथा "लोक और आलोक" की एक ही आधार भूमि स्वीकार की है। जनता के पिछड़ेपन, उसकी बेबसी की अभिव्यक्ति का युग की गंगा, लोक और आलोक और बाद की रचनाओं में क्रमशः विकसित रूप देखा है। डॉ. शर्मा के अनुसार "सन् 46 की अधूरी असफल क्रांति के बाद केदार अपने आस्था के स्त्रोत की खोज करते हुए नयी शक्ति पाकर आदम्य उत्साह के निखार को चेतना की निचली पर्तों में श्रम का महत्व और सूर्य का प्रकाश को एकाकृत रूप में प्रस्तुत किया है तथा लोक और आलोक नाम को सार्थक किया है।"[1]

शर्मा जी केदार द्वारा काव्य-रचना के क्रम में जनता की विवशता को देखकर उनके मन में खिन्नता का भाव उत्पन्न होना वास्तव में युग की गंगा के बाद केदार की कवि-चेतना के विकास की नयी मंजिल बताया है और ऐसा ही परिवर्तन उनकी श्रृंगार और प्रेम की कविता में देखा है। उन्होंने केदार की विशुद्ध राजनीतिक कविताओं में उनका व्यंग्य-कौशल प्रदर्शित होने तथा अन्य कविताओं में निराला की तरह व्यंग्यात्मक कथनी की अभिव्यक्ति स्वीकार की है।

डॉ. शर्मा ने केदार की कविताओं की समीक्षा और विचारों का विवेचन एक साथ किया है। तथा "बौद्धिकता और कविता" नामक निबन्ध में केदार द्वारा प्रगतिशील काव्य-धारा में निराला के

---

1. प्रगतिशील कविता और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 80

योगदान करते हुए मुक्तिबोध के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों को सही बताया है। शर्मा जी नये पत्ते और युग की गंगा को 1945-47 के क्रांतिकारी संघर्षों में विकसित होने वाली आम आदमी की मानसिकता को व्यक्त करने वाली रचनायें बताया है। उनके अनुसार केदार की रचनाओं में आत्म-संघर्ष की कमी नहीं है किन्तु यह आत्म-संघर्ष बाहर के वर्ग-संघर्ष से पृथक नहीं है। केदार की विचार-धारा का समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए शर्मा जी केदार द्वारा मार्क्सवाद को दृढ़ता से ग्रहण करने और उसके बारे में उनकी समझ और निखरने की बात कही। अर्थात् केदार ने मार्क्सवाद को भरपूर साहस से अपनाया है।

केदार की कविताओं में विषय-वस्तु, काव्य-रूपों और शैली की विविधता मिलती है शर्मा जी के अनुसार केदार की मूल प्रेरणा एक स्फुर्त गीतों के रचनाकार की प्रेरणा है। ऐसा रचनाकार कविता को गढ़ता नहीं, वह उसकी चेतना को जिन्दा तहों के बहुत नीचे स्वयं आकर ग्रहण करके ऊपर आ जाती है।[1] उन्होंने केदार को रूमानी गीतकारों की अन्तर्मुखी वृत्ति से भिन्न बाह्य संसार से सम्बद्ध कवि माना है और उनकी लिरिक कविता को भावात्मक हृदयोद्गार नहीं बल्कि बौद्धिक रूप से परिपक्व कवि के भाव-बोध की उपज बताया है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा का कहना है कि "केदार उदात्त के कवि हैं, महाकाव्यों वाले उदात्त के कवि हैं, वैसे महाकाव्य तो क्या उन्होंने खण्डकाव्य भी नहीं लिखे, लम्बी कविताएँ भी कम हैं, जो है उनमें

---

1. प्रगतिशील काव्य-धारा और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 87

वक्तृत्व कला है, फैलाव है, उदात्त का घनत्व नहीं। केदार की निजी, विशिष्ट बोध की वैयक्तिक चेतना इसी उदात्त के घनत्व द्वारा व्यंजित होती है।[1] उन्होंने केदार के काव्य में औदात्य तत्व की खोज़ करते हुए उसमें वक्तृत्व कला, फैलाव, वैयक्तिक चेतना आदि तत्वों को उभारा है। साथ ही कविता में धीमा स्वर, गति धीमी, गेयता का गुण, विन्यास परिवर्तन, उदात्त की अभिव्यंजना का साधन रूप, साधारण भाषा का प्रयोग, शब्द-योजना, अपमान और कविता की गति को महाकाव्यों की शैली जैसा असाधारण और उदात्त तत्व दर्शाये हैं।

केदार की कविता में व्यक्त आंचलिकता का सम्बन्ध राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता दोनों से देखा है। और उनकी भावात्मक प्रतिक्रिया को संवेदनों का अनुसरण करने वाली नहीं माना है बल्कि भाव, विवेक और सम्वेदना के सामंजस्य को केदार की शक्ति का स्त्रोत बताया है। शर्मा जी ने जहाँ एक ओर "पहाड़ और नदी" कविता में भाव और संवेदना तथा विवेक को कमजोर और शिथिल बताया वहीं इरीवन और लेनिनग्राद वाली रचनाओं को कौशल के बहुत उच्च स्तर का माना है। तथा उनकी कविता में छायावादियों के समान शब्दालंकारों का प्रयोग और नयी कविता के अर्थालंकारों की अभिव्यक्ति दोनों की व्याप्ति स्वीकार की। तथा जीवन का विश्वास, सौन्दर्य और नये जीवन की लालसा की तीव्रता आदि को उनकी कविता में देखा है। डॉ. शर्मा केदार की रचना-प्रक्रिया के विषय में कहते हैं कि "केदार की अन्तर्दृष्टि, उनकी विवेक-बुद्धि उनकी सामान्य ऐन्द्रिय संवेदनाएँ एक साथ सघन रूप में सक्रिय होती है, अन्तर्विरोध के बिना,

---

1. प्रगतिशील काव्य-धारा और केदारनाथ अग्रवाल -- पृ. 88

परस्पर संवर्धनशील, एक ही आन्तरिक लय में बँधी हुई होती है।"[1]

शर्मा जी केदार की कविताओं को लोक-संस्कृति की उपज और लोक-संस्कृति को समृद्ध करने वाली बताते हैं। और उनके कवित्त सवैयों पर "स्नेही" और "त्रिशूल" का प्रभाव देखते हैं तथा कुछ कवित्तों में गोपाशरण सिंह के रचना कौशल की अनुरूपता मानते हैं। उनके अनुसार केदार ने छायावादी कविता लिखना और उससे बगावत करना एक ही साथ शुरू किया है। निराला और केदार दोनों कवि छायावादी काव्य संसार से एक ही साथ निकल रहे हैं किन्तु "सरोज स्मृति" में छायावादी स्वर और केदार के गीतों में यथार्थवादी स्वर प्रधान रहा है। सन् 38 में "मुल्लो अहीरिन" जैसी कविता काम-काजी महिलाओं पर लिखने तथा उसमें सामाजिक उत्पीड़न के भाव की अपेक्षा यथार्थ की ताजगी अधिक रही है। और इसी वर्ष एकांत सेवी दार्शनिक पर व्यंग्य करते हुए कविता में गरीबी का चित्रण, सन् 41 की देहात का जीवन, घूरे की घास, देखो स्वांग अमीरों वाला आदि रचनाओं में गरीबों के प्रति सहानुभूति, अमीरों के प्रति रोष का नया स्वर तथा सन् 42 के संघर्ष और दमन का जनता की बेबसी आदि का चित्रण 42 की रचनाओं में देखा है। सन् 43 को डॉ. शर्मा ने केदार के जीवन का महत्वपूर्ण वर्ष माना क्योंकि वे इस वर्ष की रचनाओं में मात्र-साधारण यथार्थवादी कवि नहीं रहे बल्कि वह क्रांतिकारी कवि बन गये। सन् 43 के बाद मार्च 1947 तक की बहुत-सी रचनाओं का संग्रह "युग की गंगा" में माना है।

---

1. भाषा, युगबोध और कविता -- पृ. 239

डॉ. शर्मा का कहना है कि केदार की सभी रचनाओं को एक साथ रखकर पढ़ने से प्रगतिशील कविता संघर्ष करती हुई जनता का अस्त्र बनने की प्रक्रिया का ज्ञान होता है। वे हिन्दी कविता की यथार्थवादी काव्य-धारा के विकास को दर्शाते हुए कहते हैं कि सन् 32 से 47 तक निराला और केदार ने क्रमशः हिन्दी कविता में यथार्थवाद का विकास किया है। विशेष रूप से सन् 43 से 47 के बीच इन्होंने नये ढंग की राजनीतिक कविताएँ लिखी और जनवादी क्रांति में वर्गों की भूमिका के बारे में नयी सूझ-बूझ का परिचय दिया। शर्मा जी के अनुसार यथार्थवाद की ओर अन्य कवि भी बढ़े थे पर उनमें किसी ने किसानों के जीवन और संघर्ष पर जनवादी क्रांति में उनकी भूमिका पर निराला और केदार की तरह सही राजनीतिक दृष्टि अपनाते हुए नहीं लिखा। ये दोनों कवि हिन्दी में क्रांतिकारी यथार्थवाद के संस्थापक हैं।[1]

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा कहते हैं कि जब सुमित्रानन्दन पंत, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर आदि प्रगतिशील साहित्य की धारा से अलग हटकर नयी दार्शनिक राजनीतिक जमीन तलाश कर रहे थे। इस समय केदार लगभग अकेले क्रांतिकारी यथार्थवाद के मार्ग पर साहस-पूर्वक आगे बढ़े थे ऐसे समय में उन्हें एक नया साथी नागार्जुन मिल गये। नागार्जुन को शर्मा जी ने प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन के 48-53 के दौर की देन बताया है।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 279

3.23 नागार्जुन : राजनीतिक जागरण और लोक-संस्कृति के कवि

डॉ. शर्मा के अनुसार मौन, बुढ़ापा जनता का असंतोष राज्य-सभाई जीवन का असंतुलन ही नागार्जुन की कविता है। उनका मानना है कि नागार्जुन की छायावादी काव्य-शैली कभी की समाप्त हो चुकी है तथा उनमें व्यंग्य का पैनापन, क्रांतिकारी आस्था की दृढ़ता, यथार्थ चित्रण में अधिक विविधता और प्रौढ़ता के साथ-साथ शब्दों का सांकेतिक प्रयोग चित्रण कौशलता और कसाव सधे हुए कलाकार की तरह देखा है और उनकी कविताओं को लोक-संस्कृति का एक विकसित रूप बताया। किंतु खड़ी-बोली, राजनीतिक चेतना, बोलचाल की भाषा की गति और लय के आधार पर किये गये नये-नये प्रयोगों कारण नागार्जुन के गीतों को लोकगीतों से भिन्न दर्शाया। उनके काव्य में हिन्दी भाषी प्रदेश की जन-सामान्य की भाषा का निखरा रूप, विभिन्न जनपदों के श्रमिकों की राजनीतिक चेतना के रूप की अभिव्यक्ति पायी जाती है, शर्मा जी विभिन्न जनपदों के जागृत श्रमिकों के संगठन में नागार्जुन की भूमिका अन्यतम मानते हैं।

उनका कहना है कि नागार्जुन जितने क्रांतिकारी सचेत रूप से हैं उतने ही अचेत रूप से भी हैं उनका क्रांतिकारीत्व एक ओर साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद की प्रखर आलोचना में प्रकट होता है दूसरी ओर वह उनकी कला द्वारा हिन्दी जातीयता के स्तर पर

विभिन्न जनपदों की श्रमिक जनता को एकताबद्ध करने में भी प्रकट होता है।[1] नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है उतनी सफलता से बहुत कम कवि हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी हल कर पाये हैं। शर्मा जी ने नागार्जुन की एकान्त लक्ष्य-प्रियता, सुविधा और समझौतों को ठुकराने वाली उनकी सतेज सामाजिक-चेतना, उनके आत्म-विश्वास को जनता में उनकी क्रांतिकारी आस्था और स्पष्ट करने वाले तत्व माना है तथा नागार्जुन में ऊँचे दर्जे की राजनीति का सहज-ज्ञान, अन्तवृत्तियाँ स्वतः स्फूर्त मानसिक प्रतिक्रियाएँ सभी जनमानस से अभिन्न रूप से जुड़ी रही है।

डॉ. शर्मा नागार्जुन के काव्य का विश्लेषण करते हुए "आओ रानी, हम ढ़ोएंगे पालकी" में लोकगीतों का हल्का स्पर्श व्यंग्यात्मकता, राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की भावना पर चोट लगने से उत्पन्न क्षोभ अभिव्यक्त होने की बात कहते हैं। इस कविता की रचना साम्राज्यवाद के सम्मुख नाक रगड़ने वाले नेताओं पर व्यंग्य करने वाली रही है तथा "शासन की बन्दूक" में कवि द्वारा रचित दोहे के मूर्त-विधान की विशदता और उदात्त स्तर की राजनैतिक चेतना का बोध होता है। तथा शासन द्वारा प्रयुक्त बन्दूकों का विपुल विराट रूप, क्षुब्ध जनता के समूह को कंकालों की हूक कहकर मूर्तिवत करने की क्रिया दिखाई देती है। किंतु अंतिम दोहे में आदि प्रतीक के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से दमन

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 158

की निरर्थकता और जनता की विजय में व्यक्त विश्वास प्रकट होता है। "आये दिन बहार के" कविता में दिल्ली से चुनाव टिकट लेकर लौटे कांग्रेसी नेता पर व्यंग्य की सफल अभिव्यक्ति देखी गई है। शर्मा जी नागार्जुन द्वारा रीतिवादी संदर्भ, नौटंकी संस्कृति वाले नये लोकगीत का प्रयोग करने तथा व्यंग्य की गहराई उत्पन्न करने की कला को उद्घाटित करते हैं। तथा "आये दिन बहार के" कविता में चुनाव के उद्दीपन विभावों का समा बाँधने की बात कहते हैं। इसके अलावा पूरी नाटकीय स्थिति, संवाद तथा भावों के घात-प्रतिघात के साथ व्यंग्य स्थापित होने तथा कलात्मक चित्र में पूरी परिस्थिति अभिव्यक्त होती हुई देखी गई है। उनके अनुसार नागार्जुन की हँसी एक साधारण श्रमिक की हँसी रही है जो पूँजीपतियों, उनके हित साधक नेताओं, असमंजस्य में पड़े हुए मध्यम-वर्ग के बाबुओं को देखकर उत्पन्न होती है। शमशेर की अपेक्षा नागार्जुन द्वारा पूरी तस्वीर न देकर आंशिक बिम्ब से काम लेने की प्रवृत्ति को उभारा गया है।

शर्मा जी नागार्जुन द्वारा सामान्य जीवन के चित्रों की अभिव्यक्ति करने के साथ-साथ शहरी महिलाओं पर "विज्ञापन सुन्दरी" कहकर और भद्र-वर्ग की महिला की गालियों को कविता का रूप देने के प्रसंगों को उभारते हुए कहते हैं कि नागार्जुन यह क्रिया देखकर वैसे ही प्रसन्न होते हैं जैसे पन्त के हिलाते अधर प्रवाल को सोच-सोचकर निराला हँसते थे। इस कविता में कवि द्वारा अर्धस्फुट बिम्बों से अपनी कला को सँवारने तथा अर्ध-स्फुट वाक्यों का प्रयोग करने और गूढ़ सांकेतिक शैली का प्रयोग किये जाने की बात कही गयी। तथा "बाल न बाँका कर सके" का परिचित

मुहावरा पूरी हेकड़ी से बन्दूक को अँगूठा दिखाने वाला माना गया।

इसके अलावा डॉ. शर्मा कवि नागार्जुन द्वारा लिखित कविताओं का उल्लेख करते हुए पुजारिन भाभी और रसिक देवर की छेड़-छाड़ में मार्मिक अनुभूति की सफल अभिव्यक्ति आधुनिकता-बोध से परिपूर्ण उपमान, प्रेम की अतिशयता, पूर्ण आत्म-समर्पण के क्षण में विराट की अनुभूति आदि विशेषताओं के साथ-साथ महिलाओं की संस्कृति पर व्यंग्य और साधारण जनता के अंध-विश्वासों की तीखी आलोचना मिलती है। शर्मा जी का कहना है कि "नागार्जुन में हास्य-वृत्ति इतनी प्रबल है कि जहाँ वह प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं वहाँ भी कोई न कोई वस्तु हास्य का आलम्बन बन ही जाती है।"[1] वे नागार्जुन के टेसू अलसी बौहों से अद्भुत आत्मीयता को उभारते हुए उनको मूलतः ग्राम कवि कहते हैं तथा शहर के मजदूरों के लिए उनकी किसान वाली सहृदयता को अत्यन्त मूल्यवान बताते हैं। (कवि का क्रोध उनकी कविता में व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त होने या करुणा द्वारा नियंत्रित होता हुआ देखा गया।)

डॉ. शर्मा नागार्जुन द्वारा अनेक राजनीतिक कवितायें पत्रकारिता के स्तर पर क्रांतिकारी जोश उभारने के लिए रची हुई मानते हुए "लुमुम्बा" पर रचित कविता में राजनीतिक लेक्चरबाजी का छंदोबद्ध रूप देखा है। और कवि की व्यंग्य-प्रधान कविताओं को उनकी सफल राजनीतिक कवितायें बताया है तथा अनेक कविताओं में थोड़ा ऊबड़-खाबड़पन भी देखा है। "कल और आज" कविता में प्रकृति के संक्रमण बिन्दु

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 161

के उभार द्वारा कवि के ग्रामीण संस्कारों के परिष्कृत रूप और भाषा के जातीय रूप की अभिव्यक्ति स्वीकारी गई है। और इस कविता में लोक-संस्कृति की सहज आत्मीयता तथा वर्षा के उद्दीपन विभावों की रीतिवादी शब्दों की भरमार की अपेक्षा सीधी सरल अभिव्यक्ति को हिन्दी कविता का नया यथार्थवाद बताया है। तथा नागार्जुन की रचनाओं के प्रकाशन सम्बन्धी सूचना देते हुए उन्हें हिन्दी साहित्य की जीवन्त परम्परा और भारतीय जनता के साहसी अभियान का प्रतीक माना है।

3.24 त्रिलोचन-काव्य : जातीय-चेतना और संघर्षशील जनता का साहित्य

डॉ. रामविलास शर्मा त्रिलोचन की आधुनिकता को हिन्दी काव्य की जातीय परम्परा से सम्बद्ध कर नयी कविता और त्रिलोचन की कविता में क्रांति-प्रतिक्रांति का सम्बन्ध देखते हैं। उनके अनुसार त्रिलोचन की कविता हिन्दी-भाषा और हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना की जड़ों को सींचती है वह नयी कविता के विपरीत शहर और देहात के गरीबों के समीप रही है। वह नयी कविता की तरह जनता के दुख-दर्द से स्वयं को पृथक नहीं रखती बल्कि जन-जीवन से जुड़ती है। त्रिलोचन के काव्यों का परिचय देते हुए शर्मा जी उनके द्वारा आजीविका के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सह-सम्पादन का कार्य करने के प्रसंग को उभारते हैं। और त्रिलोचन का पहला कविता-संग्रह "धरती" का प्रकाशन 1945 में मानते हैं। वे त्रिलोचन की काव्य-प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर उन्हें निराला का सच्चा

उत्तराधिकारी बताते हैं तथा हिन्दी-साहित्य की जातीय परम्परा का विश्लेषण कर त्रिलोचन का निरालामय होने के साथ-साथ तुलसी की भाषा और भावों से प्रभावित देखते हैं।

डॉ. शर्मा का कहना है कि त्रिलोचन की कविता ने हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना की जड़ों को सींचा है और ये जड़े अतीत के साहित्य में बहुत गहरे फैली हुई हैं। वे त्रिलोचन को घुमन्तू कवि बताते हुए उनकी कविता में अनेक अलंकारों की अभिव्यक्ति की भौतिक-श्रम से सम्बद्धता देखता है। और नागार्जुन पर लिखी गई कविता के शब्दों को स्वयं उन्हीं पर अधिक लागू होने वाले बताते हैं।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना की शुरूआत त्रिलोचन से नहीं होती इसी तरह आधुनिकता की शुरूआत उनसे नहीं होती वह हिन्दी कविता में एकधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, उस धारा के अकेले कवि नहीं है उनकी आधुनिकता अनोखी नहीं है आधुनिकता के प्रचलित जिन साँचों को वह अस्वीकार करते हैं, उनके साथ केदार और नागार्जुन भी उन्हें अस्वीकार करते हैं। जीवन-यात्रा में जैसे धरती आकाश के साथ है वैसे ही तुलसीदास और निराला केदार और नागार्जुन भी उनके साथ हैं।[1] अर्थात् शर्मा जी ने त्रिलोचन को हिन्दी जाति की प्रगतिशील काव्य-धारा को विकसित करने वाला एक संघर्षशील चेतना से युक्त कवि माना है तथा उनके साहित्य में यथार्थवादी कला और

---

1. स्पतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि -- पृ. 24।

जन-आंदोलन की अभिव्यक्ति को विश्लेषित कर केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता का मुख्य विषय यथार्थ संसार में रहने वाले हाडमांस के नरनारी को माना है। वे त्रिलोचन द्वारा सुन्दर ग्वाले की लड़की चम्पा {धरती} पर लिखित कविता को पूर्व की रचना मानते हैं। तथा "दिगन्त" में चार कवितायें नागार्जुन पर रही है जिनमें कवि द्वारा बाह्य और आन्तरिक चित्रों की अभिव्यक्ति की गई है। उसमें कवि की विवेचन क्षमता के दर्शन होते हैं। तुलसी के समान त्रिलोचन के साहित्य में अपनी और दूसरों की गरीबी का चित्रण करने की प्रवृत्ति देखी गई है। उन्हें जनपद का कवि मानते हुए उनकी कविताओं के अध्ययन से पाठक को गोदान के संसार की अनुभूति होने की बात कही गई। क्योंकि गोदान की तरह त्रिलोचन की कविताओं में गरीबों के शोषण का अदृश्य रूप मिलता है। उनकी कविताओं में साम्राज्यवादी जर्जर व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की भावना दर्शाते हुए एक लम्बी नाटकीय कविता "भूखे-भेड़िये" में कवि द्वारा वियतनामी जनता द्वारा जापानियों और फ्रांसिसियों तथा उनके सहयोगियों से किये गये सामने के चित्र तथा "शैतान और इन्सान" कविता में यूनान के देश-भक्तों द्वारा छापेमार फासिस्टो और ब्रिटिश सेना से संघर्ष करने के चित्र दर्शाने की प्रवृत्ति को उजागर किया। और "वे घर आ रहे हैं" कविता को उन बहुत थोड़ी कविताओं में से माना जो दूसरे महायुद्ध में भाग लेने वाले भारतीय सैनिकों पर लिखी गई हैं। शर्मा जी त्रिलोचन द्वारा बिहार आंदोलन पर लिखी गई कुण्डलियों को ठेठ लोक कविता के स्तर पर जनता से बातचीत करने वाली रचना मानते हुए उसे प्रगतिशील कविता का अभिन्न अंग बताते हैं। वे त्रिलोचन को साम्राज्यवाद समर्थक धारा के विरोधी दिशा में चलने वाली धारा का पक्षधर स्वीकार कर उनकी

रूप-दृष्टि को उनके विवेक से सम्बद्ध मानते हैं। और बेकारी तथा मुफालेसी में भी उनके द्वारा देश और मानवता की सेवा करने और "जीवन की शय्या पर आकर मरण सो गया" लिखने वाले कवि के जीवन को मृत्यु के समीप देखते हुए शर्मा जी हिन्दी कविता की संघर्षशील परम्परा का निर्माण अभावग्रस्त कवियों द्वारा ही किया हुआ दर्शाते हैं। और जातीय परम्परा को विकसित करने वाले साहित्यकारों का जीवन-संघर्ष त्रिलोचन की कविता में पाया है। त्रिलोचन के मन में परम्परा-बोध और प्रकृति प्रेम उत्पन्न होने तथा उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं के अन्तर्गत प्रकृति के अनेक रूपों में और छायावादी सौन्दर्य-बोध को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त होते देखा है।

रूप रस गंध स्पर्श शब्द का संसार, उसके भौतिक प्रपंच त्रिलोचन को प्रिय होने तथा "अरधान" काव्य-संग्रह की कविताओं में महुए पर कविताओं की रचना देखी है। नीम के फूल की सुगन्ध, हरी-भरी गंध के साथ रूप रंग के बोध को उभारते हुए प्रकृति के संसर्ग का अनुभव त्रिलोचन द्वारा शरीर से करने और पशुओं, वनस्पतियों में देखने के प्रसंगों को उभारा है। साथ ही उनके द्वारा अस्थिर दृश्यों के वर्णन के समान अस्थिर नाटकीय स्थितियों का वर्णन करने दु:खभोगी होने तथा हार, ग्लानि, अकेलापन, निराशा आदि मानसिक स्थितियों से परिचित होने और जन-सामान्य के मध्य जीवन-व्यापन कर अनुभव प्राप्त करने के प्रसंगों को भी उद्घाटित किया है।

त्रिलोचन द्वारा कुंभ महामेले पर लिखित 25 कविताओं का उल्लेख करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं -- त्रिलोचन की अपनी पीड़ा

निरीह प्राणों की इसी पीड़ा का अंश है, उनका आत्म-संघर्ष एक व्यापक जन-संघर्ष का ही अंश है। जब वह जनता को निष्क्रिय चुपचाप दुख सहते, तिलतिल कर मरते देखते हैं, तब भी समाज व्यवस्था को बदलने की उनकी आकांक्षा मिटती नहीं है। शर्मा जी त्रिलोचन की सामाजिक अनुभूति को उभारते हुए उसमें व्याप्त आकांक्षा को दर्शाते हैं जो जन सामान्य के कल्याण की आशा करती है और वे त्रिलोचन की अनेक कविताओं से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कवि में यह आस्था भारतीय इतिहास, जनता के चरित्र, जातीय साहित्य की मूलधारा और मार्क्सवाद की समझ से पैदा हुई बताते हैं।[1] उनका कहना है कि त्रिलोचन के यथार्थवाद में जैसे शहर से लेकर देहात तक के दृश्यों की विविधता है वैसे ही उसमें काव्य-रूपों की विविधता है। बहुत-सी कवितायें नाटकों में स्वतः संभाषण जैसी है, काफी कविताएँ दो या अधिक व्यक्तियों के बीच संवाद जैसी हैं। स्वतः स्फूर्त गेयता वाला, लिरिक तत्व उनकी रचनाओं का आधार तत्व है पर उसकी अभिव्यक्ति अधिकतर नाटकीय रही है।[2]

साथ ही डॉ. शर्मा ने त्रिलोचन के सॉनेट का अंग्रेजी सॉनेट से सम्बन्ध, निराला की ग़ज़लों का उर्दू ग़ज़लों के समान माना है। और उनका मानना है कि त्रिलोचन के लिए सॉनेट ऐसा कुर्ता है जो हर मौसम में पहना जा सकता है और त्रिलोचन का मन रमने वाले दृश्यों, रेखाचित्रों, सामाजिक स्थितियों और मनोदशाओं के चित्रण के लिए सॉनेट उपयुक्त रहा है।

---

1. रूपतरंग — पृ. 284
2. वही, पृ. 285

इस प्रकार डॉ. शर्मा केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन को हिन्दी जाति के साहित्य की प्रगतिशीलधारा के प्रतिनिधि कवि बताते हैं।

3.25 नयी कविता के विकास के विभिन्न सोपान

डॉ. रामविलास शर्मा नई कविता के विकास के विभिन्न चरणों या सोपानों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं -- सन् 1938 में रूपाभ के प्रकाशन के साथ आरंभ होने वाली नई कविता प्रगतिशील कविता है जो मार्क्सवाद से प्रभावित रही है। यथार्थवादी रूझान प्रबल होने के साथ-साथ कुंठा और अतृप्ति से संघर्ष करने की आकांक्षा भी रही है। सन् 1947 में प्रतीक के प्रकाशन से शुरू होने वाली नई कविता प्रयोगवादी कविता है जो समाज-परक प्रगतिशीलता का विरोध करती है तथा कुंठा और घुटन से संघर्ष को आवश्यक न मानकर उन्हें जीवन-मूल्यों के रूप में स्वीकार करती है। सन् 1954 में नई कविता के प्रकाशन से शुरू होने वाली नई कविता अस्तित्ववादी कविता है जो छायावादी शिशु आस्था के विरुद्ध व्यक्ति-निष्ठ विवेक पर बल देती है और मानव को लघु मानव बनाकर उसकी विवशता और पराजय के भोगने को कवि की परम उपलब्धि मानती है। सन् 1958 में "कृति" के प्रकाशन से शुरू होने वाली नई कविता क्रमशः उस पराजित पीढ़ी की कविता बनती जाती है जो व्यक्ति-निष्ठ मूल्यों के बदले मूल्यहीनता का झंडा लेकर आगे बढ़ती है। भूखी पीढ़ी, नंगी-पीढ़ी,

अकविता आदि की अनेक संक्षिप्त अर्ध विक्षिप्त पीढ़ियाँ इसी मूल्यहीनता के झंडे के नीचे एक-दूसरे को ललकारती हैं। इस ललकारने की क्रिया के बावजूद इन सबमें आंतरिक संगति है, क्योंकि वे सभी साहित्य और राजनीति के प्रगतिशील तत्वों को अस्वीकार करती है। इस प्रकार नयी कविता के विकास की रूपरेखा को प्रस्तुत किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता के विकास की रूपरेखा पर अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हुए सन् 54 में डॉ. जगदीश गुप्त और उनके मित्रों द्वारा इलाहाबाद से "नई कविता" का प्रकाशन आरम्भ कर सन् 47 में नेमिचन्द्र जैन द्वारा अन्तर्मुखी साहित्य और सामाजिक चेतना के साहित्य में भेद करने वाले तथ्य को नयी कविता के सिद्धांतकारों द्वारा पुष्पित और पल्लवित करने के प्रसंगों को उभारते हैं। उनके अनुसार इस पत्रिका में नई कविता के सम्बन्ध में तथा प्रगतिशील कविता की आलोचना के संदर्भ में व्यक्त पंत, लक्ष्मीकांत वर्मा, डॉ. रघुवंश आदि के विचारों को प्रकाशित कर विशेष महत्व दिया गया है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि सन् 47 के बाद प्रयोगवाद की चर्चा बढ़ने पर और सन् 54 के बाद नयी कविता की चर्चा के जोर पकड़ने पर इन नये संदर्भों में तारसप्तक एक ऐतिहासिक कृति के रूप में महत्वपूर्ण हो गई। परन्तु नयी कविता के सूत्रधार उसे क्रमशः प्रयोगवाद से अलग करते जा रहे थे और अज्ञेय ने नयी कविता की सम्भाव्य भूमिका, नया कवि : आत्म स्वीकार, नया कवि आत्मोपदेश, कविताओं में अपने हृदय की वेदना और अनुभूति को अभिव्यक्त किया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार अज्ञेय ने सन् 37 में निराला के लिए जो लिखा था -- "ऐज ए लिटररी फोर्स, ऐट ऐनी रेट, निराला इज आलरेडी डेड, "वही बात सन् 61 की नयी पीढ़ी ने अज्ञेय के लिए दुहराई है। इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं -- जगदीश गुप्त ने नयी कविता में लिखा कि "आ तू आ कविता में नये कवि मात्र के स्वाभिमान पर सदा-सदा के लिए सगर्व चोट की गयी है।"[1] इसके अलावा शर्मा जी ने नयी कविता का प्रयोगवाद से विच्छोह तथा नवलेखन के दल का उदय होने और "कृति" का श्रीकांत वर्मा और नरेश मेहता के सम्पादन में प्रकाशन आदि को अभिव्यक्त किया है। और इस नवलेखन के मासिक में अनेक पुरानी रचनाओं के प्रकाशित होने का भी उल्लेख किया है! परन्तु उक्त पत्रिकाओं के सम्पादकीय कार्य द्वारा नयी कविता से आधुनिकता के नाम पर अपनी परम्परा छोड़कर दूसरों की परम्परा स्वीकार करने की प्रवृत्ति अपनाने तथा क्षणवाद को लेकर चलने की प्रवृत्ति को अनुचित बताया है।

डॉ. शर्मा इस "कृति" के माध्यम से नरेश मेहता द्वारा अज्ञेय पर संकीर्णता, पक्षपात और स्वप्रचार का दोष लगाने, श्रीकांत वर्मा द्वारा प्रगतिवादी आलोचकों पर मनुष्य की आत्मा कुचलने का आरोप लगाने और प्रयोगवादियों पर एक सैनिक प्रकृति से ग्रस्त होने का आरोप लगाने की प्रवृत्ति को दर्शाया है जिसके माध्यम से उन्होंने अपने आप को प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता से अलग रखा है। परन्तु डॉ. शर्मा कहते हैं कि नरेश मेहता भारतीयता की दुहाई देने के बाद बैड टेस्ट और

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद — पृ. 37

बूट मर्डर्स वाली शब्दावली के बिना आगे बढ़ न सके तथा श्रीकांत वर्मा आस्था और विश्वास, साहस और संकल्प, आशा और उत्साह की बातें करने के बाद जीवन की निरुद्देश्यता, संकल्पहीनता और आस्था का राग अलापने में सबसे आगे रहे हैं।[1]

इसके साथ ही डॉ. शर्मा नरेश मेहता का "कृति" से अलग हो जाना और श्रीकांत वर्मा द्वारा दासता पर स्वाधीनता की विजय के स्फूर्त अनुभव की कविता लिखने की अपेक्षा दर्द की असीम अभिव्यक्ति करने के प्रसंगों की प्रासंगिकता को उजागर किया है। और उन्होंने नयी कविता की वर्तमान अवस्था तक की सीमाओं का विश्लेषण करते हुए उससे छायावाद और प्रगतिशील ढंग से रचित रचनाओं को पृथक कर देने पर केवल मूल्यहीन साहित्य-निधि शेष रह जाने की बात कही है। तथा नयी कविता और आधुनिकता को समझने के लिए छायावाद की चर्चा को अनिवार्य बताया है। क्योंकि नई कविता ने छायावाद की कमजोरियों से संबंध स्थापित कर उसके समर्थ पक्ष को त्याग दिया था। नयी कविता के साहित्यकारों की दृष्टि में छायावाद का सबसे बड़ा दोष उसमें भावुकता की अधिकता, प्रौढ़ बौद्धिकता का अभाव रहा है। डॉ. शर्मा के अनुसार नयी कविता के समर्थक अपने आप को काफ़ी परिपक्व बुद्धि वाले समझते हैं। इसलिए वे छायावादियों को शिशुवत मानकर उनकी शिशु आस्था पर हँसते हैं या रुष्ट होते हैं और ऐसे आलोचकों में शर्मा जी ने लक्ष्मीकांत वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय माना है। "नयी कविता के प्रतिमान" में उनके

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 38

द्वारा शिशुवत का प्रचुर प्रयोग करने के अनेक प्रसंगों को उभारा है। और विजयदेव नारायण साही तथा धर्मवीर भारती को भी इलियट का सूत्र अपनाने वाले छायावाद विरोधी विद्वान आलोचक बताया है। और नामवर सिंह की आलोचना की समीक्षा करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं कि नामवर सिंह को शिशु आस्था वाला सूत्र सीधे इलियट से नहीं बल्कि साही और लक्ष्मीकांत वर्मा से प्राप्त हुआ है। इसी कारण नामवर सिंह की आलोचना पर उन्होंने भारती, साही और लक्ष्मीकांत के चिन्तन की गहरी छाप माना है। इसका एक प्रमाण छायावादी कवियों पर शिशु आस्था का आरोप लगाना और दूसरा प्रमाण छायावादियों के प्रभा मण्डल की आलोचना करना बताया है। उनके अनुसार उक्त आलोचकों की इसी दृष्टि के कारण उन्हें छायावाद में जिस उच्च बौद्धिक व्यापार की कमी दिखायी देती है, वही कमी राष्ट्रीय आंदोलन के सभी नेताओं और उनकी राजनीति में दिखाई देती है। इसी कारण इनके लिए गाँधीवादी राजनीति छायावादी कविता का दर्पण है।[1]

डॉ. शर्मा नामवर सिंह की तर्क-योजना को साही और लक्ष्मीकांत वर्मा द्वारा प्रभावित बताते हुए उनके चिंतन की विशेषता यह माना है कि विचारों के साथ लगभग वही शब्दावली भी चली आती है जो साही के दिमाग में आई थी।[2] इसके अलावा शर्मा जी ने नयी कविता का छायावादी विरोध उसे ही कमजोर बना देने तथा प्रयोगवादी रूप के उलट जाने की बात कही है और उन्होंने छायावाद द्वारा सामाजिक यथार्थ को जिस सीमा तक बढ़ाया है उसे नई कविता द्वारा विकसित करने संबंधी

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 43
2. वही, पृ. 44

प्रसंगों की प्रासंगिकता पर प्रश्न लगाया है। उनके अनुसार छायावादी कवि ज्यादा समझदार थे। वे अंग्रेज़ों और भारतीय रूढ़ि-वादियों के खिलाफ कांग्रेस का समर्थन करते थे तथा किसानों और मजदूरों और हिन्दी के प्रति उसकी नीति की आलोचना करते थे। परन्तु नामवर सिंह के छायावाद और राजनीति को लेकर व्यक्त विचारों में विद्रोह के लिए विद्रोह देखा है। साही और भारती के साथ-साथ वर्मा जी के विचारों की समीक्षा करते हुए लक्ष्मीकांत वर्मा की दृष्टि के विश्लेषण के आधार पर उनकी पीढ़ी द्वारा गाँधी नेहरू की छाया से प्रभावित साहित्य को भी पूर्णतः अस्वीकृत कर देने की बात कही। और साथ ही डॉ॰ शर्मा का कहना है कि बाप से झगड़ा होने पर अपने को अपमानित महसूस करके लड़का जैसे घर छोड़कर भागे, वैसे ही लक्ष्मीकांत वर्मा गाँधी नेहरू प्रेमचन्द निराला पंत प्रसाद की सारी विरासत को अस्वीकार करने पर तुल जाते हैं। उनके विद्रोह की जड़ में विवेक नहीं एक अस्वीकृति मूलक भावुकता है जो मनोवैज्ञानिक धक्का लगने से तिलमिला उठी है और रात-दिन तिलमिलाती ही रहती है, इस भावुकता से प्रेरित अन्तर्दृष्टि को पराजय, विवशता, अपमान, अभिशाप बहुत अतिरंजित रूप में दिखाई देते हैं वे महत्व-पूर्ण उपलब्धियाँ दुर्लभ जीवन-मूल्य बन जाते हैं।[1] और डॉ॰ शर्मा कुछ आलोचकों द्वारा नयी कविता के लिए नये प्रतिमानों की आवश्यकता दर्शाये जाने की बात कहते हैं जैसे विजयदेव नारायण साही ने नई कविता के प्रतिमान की जरूरत नहीं बल्कि कविता के नये प्रतिमान की जरूरत को अभिव्यक्त किया है। और इस कार्य का दायित्व नामवर सिंह द्वारा सम्भालते हुए कविता के नये प्रतिमान पुस्तक लिखने के प्रसंग को व्यक्त करते हुए डॉ॰ शर्मा उस पुस्तक को हिन्दी आलोचना

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ॰ 58

में बाजरे की कलँगी मानते हैं। और नये प्रतिमान स्थापना हेतु नयी कविता और छायावादी कविता में अन्तर स्पष्ट करते हुए छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह और नयी कविता को सूक्ष्म के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानने की धारणा को क्रियाशील देखा है। उनके अनुसार छायावादी मन के भावों को रूप पर आरोपित करते है और नयी कविता वाले रूप को भाव में बदल देते हैं जिससे रूप लुप्त होकर केवल भाव रह जाता है। डॉ॰ शर्मा छायावादी और नयी कविता की रचना प्रक्रिया में भेद करने वाला दर्शन नामवर सिंह को अज्ञेय से, अज्ञेय को सार्त्र से, सार्त्र को किर्केगार्ड से, किर्केगार्ड को यूरोप के अनेक भाववादी दार्शनिकों से प्राप्त होना स्वीकार करते हैं। इस चिंतन द्वारा मनुष्य की चेतना से स्वतंत्र किसी भी वस्तु की सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता है।[1] नयी कविता में विचार अनुभूति में परिवर्तित हो जाने का अज्ञेय द्वारा प्रतिपादित सूत्र को साही द्वारा सिद्ध किया जाना स्वीकार किया है।

डॉ॰ शर्मा छायावादी कविता और नयी कविता का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कामायनी में प्रसाद ने अपने अनुभवों के बल पर कुछ दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये हैं जिनका अध्ययन, मनन और विश्लेषण संभव है क्योंकि वे शब्द-बद्ध विचार हैं, कुहरे जैसी आकृति-हीन अनुभूति नहीं। इसके विपरीत नयी कविता का रचयिता इधर-उधर से विचार तो लाता है लेकिन उन्हें ऐसे घोल में छोड़ देता है कि उनके घुल जाने के बाद बस अनुभूति का झोल ही बचा रहता है।[2] नामवर सिंह द्वारा

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 57
2. वही, पृ. 58

अनुभूतियों के स्त्रोत में अन्तर मानने की धारणा को अज्ञेय के कथन द्वारा पुष्ट बताया है तथा नामवर सिंह द्वारा नयी कविता की दो धाराओं, प्रगतिशील और उसकी विरोधी को सत्य सिद्ध करने के लिए अज्ञेय का खण्डन किया गया है।

यहाँ डॉ. शर्मा नामवर सिंह के वैचारिक अन्तर्विरोध को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि अज्ञेय को प्रमाण मानकर नामवर सिंह ने पहले नई कविता को बाहर से भीतर की ओर मोड़ा फिर अज्ञेय को दोषी ठहराते हैं कि अन्वेषण की राह उन्होंने बाहर से भीतर को मोड़ दी। और यहाँ नामवर सिंह द्वारा बौद्धिकता का स्थान रागात्मकता को देते हुए उसकी प्रियता के आधार पर ही नगेन्द्र आदि आलोचकों के स्थायी भावों की आलोचना करने की प्रवृत्ति को दर्शाया है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा नामवर सिंह और नगेन्द्र में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं जहाँ स्थायी भावों वाले आचार्य यथार्थ जीवन के चित्रण पर बल नहीं देते तथा अज्ञेय भी वास्तविकता के चित्रण पर नहीं, उसे आन्तरिक सत्य बनाने पर बल देते हैं, वहीं नामवर सिंह भी यथार्थ जीवन के चित्रण पर बल नहीं देते बल्कि वास्तविकता से उत्पन्न होने वाली वृत्तियों को उजागर करने पर बल देते हैं। शर्मा जी भाव राग या वृत्तियों का गहरा सम्बन्ध अनुभूति से मानते हैं तथा नामवर सिंह द्वारा भाव-शब्द पसन्द न कर उसे वृत्ति कहने तथा अनुभूति शब्द पसन्द न होने पर भी उसका प्रयोग करने की बात कहते हैं। उनके अनुसार सघन भाव टूटकर भावुकता या सरल भावावेश बन जाते हैं और नामवर सिंह के लिए ये सघन

भाव या भावों की सघनता ही अनुभूति है।[1] डॉ. शर्मा का कहना है कि नामवर सिंह द्वारा अनुभूति को काव्य का मूल तत्व न मानने से कोई नया प्रतिमान स्थापित नहीं हो जाता और न ही रस के प्रतिमान की प्रसंगानुकूलता के अन्तर्गत रस के प्रतिमानत्व को संदिग्ध भाव से देखने से उसमें परिवर्तन आता है।

इस प्रकार नामवर सिंह जी की आलोचना दृष्टि की समीक्षा करते हुए डॉ. शर्मा रस की नगेन्द्री परिभाषा से नामवर सिंह की परिभाषा की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -- आस्वाद की प्रक्रिया का आधार अर्थ मीमांसा है, यही भिन्नता है। और इसके साथ ही डॉ. शर्मा नगेन्द्र और नामवर सिंह के वैचारिक प्रसंगों को उद्धृत कर सिद्ध करते हैं कि नामवर सिंह ने रस के नगेन्द्री परिभाषा को ध्वस्त करने के लिए शुक्ल जी का अर्थ-मीमांसा वाला अस्त्र ही चलाया है। डॉ. शर्मा यह भी बताते हैं कि नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक "कविता के नये प्रतिमान" के प्रथम अध्याय में नगेन्द्र को कविता का अर्थ करना नहीं आता कहा है वही अंतिम अध्याय में गद्य में कविता का अर्थ लिखने में उनकी कुशलता की दाद दी है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा ने नामवर सिंह द्वारा शुक्ल जी हिन्दी कविता को छायावादी भावोद्गार से बचाना चाहते थे, कहने की धारणा की आलोचना करते हुए शुक्ल जी को उन्हीं की धारणाओं के विरुद्ध स्थापित करना बताया है। और नामवर सिंह जी की समीक्षा-दृष्टि की

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 60

आलोचना करते हुए कहते हैं -- चाहे रस और अनुभूति को लेकर सिद्धांत चर्चा हो, चाहे मुक्तिबोध को लेकर व्यावहारिक समीक्षा हो, नामवर सिंह को द्विवेदी जी एक बार भी याद नहीं आते, याद आते तो वही रामचन्द्र शुक्ल।[1] कविता के नये प्रतिमान कृति की समीक्षा करते हुए शर्मा जी कहते हैं -- नामवर सिंह ने इलियट और सार्त्र ही नहीं, विम्सार्ट, बियर्डस्ले, जौन कौरैन्सम, क्लीन्थ ब्रूक्स, ओनाल्ड डेवी, फैंक कर्मोड, विलियम एम्पसन, गिलबर्ट राइल, रिचर्ड एल्डिंगटन, रिचर्ड ब्लैकमर, डब्ल्यू.डब्ल्यू. राब्सन, ईरिस मर्डोक आदि से यथाशक्ति आधुनिकता निचोड़कर अपनी पुस्तक में भर दी है। इस निचोड़ में रामचन्द्र शुक्ल, अज्ञेय और विजयदेव नारायण साही के विचार वैसे ही घुल गये हैं जैसे नयी कविता में दर्शन घुलकर अनुभूति बन जाता है। शर्मा जी बताते हैं कि नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की कविता में जिस तनाव की प्रशंसा की है, वह पुस्तक में सर्वत्र विद्यमान है। प्रतिमानों के बीच तनाव है, कभी यह ज्यादा तन गया कभी वह। नाटकीयता भी कम नहीं है पात्रों में प्रमुख भूमिका नगेन्द्र की है। कहीं टक्कर शुक्ल जी से है तो कहीं अज्ञेय से। और नामवर सिंह द्वारा तारसप्तक के कवियों को मुक्तिबोध से भिड़ा देने की भी बात कही है। और साथ ही टी.एस. इलियट की डोनाल्ड देवी से ठन जाती है। नाटक में सस्पेन्स की कमी नहीं बल्कि नाटकीयता के अनुरूप शैली और छायावादी शैली के शब्दों का माधुर्य उभारते हुए नये प्रतिमानों के अस्तित्व का अभाव दर्शाया है।

डॉ. शर्मा नयी कविता की समीक्षा करते हुए उस पर छायावादी प्रभाव की ही खोज नहीं करते बल्कि अस्तित्ववाद की भी खोज

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 64

करते हैं और उन्होंने हिन्दी के अधिकांश नई कविता लिखने वालों की स्थिति रोकाँते जैसा बताया है। डॉ. शर्मा के अनुसार "अस्तित्ववादी प्रभाव आधुनिकतावाद और कलावाद का ही एक रूप है और हिन्दी प्रदेश में भारतेन्दु से निराला तक की जो स्वस्थ और जीवन्त परम्परा है, हिन्दी नवजागरण की जो प्रगतिशील विकास परम्परा है, उससे अस्तित्ववादी नई कविता का रिश्ता शत्रुता-परक है।"[1] जिसमें ऊब, ऊबकाई, अकेलापन, बुरे-बुरे सपने, त्रास, आत्महत्या की चाह, सड़ाँध का बोध, भीड़ में अजनबीपन का आभास, परेशानी आदि की अभिव्यक्ति होती है। श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिजा कुमार माथुर, राजकमल चौधरी, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा और कुछ सीमा तक जगदीश गुप्त के काव्य-साहित्य से विभिन्न उद्धरण प्रस्तुत कर उनके द्वारा प्रयुक्त सड़ाँध, उबकाई, दुर्गन्ध, घाव, वमन, विक्षिप्तता और पागलपन, मृत्यु का भय, दुःस्वप्नों की अनुभूति, न्यूरॉसिस के हल्के रूप, अर्ध-विक्षिप्तता, मुर्दा चीजों का उल्लेख, आत्म-हत्या की चर्चा, तवायफ, वेश्या, अकेलापन, अजनबीपन, प्रेम की निस्सारता के दर्शन आदि उपमानों के प्रयोग और अनुभूति की अभिव्यक्ति को उभारा है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "सार्त्र के नायक रोकाँते को हर चीज़ थुल-थुल निर्जीव लिजलिजी मालूम होती थी। हिन्दी के अस्तित्ववादी कवि आत्मवत् सर्वभूतेषु देखते हुए उसी प्रकार संसार और उसके सजीव-निर्जीव पदार्थों का वर्णन करते हैं।[2] अपनी उक्त अवधारणा की पुष्टि हेतु डॉ. शर्मा

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 126

2. वही

ने रघुवीर सहाय की कविता "दुनिया" और कैलाश वाजपेयी और गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए जहाँ रघुवीर सहाय की दुनिया को पपडियाई या चिपचिपाई रूप में देखा है वहीं कैलाश वाजपेयी के राष्ट्रीय गीत का आरम्भ लिजलिजे पंजों से बताया है। और गिरिजाकुमार माथुर के नये उपमान कछुए और केंकडे दर्शाया है। जगदीश चतुर्वेदी के पास युवतियों को केंकडे-सी सिमटती हुई देखा है तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के पास अन्धे केंचुए, मकड़ा आदि उपमानों की भरमार पायी है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि नयी कविता से यदि ये पिरामिड़ ममी, केंकड़े, मकड़े, कछुए, केंचुए हटा दिए जाए तो उसका मूल भाव तत्व उत्तरकालीन छायावाद और उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध वाली यूरोपीय रूमानियत से भिन्न न होगा। कवि की ऊब, उसका अकेलापन, आत्म-निर्वासन की भावना, आत्म-हत्या की आकांक्षा आदि पूँजीवादी सभ्यता के आरम्भ से साहित्य में घटित होता रहा है इसी कारण इसे नया नहीं माना जा सकता है। नयी कविता के लेखकों की सामाजिक प्रतिबद्धता को उजागर करते हुए उन्होंने अस्तित्ववादी प्रभाव के कारण तथा सामाजिक प्रतिबद्धता की पहचान का अभाव होने के कारण उक्त प्रवृत्तियों के सम्मुख आत्म-समर्पण करना बताया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि रोमाण्टिक काव्य की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति क्रमशः विकृत होती हुई अस्तित्ववाद के रूप में प्रकट हुई है। चरम व्यक्तिवाद को वह सामाजिक-दर्शन का रूप देकर प्रस्तुत करती है। रोमाण्टिक कवि रूढ़ियाँ तोड़कर नये सौन्दर्य-बोध और नवीन सामाजिक मूल्यों की ओर बढ़े थे।

अस्तित्ववाद ने सौन्दर्य-बोध की उपेक्षा और मानव-मूल्यों की अस्वीकृति को ही एक रूढ़ि का रूप दे दिया। और इसका रूप हिन्दी के नयी कविता के लेखकों में बहुतायत मिलता है। डॉ. शर्मा के अनुसार "रोमाण्टिक कवियों में एक प्रदर्शनवादी रूझान था, दुनिया को यह दिखाने की आकांक्षा कि वह कितने पतित, पीड़ित और त्रास हैं। नयी कविता में यह रूमानी प्रदर्शन-प्रियता चरम सीमा तक पहुँच गयी है।"[1] उन्होंने हिन्दी कवियों द्वारा न्यूरॉसिस को तटस्थ दृष्टि से देखने वाला विवेक छोड़कर उसे महान् दार्शनिक उपलब्धि मानकर ध्यानाकर्षक द्वारा अनुभूति के स्तर पर उसे उतारने की कोशिश करने की प्रवृत्ति को उजागर किया है। और हिन्दी के अस्तित्ववादियों को हिन्दी कविता का विकास करने का भ्रम होने की भी बात कही है। उनका कहना है कि नयी कविता ने अपने भाव-बोध और उपमानों का ऐसा कल्पना-लोक रच लिया है जो छायावाद से कहीं ज्यादा काल्पनिक और रीतिवाद से कहीं ज्यादा रूढ़िबद्ध है।[2] वे नयी कविता की कमजोरियों को उभारते हुए मानते हैं कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जब फ्रायड़ वाला अस्त्र व्यर्थ हो गया तब उन्होंने अस्तित्ववाद और व्यक्ति की स्वतंत्रता को मार्क्सवाद के विकल्प के रूप में रखा। भारत में सन् 46 के पहले किसी के द्वारा अस्तित्ववाद का नाम भी नहीं लिया गया था। परन्तु सन् 46 के बाद कम्युनिस्ट विरोधी कांग्रेसी अभियान के प्रयोग और प्रतीक में अज्ञेय के नेतृत्व में मुक्तिबोध की कविताओं के प्रकाशन के बाद नई कविता का आंदोलन आरंभ होना स्वीकार किया।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 129

2. वही, पृ. 131

डॉ. शर्मा ने नयी कविता का यथार्थ-जीवन से कोई संबंध न मानते हुए उसे अधिकतर रूग्ण मनःस्थितियों की उपज और उनकी बचकानी नकल बताया है। तथा इसमें संघर्षों से जुझने, बाधाओं और कठिनाइयों को चुनौती देने की डींग के बल पर कविता में अहंवाद की प्रतिष्ठा करने की प्रवृत्ति को उभारा है। उनका कहना है कि साहित्य में नीरसता का चित्रण वर्णित नहीं किन्तु उसके चित्रण से साहित्य भी नीरस न होना चाहिए बल्कि नयी कविता नीरसता और विद्रूपता को सहन न कर उसे वहन करने के कारण वह स्वयं नीरस बन जाती है।[1] इसके साथ ही उन्होंने लक्ष्मीकांत द्वारा नयी कविता के प्रतिमान में लघु मानव के संदर्भ में व्यक्त की गई धारणा का खण्डन करते हुए लघु मानव की प्रतिष्ठा तितली में, निराला जी के रेखाचित्रों में, प्रेमचन्द के उपन्यासों में, सुमन और नरेन्द्र आदि की कविताओं में मिलने की बात कही है और नयी कविता का सम्बन्ध कुछ मध्य-वर्गीय नवयुवाओं से मानते हैं और लघुमानव के हामी नये कवियों के अन्ध-हृदय-कूप में भावों के केंचुएँ रेंगने की प्रक्रिया को देखा है।

डॉ. शर्मा नयी कविता की वास्तविकता नीरसता, निराशा और कुंठा मानते हुए उसे मध्यवर्ग के जीवन से भी असम्बद्ध बताया है। उनके अनुसार नई कविता के प्रतिमानों में छन्द सौन्दर्य, लय आदि कविता के लिए अनावश्यक तत्व माने गये हैं और नयी कविता के हामियों ने अपने बेसुरेपन से आसमान सिर पर उठा लिया और दावा यह करने लगे कि हम युग की आधुनिकता प्रतिध्वनित कर रहे हैं। शर्मा जी ने नई कविता की प्रतिमाएँ और उसके प्रतिमान दोनों को धुरीहीन बताया है। और नये

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 277

कवियों द्वारा युग की आधुनिकता व्यंजित करने के लिए असम्बद्ध प्रतीकों का सहारा लेने की बात कही है। उनके अनुसार नयी कविता की बौद्धिक चेतना का दोष यह है कि वह विचारों को इंद्रिय-बोध से संयुक्त करने, भावना से अनुप्राणित करने, मार्मिक और प्रभावशाली बनाने के बदले उन्हें कथन मात्र रहने देती है। नया कवि विचार, भाव, उपमान, रस इत्यादि के सम्बन्ध में सोंच-सोंच कर अंत में भावानुभूति के बदले सोच-विचार ही अभिव्यक्त कर पाता है। नये कवि भावात्मक सत्ता के साथ बौद्धिक व्यक्तित्व के संतुलित समावेश की भी बात करते हैं। शर्मा जी का मानना है कि "यदि नयी कविता में गम्भीर चिन्तन, ऊँचे दार्शनिक विचार, व्यक्ति अथवा समाज की समस्याओं का विवेचन होता तो भी साहित्य को उसकी देन महत्वपूर्ण होगी। नयी कविता में बौद्धिकता की दुहाई देने पर भी कच्ची अक्ल के कारनामों की बाहुल्यता को देखा है। तथा नये कवि द्वारा भावों और विचारों के मध्य की खाई न पाट पाने और शब्द तथा अर्थ की लय के भेद से विचलित होने के प्रसंगों को भी उभारा है। उन्होंने नयी कविता के छन्दों में उसकी शब्द-योजना और पद-रचना में लय की सत्ता का अभाव देखा है। साथ ही वे शब्द लयहीन कविता के समर्थन में, अर्थ-लय को स्वतंत्रता सिद्ध करने के लिए जगदीश गुप्त द्वारा दिये गये अनेक विद्वानों के उद्धरणों का समीक्षात्मक विवेचन किया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि छन्द सौन्दर्य और भावोत्कर्ष के अन्तर्विरोध की तरह नयी कविता के व्याख्याकारों के लिए बिम्ब और कथन का अन्तर्विरोध रहा है। उन्होंने नयी कविता में भावहीन इंद्रिय-बोध-हीन कथनों की भरमार देखा है और तथ्य कथन का खंडित, अखंडित तुकबन्दी, अतुकबन्दी रूपों में अभिव्यक्त होने की बात कही है। शर्मा जी ने शमशेर में विचारों

को उलझाने, अच्छे-खासे गद्य को खंडित करके कविता बनाने की प्रवृत्ति अधिक पायी है। वे नयी कविता के लेखकों द्वारा अर्थ की लय, बिम्बवाद, नए सौन्दर्य-बोध आदि को खोकर अपनी हीनता को छिपाने के लिए लम्बी-चौड़ी बातें करने के प्रसंगों को महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में उभारते हैं।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने नयी कविता के लेखकों द्वारा अपने सिद्धांतों और व्यवहार में उलझाव पैदा करने छन्द सौन्दर्य और भावोत्कर्ष का घनिष्ठ सम्बन्ध समझ न पाने, शब्द और अर्थ के बीच एक अभेद्य खाई की कल्पना करने, रूप को छायावादी भावुकता मानकर ठुकराने, अर्थलय का पल्ला थामने, भाव और विचार में मौलिक अन्तर्विरोध की कल्पना करने, बौद्धिकता की दुहाई देने, कविता की अभिव्यक्ति हेतु बिम्बवाद का सहारा लेने आदि प्रवृत्तियों को ग्रहण करने की विशेषता को प्रस्तुत किया जिसके कारण उनकी रचनाओं में भावहीन कथनों की भरमार होने, जनता का चित्रण, समस्याओं की अभिव्यक्ति का अभाव होने और कविता का भाव-बोध और शिल्प सौन्दर्य जनता के लिए सुबोध न होने के प्रसंगों को उद्घाटित किया है।

इस प्रकार शर्मा जी ने काव्यालोचन के अन्तर्गत प्राचीनतम, मध्यकालीन, आधुनिक और अत्याद्युतन काव्य-साहित्य के अध्ययन के अन्तर्गत लोक-जागरण की काव्य-धारा और प्रवृत्ति के विकसित रूप को विश्लेषित किया है तथा उस धारा के जन-पक्षधर साहित्यकारों की पक्षधरता की समीक्षा कर उनके साहित्य में व्याप्त चेतनशील तत्वों को उद्घाटित किया है साथ ही उनके साहित्य का सामाजिक परिप्रेक्ष में समग्रता की दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए उसकी युग-सापेक्षता को व्यक्त किया है।

अध्याय : चार

डॉ. रामविलास शर्मा का गद्यालोचन

4.1 भवभूति के नाटक : मानवीय संवेदना का विस्तार

4.2 शरत का कथा-साहित्य : मनोवैज्ञानिक विवेचन

4.3 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : आधुनिक चेतना के संवाहक

4.4 भारतेन्दु-युगीन साहित्य का नया मूल्यांकन

4.5 प्रेमचन्द का पुनर्मूल्यांकन

4.6 प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य : सेक्स सज्जा और यौन विकृतियाँ

4.7 वृन्दावन लाल वर्मा : ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की सार्थकता

4.8 मार्क्सवादी उपन्यासकार यशपाल : रचना एवं विचारधारा का समग्र मूल्यांकन

4.9 अमृतलाल नागर : मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष और चेतना

4.10 आँचलिक उपन्यास : भारतीयता और प्रगतिशीलता का समुच्चय

4.11 हिन्दी कथा-साहित्य : सामाजिक विषमता और लोक-कल्याण

4.12 गद्य-समीक्षा के अन्य रूप

अध्याय : चार

डॉ. रामविलास शर्मा का गद्यालोचन

डॉ. रामविलास शर्मा की गद्य-विषयक आलोचना के अध्ययन के लिए हमें उनके द्वारा गद्य-साहित्यकारों के सम्बन्ध में तथा उनके साहित्य-विश्लेषण के क्रम में समय-समय पर लिखे गये समीक्षात्मक लेखों पर तथा आलोचनात्मक कृतियों पर निर्भर होना पड़ेगा क्योंकि उन्होंने काव्य-समीक्षा के ही समान गद्य से सम्बद्ध साहित्य पर कोई व्यवस्थित आलोचनात्मक कार्य प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि उनके गद्यालोचन विषयक साहित्य के अध्ययन से यह आभास होता है कि गद्य-विषयक समीक्षा करने की पृष्ठभूमि में उनकी वह काव्य समीक्षा वाली दृष्टि रही जिसके कारण उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत में विभिन्न साहित्यकारों और उनके साहित्य सम्बन्धी गलत और भ्रामक समझ और धारणाओं का खण्डन कर उन साहित्यकारों के साहित्य की समीक्षा के माध्यम से उनके साहित्यिक कार्यों के महत्व को प्रस्तुत किया। गद्यालोचन के क्रम में भी वे अपनी परम्परावादी समीक्षा दृष्टि से जातीय विशेषताओं की खोज करते हैं तथा गद्य-साहित्य में प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी साहित्य की धाराओं में द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध देखते हुए उनके संघर्ष से ही जातीय साहित्य का विकास स्वीकार करते हैं। उनकी काव्य-समीक्षा की अपेक्षा गद्यालोचन साहित्य में व्यक्ति-मूलक समीक्षा सामग्री की बहुलता देखी गई है जिसके कारण कालक्रमानुसार सरलता-पूर्वक उनके गद्यालोचन विषयक समीक्षा-साहित्य का अध्ययन किया जा सकता है। इस क्रम में गद्यालोचन के अन्तर्गत उपलब्ध होने वाली गद्य-विधाओं की समीक्षा सामग्री के आधार पर विवेचन किया जायेगा।

4.1 भवभूति के नाटक : मानवीय संवेदना का विस्तार

"नाटककार भवभूति" लेख में डॉ. रामविलास शर्मा ने भवभूति के "मालती माधव" और "उत्तररामचरितम्" नाटकों को सुखान्त ट्रेजेडी मानते हुए उनकी तुलना शेक्सपीयर के हेमलेट और किंगलियर से की है। उन्होंने नाट्यालोचन सम्बन्धी अंग्रेज़ी आलोचकों की अवधारणाओं को व्यक्त करते हुए नाटक में करुण रस की उदात्त अभिव्यंजना का महत्व स्वीकार किया और भवभूति के नाटकों को सुखान्त ट्रेजेडी बताया है। भवभूति के नाटकों की समीक्षा करते हुए वे अपनी वैचारिक अवधारणाओं को

आलोचनात्मक मानदण्डों के रूप में प्रस्तुत कर उन्हें भवभूति के नाट्य-कौशल के विश्लेषण के संदर्भ में लागू करते हैं और नाटक की विशेषता संघर्ष के चित्रण को मानते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार "संघर्षहीन एक रस-भाव व्यंजना प्रगीत काव्य में संभव है नाटक अथवा महाकाव्य में नहीं।"[1] इसके साथ ही पात्रों का संघर्ष, एक ही पात्र में विरोधी भावों का तनाव, वातावरण में विषम-तत्वों का मिश्रण, विचार, मूर्ति-विधान, शब्द-चयन आदि प्रत्येक स्तर पर विविधता और विविध तत्वों का परस्पर संतुलन, करुण रस प्रधान, उदात्त गुण युक्तता आदि को नाटक की विशेषतायें बताया है। सैद्धांतिक रूप में डॉ. शर्मा ने अपने समीक्षा-साहित्य में साहित्य-समीक्षा के मानदण्डों को ही प्रस्तुत नहीं किया बल्कि अपने विचारों को व्यावहारिक समीक्षा के क्रम में व्यवहृत करते हुए उन्होंने यूनानी नाटकों का मूल सूत्र न्याय व्यवस्था और मानव का संघर्ष मानकर शेक्सपीयर के नाटकों में मनुष्य को मानव-कृत व्यवस्था में अपने कर्म और दुःख के लिए स्वयं को उत्तरदायी मान देव निरपेक्ष न्याय-व्यवस्था से उसके टकराव को व्यक्त किया है। तथा शेक्सपीयर के नाटकों का महत्व प्राचीन नियतिवाद से मुक्त होकर नये मानवतावाद का विकास करने में देखा है।

उनका मानना है कि यूरोप के नवजागरण काल में शेक्सपीयर ने अपने नाटकों के द्वारा जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह कार्य भवभूति के द्वारा नौ सौ वर्ष पूर्व किया जा चुका था। उन्होंने भवभूति द्वारा सीता-त्याग के लिए राम को उत्तरदायी मानने और कालिदास द्वारा शकुन्तला के त्याग के लिए दुष्यन्त की अपेक्षा दुर्वासा के शाप को

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 30

कारण मानने के प्रसंगों को उद्धृत कर दोनों लेखकों की दृष्टि के अन्तर को स्पष्ट किया है। "उत्तररामचरितम्" को ट्रेजेडी और "अभिज्ञान शकुन्तलम" को ट्रेजेडी-विहीन मानकर भवभूति के नाटक में दर्शक की सहानुभूति पीड़ित के प्रति स्वीकार की है तथा अपने इस लेख में राजाराम द्वारा व्यवस्था की रक्षा के लिए सीता का परित्याग और शम्भूक का वध करने की मान्यता व्यक्त की है। क्योंकि उस व्यवस्था में शूद्र और नारी अधिकार वंचित रहे हैं।

डॉ. शर्मा के अनुसार सामंती व्यवस्था की रक्षा के क्रम में जहाँ एक ओर राजाराम, सीता, राजा जनक, कौशल्या आदि दुःख पाते हैं वहीं दूसरी ओर नाटक में दर्शन न देने वाले नागरिक सुख पाते हैं। वे उत्तररामचरितम् की समीक्षा के आधार पर उसके नायक के कार्यों के लिए व्यवस्था को दोषी ठहराते हैं। तथा इस व्यवस्था से सहृदय मनुष्य की टकराव का चित्रण उत्तररामचरितम् में दुष्कर रहा है क्योंकि उस व्यवस्था के रक्षक राजा राम के प्रति जनता की परम्परागत श्रद्धा रही है। परन्तु मालती माधवम में उन्होंने इस प्रकार की कठिनाई का अभाव देखा है तथा मालती माधव के दुःखों का एक कारण राजा और दूसरा कापालिक अघोरघण्ट को माना है इससे भवभूति द्वारा पात्रों के परस्पर विरोध को संघर्ष रूप देकर तत्कालीन समाज का चित्रण करने की पद्धति का परिचय मिलता है। जिसमें युवती को अधिकारहीन दर्शाया गया है।

शर्मा जी के अनुसार रीतिवादी श्रृंगार की दुनिया में प्रेम के नये सामाजिक मूल्य को केन्द्र बनाकर मालती माधवम् की रचना की

गयी है जिसमें मूल्यों की रक्षा के लिये सहृदय मनुष्य जर्जर व्यवस्था से संघर्ष करता हुआ दिखायी देता है। शर्मा जी द्वारा जनता के सुख के लिए राजा राम द्वारा सीता का परित्याग मानकर राम के प्रति जो सहानुभूति दर्शायी है उससे राम का दोष सिद्ध न होकर तत्कालीन व्यवस्था दोषी दिखाई देती है। उन्होंने शेक्सपियर के नाटकों की तरह भवभूति के नाटकों में देव निरपेक्ष मानव-कृत व्यवस्था मान उसके ऐतिहासिक महत्व को उभारा है। और भवभूति में शेक्सपीयर की व्यक्तिगत अनुभूति की स्थिति का मिलना भी स्वीकार किया है। साथ ही वे मालती माधवम् के नवें में माधव की उक्ति और उत्तररामचरितम् के तीसरे अंक में राम की उक्ति में साम्यता देखते हैं। तथा शेक्सपीयर और भवभूति के नाटकों में सघन अन्धकारमय वातावरण की सृष्टि की समानता पाते हैं और इस वातावरण के अंधकार को एक प्रकार की आन्तरिक मनःस्थिति का ही बाह्य रूप माना है। उन्होंने शेक्सपीयर और भवभूति को सुकुमार संवेदनाओं के कवि मानकर उनकी कल्पना में विकृत वीभत्स और भयानक दृश्यों की उपस्थिति का कारण उनके युगीन परिवेश में खोजा है। उनके अनुसार भवभूति और शेक्सपीयर उस नये युग की देन है जिसकी विशेषता कवि का विभाजित व्यक्तित्व रहा है इसके विपरीत शोक की अनुभूति पर श्लोक की रचना करने वाले वाल्मीकि और होमर स्वस्थ मन के व्यक्ति हैं और उनमें दुःस्वप्नों से पीड़ित मन के विक्षेप के अनुभव का अभाव रहा है।

शर्मा जी भवभूति और शेक्सपीयर के साहित्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर उनके काव्य जगत में मनुष्य द्वारा आत्म-हत्या

का विचार करने और भावात्मक परिवर्तन के कारण दूसरों की हत्या करने आदि प्रसंगों को उभारते हैं। उन्होंने वाल्मीकि और होमर तथा भवभूति और शेक्सपीयर की युग सापेक्षता के आधार पर उनकी भावानुभूति के अंतर को स्पष्ट किया है। और मन को झकझोरने वाले विरोधी-भावों की अभिव्यक्ति करने तथा पात्रों की मनःस्थिति का सही वर्णन करने में भवभूति और शेक्सपीयर को अत्यन्त दक्ष माना है। साथ ही भवभूति में विष की अनुभूति की अधिकता को दर्शाते हुए इस तरह की अनुभूति और अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित नये युग की अव्यवस्थित चेतना को शेक्सपीयर के हेमलेट और किंगलियर में देखा है। वे भवभूति के पात्रों की मनःस्थिति को दर्शाते हुए उद्वेग का दमन, उद्वेग का घनीभूत प्रस्फुटन, उद्वेग की प्रबलता से चित्त की विक्षिप्तता आदि को नायकों की मनःस्थिति की विशेषता मानते हैं उन्हें आधुनिक मानव की मनःस्थिति से जोड़ते हैं।

डॉ. शर्मा ने भवभूति के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की चर्चा करते हुए भवभूति द्वारा विकल्प स्पष्ट निर्भास आलेखन अनुभूति आदि शब्दों के प्रयोग को आधुनिकतम अनुभूतियों का व्यंजक माना है। तथा भवभूति के इस प्रयास को न केवल साहित्य वरन् मनोविज्ञान की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना है और चेतना की अनुभूति भवभूति में शेक्सपीयर से पूर्ववर्ती बताते हैं। उन्होंने भवभूति की नाट्य विशेषताओं का शेक्सपीयर की नाट्य विशेषताओं से तुलना करते हुए भवभूति के नाटकों में अतीत को प्रत्यक्षवत देखने की अद्भुत शक्ति की व्याप्ति को दर्शाया। तथा भवभूति द्वारा अपनी मर्मच्छेदी शोकानुभूति और शोक-मिश्रित अतीत की

सुखानुभूति को अनेक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करने के प्रसंग को उभार कर राम और माधव के माध्यम से व्यक्त शोकानुभूति या सुखानुभूति को भवभूति के व्यक्तित्व की उदात्त रूप में व्यक्त अनुभूति बताया है। और भवभूति को करूण रस का श्रेष्ठ कवि और प्रेम के चित्रण में अन्यतम माना है। साथ ही भवभूति के प्रेम की भूमि को परम्परागत श्रृंगार रस की भूमि से काफ़ी दूर बताया है। प्रमाणस्वरूप उन्होंने कालिदास के यक्ष द्वारा मेघ को अलका पहुँचने के पहले पचीसों स्त्रियों के दर्शन करावने जैसे प्रसंग का भवभूति के राम या माधव के श्रृंगार-रस में अभाव दर्शाकर अन्तर को स्पष्ट किया है।

इसके अलावा डॉ. शर्मा ने रीतिवादी युग में जहाँ नारी निरन्तर कामिनी पुरूष की भोग्या के रूप में चित्रित होने के प्रसंगों को उभारा है वहीं भवभूति द्वारा वाल्मीकि की परम्परा को पुनः जीवित कर रघुवंश के रचनाकार की परम्परा को सम्वर्द्धित करते हुए प्रेम की उदात्त अभिव्यंजना को अभिव्यक्त करने के प्रसंगों को भी उद्घाटित किया है। वे भवभूति के प्रेम को अशरीरी न होने पर भी वाल्मीकि और कालिदास के प्रेम चित्रण से भिन्न मानते हैं और भवभूति के पात्रों में प्रथमानुराग के साथ मृत्यु की कल्पना-प्रेम की अतिशयता के कारण नहीं बल्कि सौन्दर्य की एक विशेषता के रूप में अभिव्यक्त होना स्वीकार करते हैं। उन्होंने भवभूति के दोनों नाटकों से अनेक उद्धरण प्रस्तुत कर उनकी समानता और अनुभूति के चित्रण की एकात्मकता की अभिव्यक्ति को दर्शाया है तथा उनके नाटकों में व्यक्त मैत्री-भाव तथा नारी के प्रति सहज सहानुभूति को एक महत्वपूर्ण विशेषता माना है।

शर्मा जी क्रूरता की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हुए शेक्सपीयर में उसकी गहराई की अपेक्षा प्रसार की अधिकता को और भवभूति में प्रसार की कमी और गहराई की अधिकयता देख क्रूरता और सुकुमारता की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हैं। मालती माधवम् के सातवें अंक को रोचकता, उत्तेजकता एवं यथार्थ-चित्रण के कारण शेक्सपीयर की कॉमिडी कला के स्तर का माना है। तथा भवभूति द्वारा विदूषक की सहायता से प्रहसन लेखन न कर चरित्र, वार्तालाप और नाटकीय परिस्थितियों द्वारा मनोरंजक तत्वों का संगठन कर हास्य को उसकी रूढ़िगत परिधि से बाहर निकालने के कार्य को विशेष महत्वपूर्ण बताया है। उन्होंने अनेक तरह के पात्र, परिस्थितियों, स्तरों पर व्यक्त सुख और दुःख की अनुभूति को नाटक का विषय मानकर भवभूति के नाटकों में नाटककारों और नटों के प्रति आदर-भाव और प्रेम को देखा है। वे भवभूति के नाट्य कौशल को क्रमशः विकसित होता हुआ देख महावीर चरितम् में पात्रों की बहुलता, घटनाक्रम की दीर्घता और अनुभूति की तीव्रता को उनकी विशेषतायें स्वीकार करते हैं और मालती माधवम् को अभिनय की दृष्टि से सफल नाटक बताते हुए उसमें विचित्र घटना संयोग और उदात्त काव्य का संतुलन तथा पात्रों की सक्रियता को उभारकर भावात्मक वातावरण की दृष्टि से मैकबेथ के समतुल्य बताते हैं। उन्होंने भवभूति के नाट्य-कौशल में विरोधी भावों के सूत्रों के कारण अंधकारमय वातावरण की प्रधानता तथा सुखानुभूति के अनुकूल वातावरण की सृष्टि का निर्माण देखा है। किंतु उत्तररामचरितम् को एक नायक प्रधान नाटक मान उसे शेक्सपीयर के महानाटकों के समकक्ष बताया और मालती माधवम् में मालती और माधव दोनों शोकानुभूति का माध्यम होने के कारण भावात्मक पुनरावृत्ति जैसे दोष को देखा है परन्तु

भवभूति द्वारा सीता को पृष्ठभूमि में रखकर राम को रंगमंच के अग्रभाग में केन्द्रीय स्थान देना किसी भी नाटककार के लिए चुनौती-पूर्ण कार्य माना है।

शर्मा जी भवभूति के नाटक में करूण रस की अभिव्यक्ति के प्रसंगों का विश्लेषण करते हुए राम द्वारा गर्भवती सीता के परित्याग के प्रसंग में सीता के प्रति करूण भाव न जगाकर भवभूति द्वारा राम के प्रति न्याय व्यवस्था से सहृदय मनुष्य के द्वन्द्व का अनुपम चित्रण करके करूण भाव जगाने के कार्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण और अतुलनीय बताते हैं। उनके अनुसार वाल्मीकि और कालिदास द्वारा असंभवित कार्य को भवभूति द्वारा संभव कर दिखाना वास्तव में भवभूति की नाट्य-कौशलता की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भवभूति के नाट्य रचना-कौशलता के आरम्भ में करूण रस की सघनता, मध्य में वीभत्स और भयानक हास्य आदि द्वारा घनत्व की कमी और पुनः करूण रस की अंत में सघनता की व्याप्ति स्वीकार कर उसकी शेक्सपीयर से तुलना की है। परन्तु यथार्थ की विविधता, मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ, चरित्र-निर्माण की वास्तविकता आदि के प्रसार में शेक्सपीयर को भवभूति से आगे और शोकानुभूति की तीव्रता, करूण रस एवं वात्सल्य रस आदि सुकुमार भावों की पराकाष्ठा की गहराई आदि के संदर्भ में भवभूति को शेक्सपीयर से आगे माना है। उन्होंने भवभूति द्वारा रीतिवाद की प्रतिकूल दिशा में करूण रस की सार्वजनिकता घोषित करके प्रसंग को उभार कर उत्तररामचरितम् रचना को मिल्टन द्वारा अभिजात वर्गीय चेतना के प्रतिकूल पैराडाइज लॉस्ट रचना के समान माना है। परन्तु भवभूति के नाटकों में जगह-जगह उनके व्यक्तित्व की छाप भी स्वीकार की है।

शर्मा जी भवभूति के साहित्य की समीक्षा कर उनके महत्व को उभारते हुए भारतीय साहित्य में भवभूति के आविर्भाव को विश्व-साहित्य में नये-युग का सूत्रपात बताते हैं क्योंकि शेक्सपीयर जैसे यूनानी नाटककारों द्वारा देव-सापेक्ष न्याय व्यवस्था की जगह देव-निरपेक्ष न्याय व्यवस्था का चित्रण करने से पूर्व भवभूति ने यह कार्य अपने साहित्य में कर दिया था। वे संवेग चेतना की मोहग्रंथि, ब्रह्मानन्द से उल्टी तीव्र शोकानुभूति, चेतना की सीमांत भूमि में संचारण, नाट्य रचना में भाव सघनता आदि का उतार-चढ़ाव शेक्सपीयर से पहले भवभूति में मानते हैं।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने भवभूति के नाट्य कौशलता का विश्लेषण करते हुए उनकी नाट्य प्रतिभा की तुलना विभिन्न संदर्भों में शेक्सपीयर की नाट्य-कौशलता से कर भवभूति की प्रगतिशीलता और युग-सापेक्षता को अभिव्यक्त किया है। तथा अनेक संदर्भों में उनकी साहित्यिक विशेषताओं या प्रवृत्तियों की कालिदास और वाल्मीकि के साहित्य से तुलना कर उनकी परम्परा का विकास देखा है। यथार्थ चित्रण की अभिव्यक्ति वर्गीय-संघर्ष और वर्गीय चेतना, वर्ग-आधारों की सही अभिव्यक्ति, परिवेश से सम्बद्ध दृष्टिकोण का विश्लेषण कर साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व की छाप, उनकी सहज अनुभूति और विचारों के समन्वय से उसकी अभिव्यक्ति के रूप आदि की प्रस्तुति को उभार कर अपनी मार्क्सवादी समीक्षात्मक विश्लेषण पद्धति का परिचय दिया है।

4.2 शरत का कथा-साहित्य : मनोवैज्ञानिक विवेचन

शरतचन्द्र चटर्जी के कथा-साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा जी उनके उपन्यासों के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभार कर उनके उपन्यास के नायकों को अनेक स्त्रियों से घिरे हुए बताते हैं। सभी स्त्रियाँ उससे प्रेम करना चाहिती है परन्तु उनमें से एक को भी वह प्रेम प्रदान करने में सफल नहीं हो पाता। उसकी इस असमर्थता की भूमि पर नारी की उपासना, उसकी तपस्या, उसकी सेवा परायणता आदि का आदर्शवाद निर्मित देखा गया है। उन्होंने शरत बाबू के अधिकांश नायकों को जमींदार-वर्गीय परिवारों से सम्बद्ध, बाल्यावस्था से आवारा और स्त्रियों के प्रति एक विशेष प्रकार की भावुकता रखने वाले पात्रों के रूप में देखा है जो अपनी सम्पन्नता के द्वारा अपनी भावुकता के प्रयोग की पूर्ण स्वतंत्रता और अवसर पाते हैं।

शर्मा जी के अनुसार शरत बाबू के कथा-नायकों के चरित्र में प्रेम करने की इच्छा मिलती है परन्तु वे नारी को अति-निकटता से प्यार करना नहीं चाहते। उनकी इस प्रवृत्ति में डॉ. शर्मा ने नायकों को अपने पुरुषार्थ के भंग होने का भय देखा है। वे शरत के नायकों की पुरुषार्थहीन प्रवृत्ति को उभारते हुए कहते हैं -- ठेलने की क्रिया जब एक दीर्घ अवधि ले लेती है और प्रेम के खिंचाव की आवश्यकता का अनुभव होता है तब नायक किसी न किसी शारीरिक व्याधि से व्याकुल हो उठता है और अपने शीतल कर स्पर्श से उसके ताप को दूर करने के लिये तब एक न एक नायिका अवश्य आ जाती है। परन्तु शरत जी के नारी पात्र पुरुष के प्रेम की खोज में

तपस्या करते-करते निर्बल और क्षीण होकर सेवा के परम-तत्व को पहचान पाती है और कोई-कोई पागल भी हो जाती है।[1]

शरत जी के औपन्यासिक पात्रों का विश्लेषण कर शर्मा जी उनके नायकों की समस्या और उनकी जर्जरता तथा खोखलापन भी एक विशेष प्रकार का मानते हैं। और वह मध्यवर्ग को समाज का क्रांतिकारी वर्ग समाज को गति और प्राण देने वाला वर्ग मानते हैं। "पथेरदावी" के सव्यसाची का यही आदर्श मानते हुए उसके मध्यवर्ग के पात्रों में श्रीकांत जैसे लक्ष्यहीन अवारापन देखा है। उनके अनुसार श्रीकान्त की राजलक्ष्मी वेश्या जीवन छोड़कर ईश्वरोपासना में लीन एक साध्वनी स्त्री बन जाती है परन्तु श्रीकांत को कोई लक्ष्य नहीं मिलता। वे शरत बाबू के उपन्यासों की कमियों को उजागर करते हुए कहते हैं -- समाज के विकास में वर्गों की पारस्परिक प्रतिक्रिया पर शरत बाबू की दृष्टि प्रायः नहीं गई है चूँकि श्रीकांत की कहानी में नायक की लक्ष्यहीनता, उसकी भ्रमण-प्रियता, प्रेम का उसे खींचना और ठेलना आदि क्रियाएँ विशेष रूप से उभर कर आई हैं। जो उनके अनेक औपन्यासिक प्रसंगों से सिद्ध होता है। अर्थात् शर्मा जी ने श्रीकांत का नारी से सम्बन्ध खोने और पाने से परे का माना है। किंतु उन्होंने शरत जी के उपन्यासों में पुरुष द्वारा बिन ब्याही स्त्री को अपनी पत्नी घोषित करने की परिस्थितियाँ अनेक बार देखी गई है। और उनके पुरुष पात्र का बलि पशु की भाँति निःसहाय और कतार होकर मार्ग खोजने के प्रयास को भी देखा गया है। जो श्रीकांत द्वारा व्यक्त उसकी दशा के मार्मिक वर्णन से सिद्ध होता है।

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 16-17

शर्मा जी के अनुसार शरत जी की नायिकायें बहुधा वेश्याएँ, विधवाएँ, युवावस्था की दुश्चरित्राएँ हैं। यह वास्तव में विवशता पुरूष की मानी गई है क्योंकि उसकी पुरूषत्वहीनता ही नारी को निर्लज्ज बना देती है और इस निर्लज्जता का अति विकृत रूप "चरित्रहीन" की किरण में देखा गया है। परन्तु श्रीकांत की कथा में अभया, कमल, लता, राजलक्ष्मी जैसी नारियों का अभाव और उसमें प्रेम का खींचाव-ठेलाव व्यापार की अनन्त क्रिया देखी गई है। किंतु शरत के नारी पात्रों में मातृत्व की खोज जीवन पर्यन्त देखी है। डॉ. शर्मा शरत की अनेक कहानियों के स्त्री-पुरुष पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण कर उक्त-विशेषतायें देखने के साथ-साथ स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों की अनिश्चितता और पुरूष पात्रों की बीमारी की अवस्था में उनकी बहनों द्वारा उनकी सेवा आदि के प्रसंगों की बहुलता स्वीकार की है। और शरत बाबू द्वारा नारी की विवशता, खिन्नता, व्याकुलता, उसकी विक्षिप्तता, अतृप्तवासना की पीड़ा आदि सारी नारकीय यातना को उसके विकृत रूप में किरण में चित्रित करने का उल्लेख किया है।

शर्मा जी शरत बाबू के उपन्यासों में प्रेम-निवेदन का कार्य स्त्रियों द्वारा करने और लज्जा को पुरूषों का भूषण बताते हैं। वे चरित्रहीन के उपेन्द्र की दशा श्रीकांत जैसी देखते हुए वैरागी द्वारा दिवाकर से जहाज पर प्रेम अभिव्यक्ति के प्रसंग को वीभत्सता और भौंडेपन में अद्वितीय बताया तथा किरण की कहानी को पुरूष की पुरूषार्थहीनता की कहानी मानकर उसमें श्रीकांत की कहानी की अपेक्षा अधिक कटुतापन देखते हैं। उन्होंने "पथ के दावेदार" को राजनीतिक उपन्यास मान उसमें राजनीतिक समस्याओं पर वाद-विवाद मिलने और मुख्य पात्र अपूर्व और सव्यसाची को श्रीकांत और वज्रानन्द सतीश और उपेन्द्र आदि के समान बताया है। वे अपूर्व में श्रीकांत

की अनिश्चितता और सव्यसाची में वज्रानन्द की दृढ़ता और कर्तव्य परायणता को देखते हैं तथा अपूर्व और उसके साथियों में विदेशी-शासन के प्रति व्याप्त घृणा उत्पत्ति को उनका बचकानापन और मानसिक अपरिपक्वता माना है और सव्यसाची को देवदास का आदर्श चित्र बताकर उसके क्रांतिकारी बनने के इतिहास में मनोरंजकता देखी है। उनके अनुसार सव्यसाची की अति-मानवता उभारने के लिए शरत बाबू ने अनेक उपायों से काम लिया है। एक व्यक्ति को अति-मानव के रूप में चित्रित करने का कारण शरतचन्द्र का मध्यवर्गीय व्यक्तिवाद माना है।

शर्मा जी शरत के उपन्यासों की घटनाओं और वातावरण तथा परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए कहते हैं -- शरत बाबू ने जो बर्मा के कुलियों की झांकी चरित्रहीन में दी थी उस थोड़ी-सी पूँजी को कल्पना के सहारे बढ़ाकर उन्होंने "पथ के दावेदार" में कुलियों का चित्रण किया है। तथा कुलियों में जिस वीभत्स अनाचार और व्यभिचार-प्रियता के दर्शन होते हैं उससे सव्यसाची का मध्यवर्ग की क्रांति में विश्वास व्यक्त होना स्वीकार किया है। इसके अलावा शर्मा जी ने शरत के उपन्यासों में रूदन व्यापार की चिरंतरता को भी देखा है। और शरत बाबू के नायकों की पुरूषार्थहीनता इस अश्रु व्यापार में यत्किंचत तृप्ति लाभ करने वाली मानी गई है। उनके उपन्यासों में एकरसता का कारण उनके औपन्यासिक पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की पुनरावृत्ति को माना है और उनके उपन्यासों में घटना की प्रधानता का अभाव और विशेष परिस्थितियों और पात्रों के विशेष कोटि के मनोभावों की सृष्टि देखी गई है इन मनोभावों का चित्रण करना ही शरत बाबू का ध्येय माना गया है। उन्होंने शरत बाबू के उपन्यासों

में पात्रों की समानता के साथ-साथ उनके मनोभावों में भी समानता देखी है। तथा उनके पात्रों की पुरुषार्थहीनता से नारी के नयन-अश्रु निर्झर बन जाने और घटनाओं के उचित संगठन का अभाव एवं नायक और घटनाओं की लक्ष्यहीनता और अक्रमबद्धता को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार समाज के आवारों, निकम्मों, अतृप्त आकांक्षाओं वाले व्यक्तियों को शरत बाबू से पर्याप्त सहानुभूति मिलती है किन्तु समाज की प्राण-शक्ति और उसके विकास की प्रेरणा को उनके उपन्यासों में विरोधिनी रूप में प्रस्तुत हुई है और उनके नायकों की लोक-सेवा में एक प्रकार की विक्षिप्तता देखी गई और शर्मा जी ने लोक-सेवा और आवारापन दोनों का ही उद्गम पुरुष की नारी के समीप असमर्थता से बताई है। शरत के अधिकांश पात्र ईश्वर में विश्वास न करके समाज के पुरातन आदर्शों में भक्ति रखने वाले रहे हैं। उन्होंने शरत बाबू के नायक-नायिकाओं का समाज के प्रति विद्रोह को एक प्रकार की उच्छृंखलता के रूप में देखा है। जिसका कारण रचनात्मकता का अभाव सामाजिक आदर्शों का खोखलापन और अंध-भक्ति प्रदर्शन माना है। डॉ. शर्मा के अनुसार उनका साहित्य एक व्यक्ति को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर घूमता है तथा वह केन्द्र असमर्थता और पुरुषार्थहीनता का रहा है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने शरत बाबू के उपन्यासों के पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण, घटनाओं की समीक्षा और दृष्टिकोण का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनमें एकरसता और सम-विशेषताओं को उभारा है। और साथ ही उसकी सामाजिक महत्ता और युग सापेक्षता के प्रश्नों पर चिह्न लगाया है। उन्होंने औपन्यासिक और कथा-साहित्य

के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उदघाटित कर उनके प्रेमी व्यक्तित्व तथा उनकी समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे शरतचन्द्र चटर्जी के साहित्य की विशेषताओं को उभारते हुए उनकी कलात्मकता के दोषों और साहित्य की कमियों को भी उद्‌घाटित कर शरत जी की समीक्षा के प्रति अपनी आलोचनात्मक साम्यवादी दृष्टि, मार्क्सवादी विश्लेषण पद्धति का परिचय दिया है।

4.3 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : आधुनिक चेतना के संवाहक

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-कालीन साहित्यकारों की साहित्य-समीक्षा के क्रम में सबसे अधिक महत्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य-समीक्षा को प्रदान करते हैं। वे उनके प्रिय साहित्यकार रहे हैं। उन्होंने भारतेन्दु को साहित्यकार ही नहीं बल्कि साहित्यकारों के संगठन के रूप में देख उनके द्वारा अल्पायु में की गई हिन्दी साहित्य की महानतम सेवा को अविस्मरणीय बताया। क्योंकि भारतेन्दु के लिए साहित्य-सेवा और देश-सेवा अभिन्न रही है। और उनकी व्यक्तिगत इच्छाएँ देश और समाज की इच्छाओं से एकाकृत होने के कारण उनका सरकार और प्रगति-विरोधियों से एक-साथ विरोध और संघर्ष देखा गया है। डॉ. शर्मा के अनुसार ऐसे ही द्वन्द्व से सत्य-प्रेमी हरिश्चन्द्र और असत्य-प्रेमी समाज के बड़ों के बीच संघर्ष से सत्य हरिश्चन्द्र की उत्पत्ति हुई है। चरित्र की इसी दृढ़ता के कारण उन्होंने भारतेन्दु को उनके युग के सबसे अच्छे

संगठनकर्ता, साहित्य का सर्व-श्रेष्ठ मार्गदर्शक बताया है।[1] भारतेन्दु के चरित्र की दूसरी विशेषता उनकी भगीरथ अध्यवसायी प्रवृत्ति को माना। भारतेन्दु ने अल्पायु में भाषा, साहित्य और समाज में एक व्यापक परिवर्तन लाया है क्योंकि वे बहुभाषी रहे हैं। शर्मा जी भारतेन्दु के अध्ययन को उनकी कला के नीचे तुलसीदास,प्रेमचन्द या गोर्की के विशाल अध्ययन के समान छिपा हुआ मानकर शेक्सपीयर और कालिदास को उनके प्रिय कवि बताते हैं। तथा भारतेन्दु की कला-कौशलता को तुलसी की परम्परा और श्रेणी का मान प्रेमचन्द और गोर्की की कला-कौशलता से समानता देखी है। उन्होंने भारतेन्दु के गद्य-साहित्य की समीक्षा करते हुए "भारत-दुर्दशा" में भारतेन्दु द्वारा भारतीय धन के विदेशगमन, महँगाई टैक्स आदि के संबंध में दर्शायी गई समस्याओं के रूप को उनके साहित्य की जन-पक्षधरता का प्रमाण माना है तथा उसमें व्याप्त निराशा को तीव्र असंतोष का कारण बताया और उनका महत्व अँग्रेज़ी-राज के सच्चे और कटु आलोचक के रूप में स्वीकार कर उनके सम्पूर्ण साहित्य को अँग्रेज़ी-राज के अन्याय और शोषण के प्रतिरोध के रूप में देखा है।

डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु द्वारा अपने साहित्य में व्यक्त अँग्रेज़ी-राज की सभ्यता, नेक-नीयती और जन-तंत्र का पर्दाफाश करने के प्रमाण को "बादशाह दर्पण" की भूमिका में की गई मुस्लिम-राज और अँग्रेज़ी-राज की तुलना के माध्यम से व्यक्त किया है। "लेवी प्राण लेवी" में आत्म-सम्मानहीन भारतीयों के प्रति घृणा व्यक्त कर भारतेंदु द्वारा हिन्दी-भाषी जनता में आत्म-सम्मान की रक्षा की भावना उत्पन्न करने

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — पृ. 15

के कर्म को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। और "वैद्यनाथ की यात्रा" में अंग्रेज़ों द्वारा भारत में चलायी गई वर्ण-भेद नीति के स्पष्टीकरण का उल्लेख किया है।

डॉ. शर्मा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा किये गये कार्यों की समीक्षा कर लिखते हैं -- "तुलसीदास ने भक्ति के रूप में भारतीय जनता में जो सहज आत्म-सम्मान जगाया था वही नई परिस्थिति में भारतेन्दु के द्वारा राष्ट्रीय आत्म-सम्मान के रूप में विकसित हुआ।"[1] इसी कारण हरिश्चन्द्र को उनके जीवन-काल में ही जनता ने भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किया है। शर्मा जी भारतेन्दु द्वारा "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में पदवी पाने वालों पर व्यंग्य करने तथा "अंधेर नगरी" प्रहसन में अंग्रेज़ी-राज के प्रति जनता के तीव्र असंतोष को व्यक्त करने के प्रसंगों को उभारते हैं और भारतेन्दु द्वारा मुकरियों में राजनीतिक प्रसंगों को अत्यन्त व्यंग्यात्मकता के साथ प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को उनकी राजनीतिक चेतना का प्रतीक बताया।

भारतेन्दु की मुकरियों की प्रशंसा करते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं -- "अमीर खुसरों के बाद भारतेन्दु ने मुकरियों के साहित्यिक रूप का सबसे बड़ा सुन्दर प्रयोग किया तथा खुसरों की परम्परा को और ऊँची सतह पर नये जमाने की माँग के अनुकूल विकसित करते हुए उन्होंने पुराने रूप में नया-जीवन डाला और राजनीतिक मुकरियाँ लिख कर भारतेन्दु ने अपने अमल से दिखा दिया कि जनता की राजनीतिक शिक्षा के लिए उसके प्रचलित

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- पृ. 27

घटिया समझे जाने वाले साहित्यिक रूपों का कितना बढ़िया प्रयोग हो सकता है।"[1] अर्थात् शर्मा जी के अनुसार भारतेन्दु ने अपनी मुकरियों के माध्यम से अंग्रेज़ी-शासन व्यवस्था, भारत के प्रति उनके नैतिक उत्तरदायित्व आदि तत्कालीन यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत किया है। इसी कारण उन्होंने भारतेन्दु की सरस बाँकी और चोट करने वाली मुकरियों को उनकी पत्रकारिता द्वारा अंग्रेज़ी-राज के शोषण का विरोध करने वाली प्रवृत्ति का विकसित रूप माना है और भारतेन्दु द्वारा अंग्रेज़ी-राज की आलोचना करने तथा उसे निर्मूल करने के मंत्र "स्वदेशी" की अभिव्यक्ति उनके साहित्य में देखी है। तथा भारतेन्दु के "प्रतिज्ञा-पत्र" को हिन्दुस्तान के स्वाधीनता-संग्राम में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य माना है। साथ ही उन्हें हिन्द प्रदेश में स्वदेशी आंदोलन के जन्मदाता और देश के लिए बलि होने की शिक्षा देने वाले प्रणेता बताया है। भारतेन्दु द्वारा साहित्य के माध्यम से स्वदेशी और स्वाधीनता की समस्या को लोगों के सम्मुख रखकर अपने मत के प्रचार के लिए तथा जनता के भावी स्वाधीनता-संग्राम हेतु तैयार करने के लिए किये गये कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं।

डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु और उनके सहयोगियों द्वारा विकसित की गई संस्कृति का आधार अंग्रेज़ों की पक्षपाती नीति को माना है और भारतेन्दु की असंगतियों का कारण युग की सीमाओं को मानते हुए उन्होंने भारतेन्दु के साहित्य में राज-भक्ति का आधार एक वर्ग-विशेष तक सीमित बताया है जिसका प्रमाण डॉ. शर्मा के इस कथन से मिलता है -- "भारतेन्दु

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- पृ. 28

ने देश की दशा सुधारने के लिए राजाओं, रईसों और विद्वानों की तरफ देखा लेकिन उन्हें हर तरफ से निराशा ही हुई।"[1] शर्मा जी के अनुसार इसी कारण भारतेन्दु ने "लेवी प्राण लेवी" में बनारस के राजभक्त रईसों को कठपुतली की तरह नाचते दिखाया है। उन्होंने "भारत दुर्दशा" में अंग्रेज़ों के अधीन राजाओं के देशोद्धार की आशा करना व्यर्थ बताने के प्रसंग को अंग्रेज भक्ति और सामंत-भक्ति दोनों का ही फतिहा बताया है। तथा "भारत दुर्दशा" में भारतेन्दु द्वारा बुद्धि-जीवियों पर चुभते व्यंग्य करने की अभिव्यक्ति मिलना स्वीकार किया।

शर्मा जी भारतेन्दु की हिन्दी नाट्य-विधा में उपलब्धि और उनके महत्व को उजागर करते हुए कहते हैं कि "भारतेन्दु ने अपने मौलिक और अनूदित नाटकों के जरिये एक साथ कई काम किये हैं। उन्होंने नाटकों के माध्यम से नई हिन्दी को लोक-प्रिय बनाया। फारसी रंगमंच का विरोध किया और प्राचीन नाटकों का उद्धार किया तथा उन्होंने भोड़े और गलत अनुवादों के मुकाबले में सरस और रचनात्मक अनुवादों की मिसालें प्रस्तुत की हैं।"[2] उन्होंने भारतेन्दु के नाटकों की सफलता का कारण समाज की महत्वपूर्ण समस्याओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करना माना है। तथा भारतेन्दु द्वारा नाटकों में किये गये विभाजन का आधार संस्कृत के प्राचीन रूप को नये दृष्टिकोण से उनका सजीव उपयोग करने की पद्धति को माना है। तथा भारतेन्दु के नाट्य-कौशलता की समीक्षा कर उनका कहना है

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- पृ. 38
2. वही, पृ. 75

कि विद्या सुन्दर और प्रेम-जोगिनी दोनों नाटक दृश्यों में विभाजित है जिसमें विद्या सुन्दर बंगला की छाया से आच्छादित रहा और प्रेम जोगिनी अधूरा ही रह गया है। तथा शेष सभी नाटकों को संस्कृत परम्परा के अनुसार अंकों में विभाजित माना है। और "पाखण्ड विडम्बन" और "धनंजय विजय" को एकांकी बताया। किंतु "विषस्य विषमौषधम" को एक पात्र की एकांकी कहा है। इसके अलावा शर्मा जी "मुद्राराक्षस" और "सत्यहरिश्चन्द्र" के अंतिम अंकों का प्रभाव छोटे-छोटे दृश्यों के विभाजन के कारण कम होना स्वीकार करते हैं। परन्तु उन्होंने "विषमस्य विषमौषधम" को भाण का उदाहरण माना है। जिसका उद्देश्य हास्य की उत्पत्ति, उत्तम भाषा की अभिव्यक्ति और मध्य में संगीत का समायोजन रहा है। "चंद्रावली" को नाटिका तथा "प्रेमजोगिनी" को प्राचीन रीतिमिश्रण का नाटक स्वीकार किया है। किंतु "भारत दुर्दशा" में नई विषय-वस्तु से पुरानी व्याख्यायें छुटी हुई दिखाते हुए छः अंकों में विभाजित नाट्य रासक माना है और "नीलदेवी" को वियोगांत ऐतिहासिक गीति-रूपक बताया।

शर्मा जी भारतेन्दु के नाटकों में एक-दो नाटकों को ही रीतिकालीन कवियों के श्रृंगार-रस की प्रधानता से परिपूर्ण बताते हैं तथा "विद्यासुन्दर" और "कपूर्रमंजरी" में प्राचीन चाल के श्रृंगार की अभिव्यक्ति तथा "चन्द्रावली" के श्रृंगार में प्रेम की प्रधानता और नायिका भेदी-तत्व को दबा हुआ मानते हैं और शेष नाटकों को रीतिकालीन श्रृंगार रस की परम्परा से दूर स्वीकारते हुए भारतेन्दु नाट्य-साहित्य में सामंती साहित्य की लीक से पृथक सामाजोपयोगी और यथार्थवादी साहित्य की नई लीक

का निर्माण देखा है। किंतु "विद्यासुन्दर" में गीत नाटक के रोमांटिक सौन्दर्य का निखार तथा पाखंड विडम्बन में हास्य-रस का उभार, पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग, भक्ति की श्रेष्ठता, गद्य-पद्य का समन्वित प्रयोग धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति आदि विशेषताओं को उभारा है। "धनंजय विजय" में भारतेन्दु द्वारा व्यक्त राजकर से मुक्ति और भारतवासियों से आलस्य और मुर्खता त्यागने की अपील को उन्होंने समाजसुधार और देश-भक्ति की नई कविता का पहला सूत्र माना है। तथा "कर्पूरमंजरी" को राजशेखर की प्राकृत रचना का अनूदित रूप मानकर उसमें भारतेन्दु की नाट्य-लेखन कला का विशेष प्रदर्शन पाया है। और "मुद्राराक्षस" को भारतेन्दु का सबसे सफल और लोकप्रिय अनूदित नाटक बताया। परन्तु "सत्यहरिश्चन्द्र" नाटक में सत्यहरिश्चन्द्र की आत्मा को हरिश्चन्द्र की बताते हुए उसका रूप विन्यास, उसकी भाषा का लालित्य उसके सरस पद्य आदि को देव-सम्बद्ध और नाटक की भावधारा को समसामयिकता से परिपूर्ण माना।

इसके अतिरिक्त शर्मा जी "अंधेर नगरी" के समर्पण में भारतेंदु द्वारा मनुष्य का मूल्यांकन परहित की कसौटी द्वारा करने की नीति की सराहना करते हैं क्योंकि भारतेन्दु ने मन-वचन-कर्म की ऐक्यता की कसौटी द्वारा अपने समाज और युग को परखा था। इसी कारण "सत्यहरिश्चन्द्र" की कथा-वस्तु का ऊपरी ढांचा अलौकिक होने पर भी उसमें यथार्थवाद के नये प्राणों का स्पन्दन रहा है। वे भारतेन्दु के साहित्य में हरि-भक्ति और देश-भक्ति की अभिन्नता को उद्घाटित करते हुए उनके द्वारा व्यवहृत "मानव सेवा ही माधव सेवा" के सूत्र को उभारा और उनकी इस भक्ति को नर-नारी की समानता और सुकविजन की नई कविता का

विरोध करने वाली नहीं अपितु उसे विकसित करने में सहायक बताया है। और "चन्द्रावली" नाटिका को भारतेन्दु की आत्मा का ही प्रतिरूप मान उसे सूर और मीरा की परम्परा के अनुकूल भक्ति और प्रेम के पदों की भरमार से परिपूर्ण बताया तथा नाटिका का सौन्दर्य उसकी कथा-वस्तु में नहीं वरन् उसकी कविता, गेय पदों और तन्मयता में, विभोर छन्दों में माना है।

डॉ. शर्मा के अनुसार "सूर, मीरा और रसखान के युग के बाद हिन्दी में पहली बार घनाक्षरी सवैया और पदों की ऐसी सरस चहल-पहल एक जगह देखी गई है।"[1] शर्मा जी "चंद्रावली" के प्रेम का क्रांतिकारी पक्ष मध्यकालीन कवियों की तुलना में कमजोर मानते हुए उसे भारतेन्दु की रोमांटिक रचनाओं में सर्व-श्रेष्ठ बताया और नीलदेवी में भारत की पराधीनता को मूल समस्या के रूप में देखा तथा भारतदुर्दशा की कथा-वस्तु को बिखरी हुई माना। और उसके विभिन्न दृश्यों का उद्देश्य जनता को देश-दशा के प्रति सजग करना बताते हुए उसे अंग्रेज़ी-राज्य की अप्रत्यक्ष रूप से कटु और सच्ची आलोचना दर्शाया। और "भारत दुर्दैव" को अंग्रेज़ी-राज का ही प्रतीक माना साथ ही "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में भारतेन्दु के व्यंग्य और हास्य के प्रस्तुतीकरण और उसमें भारतेन्दु द्वारा की गई शासन-व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था की अमानवीय घृणित रूढ़ियों की आलोचना को उभारा है। इसमें उनकी प्रहसन कला का आधार यथार्थ जीवन की अनुभूति, समाज-सुधार का स्वस्थ दृष्टिकोण और अनाचार के प्रति

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- पृ. 92

घृणा रहा है। किंतु "विषस्य विषमौषधम्" में व्यभिचर की चर्चा में भारतेन्दु द्वारा सामंत वर्ग की असमर्थता और चापलूसी के वास्तविक रूप की अभिव्यक्ति देखी गई है। तथा "अँधेर नगरी चौपट राजा" प्रहसन में राज्य-व्यवस्था, जाति-प्रथा और उच्च वर्गों की चापलूसी पसन्दी की तीखी और समर्थ आलोचना पायी जाती है। परन्तु प्रेमयोगिनी में देशवासियों की कायरता पर दुःख की अभिव्यक्ति, दो संस्कृतियों का चित्रण पाया गया। यह नाटक अधूरा, कथा-वस्तु के गठन की दृष्टि से शिथिल होने पर भी रस-पूर्ण गीति-नाट्य और यथार्थवादी रचना का प्रयास माना गया। और उसे पतनशील सामंती संस्कृति की तीव्र आलोचना करने वाला नाटक बताया।

शर्मा जी भारतेन्दु के गद्यालोचन के क्रम में पत्रकारिता की समीक्षा करते हुए भारतेन्दु द्वारा संचालित "कवि वचन सुधा" पत्रिका को शुद्ध साहित्यिक नहीं बल्कि साहित्य, समाचार और राजनीति की पत्रिका बताते हैं। उनके अनुसार "कवि वचन सुधा" ने साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी को भाषा, साहित्य और देश-भक्ति की शिक्षा दी है। इसी कारण उन्होंने इस पत्रिका को जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भीक सैनिक की तरह माना है। और "हरिश्चन्द्र मैगजीन" को नये लेखकों के संगठन का आधार तथा भारतेन्दु युग का साहित्यिक मुख-पत्र बताया। वे इन दोनों पत्रिकाओं का मूल स्वर देशोन्नति और अंग्रेज़ी शासन की नुक्ता चीनी करने करना मानते हैं। इसी कारण वे इस पत्रिका का महत्व स्पष्ट करते हुए कहते हैं -- "हरिश्चन्द्र चंद्रिका" ने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय सम्मान की भावना जगाने,

साहित्यिक रुचि फैलाने, हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों को समृद्ध करने और हिन्दी भाषा को देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उचित स्थान दिलाने के लिए संघर्ष में प्रशंसनीय काम किया है।[1]

इसके साथ ही शर्मा जी भारतेन्दु की निबन्ध कला का जन्म और विकास उनकी पत्रिका से मानते हैं। और हास्य तथा व्यंग्य को उनकी निबन्ध कला का प्राण और देश की उन्नति को उद्देश्य माना। उनके अनुसार भारतेन्दु के निबन्धों की सजीव उपमाएँ, यथार्थता, निर्धन जनता से सहानुभूति आदि विशेषताओं ने उनकी निबन्ध कला को प्रेमचन्द की उपन्यास कला के समान निखारा है। भारतेन्दु की यह निबन्ध कला रीतिकालीन साहित्य से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर हिन्दी में यथार्थवाद के विकास में मार्ग को दर्शाती है। इस यथार्थवाद का स्त्रोत देश-प्रेम, लोक-शैली, जन-सामान्य का दृष्टिकोण, जन-समस्याओं का यथार्थ-चित्रण और प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को माना गया। एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न को भारतेन्दु का उत्कृष्ट व्यंग्य-पूर्ण निबन्ध बताते हुए शर्मा जी ने उसमें शब्द-चयन की सरसता के कारण गद्य में भी काव्य का-सा आनन्द और "स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन" निबन्ध में पुराणपंथी और उदारवादी विचारों की टकराहट को देखा है। साथ ही भारतेन्दु द्वारा अपने निबन्धों में विधवा-विवाह के विरोधियों, अनमेल-विवाह के पक्षधरों, पुरोहितों के अन्धे अनुयाइयों और धार्मिक अंध-विश्वासों को सत्य कहने वालों की की गई कड़ी आलोचना को सही बताया है। उनके अनुसार

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- पृ. 63

"कवि वचन सुधा" का प्रकाशन आरम्भ करके भारतेन्दु ने वास्तव में एक नये युग का सूत्रपात किया है। तथा उन्होंने अपने प्रदेश की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पहचाना, हिन्दी के लिए संघर्ष किया और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में उसके व्यवहार को सुदृढ़ किया है। इसके अलावा भारतेन्दु की भाषा-शैली और भाषा सम्बन्धी समस्या पर विचार करते हुए शर्मा जी लिखते हैं -- भारतेन्दु ने जनपदीय शब्दों का व्यवहार धडल्ले से किया है तथा उनकी भाषा में ब्रजभाषा का-सा मिठास मिलता है तथा ब्रज अवधी और मैथिली के अधिकांश शब्दों का प्रयोग भारतेन्दु की रचनाओं में मिलता है। क्योंकि भारतेन्दु ने गद्य में कोई कृत्रिम भाषा नहीं चलाई बल्कि साहित्य में उसी भाषा को प्रतिष्ठित किया जो सामाजिक विकास क्रम में हिन्दी भाषी क्षेत्र में जातीय भाषा के रूप में फैल रही थी। गद्यालोचन के क्रम में भारतेन्दु के साहित्य-लेखन की समीक्षा कर उनके युगान्तकारी महत्व को उभारते हुए शर्मा जी भारतेन्दु की आत्मा को प्रतापनारायण मिश्र, बाल मुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट आदि समर्थ लेखकों में उद्दीप्त होकर देश और साहित्य की सेवा करती हुई पाते हैं। उनके अनुसार भारतेन्दु के गद्य की परम्परा में प्रतापनारायण मिश्र और बाल मुकुन्द गुप्त जैसे उस युग के लेखकों के अलावा प्रेमचन्द, उग्र, निराला, नागर, नागार्जुन जैसे लेखक आते हैं।

इसके अलावा भारतेन्दु के साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता को उजागर करते हुए शर्मा जी भारतेन्दु युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में मानते हैं कि वह भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से संतुष्ट न होकर उसमें

सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाई-चारे का भी साहित्य रहा है। और भारतेन्दु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे बल्कि वे समाज-सुधारकों में भी प्रमुख रहे हैं।

इस प्रकार डॉ. शर्मा भारतेन्दु के गद्य-साहित्य का समीक्षात्मक विश्लेषण कर भारतेन्दु की साहित्य-प्रतिभा को तुलसीदास और अमीर खुसरों की परम्परा से जोड़ते हैं। और उनके नाटकों की सफलता का कारण उसके विभाजन का आधार, संस्कृत परम्परा का विकास, प्राचीनता की नये रूप में प्रस्तुति एवं नाटक विधा के उपांगों का विभाजन और उसके रूप तथा नाटकों के प्रभाव को मान उनके नाट्य-कौशल का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। और उनकी कला-कौशल को उनकी पूर्ववर्ती प्रगतिशील काव्य-परम्परा से सम्बद्ध कर भारतेंदु का स्थान सूर, मीरा और रसखान की विकसित परम्परा में निर्धारित कर उनकी साहित्यिक देन और महत्व को उजागर किया। और भारतेन्दु द्वारा अपने साहित्य में यथार्थ-जीवन की अभिव्यक्ति को लोक-साहित्य की लीक निर्माण वाली प्रवृत्ति माना। और उनके साहित्य को जनता का मनोरंजन और राजनीतिक शिक्षण का स्त्रोत भी बताया। तथा भारतेन्दु द्वारा अपनी मौलिक और अनूदित नाट्य कृतियों द्वारा की गई हिन्दी साहित्य की सेवा का महत्व उभारते हुए इन समस्त कृतियों में भारतेन्दु की भाषा की सरसता, चुटकीलापन तथा ब्रजभाषा-सा मिठास आदि विशेषताओं को देखा। उन्होंने भारतेन्दु के नाट्य-साहित्य का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कर उनकी समस्त विशेषताओं को उभार कर उनकी सामाजिकता, युग सापेक्षता,

यथार्थ-चित्रण की परिपूर्णता और भाषिक गुणवत्ता एवं कलात्मक विशेषताओं को उद्घाटित किया है। और हरिश्चन्द्र पत्रिका का साहित्य और सामाजिक महत्व उजागर कर हिन्दी भाषा और देश के सांस्कृतिक विकास में उसके योगदान के महत्व को स्वीकार किया। तथा उसके विषय-वस्तु और तथ्यों के प्रयोग को युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला बताया।

इसके अलावा भारतेन्दु को श्रेष्ठ गद्यकार मानते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त शैलियों को हास्य और व्यंग्य के लिए प्रसिद्ध बताया तथा उनके गद्यालोचन के क्रम में उनके समस्त नाटकों, निबन्धों और पत्रकारिता को समेट कर उनके साहित्य-लेखन का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया और उसमें व्याप्त युग सापेक्षता, यथार्थ अभिव्यक्ति की क्षमता, जनप्रियता, जन-पक्षधरता, राजनीतिक चेतना, सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंध-विश्वासों का खण्डन, राष्ट्रीय-भावना, देश-प्रेम, लोक-भाषा और शैली की प्रियता, रीति-विरोधी प्रवृत्ति, चमत्कारवाद का विरोध सामंतवादी और साम्राज्यवाद विरोधी प्रवृत्ति, जन-चेतना आदि को उद्घाटित कर भारतेंदु का युगान्तकारी महत्व सिद्ध किया है। इस युग के साहित्य को हमारे नये सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण का परिणाम माना और उसकी मूलधारा को राष्ट्रीय और जनवादी बताया। उनके गद्य के विकास की परम्परा में प्रतापनारायण मिश्र, बाल मुकुन्द गुप्त आदि उस युग के साहित्यकारों को विशेष महत्व प्रदान किया। इसी कारण हमें डॉ. शर्मा द्वारा समीक्षित गद्य की परम्परा के अध्ययन हेतु भारतेन्दुयुगीन अन्य साहित्यकारों के समीक्षात्मक विश्लेषण से सम्बद्ध सामग्री को आधार-स्वरूप

स्वीकारना होगा। जिससे न केवल भारतेन्दु की विकसित परम्परा का बोध होता है बल्कि भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों की साहित्यिक उपलब्धियों और उनके सांस्कृतिक महत्व को जाना जा सकता है।

4.4 भारतेन्दुयुगीन साहित्य का नया मूल्यांकन

डॉ. रामविलास शर्मा भारतेन्दुयुगीन गद्य-साहित्य की समीक्षा के क्रम में सबसे पहले उसकी जनपक्षधरता को उभार कर भारतेन्दु युग के सांस्कृतिक जागरण का श्रेय अंग्रेज़ों को देना अनुचित बताते हैं। क्योंकि उनके अनुसार भारतेन्दुयुगीन साहित्य हिन्दी भाषी जनता का जातीय साहित्य तथा जातीय नवजागरण का साहित्य है और उसकी जिंदादिली, उसके व्यंग्य और हास्य, सरल सरस गद्य और लोक-संस्कृति से उसकी निकटता आदि उसकी जातीय विशेषताएँ रही हैं। किंतु उन्होंने भारतेंदुयुगीन साहित्य को अंग्रेज़ी और बंगला-साहित्य से प्रेरित माना है। वे इस युग के साहित्य में राजभक्ति के भावों के मिलने का कारण महारानी विक्टोरिया की सहृदयता-पूर्ण घोषणा-पत्र को बताते हैं।

शर्मा जी भारतेंदुयुगीन परिवेश का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "भारतेन्दु युग के एक ओर मध्यकालीन दरबारी संस्कृति थी तो दूसरी ओर आम जनता में एक सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन के लिए वातावरण तैयार करना था और साहित्य में देश के असंतोष की

अभिव्यक्ति न करके समाज की जड़ों में व्याप्त सामंती कुसंस्कारों से मोर्चा लेना भी महत्वपूर्ण कार्य रहा है। उस समय जनता के संस्कारों को छूना उसके धर्म को चुनौती देना था परन्तु भारतेन्दु और उनके साथियों द्वारा सुधार का मार्ग अपनाकर एक महत्वपूर्ण कदम और साहस-पूर्ण कार्य किया है। चूंकि उनका युग राजनीतिक, सामाजिक तथा भाषा-सम्बन्धी आंदोलनों का युग रहा है। जिसका प्रभाव उस युग के साहित्य और पत्रकारिता पर देखा गया है। प्रतापनारायण मिश्र राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों को अपनी रचनाओं द्वारा उक्त आंदोलन में संघर्षरत पाया गया जिसका नेतृत्व भारतेन्दु द्वारा ही किया गया था।

शर्मा जी भारतेंदु द्वारा आरम्भ की गई नाट्य-लेखन की परम्परा का विकास अन्य लेखकों में देखते हुए उसके द्वारा भारतेन्दु की परिपाटी स्वीकार करने की बात कहते हैं। परन्तु भारतेन्दु ने "भारत दुर्दशा" में जहाँ दुःख देखा है वहाँ अम्बिकादत्त व्यास "भारत सौभाग्य" में सुख देखते हैं। तथा भारतेन्दु के भारत आलस्य, भारत दुर्दशा आदि की जगह इसमें भारत सौभाग्य, विषय-भोग प्रताप उत्साह आदि ने ले लिया है। वे भारतेंदुयुगीन नाटकों में देश की स्थिति का तुलनात्मक रूप विश्लेषित करते हुए श्रीनिवासदास का "तप्ता संवरण" नाटक को पौराणिक और "रणधीर" "प्रेममोहिनी" नाटक को शेक्सपीयर के नाटक के समान दुखांत बताते हैं। और उन्होंने काशीनाथ के तीन ऐतिहासिक नाटकों का उल्लेख किया तथा प्रतापनारायण मिश्र के संगीत शाकुन्तल को नौटंकी का विशुद्ध रूप मान "भारत दुर्दशा" नामक रूपक को भारतेन्दु के "भारत दुर्दश" नामक नाटक के अनुकरण पर रचित माना। "कलिकौतुकरूप" की कथा को

सामाजिक और पात्रों का आधार यथार्थपरक बताते हुए लेखक द्वारा बड़ी निर्भिकता से समाज में फैले हुए अनाचार को चित्रित करने के प्रसंग को उभारा। और उस युग के नाटककार राधाचरण गोस्वामी को वैचारिक उग्रता और प्रगतिशीलता में सबसे आगे माना। और इनके श्रेष्ठ महत्वपूर्ण नाटकों में "तन-मन-धन श्री गुसाई जी के अर्पण", "बूढ़े मुँह मुहासे" का उल्लेख किया तथा इन नाटकों में व्यंग्य और हास्य के साथ कथावस्तु द्वारा समाज-सुधार की चेष्टा से परिपूर्ण नाटकों की परम्परा का विकसित रूप माना है। किंतु "बूढ़े मुँह मुहासे" में किसान और जमींदार के संघर्ष की कथा-वस्तु मिलती है। शर्मा जी ने स्वाधीन-चेतना, आत्म-निर्भरता, साहस और निर्भयता को उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशेषतायें बताया तथा लेखक की सहानुभूति नव-शिक्षा से प्रभावित नयी पीढ़ी के साथ माना। तथा उनकी रचनाओं में नपातुला व्यंग्य, सधा हुआ शिष्ट-हास्य, गठा हुआ कथानक, स्वाभाविक वार्तालाप मिलता है। और उन्हें साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों को प्रतिबिंबित करने वाले महान् साहित्यकारों में माना।

शर्मा जी भारतेंदु युगीन नाट्य-साहित्य के साथ निबन्ध कला-कौशलता की समीक्षा करते हुए पत्र-साहित्य की उन्नति से निबन्ध-रचना को प्रोत्साहित मानते हैं। और प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों को हिन्दी की जातीय उपज बताते हैं। इसके अलावा सितारेहिन्द का "राजभोज का सपना", भारतेन्दु का "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न", राधाचरण गोस्वामी का "यमलोक की यात्रा" और प्र. ना. मिश्र का "आप" निबन्धों को रचना वैचित्र्य की अभिव्यक्ति का आधार स्वीकार किया और भारतेन्दुयुगीन

निबन्धकारों द्वारा प्रयुक्त जन-भाषा शैली की पद्धति को महत्त्वपूर्ण माना। "राजाभोज का सपना" में मनुष्य प्रेम को जीवन में चरितार्थ करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता व्यक्त होने की अभिव्यक्ति होना स्वीकार किया और "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" को व्यंग्य और हास्य के निखार से परिपूर्ण, शैली से मँजा हास्य-रस की सृष्टि करने वाला माना। किंतु "यम-लोक की यात्रा" में राधाचरण गोस्वामीद्वारा स्वप्न की बातों का विवरण प्रस्तुत करने की बात कही। "स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन" को भारतेन्दु का एक ऐसा रोचक निबन्ध माना जो मानवतावादी उदार चेतना, वर्णाश्रम धर्म, वैचारिक संघर्ष आदि को स्वामी दयानन्द और केशवचन्द्र सेन की धारणाओं को व्यक्त करता है। भारतेन्दु के निबन्धों में "वैष्णवता और भारतवर्ष" में वैष्णव धर्म के सुधारक परम्परा का विशेष विवेचन देखा है।

डॉ. शर्मा भारतेन्दु और उनके युग के लेखकों के लेखन कला की विशेषताओं को प्रकट करते हुए भारतेन्दु द्वारा धर्मों की विभिन्नता और उनके निराले स्वर्गों की कल्पना का मखौल उड़ाने की बात कही। और साहित्य की सामाजिकता और साहित्यकारों की संघर्षशीलता का विश्लेषण प्रस्तुत कर "हरिश्चन्द्र चंद्रिका" में प्रकाशित निबन्धों का उल्लेख करते हुए उनके विषयों की बहुलता, गंभीरता आदि का उभार प्रतापनारायण मिश्र के ब्राह्मण में प्रकाशित निबन्धों की अपेक्षा मनोरंजक निबन्धों का अभाव देखा है। और सारसुधानिधि में राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर सुन्दर निबन्धों की उपलब्धि स्वीकार की।

शर्मा जी भारतेन्दु युगीन निबन्धों में "कलिराज की सभा", "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न", "यमलोक की यात्रा", मार्जर-मूषक आदि रोचक और मनोरंजक निबन्धों के प्रकाशन का उल्लेख करते हैं। साथ ही सरयू प्रसाद, राधाचरण गोस्वामी, नन्दकिशोर देव आदि की रचनाओं के प्रकाशन तथा आनन्द कादम्बिनी में अनेक सुन्दर निबन्धों का प्रकाशन देखा। और भारतेन्दुयुगीन लेखकों में प्रताप नारायण मिश्र द्वारा मनोरंजक निबन्धों को उसकी चरम सीमा पर पहुँचाने का श्रेय प्रदान किया तथा उनके निबन्धों में मनोरंजन का बाहुल्य और शैली में सामयिकता आदि के अस्तित्व का विवेचन किया। उनके सम्बन्ध में डॉ. शर्मा का कहना है— "भारतेन्दु-युग के अन्य किसी लेखक ने अपनी लेखनी को जीभ की तरह इतना नहीं चलाया, अन्य किसी लेखक ने पाठक से इतनी आत्मीयता से और इतनी ज्यादा बातचीत नहीं की और कोई भी लेखक अपनी भाषा को इतनी सरपट नहीं दौड़ा सका जितना प्रताप नारायण मिश्र। जो सजीवता और असभ्यता अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार फील्डिंग में है वही प्रताप नारायण मिश्र में भी रही है।"[1]

मिश्र जी की साहित्य-विशेषताओं के विवेचन के साथ-साथ उनके ब्राह्मण पत्र में सरसता व उदारता की कमी को उद्घाटित किया और बालकृष्ण भट्ट की कीर्ति का आधार "शिव शम्भु का चिट्ठा" बताया तथा उनका भाषा पर असाधारण अधिकार, शैली की गंभीरता और गद्य में पद्य-सी सरसता आदि विशेषताओं को देखा और भट्ट जी द्वारा "हिन्दी प्रदीप" के संचालन को ऐतिहासिक घटना माना किंतु उनमें शैलानीपन और फक्कड़पन का

---

1. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा — पृ. 82

अभाव, नारी-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में तर्क-शास्त्री-सा प्रभाव देखा है। तथा हास्य-रस की सरस अभिव्यक्ति स्वीकार की। परन्तु राजनीतिक और सामाजिक प्रसंगों पर लेखन के क्रम में शैली की निपट सत्यवादिता को भी उद्घाटित किया है। और उनकी अध्ययनशील प्रतिभा और तीक्ष्ण-बुद्धि आलोचक के रूप को भी उभारा तथा उन्हें आधुनिक हिन्दी आलोचना का जन्मदाता मानना अनुचित नहीं माना है। उनके अनुसार उन्होंने भारतीय और यूरोपिय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन सबसे पहले किया है तथा "साहित्य जन-समूह के हृदय का विकास है" में भट्ट ने साहित्य की रसात्मकता का जन-समूह के हृदय में विकास देखा है। और इस दृष्टि से भट्ट जी ने संस्कृत और हिन्दी-साहित्य के विकास पर संक्षेप में विचार प्रकट किये हैं। शर्मा जी ने उन्हें आधुनिक हिन्दू धर्म के अवैदिक और अनाथ रूप को समझने वाला विद्वान बताया तथा उनके साहित्यिक निबन्धों में शब्द की आकर्षण शक्ति को महत्त्वपूर्ण माना है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "उन्होंने आचार्य शुक्ल की भाँति बहुत-से मनोवैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक निबन्ध भी लिखे थे जो उनके तीक्ष्ण विवेक का परिचय देते हैं और आचार्य शुक्ल ने अपने निबन्धों में उन्हीं की परिपाटी को आगे बढ़ाया है। इसी कारण डॉ. शर्मा ने भट्ट जी को गंभीर अध्ययन, आलोचना-प्रतिभा, संयत-शैली आदि गुणों के कारण भारतेन्दु-युग से भिन्न बहुत कुछ आज के से लेखक माना है। उनके अनुसार आज के युग में विश्लेषण और विवेचन का जोर है भारतेन्दु-युग की प्रतिभा मूलतः रचनात्मक थी।

डॉ. शर्मा भारतेन्दु-युग में प्रकाशित उपन्यासों का उल्लेख करते हुए "हरिश्चन्द्र चंद्रिका" में मालती नाम से प्रकाशित उपन्यास में ईश्वर वन्दना और प्रकृति-चित्रण पुराने आलंकारिक ढंग का मानते हैं तथा

तथा श्रीनिवासदास के "परीक्षा गुरु" को कथा-साहित्य को जन्म देने वाला उपन्यास बताया। और बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान" में समान कथा की व्याप्ति स्वीकार की है। किंतु इसमें कथा के बीच नीति-पूर्ण श्लोकों, दोहों, कहावतों आदि को उद्धृत करना विष्णु शर्मा जैसा बताया। उनके अनुसार भट्ट जी ने अपने उपन्यास को देशकाल की सीमाओं में मजबूती से बाँधा है और प्रकृति-वर्णन में आलंकारिता होते हुए भी उनका यथार्थवाद की ओर रूझान स्वीकार किया है और इसे यथार्थ चित्रण की वही भूमि बताया है जिस पर बाद में प्रेमचन्द ने कथा-साहित्य के विशाल प्रसाद का निर्माण किया है।[1] भट्ट जी व्यंग्यपूर्ण चित्रण में प्रेमचन्द की याद दिलाते हैं और उनकी भाषा कहीं-कहीं बड़ी चमत्कारपूर्ण और भाव प्रकाशन में अद्भुत रूप में समर्थ दिखायी देती है। किंतु फिर भी "सौ अजान एक सुजान" के कथानक को बिल्कुल सीधा-साधा माना और भट्ट जी के अतिरिक्त राधाकृष्णदास के "निस्सहाय हिन्दू" में यथार्थवाद का गहरा रंग पाया है।

डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु-युगीन उपन्यास साहित्य की धारा का विश्लेषण करते हुए उसे प्राचीन आलंकारिक शैली, बंगला की कृत्रिम कवित्व-पूर्ण शैली आदि से प्रभावित मानते हैं तथा उपन्यास और कहानी का विकास शीघ्र न होने का कारण निबन्धों की लोकप्रियता को बताया है किंतु साथ ही इस युग के उपन्यासों को नाटकों और निबन्धों से भी प्रभावित माना परंतु राधाकृष्ण दास, बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवासदास आदि को पात्रों के संवाद में सफलता मिलने और वार्तालाप के साथ पात्रों के

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — पृ. 95

आकार वेश-भूषा आदि के चित्रण में भट्ट जी की मौलिकता का परिचय मिलने के संदर्भों का उल्लेख किया है।

भारतेन्दु-युग में उपन्यास के अनेक अंगों का विकास हो चुकने का उल्लेख कर उपन्यास का पूर्ण विकास प्रेमचन्द के समय में देखा। चूंकि प्रेमचन्द की सुधारात्मक यथार्थवादी परम्परा का हिन्दी के उपन्यास साहित्य में पहले ही बीजारोपण हो चुका था उसी परम्परा का सेवा-सदन और रंगभूमि में विकास हुआ। अर्थात् डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु-युगीन उपन्यास साहित्य का समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती परम्परा के रूप को स्पष्ट कर प्रेमचंद के कथा-साहित्य की आधार भूमि के रूप में उसका महत्व स्वीकार किया है। और भारतेन्दु-युगीन उपन्यास-साहित्य को प्रेमचन्द के साहित्य के आरंभिक रूप में देखा है। तथा उन्होंने भारतेन्दु युगीन साहित्य के विवेचन के क्रम में न केवल उस युग के साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन किया बल्कि उन्होंने भारतेंदु युग की प्रतिभाओं का समसामयिक साहित्यकारों से तुलना करते हुए हिन्दी साहित्य की परम्परा की रूपरेखा को स्पष्ट किया है तथा साहित्य के विकास में भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों की देन और महत्व को सम्प्रति मूल्यों के आधार पर विवेचित किया।

डॉ. रामविलास शर्मा भारतेन्दु के अतिरिक्त उस युग के साहित्यकारों में विशेष महत्व और स्थान बालमुकुन्द गुप्त का मानते हुए उन पर पृथक रूप से अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार गुप्त जी सिपाही से सेनापति बनने वाले भारतेन्दु युगीन महारथी रहे हैं। उनका समकालीन साहित्यकारों से अच्छा सम्बन्ध होने के साथ-साथ हिन्दी और उर्दू पर

समान अधिकार रहा है। शर्मा जी भारतेन्दु की तरह देश-भक्ति, जन-पक्षधरता, हास्य-व्यंग्य, हिन्दी-सेवा और स्वाभिमान में उनमें समानता पाते हैं। और उन्हें हिन्दी भाषा और साहित्य की जातीय परम्परा को मजबूत करने वाला साहित्यकार माना। वे गुप्त जी को प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती धारा के संचालक बताते हुए उनके द्वारा लेखों और साहित्य-रचनाओं से की गई देश की सेवा और जन-जागृति के प्रयास को महत्वपूर्ण साहित्यकार मानते हैं। और उनके इतिहास और जीवनीपरक लेखों का उल्लेख कर उन्हें इतिहासकार के रूप में उभारते हैं।

शर्मा जी गुप्त को व्यंग्यकार, शब्दों के प्रयोग और व्याकरण के सुलभ तत्वों के विशेषज्ञ, इतिहास और राजनीति के विद्वान, जीवनीकार, हिंदी भाषा के विकास के लिए संघर्षरत भाषा-वैज्ञानिक तथा पत्रकारिता कला द्वारा जनता में नवीन राष्ट्रीय और जनतांत्रिक चेतना फैलाने वाले लेखक के रूप को उद्धृत करते हैं। तथा उनके जीवन का आरम्भ उर्दू पत्रकारिता से और अंत समय तक "जमाना" से सम्बद्ध रहने का उल्लेख कर उनकी उग्र राजनीतिक चेतना के कारण उन्हें भारतेन्दु की उपेक्षा बालकृष्ण भट्ट के अधिक निकट देखा है। गद्य-लेखन के ललित और सरसता की दृष्टि से वे भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र की शैली के अनुवर्ती माने गये और पैने व्यंग्य में उनकी दृष्टि अतुलनीय रही है।

इसके अलावा शर्मा जी ने उनके लेखों में मातृभाषा पर अनन्त अनुराग प्रेम और भक्ति देखा है और गुप्त जी द्वारा हिन्दी गद्य के साथ पत्रकार की स्वाधीन चेतना और निर्भीकता का आदर्श देश के

सम्मुख रखने के कार्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया। शर्मा जी के अनुसार वे देश की स्वाधीनता और संस्कृति की रक्षा हेतु जन-शक्ति पर विश्वास रखने वाले और अंग्रेज़ी की चाटुकारिता को फटकारने वाले एवं पत्रकारिता को कलात्मक रूप प्रदान करने वाले साहित्यकार रहे हैं।

उन्होंने गुप्त जी के "शिव शम्भू के चिट्ठे" को व्यंग्यपूर्ण गद्य की अपूर्व कृति बताते हुए उनके द्वारा वैचारिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हेतु किये गये संघर्ष, अंग्रेज़ों के दमन और अत्याचार का सामना करने का भी उल्लेख किया है। और गुप्त जी को पुरानी चाल के हिन्दू बताते हुए उनका सनातन धर्म, जाति-प्रथा, प्राचीन रीति-रिवाज़ में विश्वास देखा है। किंतु उनमें धार्मिक सहिष्णुता, राष्ट्रीयता और जनतंत्र की भावना, अंग्रेज़ों की कटु-नीति की समझ आदि की व्याप्ति को प्रेमचन्द के समतुल्य माना है। गुप्त जी द्वारा हिन्दी और उर्दू के साहित्यकारों और भाषा-वैज्ञानिक तथा पत्रकारों की संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की आलोचना करने की प्रवृत्ति की सराहना की है। उनके अनुसार "बालमुकुन्द गुप्त जी ने अद्भुत व्यंग्य और युक्तियों से द्विवेदी जी की धारणाओं का खण्डन किया तथा उनके लिए भाषा साध्य नहीं साधन रही है।" डॉ. शर्मा ने गुप्त जी को देश की स्वाधीनता और जनता के हितों के लिए लड़ने वाला साहित्यकार बताया तथा उनके गद्य में कवित्व तत्व की अभिव्यक्ति स्वीकार कर उन्हें प्रेमचन्द की तरह भाषाधिकारी साहित्यकार बताया।
"शाइस्ता खाँ का खत" नामक व्यंग्यपूर्ण निबन्ध में अंग्रेज़ी-राज के शोषण की अभिव्यक्ति देख "शिवशम्भू का चिट्ठा" को व्यंग्य-पूर्ण राजनीतिक निबन्धों का सिरमौर माना तथा उसमें ब्रिटिश-राज की आलोचना, लार्डकर्जन का

परिहास, काल्पनिक नवीनता, अनुपम चित्रों की अभिव्यक्ति, कवित्व-पूर्ण शैली, देश-भक्ति का रूप आदि विशेषताओं का समावेश देखा है। तथा गुप्त जी द्वारा देश का अर्थ देश की निर्धन जनता मानने की दृष्टि का विकास कालान्तर में प्रेमचन्द और निराला द्वारा करने की पुष्टि की है। और गुप्त जी को शब्दों के अनुपम पारखी और कलाकार मान हिन्दी के साधारण शब्द उनके वाक्यों में "नयी अभिव्यंजना शक्ति से दीप्त होने की बात स्वीकार की। गुप्त जी द्वारा हिन्दी भाषा की प्रकृति की सही बोधगम्यता के आधार पर व्यंग्य और परिहास की अभिव्यक्ति, तार्किक सूझ-बूझ, शब्द और व्याकरण की समस्याओं पर सरस वाक्य-रचना आदि का अनूठा रूप प्रस्तुत करने की शक्ति का महत्व उजागर किया और उनके वाक्यों में सहज बाँकापन और उपमानों की अभिव्यक्ति के कारण व्यंग्यपूर्ण गद्यांश परम हास्यास्पद बन जाने का भी उल्लेख किया है।

शर्मा जी के अनुसार उन्हें लोकगीतों से विशेष प्रेम होने के कारण उन्होंने उसी की तर्ज पर तीखी राजनीतिक कविताओं की रचना की है और कविता, इतिहास, आलोचना, व्याकरण आदि में जनता का विशेष ध्यान रखा है। साथ ही गुप्त जी को भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र का सच्चा उत्तराधिकारी घोषित किया।

डॉ. शर्मा द्वारा की गई भारतेन्दु-युगीन साहित्य समीक्षा के अध्ययन से इस बात का आभास होता है कि उन्होंने हिन्दी में नवीन चेतना के विकास में सहायक लेखकों और संस्थाओं के योगदान और महत्व को मूल्यांकित किया है। इस समीक्षा में डॉ. शर्मा की आलोचना शैली सारगर्भित, तथ्य प्रधान और सरल रही है। तथा उनकी भारतेन्दु युगीन

साहित्य से सम्बद्ध सामग्री में उस युग के प्रमुख पत्र, पत्रकार, पत्र-साहित्य संगठनों और समितियों द्वारा हिन्दी साहित्य के विकास हेतु किये गये प्रयासों को सप्रमाण प्रस्तुत किया गया है। और भारतेन्दु हरश्चिन्द्र एवं उनके युग से सम्बद्ध समीक्षा-साहित्य में उनके सामंत विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी सार-तत्व को रेखांकित किया है तथा उन साहित्यकारों द्वारा आधुनिक काल में किये गये सामाजिक यथार्थ से परिपूर्ण कार्यों, नवीन जन-चेतना-युक्त सामंती संस्कार विरोधी प्रवृत्ति, विदेशी शासन की निंदा आदि को प्रस्तुत किया है। डॉ. शर्मा की भारतेन्दु साहित्य-समीक्षा से सम्बद्ध कृतियाँ उस युग की वास्तविकता को प्रस्तुत करते हुए भारतेन्दु-युगीन साहित्य को सामाजिक ऐतिहासिक सन्दर्भों से जोड़ती है। इन कृतियों में उन्होंने भारतेन्दु युग को काल के अखण्ड प्रवाह में देखकर उसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया तथा भारतेन्दु युगीन विशेषताओं को राष्ट्रीय जीवन से सम्बद्ध कर भारतेन्दु-युगीन साहित्य को उसके सही रूप में हिन्दी पाठकों के सम्मुख उद्घाटित किया है।

4.5 प्रेमचन्द का पुनर्मूल्यांकन

डॉ. रामविलास शर्मा ने जहाँ एक ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के सम्बन्ध में साहित्य-क्षेत्र में फैली भ्रामक धारापाओं का खण्डन कर उनके साहित्य के वास्तविक रूप के साथ-साथ उनके योगदान और महत्व को उजागर किया है वहीं

दूसरी ओर उपन्यासकार प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की समीक्षा कर उनकी प्रगतिशीलता, समाजसापेक्षता, युग सम्बद्धता आदि को प्रस्तुत कर उनके "उपन्यास सम्राट" होने की पुष्टि की। उनके साहित्य की समीक्षा के क्रम में अपनाई गई समीक्षात्मक पद्धति भारतेन्दु और निराला विषयक समीक्षा कृतियों में प्रयुक्त रीति के अनुरूप ही रही है।

§अ§ संघर्ष का साहित्य

डॉ. शर्मा प्रेमचन्द के साहित्य में समाज के विभिन्न वर्गों के चित्रण को महत्वपूर्ण मानते हुए उनके द्वारा जमींदार वर्ग का विरोध करने तथा किसान आंदोलन को स्वाधीनता आंदोलन का अंग समझने की दृष्टि को सही और उचित बताते हैं। और निम्नवर्गीय जनता में संगठन और चेतना का अभाव तथा मध्यवर्ग की सुधारवादी दृष्टि की प्रबलता को प्रेमचन्द के उपन्यासों में आदर्शवाद की अभिव्यक्ति का कारण माना। किंतु उनके साहित्य में आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्रण उसकी पूर्ण भयावहता सहित प्रस्तुत होना स्वीकार किया। सेवासदन, गबन और निर्मला में वर्ग-संघर्ष की अस्पष्टता का कारण उन उपन्यासों की समस्याएँ एक वर्ग या परिवार तक सीमित होना बताया है परन्तु प्रेमाश्रम, रंगभूमि और गोदान में समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष का रूप स्पष्ट उभरता हुआ देखा है। उनके अनुसार "प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। इसीलिए उन्होंने प्रेमचन्द के साहित्य को भारत में अँग्रेज़ी-राज की कटु-आलोचना बताया है। अर्थात् डॉ. शर्मा का कहना है

कि "प्रेमचन्द का साहित्य भारतीय समाज का दर्पण है उस साहित्य से परिचित होने का मतलब है भारत के सामंती अवशेषों और उसके उज्ज्वल भविष्य से परिचित होना।"[1] उन्होंने प्रेमचन्द का मूल सन्देश साम्राज्यवाद से समझौता किये बिना संघर्ष करना माना है और इसका प्रमाण प्रेमचन्द के साहित्य में सामंतवाद का विरोध बताया तथा प्रेमचंद द्वारा भाग्यवाद, धार्मिक अंधविश्वासों, साम्प्रदायिकता, जाति-प्रथा आदि का विरोध करने वाली प्रवृत्ति को सही माना साथ ही प्रेमचन्द की इस दृष्टि को सामाजिक अनुभव की प्रचुरता और यथार्थवाद से परिपूर्ण बताया उनके अनुसार प्रेमचन्द के उपन्यासों का मुख्य और सबसे महत्वपूर्ण विषय जमीन और आजादी के लिए किसानों का संघर्ष रहा है जो समाज के श्रमिक वर्ग द्वारा जमींदार और महाजनों की गुलामी से छुटकारा पाने के लिए किये जाने वाले आंदोलन का प्रेरक रहा। इस संघर्ष का समग्र चित्र प्रेमचन्द द्वारा कथानक प्रसंगों के समन्वित रूप द्वारा उपन्यासों की विषय-वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने से उपन्यास साहित्य की कथा की प्रवाहमयता और गहराई अभिव्यक्त होती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक संघर्ष के रूप को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने प्रेमाश्रम में किसान-जमींदार का संघर्ष, गोदान की समस्या किसान-महाजन, कर्मभूमि में अछूत और लगानबन्दी आंदोलनों तथा रंगभूमि में ग्रामीण परिवर्तन आदि को महत्वपूर्ण माना है। तथा प्रेमचन्द के विश्लेषण को छिछला और सुधारवादी न होकर क्रांतिकारी और सामाजिक व्यवस्था की जड़ पर आघात करने वाला बताया। वे प्रेमचन्द के साहित्य का विश्लेषण करते हुए कहते हैं -- "किसानों के चित्रण में प्रेमचन्द

---

1. कथा विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 11

हमें भारतीय जन-आंदोलन के बीचोबीच ला खड़ा करते हैं यही वह स्थल है जहाँ दमन अपने क्रूरतम रूप में निःसहाय निर्बल किसानों को चूर करता हुआ चलता है यही वह प्रेरणा केन्द्र भी है जो समग्र जन-आंदोलन को बल देता है।"[1] उन्होंने सेवासदन तथा प्रेमाश्रम की तुलना में रंगभूमि का कथानक शिथिल मानकर उसमें सन् 20 से 30 के आंदोलन के बीच हिन्दी प्रदेश की रंगभूमि की व्याप्ति स्वीकार की। और उसमें भारतीय जीवन के समस्त पात्रों की उपस्थिति देखने के साथ-साथ सूरदास की लड़ाई को वस्तुतः सामंत विरोधी और साम्राज्य-विरोधी माना।[2] वे सूरदास के स्वर को भारत की अजेय जनता का स्वर बताते हैं किन्तु कर्मभूमि को उन्होंने हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास कहा। उनके अनुसार "उन दिनों जब मंदिर प्रवेश को "अछूत समस्या" हल करने का सबसे बड़ा साधन माना जाता था उन्होंने कर्मभूमि में अछूत किसानों और खेत मजदूरों की भूमि समस्या पर दृष्टि केन्द्रित कर लगानबन्दी की लड़ाई को उनकी मुख्य लड़ाई बनाया। इसमें राष्ट्रीय नेताओं की बहुरंगी तस्वीर और अंग्रेज़ों के अत्याचारों का हृदय-द्रावक चित्रण देखा है। इस उपन्यास में पहली बार प्रेमचन्द ने मजदूरों के साथ भारत के विद्यार्थियों को साम्राज्यशाही के विरुद्ध संघर्ष करते हुए दिखलाया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "कर्मभूमि में वह सबसे ज्यादा जोर ज़मीन की समस्या, लगान कम करने की समस्या, खेत-मजदूरों की समस्या और गरीब किसानों के लिए ज़मीन की समस्या पर देते हैं।"[3]

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 153
2. प्रेमचंद और उनका युग -- पृ. 92-93
3. वही, पृ. 94

यहाँ डॉ. शर्मा ने प्रेमचन्द द्वारा भारतीय किसान और मजदूर की समस्याओं को उठाने, उनके जीवन-संघर्ष और शोषण की मुक्ति के प्रयास को महत्व देने आदि प्रसंगों को उभारा है और वे कर्मभूमि को स्वाधीनता-आंदोलन की गहराई और प्रचार का उपन्यास कहना पूर्णतः सही मानते हैं। गोदान में व्यक्त शोषण की प्रक्रिया को दर्शाते हुए उन्होंने गोदान की गति को होरी के जीवन की गति के समान धीमी बताया। शोषण की इस महीन प्रक्रिया को देशी-पूँजीवाद और देशी-सामंतवाद शक्ति प्रदान करता है। इसी कारण उन्होंने गोदान को किसानों के शोषण की गाथा कहा है और "काया-कल्प" को दो वर्गों जमींदार और किसान वर्ग के संघर्ष से परिपूर्ण उपन्यास माना है।

इस प्रकार शर्मा जी ने प्रेमचन्द साहित्य की जन-पक्षधरता को उभार कर पूँजीवाद और पूँजीवादी संस्कृति-विरोधी उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। इतिहास के सन्दर्भ में उनके रचना-कौशल और तथ्य का परिक्षण कर उनके द्वारा सामाजिक बोधगम्यता को यथार्थ-चित्रण के माध्यम से शोषण-प्रतिष्ठानों के विरुद्ध जन-भावना को प्रोत्साहित करने और साम्राज्यवादी, सामंतवादी तथा पूँजीवादी चरित्र की विसंगतियों एवं अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करने वाली प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण माना।

§आ§ पात्र चयन

प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में सभी वर्गों के पात्रों का सजीव चित्रण यथार्थवादी कला के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनके पात्र सभी

वर्गों और स्तरों के होने के साथ-साथ भले-बुरे दोनों प्रकार की प्रवृत्ति के रहे हैं। किंतु जमींदारों, महाजनों, नौकरशाहों, जमींदार-भक्तों आदि के प्रतिनिधि अर्थात् शोषक-वर्ग से सम्बद्ध पात्र साधारणतः बुरे देखे जा सकते हैं। प्रेमचन्द ने उनकी धूर्तता, निर्दयता, लालच और चापलूसी प्रवृत्ति का भण्डाफोड़ किया है। परन्तु अपनेनायक किसान का प्रेमचन्द ने अत्यन्त सहानुभूति और विवेक के साथ चित्रण किया और उनके अनेक पात्रों में शर्मा जी ने जीवन की निष्क्रियता का त्याग कर अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध करने वाली प्रवृत्ति देखी है। जैसे - आत्म-सम्मान की रक्षा करने वाली सुमन, किसान अधिकारों के लिए लड़ने वाला बलराज, पत्नी के अपमान का बदला लेने वाला मनोहर, विदेशी सैनिकों के खत से सतीत्व नाश का कलंक धोने वाली मुन्नी, कर्मभूमि को वीर अछूत किसान और सूरदास आदि मिलते हैं।

डॉ. शर्मा ने होरी को प्रेमचन्द का अत्यन्त निष्क्रिय पात्र बताते हुए उसके माध्यम से प्रेमचन्द द्वारा भारतीय पिछड़े हुए किसान के चित्रण के प्रसंग को प्रस्तुत किया जाना स्वीकार किया है। और जालपा को निर्मला के समान त्यागशील चरित्रा और सुमन के समान उत्तेजित नहीं बल्कि ईमानदार और साहसी स्त्री माना है। तथा उसमें रामनाथ की अपेक्षा आत्म-सम्मान की प्रबलता भी घोषित की है। उन्होंने रामनाथ में आत्म-सम्मान की कमी को दुःखों और समस्याओं का कारण दर्शाते हुए उसे शहरी मध्यवर्ग की कमजोरियों का प्रतीक और जालपा को उदियमान भारतीय नारीत्व का प्रतीक माना है। वे मुन्नी को प्रेमचन्द की वीर नारी पात्रों का सिरमौर घोषित करते हैं। किंतु गोदान के

राय साहब के शोषण चक्र की महिनता को दर्शाते हुए शर्मा जी ज्ञानशंकर, राय कमलानन्द, राजा विशाल सिंह आदि को राय साहब के सम्मुख बच्चे मानते हैं। और होरी को प्रेमचन्द का सबसे निष्क्रिय पात्र बताया जो जिन्दा रहने के लिये तो संघर्ष करता है परन्तु अन्याय से नहीं लड़ पाता। फिर भी शर्मा जी होरी को प्रेमचन्द का एक दुर्लभ सृजन-भारतीय किसानों का सच्चा प्रतिनिधि स्वीकार कर जीवन-संग्राम में हारा हुआ पात्र बताते हैं। और उन्होंने गोदान में प्रेमचन्द के प्रतिनिधि पात्र का अभाव देखा है, किन्तु राय साहब के चरित्र को उभारते हुए उनके व्यवहार को उनके चरित्र की कसौटी मानकर लिखते हैं -- "अमल का सवाल न हो तो राय साहब अत्यन्त प्रगतिशील विचारों के आदमी हैं।"[1]

§ङ§ सामाजिक प्रासंगिकता

डॉ. शर्मा ने प्रेमचन्द के साहित्य की समीक्षा के क्रम में उसकी सामाजिक प्रासंगिकता को भी उभारा है। वे सेवासदन की मूल समस्या को भारतीय नारी की समस्या बताते हैं और प्रेमचन्द द्वारा प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ने की प्रवृत्ति को विशेष महत्व देते हैं। उन्होंने प्रेमचन्द के साहित्य की मुख्य विशेषता उनके साहित्य में नारी की पराधीनता को, उसके प्रति समाज द्वारा अपनाई गई रूढ़िवादिता दृष्टि की निष्ठुरता और वीभत्सता के साथ प्रस्तुत करते हैं। सेवासदन और उसके प्रमुख चरित्र सुमन की रचनात्मकता की सामाजिक प्रेरणा के

---

1. प्रेमचन्द और उनका युग -- पृ. 122

रूप में बीसवीं सदी के भारतीय समाज के साम्राज्यवादी और सामंतवादी शोषण से पीड़ित दलित नारी की पारिवारिक और राष्ट्रीय पराधीनता के विरुद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किया जाने वाला प्रयास को देखा है। प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द द्वारा भारतीय किसान के जीवन के संक्रमण काल को दर्शाते हुए पात्रों की प्राचीनता और नवीनता तथा गति और प्रगति के संघर्ष को यथार्थ रूप में दर्शाने की बात कही। उन्होंने सेवासदन की तरह प्रेमाश्रम उपन्यास को भी दुखांत बताया। उनके अनुसार "यह ट्रैजेडी व्यक्तिगत या घरेलु समस्याओं को लेकर लिखे हुए दुखांत उपन्यासों और नायकों से कहीं ज्यादा विशद और मार्मिक है।" सामाजिक यथार्थ के चित्रण तथा कथित उच्च वर्ग की झूठी महत्ता का पर्दाफाश करने वालों में प्रेमचन्द का स्थान महत्वपूर्ण माना है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "कबीर के बाद किसी ने इतनी सच्चाई से ऐसे मर्म-भेदी व्यंग्य से हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों धर्मों के ढोगियों और पाखंडियों का पर्दाफाश न किया था।"[1] इसके साथ ही उन्होंने प्रेमाश्रम को किसान-जीवन का महाकाव्य कहा है तथा इसमें भारतीय ग्राम्य-जीवन अपनी समग्रता का महाकाव्य कहा है तथा इसमें भारतीय ग्राम्य-जीवन अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत होने और लखनपुर गाँव को ही उपन्यास के नायकत्व का पद देने के प्रसंगों को उभारा है। उनके अनुसार प्रेमचन्द द्वारा सफलता-पूर्वक सम्पन्न किया गया यह एक अनोखा प्रयोग रहा है। भारतीय किसान जीवन की ट्रैजेडी व्यक्तिगत या घरेलु समस्याओं के संदर्भ में लिखे गये दुखांत उपन्यासों और नाटकों से कहीं ज्यादा विशद और मार्मिक रही है अतः प्रेमाश्रम इस युग की ट्रैजेडी रहा है। वे प्रेमाश्रम में किसान द्वारा

---

1. प्रेमचन्द और उनका युग -- पृ. 32

अत्याचार विरोध में असफल होने की कमजोरी की ओर लक्ष्य कर इसे हिन्दी का पहला "हीरोइक" उपन्यास कहते हैं और इसके रचयिता प्रेमचन्द को तुलसीदास की त्याग सहृदयता और शूरता की परम्परा का उत्तराधिकारी माना है। और होरी के चरित्र को भारत के अजेय किसान का चरित्र मान गोदान को उसके भगीरथ प्रयत्न की गाथा कहा है। उन्होंने गोदान को प्रेमाश्रम, सेवासदन और स्वतः प्रेमचन्द के जीवन की भाँति दुखांत उपन्यास माना तथा प्रेमचन्द द्वारा अपनी अंतिम सम्पूर्ण कृति में किसान जीवन को प्रामाणिक महाकाव्य का रूप प्रदान कर किसानों को स्वाधीनता-संग्राम आगे बढ़ने की प्रेरणा देने की बात स्वीकार की गई। उनके अनुसार गोदान का मुख्य विषय किसानों की कर्ज की समस्या अर्थात् किसानों का महाजनी शोषण रहा है। वे पुरानी और नयी पीढ़ी के मध्य चलने वाले संघर्षों के मध्य से उत्पन्न होती हुई चेतना को उभारते हुए कहते हैं -- "होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है। गोदान उसके भगीरथ परिश्रम की गाथा है और होरी के मरने के बाद गोबर मानो पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती की तरह जीवित रहता है।"[1]

§ई§ यथार्थ चित्रण

डॉ. शर्मा प्रेमचन्द के साहित्य की समीक्षा के क्रम में उनकी रचनाओं में आदर्शोन्मुखता होने पर भी उन्हें एक यथार्थवादी कलाकार

---

1. प्रेमचन्द और उनका युग -- पृ. 113

मानते हैं और उनकी कला की सजीवता जीवन के यथार्थ चित्रण में बताते हुए साहित्य के युगीन संदर्भों को विश्लेषित किया है। वे निर्मला उपन्यास को उनके कथा-साहित्य के विकास में एक मार्ग-चिह्न मानते हुए इसे उनका पहला उपन्यास बताते हैं। जिसमें प्रेमचन्द द्वारा कहानी लिखने में यथार्थवाद का पूर्ण निर्वाह किया गया है। उनके अनुसार "निर्मला में प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम और सेवासदन के समान पाठक को झूठी सान्त्वना नहीं दी है। यह क्रांतिकारी यथार्थवाद नहीं है फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुष्ट करने में "निर्मला" का महत्वपूर्ण स्थान है।"[1] प्रेमचन्द द्वारा निर्मला में समाज की ज्वलन्त समस्या का यथार्थ की पृष्ठ-भूमि पर सांस्कृतिक परंपराओं और रूढ़ियों को तोड़ते हुए वीभत्सकारी परिणामों के साथ चित्रित किया गया है। शर्मा जी प्रेमचन्द की कलाशक्ति द्वारा यथार्थ-जीवन का सही चित्रण करने तथा गलत आदर्शों और विचारों के प्रभाव को ग्रहण करने से उनकी कला शक्तिहीन होने तथा उनकी कलम का जादू उड़ जाने की बात कही। और कायाकल्प के चमत्कार प्रधान अंशों को इसका प्रमाण माना है। इस उपन्यास के शक्तिशाली अंश वे हैं जहाँ प्रेमचन्द ने हाड़माँस के आदमियों के इसी जीवन पर दृष्टि-केन्द्रित की है अर्थात् शर्मा ने प्रेमचन्द के कलम की शक्ति यथार्थ जीवन के चित्रण को माना है। और गोदान की शक्ति का स्त्रोत भी प्रेमचन्द को यथार्थ चित्रण में ही खोजा है। उनके अनुसार "इस कृति में प्रेमचन्द का यथार्थवाद अपने पूरे निखार पर सजीवता सहित अभिव्यक्त हुआ है और होरी तथा गोबर की बातचीत में एक पिछड़े हुए किसान और अपने अधिकारों के प्रति सचेत युवक के विचारों को देखा है।

---

1. प्रेमचन्द और उनका युग -- पृ. 67 व 68

डॉ. शर्मा का कहना है कि प्रेमचन्द के यथार्थवाद का विकास धीरे-धीरे हुआ है तथा 1920 के बाद की रचनाओं में काल्पनिक समाधानों का अभाव दिखाई देता है। शर्मा जी ने प्रेमचन्द के यथार्थवाद की गहराई के अनुरूप उनकी कला में निखार की अभिव्यक्ति देखी है और उनके उपन्यासों की सजीवता और कला कौशल को उभारते हुए उनके यथार्थवाद का स्त्रोत उनकी देश-भक्ति, जनता के प्रति गहरी सहानुभूति और विदेशी शासकों से तीव्र घृणा को माना है।

§3§ परम्परा का महत्व

डॉ. शर्मा ने प्रेमचन्द को भारतेन्दु-युगीन हिन्दी की जनवादी परम्परा के विकासकर्त्ता के रूप में देखा है तथा सेवासदन के पहले हिन्दी में कथा-साहित्य की एक ऐसी परम्परा स्थापित होने की बात कही जिसका विकसित रूप सेवासदन रहा है। यह परम्परा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास जैसे कथाकारों के कथा-साहित्य की, उनकी भाषा, हास्य-व्यंग्य, उनके जीवट देश-प्रेम तथा उनकी जनवादी रुझानों की परम्परा रही है जो प्रेमचन्द को विरासत के रूप में मिली थी जिसे उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा पुष्ट और प्रतिष्ठित किया। प्रेमचन्द के पूर्व देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी भी थे, तिलिस्म होशरूबा जैसी उनकी कृतियों का प्रेमचन्द ने तन्मयता से अध्ययन किया जिससे उनकी कल्पना शक्ति प्रखर हुई और उन्हें स्वयं लिखने की प्रेरणा मिली लेकिन प्रेमचन्द ने तिलिस्म होशरूबा का रास्ता नहीं अपनाया।[1]

---

1. प्रेमचन्द और उनका युग — पृ. 19

डॉ. शर्मा प्रेमचन्द का महत्व इस बात में मानते हैं कि उन्होंने तिलिस्म होशरूबा और चन्द्रकांता पढ़ने वाले लाखों पाठकों को भारतेन्दु युग के निबन्धों तथा उपन्यासों की ओर मोड़ा और उन्हें सेवासदन का पाठक बनाया। उनके अनुसार उन्होंने चन्द्रकान्ता के पाठकों को अपनी तरफ ही नहीं खींचा, चन्द्रकांता में अरुचि भी पैदा की, जन-रुचि के लिए उन्होंने नये मानदण्ड कायम किये और साहित्य के नये पाठक और पाठिकाएँ भी पैदा किए यह उनकी महत्वपूर्ण सफलता थी।

अन्य रूप

डॉ. शर्मा ने "प्रेमचन्द और युग" कृति में प्रेमचन्द की कहानियों, उनके सम्पादकिय कार्यों और विचारों की समीक्षा प्रस्तुत की। वे प्रेमचन्द के कहानीकार की अपेक्षा उपन्यासकार रूप को प्रबल मानकर उसका कारण उनकी कहानी कला और विषय-वस्तु के स्तर की असमानता तथा कहानियों के कलात्मक अन्तर को बताते हैं। उन्होंने प्रेमचन्द की कहानियों में व्यंग्य-प्रधानता, कसाव काव्यात्मकता घटना कुतूहलता, चरित्र-चित्रण की बरीकी, पात्रों और विषय-वस्तु की विविधता तथा सजीवता और अनुभूति की गहराई आदि को भी उद्घाटित किया है। और पारिवारिक चित्रण के कारण कहानियों में उपन्यासों के समान अनुभव की गहराई और शैली की सजीवता को प्रस्तुत किया है। वे प्रेमचन्द की कहानियों में जातीय जीवन का रूप, हिन्दी भाषी जनता के उत्कृष्ट रूप आदि उनके पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त होने तथा हास्य-प्रेमी जिंदादिली

संघर्षशील न्याय के पक्षधर आदि पात्रों की विशेषता द्वारा व्यक्त होने की बात कहते हैं। और प्रेमचन्द के सम्पादक रूप की निष्ठा ईमानदारी निर्भीकता तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण आदि को उभारते हुए उन्हें युग सापेक्ष जागरूक और आदर्श सम्पादक बताया। और विचारक के रूप में उनकी गहरी प्रगतिशील आस्थाओं से परिपूर्ण व्यक्तित्व की छाप देखी है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने जहाँ एक ओर प्रेमचन्द के साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन उनके जीवन से सम्बद्ध करके प्रस्तुत किया है तथा उनके साहित्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, समस्याओं की प्रस्तुति युगबोध, पात्रों की सजीवता, यथार्थ-चित्रण की दृष्टि, जन-पक्षधरता, वर्गीय-संघर्ष की अभिव्यक्ति, राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन, निम्न-वर्गों का उभार, समाज की ज्वलन्त समस्याओं का आदर्शवादी और यथार्थवादी समाधान का प्रस्तुतिकरण, विभिन्न वर्गों के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं सहित साहित्य के अमर-पात्रों के रूप में चित्रण, कथा-वस्तु की सामाजिक प्रासंगिकता, भाषा-शैली की जन-पक्षता और लोकप्रियता आदि विशेषताओं की अभिव्यक्ति को उजागर किया है वहीं दूसरी ओर प्रेमचन्द के साहित्य की सीमाओं को भी स्वीकार कर यथावसर उसे प्रस्तुत किया है जो प्रेमचन्द द्वारा आदर्शवादी सुधारवादी दृष्टि से प्रस्तुत समस्याओं के समाधान में, चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति, कथानक की शिथिलता, पुरातन दृष्टिकोण, सीधी, सपाट शैली आदि का प्रयोग कहीं-कहीं होने का भी उल्लेख किया है। और उनकी सीमाओं को उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के सम्मुख नगण्य माना है। उनके युग-प्रवर्तक तथा निर्माता रूप को उभार कर प्रलेस के अध्यक्षीय भाषण में उनके द्वारा कही गई इस बात को

उनके साहित्य के प्रसंग में चरितार्थ होता हुआ बताया है -- "प्रेमचन्द ने साहित्यकार को देश, भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाने वाली सच्चाई बताया है और प्रेमचन्द का साहित्य इस मायने में समाज और देश को सही रूप में मार्ग-दर्शन करने वाली मशाल सिद्ध होता है।"

डॉ. शर्मा द्वारा की गई प्रेमचन्द विषयक समीक्षा का वास्तविक रूप उन्हीं के कथन से स्पष्ट होता है। डॉ. शर्मा भूमिका में लिखते हैं -- प्रेमचन्द का साहित्य अपने जमाने के हिन्दुस्तान और उसके स्वाधीनता-आंदोलन का प्रतिबिम्ब है जिसमें उस जमाने के सामाजिक जीवन की और स्वाधीनता-आंदोलन की असंगतियाँ भी झलकती है। परन्तु डॉ. शर्मा के प्रेमचन्द विषयक समीक्षा-साहित्य से न केवल प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य का वास्तविक चित्र मिलता है बल्कि उस साहित्य की युग-सापेक्षता, जन-पक्षधरता, लोक-कल्याणकारी भावना और समसामयिक सामाजिक अवस्था और समस्याओं का रूप उस वर्ग के विभिन्न पात्रों के चरित्रों के माध्यम से मिलता है। अतः प्रेमचन्द का साहित्य यदि भारतीय समाज का और उसके स्वाधीनता आंदोलन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है तो डॉ. शर्मा का प्रेमचन्द विषयक समीक्षा-साहित्य उस प्रतिबिम्ब का सही और वास्तविक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का पुनर्मुल्यांकन करते समय उनके उपन्यास साहित्य के विभिन्न स्त्री-पुरुष पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण कर उनकी उपन्यास के कथानक में सार्थक

भूमिका, महत्व और चारित्रिक प्रवृत्तियों या विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं। उन्होंने सहज और सरस विवेचनात्मक शैली में गंभीर प्रसंगों को प्रस्तुत कर प्रेमचन्द के साहित्य की वास्तविक महत्ता जीवन के मार्मिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति की है और युगीन सामाजिक सन्दर्भों के विश्लेषण द्वारा यथार्थ बोध के विकास को दर्शाया है। वे प्रेमचन्द के साहित्य में यथार्थ-चित्रण का विश्लेषण कर यथार्थ की अभिव्यक्ति में ही उनकी कलम का जादू देखते हैं। और यथार्थ की अभिव्यक्ति का स्त्रोत जन-साधारण के वास्तविक जीवन, उनकी समस्याओं, दुःख सुख की अनुभूति आदि की सही अभिव्यक्ति में खोजा है। उन्होंने प्रेमचन्द के साहित्य में भारतेन्दु-युगीन परम्परा का विकास देखा है जो विरासत के रूप में प्रेमचन्द को अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है जिसको उन्होंने और भी उज्ज्वल बनाया। अर्थात् प्रेमचन्द के साहित्य की विशेषताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण कर परम्परा के विकास में उसके महत्व को मूल्यांकित किया है जिससे प्रेमचन्द के साहित्य का महत्व नये ढंग से उभर कर आता है।

4.6 प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य : सेक्स सज्जा और यौन विकृतियाँ

डॉ. रामविलास शर्मा प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य के समीक्षात्मक विश्लेषण के संदर्भ जैनेन्द्र की "सुनीता" उपन्यास को हिन्दी कथा-साहित्य में एक नयी धारा का सूत्रपात बताते हैं। और इसके पात्र हरिप्रसन्न को चतुर, कर्मण्य, सप्राण और अज्ञेय माना क्योंकि इस उपन्यास में हरिप्रसन्न मरने का सफल नाटक करके सुनीता से आत्म-समर्पण करा लेता

है और वह सुनीता को "इंकार कब करती हूँ" की मंजिल तक ले आता है। शर्मा जी इसी बात से नाटक का ऐंटीक्लाइमैक्स आरम्भ मानते हैं। उन्होंने इस उपन्यास में हरिप्रसन्न के लिए सुनीता भाभी से सुनीता होने और फिर भाभी बनने तक की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया। उन्होंने सुनीता के निर्वस्त्र होने के प्रसंग की बड़ी रोचक व्याख्या दी है और वह है -- "नारी का भूषण लज्जा हरिप्रसन्न के गले पड़ जाती है और पुरुष का भूषण साहस सुनीता के गले पड़ता है।"

उनके अनुसार जैनेन्द्र के इस भाभीवाद को यशपाल ने सूत्र रूप में "दादा कॉमरेड" में प्रस्तुत किया। ध्यानतव्य है कि दादा कॉमरेड से लेकर "मनुष्य के रूप" तक यशपाल के उपन्यासों में प्रतिबिम्बित यथार्थवाद का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी ने बुनियादी तौर पर यशपाल की समस्याओं को अज्ञेय और जैनेन्द्र की समस्याएँ ही माना है।[1] उन्होंने वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, नागार्जुन आदि के कथा-साहित्य के पात्रों से यशपाल के नायकों की तुलना करते हुए राजनीति उनके लिए नारा भर माना है। उनके अनुसार "वह राजनीति जनता के जीवन की समझ-बूझ से पैदा नहीं हुई बल्कि सुनीता की परम्परा पर चिपकाई हुई कागज की स्लिप मात्र है जो हवा में इधर-उधर खड़खड़ाया करती है।" वे यशपाल का सबसे प्रभावशाली उपन्यास दिव्या को मानते हैं क्यों उसमें राजनीति की स्लिप की खड़-खड़ाहट नहीं मिलती और पार्टी कॉमरेड या देश-द्रोही के नायकों का रोमांस ही उस उपन्यास का आधार माना है और यशपाल के नायकों को आत्म-पीड़ा

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 166

के शिकार मान उनका उच्चतम उद्देश्य नारी की करुणा को प्राप्त करना बताया। वे यशपाल के उपन्यासों में सेक्स-सज्जा भौंडे रूप में प्रस्तुत होने का कारण उसमें आत्म-पीड़ा और सेक्स की समस्याओं से परिपूर्ण वर्ग के पात्र होना मानते हैं। उन्होंने यशपाल की कहानियों में भी आत्म-पीड़ा और राजनीति का स्लिप चिपकाने की प्रवृत्ति के साथ-साथ भौंडा सेक्स वर्णन हिन्दी-साहित्य के अनेक साड़ी जम्परवादी कलाकारों की परम्परा के अनुकूल माना। और उनके कथा-साहित्य में रूढ़िवाद से लड़ने वाली दृढ़ नारी के चरित्र के अभाव का कारण उनकी सामंती पूँजीवादी भोगवादियों के दृष्टि को बताया। यशपाल के पार्टी कॉमरेड व दिव्या में व्यक्त नखशिख-वर्णन, चक्कर क्लब के दार्शनिक द्वारा प्रस्तुत "घण्टे भर प्रेम" का नुक्सा, और "प्रतिष्ठा का बोझ" का केवलचन्द द्वारा सास-बहू से एक साथ प्रेम निभाने का वर्णन आदि को शर्मा जी ने यशपाल का यौन-सम्बन्धों में क्रांतिकारी काम बताया। और यशपाल जी की तरह राहुल जी द्वारा भी नायिका-भेद में यथेष्ट उन्नति करने की बात कही। उनके अनुसार "वोल्गा से गंगा" में राहुल जी द्वारा आदिम समाज-व्यवस्था का चित्र पूँजीवादी समाज के व्यभिचारी चश्मे के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जो विकृत और इतिहास विरोधी चित्र रहे हैं। राहुल जी द्वारा स्वयंभू के अनुकरण के आधार पर ऐतिहासिक भौतिकवाद को सामूहिक सौन्दर्य के वर्णन से सरस बनाने और ध्वस्त होती हुई सामंती संस्कृति को ऐतिहासिक चित्रण के नाम पर साहित्य में सुरक्षित रखने के प्रसंगों को भी उभारा है।

शर्मा जी ने राहुल जी के लिए इतिहास की मूल समस्या रक्त-शुद्धि की बताया। और उनके द्वारा वैज्ञानिक भौतिकवाद पर पुस्तक लिखने के बावजूद उनमें जनवादी दृष्टिकोण का अभाव देखा तथा उनके

उपन्यासों में किसान-मजदूरों के चित्रण के स्थान पर किसी व्यभिचारी महन्त के विलास स्वप्न का चित्रण पाया। अर्थात् मध्यवर्ग की जिन्दगी के चित्रण के नाम पर होने वाले सेक्स सम्बन्धी विकारों का चित्रण और सुनीतावादी परम्परा के अनुकरण की कटु आलोचना की है। और उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास "गिरती दीवारें" का उल्लेख कर उसमें उथलेपन को दखा है। धर्मवीर भारती ने कथा-साहित्य में नपुंसक नायकों पर लेख लिखने की बजाय थीसिस लिखने का अनुरोध करते हैं। उन्होंने शेखर पंथियों का सबसे बड़ा सहारा बीमारी माना जो उपन्यास के नायक का अकस्मात बीमार होने या बीमारी की आकांक्षा करने आदि के रूप में व्यक्त होता है जिसके द्वारा पुरुष पात्र या नायक-नायिकाओं की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल होते दिखाये गये हैं। अज्ञेय के नायक शेखर को एक सम्पूर्ण और आदर्श विद्रोही बताया और हरिप्रसन्न के जीवन में अज्ञात और अज्ञेय रह जाने वाले अंश की अभिव्यक्ति इस उपन्यास में होने की बात कही। शेखर के चरित्र की विशेषताओं को उभारते हुए शर्मा जी कहते हैं -- "शेखर त्रात्स्की जैसे क्रांति-विरोधियों का भक्त होकर उसी तरह की वीरता का परिचय देता है जिस तरह की वीरता की उससे आशा की जा सकती है। अपनी दीनता का रोना रोकर या अपने चिर विद्रोहवाद की दुहाई देकर वह स्त्रियों की करुणा जगाने में एक ही है।"[1] उन्होंने शेखर को पश्चिम की पूँजीवादी संस्कृति से प्रभावित हिन्दुस्तान के उन निकम्मे लोगों में से माना है जो एक तरफ विद्रोह की लम्बी चौड़ी बातें करके हीन भावना को संतुष्ट करते हैं दूसरी ओर आत्म-पीड़ा के अभिनय से अपने अस्तित्व को सार्थक कर नारी से करुणा की भीख माँगते हैं। उनका विद्रोह और आत्म-

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 177

पीड़ा दोनों ही उनके निकम्मे व्यक्तित्व के दो पहलू हैं। शर्मा जी उसकी चारित्रिक विसंगतियों को उभारते हुए उसे कुण्ठावाद का प्रतीक, जीवन और साहित्य में निरुद्देश्यता का प्रचारक, व्यक्तित्व से विद्रोह करने वाला विद्रोही, महास्वार्थी और जनद्रोह में अपनी विद्रोह की चरम परिणति देखने वाला पात्र मानते हैं। उन्होंने अज्ञेय द्वारा पाँच सौ पृष्ठों में व्यक्त चरित्र को इस वाक्य में बताया -- जिस प्रकार घोंघे के भीतर रहने वाला जीव तभी बाहर निकलता है जब वह भूखा होता है या जब वह एक प्रणयी खोजता है और तृप्त होकर फिर घोंघे के भीतर घुस जाता है उसी प्रकार असंतुष्ट और अतृप्त शेखर भी बाहर निकला हुआ था। अर्थात् डॉ. शर्मा ने शेखर के चरित्र को घोंघे के जीव के समान माना है।[1]

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने जहाँ जैनेन्द्र की सुनीता उपन्यास की समीक्षा करते हुए उसे हिन्दी कथा-साहित्य में "भाभीवाद का प्रणेता बताया वहीं यशपाल द्वारा अपने साहित्य में इसी भाभीवाद के आधार पर सेक्स सज्जा की अभिव्यक्ति करने की बात कही। और अपनी इस मान्यता की पुष्टि हेतु उन्होंने जैनेन्द्र और यशपाल के औपन्यासिक साहित्य से अनेक सन्दर्भों और प्रसंगों, चरित्रों और घटनाओं को उद्धृत कर प्रमाण प्रस्तुत किया साथ ही राहुल सांकृत्यायन द्वारा ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम पर पूँजीवादी समाज की व्यभिचारी प्रवृत्ति को व्यक्त करने तथा सामंत रूढ़ियों को महत्व देने की भी बात कही। उपेन्द्रनाथ अश्क और अज्ञेय के उपन्यास शेखर : एक जीवनी के प्रमुख पात्र शेखर की चारित्रिक विशेषताओं को उभारकर उसे

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 178

क्रांतिकारी नहीं बल्कि विद्रोही कहा और अज्ञेय साहित्य की प्रगति विरोधी प्रवृत्तियों को उद्घाटित कर आलोचकों की भ्रान्त अवधारणाओं का खण्डन प्रस्तुत किया और प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य की एक धारा में विकसित यौन-विकृतियों और भोंडे सेक्स-सज्जा की प्रवृत्तियों की आलोचना की।

4.7 वृन्दावनलाल वर्मा : ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की सार्थकता

डॉ. शर्मा ने "आदर्श साहित्य साधना : वृन्दावनलाल वर्मा" लेख में जीवनी लेखन की पद्धति के द्वारा वर्मा के साहित्य को उनके जीवन से सम्बद्ध कर विश्लेषित किया है। 1903 में उनका पहला उपन्यास, 1907 में क्रांतिकारी विचारों से परिपूर्ण सेनापति ऊदल और 1908 में पद्य रचना विनोद का प्रकाशन स्वीकार किया है। डॉ. शर्मा के अनुसार वर्मा जी भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त की परम्परा से जुड़े हुए साहित्यकार रहे हैं उन्होंने डारविन, बकलफ्ड, वामनदास वसु, मार्क्स आदि का अध्ययन किया था इसी कारण भारतीय इतिहास के अध्ययन में उनकी दृष्टि समाज के अंतर्विरोध, सामंती-युद्धों से जनता की क्षति, इतिहास निर्माण में जनता की भूमिका को पहचानकर उसकी वीरता को अभिव्यक्त करती है।

डॉ. शर्मा ने तुलसीदास को वर्मा जी का प्रिय-कवि बताया और महात्मा बुद्ध का जीवन चरित की रचना "सैत हिलैर औ डौडस" की पुस्तकों के आधार पर माना है। कामायनी के लेखक के समान

वर्मा जी को दुःखवाद से विरक्त बताया और उनके बौद्धिक परिवर्तन तथा उनकी जीवन में आस्था को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार वह मानव प्रयत्नों द्वारा संसार को सुन्दर बनाने में विश्वास रखते हैं। तथा उनका सम्पूर्ण साहित्य इस साध्य का साधन रहा है। उन्होंने वर्मा जी के साहित्य का परिचय देते हुए सरस्वती में उनकी पहली कहानी "राखीबंद" और अनेक कहानियों के प्रकाशित होने की बात कही है। डॉ. शर्मा वर्मा जी की कहानियों में नारी की स्वाधीनता और सम्मान को लेकर कथाएँ रचने की प्रवृत्ति की प्राचीनता को उजागर करते हैं। और "गढ़ कुंडार" उपन्यास को वर्मा जी के जीवन की नई मंजिल बताते हुए हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास में एक युगांतर मानते हैं।

उनके अनुसार सामाजिक समस्याओं में अत्याधिक रुचि लेने वाले एक देश-भक्त लेखक ने अपने इतिहास को नए प्रकाश में लाया है तथा एक नए मानवतावाद, धरती और उसके पुत्रों में एक स्नेह कथा-साहित्य में नए ओज, प्रकृति के नए कवि सुलभ-चित्रण का आरंभ साथ ही उन्होंने वर्मा जी की अन्य रचनाओं का तिथियों सहित उल्लेख कर वर्मा जी द्वारा दस-पाँच वर्ष के लिए गोता लगाने की प्रवृत्ति को उजागर किया है। तथा समालोचक में प्रकाशित उनकी डायरी के कुछ पृष्ठों से उनके संकल्प और कार्य-व्यस्तता का अनुमान लगाया है। वे चाणक्य के नोट्स और कथावस्तु की रूपरेखा से वर्मा जी के इतिचस ज्ञान को उभारते हैं। डॉ. शर्मा का मानना है कि "वर्मा जी ने इतिहास को साधारण ऐतिहासिक उपन्यासकारों से भिन्न दृष्टिकोण से देखा है तथा वर्तमान सामाजिक जीवन को गति देने के लिए उसका उपयोग किया।" वर्मा जी के अधिकतर उपन्यासों का क्षेत्र

बुन्देल खण्ड स्वीकार कर उपन्यासों का ढाँचा ऐतिहासिक होने पर भी उसकी भौगोलिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को महत्वपूर्ण बताया है। और उनके सामाजिक उपन्यासों का रस उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के रस से बहुत भिन्न माना है। उन्होंने वर्मा जी के एक अन्य उपन्यास "आहत" को लेखक के जीवन की घटनाओं की स्मृतियों से परिपूर्ण बताया है। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई को वर्मा जी के उपन्यास साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानते हुए उसे हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का एक मार्ग चिह्न स्वीकार किया है।

लोक-भाषा और संस्कृति

डॉ. शर्मा ने वर्मा जी द्वारा अपने उपन्यासों में कई स्थलों पर गीतों के बोल और स्वर लिपि को भी प्रस्तुत करने के प्रसंग को महत्वपूर्ण माना है। इसका एक कारण बुन्देल खण्ड की लोक संस्कृति का अजस्र प्रवाह स्वीकार किया। और बुंदेल खंड के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा लोक-गीतों को वर्मा जी का प्रेरणा स्रोत बताया। वर्मा जी के उपन्यासों में "बुन्देलखंडी पात्रों" के प्रति आत्मीयता, प्राकृतिक सौन्दर्य और आखेट वर्णन की सजीवता को अद्वितीय माना है। उन्होंने बुन्देल खण्डी कहावतों, मुहावरों लोकगीतों आदि को वर्मा जी के उपन्यासों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि स्वीकार कर उनके द्वारा प्रयुक्त ग्रामीण शब्दों का गद्य में प्रयोग को भाषा की समृद्धि का सूचक बताया। डॉ. शर्मा के अनुसार प्रेमचन्द की तरह वर्मा जी के पात्र भी खड़ी-बोली का ही प्रयोग करते हैं लेकिन उनकी

खड़ी-बोली बुन्देल खण्डी रंगों में रंगी होती है। डॉ. शर्मा ने "विराटा की पद्मिनी" से एक किसान के कथन को उद्धृत कर उस किसान को उपन्यासकार से भी बढ़कर भाषा का धनी माना और "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" में झलकारी के दो बोल को अमर बताया है। तथा उसके सम्मुख देव बिहारी और मतिराम आदि को मात खाते हुए दर्शाया है।

उन्होंने वर्मा जी के उपन्यासों में व्यक्त लोकगीतों को लोक संस्कृति का अभिन्न अंग माना। और जातीयता तथा स्थानियता के उभार द्वारा यथार्थ की अभिव्यक्ति को महत्व दिया। वर्मा जी द्वारा "विराटा की पद्मिनी" में "उड़ गये फुलवा रह गयी बास" जैसी मार्मिक लोकगीत की पंक्ति के माध्यम से पद्मिनी के दुःख-पूर्ण अंत को बड़ी ही चतुरता से प्रस्तुत करने की पद्धति की प्रशंसा करते हैं। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई में लोक-नृत्यों और उत्सव-विनोद का रूप सुरक्षित रहने तथा हल्दी कूंकू के प्रचलन को कला और विनोद-प्रियता का परिचायक माना है। डॉ. शर्मा झलकारी के बुन्देलखण्डी नृत्य के सम्मुख सामंती संस्कृति को खोखला बताते हुए सामंती संस्कृति के अन्तर को "टूटे कांटे" के प्रसंगों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। वे मृगनयनी के नृत्य ताण्डव से उत्पन्न भाव को सामंती कला की पहुँच से परे बताते हुए वर्मा जी को कला-प्रेमी जनता के कुशल चितेरे मानते हैं। और उनका सरस हृदय जनता के प्रेम और वीरता की कहानियों पर मुग्ध बताया है।

उन्होंने बुन्देल खण्ड की नदियों, जंगलों और पहाड़ों की चित्रमयता पृष्ठभूमि में प्रेम और वीरता की अनेक घटनाएँ देखा है तथा इन

कथाओं को सरस बनाने वाले लोकगीत, ग्रामीण मुहावरे हास्य और विनोद आदि को वर्मा जी की कला के सजीव स्त्रोत माना है।[1]

प्रेम का औदात्तिकरण और नारी पात्र

डॉ. शर्मा ने वर्मा जी के उपन्यासों में प्रेम और वीरता की गाथाओं और नारी पात्रों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा उनके उपन्यासों में वीरता और सौन्दर्य का समन्वय देखते हुए उनके सौन्दर्य वर्णन को कवित्वपूर्ण बताया। उन्होंने वर्मा जी के नारी-पात्रों को लक्षण ग्रंथों की नायिकाओं से भिन्न निज-व्यक्तित्व, मान-अपमान, प्रेम और त्याग की भावना से परिपूर्ण माना है। तथा उनके उपन्यासों में प्रेम की समस्या की अभिव्यक्ति देखी है। जैसे "विराटा की पद्मिनी" में कुमुद और कुंजर सिंह के प्रेम की बलि सामंती-व्यवस्था की वेदी पर चढ़ा दी जाती है। गढ़ कुंडार में ब्राह्मण अग्निदत्त और राजकुमारी मानवती का प्रेम उसी सामंती व्यवस्था से टकराता है। इसी कारण डॉ. शर्मा ने वर्मा जी द्वारा प्रेम का चित्रण करते हुए सामंती व्यवस्था से टकराता है। इसी कारण डॉ. शर्मा ने वर्मा जी द्वारा प्रेम का चित्रण करते हुए सामंती व्यवस्था और जाति-प्रथा की कड़ी आलोचना किये जाने को प्रशंसनीय बताया और गढ़ कुण्डार में तारा और दिवाकर के प्रेम में उदात्त रूप देखा है।

---

1. परम्परा का मूल्यांकन — पृ. 159

डॉ. शर्मा के अनुसार "मृगनयनी और लाखी के पास खोने के लिए सम्पत्ति नहीं है उनका प्रेम खाते-पीते घरानों की निष्क्रिय स्त्रियों का प्रेम नहीं है, उनका प्रेम निर्धन वर्गों का है, जो सम्पत्तिशाली वर्गों के मुकाबले में प्रेम का महत्व ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं।"[1]

उन्होंने नारी पात्र लाखी के चरित्र में लेखक द्वारा यथार्थ के रंग से परिपूर्ण न करने का मत व्यक्त करते हुए लाखी की सजीवता को निर्भीक स्वाभिमानी और स्वावलम्बी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाला बताया है। और लाखी तथा अटल के प्रेम को हिन्दी कथा साहित्य में प्रेम की सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति माना है। वे वर्मा जी के पात्रों की सजीवता, सक्रियता तथा चेतनाशीलता को उभारते हुए लाखी द्वारा अपने प्रेमी से "उतर पड़ो संसार में कमर कसकर और सिर उठाकर निन्दाचारे का सामना करो" कहे गये कथन में भारतीय नारी का अजेय स्वर सुनते है। जिसे सैकड़ों वर्षों के दमन के बाद भी सामंत कुचल नहीं पाये, जिसे धर्म-शास्त्र के सैकड़ों पोथे अपने बोझ से दबा नहीं पाये।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा नारी की अपार धीरता और वीरता की परिचायक के रूप में "गढ़ कुण्डार" की तारा के चरित्र और वर्ण-व्यवस्था विरोधी व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण मानते हैं। और "सुनीता", "दादा कॉमरेड", "नदी के द्वीप" आदि में अभिव्यक्त निराकरण नारी के चित्रों को तारा के चरित्र के सम्मुख हीन बताया है। वे वर्मा जी के स्त्री पात्रों को प्रेम और स्वाधीनता के लिए पुरुष से कदम मिलकर चलने की

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- पृ. 161

सामर्थ्यता से परिपूर्ण देखते हैं। और पात्रों की अनेक चारित्रिक विशेषताओं को उभारते हुए उन्होंने लाखी को "झांसी की रानी" लक्ष्मी बाई का छोटा संस्करण माना है। उनके अनुसार लाखी जैसे पात्र काल्पनिक नहीं है और न ही झांसी की रानी अकेली वीर नारी थी जो शस्त्र लेकर अंग्रेज़ों से लड़ी थी बल्कि उनकी सहेलियाँ सुन्दर-मुंदर अविस्मरणीय रही है। वे उनके स्वदेश-प्रेम, रानी से उनकी प्रीति, उनका युद्ध-कौशल और वीरता को प्रभावशाली बताते हैं। और लक्ष्मीबाई को राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करने वाली इन नारियों और वीर जनता की निधि माना है। तथा वर्मा जी को लक्ष्मी बाई का अतुलनीय सुन्दर व्यक्तित्व को चित्रित करने वाला कलाकार बताते हैं। उपन्यासकार वर्मा जी ने अनुपम कलात्मक प्रतिभा से रानी और जनता का अटूट सम्बन्ध चित्रित किया है।

डॉ. शर्मा ने वर्मा जी के उपन्यासों में नारी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और उनकी कर्मठता और सक्रियता को व्यक्त कर हिन्दी कथा-साहित्य में उन्हें अतुलनीय और अविस्मरणीय बताया है। डॉ. शर्मा रामगढ़ की रानी को शूरता और संगठन में जहाँ एक ओर लक्ष्मीबाई की छोटी बहन मानते हैं वहीं दूसरी ओर वर्मा जी द्वारा मडला की रानी अवन्ती बाई को विस्मृति के गर्त से निकालकर अक्षय-कीर्ति के प्रकाश में खड़ा करने की बात कहते हैं। "आहत" में वर्मा जी द्वारा दयनीय किंतु परिक्षयी वीर साहसी स्त्री का माँ के रूप में प्रस्तुत करने के प्रसंग को उभारा है।

सामंतवाद विरोध

डॉ. रामविलास शर्मा वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों द्वारा किये गये सामंत विरोधी संघर्ष को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि कुमुद, कुंजर सिंह, अग्निदत्त, मानवती, दिवाकर, तारा आदि सामंत न होते हुए भी उस वर्ग के बहुत निकट है। ये सामंती व्यवस्था से पीड़ित हैं लेकिन उसके विरुद्ध उठ खड़े होने की शक्ति उनमें नहीं है। यह शक्ति मृगनयनी और लाखी में है जिसने राई का पानी पिया है, जंगलों में शिकार खेला है जो तीरकमान से अपनी रक्षा करना जानती है। उन्होंने वर्मा जी को जीवन को स्वीकार करने वाले, नारी और जनसाधारण के अधिकारों का पक्ष लेने वाले, वर्तमान समाज-व्यवस्था के बन्धनों की आलोचना करने वाले साहित्यकार के रूप में देखा और माना है। वर्मा जी के उपन्यास की चेतना को प्रेमचन्द के निकट बताया। इसके अलावा नारी के प्रति सहानुभूति और उसकी वीरता के चित्रण को वर्मा जी की मौलिक विशेषताएँ माना। उनका कहना है कि "जन-साधारण की वीरता और प्रेम के विरोध में सामंती व्यवस्था और सामंत-वर्ग ही खड़े होते हैं। इसलिए वर्मा जी के उपन्यासों में "सामंती संस्कृति के प्रति सहानुभूति का अभाव ही नहीं है उनमें उसकी तीव्र आलोचना भी है वर्मा जी के लिए इतिहास वर्तमान से भागकर एक कल्पित स्वर्ण-युग के सपने देखने का बहाना नहीं है।"[1]

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- 165-66

सामंतवाद विरोध

डॉ. रामविलास शर्मा वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों द्वारा किये गये सामंत विरोधी संघर्ष को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि कुमुद, कुंजर सिंह, अग्निदत्त, मानवती, दिवाकर, तारा आदि सामंत न होते हुए भी उस वर्ग के बहुत निकट है। ये सामंती व्यवस्था से पीड़ित हैं लेकिन उसके विरुद्ध उठ खड़े होने की शक्ति उनमें नहीं है। यह शक्ति मृगनयनी और लाखी में है जिसने राई का पानी पिया है, जंगलों में शिकार खेला है जो तीरकमान से अपनी रक्षा करना जानती है। उन्होंने वर्मा जी को जीवन को स्वीकार करने वाले, नारी और जनसाधारण के अधिकारों का पक्ष लेने वाले, वर्तमान समाज-व्यवस्था के बन्धनों की आलोचना करने वाले साहित्यकार के रूप में देखा और माना है। वर्मा जी के उपन्यास की चेतना को प्रेमचन्द के निकट बताया। इसके अलावा नारी के प्रति सहानुभूति और उसकी वीरता के चित्रण को वर्मा जी की मौलिक विशेषताएँ माना। उनका कहना है कि "जन-साधारण की वीरता और प्रेम के विरोध में सामंती व्यवस्था और सामंत-वर्ग ही खड़े होते हैं। इसलिए वर्मा जी के उपन्यासों में "सामंती संस्कृति के प्रति सहानुभूति का अभाव ही नहीं है उनमें उसकी तीव्र आलोचना भी है वर्मा जी के लिए इतिहास वर्तमान से भागकर एक कल्पित स्वर्ण-युग के सपने देखने का बहाना नहीं है।"[1]

---

1. परम्परा का मूल्यांकन -- 165-66

उन्होंने सामंती युद्धों और लुटेरों के आक्रमणों से किसानों की जो दशा हुई थी उसका मार्मिक वर्णन वर्मा जी ने विराटा की पद्मिनी में देखा है। तथा मध्यकालीन किसान द्वारा कहे गये इस कथन "जहाँ आशा नहीं होती वहाँ निराशा ईश्वर के पैर पकड़वाती है। यदि बच गये तो कृतज्ञ हृदय से एक आँसू डाल दिया और बह गये तो भाग्य तो कोसने के लिए कहीं गया ही नहीं।" को अध्यात्मवाद और भारतीय संस्कृति की अलौकिक विशेषताओं पर लिखे गये समस्त लेखक से ज्यादा सारगर्भित बताया। डॉ. शर्मा ने वर्मा जी द्वारा सामंतों की पतित संस्कृति का चित्र देकर जनता की वीरता को उभारने की प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार वर्माजी ने दिखलाया है कि यह सामंती वर्ग केवल शस्त्र बल से जनता पर शासन नहीं करता वह शास्त्रबल, धर्म-पुजारियों और मंदिरों की भी सहायता लेता है। इसका प्रमाण उन्होंने पुजारी वर्ग द्वारा अटल और लाखी के प्रेम का विरोध करने की प्रवृत्ति को माना। "टूटे काँटे" में वर्मा जी द्वारा सामंती-युद्धों का जन-जीवन पर प्रभाव, जनता की आशाएँ, धार्मिक अन्ध-विश्वास आदि की प्रस्तुती को सहज माना है। और इस उपन्यास की नायिका नूर बाई द्वारा सामंती चमक-दमक छोड़ साधारण सिपाही के संग जीवन-व्यापन करने के निर्णय को उनके उपन्यास की महत्वपूर्ण विशेषता बताया है।

डॉ. शर्मा वर्मा जी की "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" कृति में गंगाधर राव और नाना साहब को सामंती वर्ग का प्रतिनिधि मानते हैं। सामंती नेताओं की फूट, अक्षमता, जनता से बैर, अंग्रेज़ों से प्रीति आदि को 1857 के महान् विद्रोह की असफलता का कारण माना है।

वे झाँसी की अराजकता, महाराजा के अभिनय और नाट्य-प्रियता की प्रवृत्ति, युद्ध-कौशल और सैनिक वृत्ति से महारानी का अधिक प्रेम, समाज में ब्राह्मण और इतर वर्गों के मध्य संघर्ष तथा न्याय-व्यवस्था द्वारा ब्राह्मणों की पक्षधरता आदि को इस कृति की विशेषतायें बताते हैं। उन्होंने रानी की पराजय का कारण सामंती सेनापतियों की अकर्मण्यता और असमर्थता को और झांसी की रानी की परम्परा का महत्व हिन्दू-मुसलमान जन-साधारण को स्वाधीनता के लिए अपना बलिदान करने की शिक्षा देने में माना है। सागर सिंह की घटना में रानी के साहस और शौर्य का अनुपम चित्रण मिलता है। इस घटना के माध्यम से वर्मा जी द्वारा रानी के नेतृत्व की क्षमता का परिचय देने की बात स्वीकार की है।

डॉ. शर्मा ने वर्मा जी के एक अन्य उपन्यास में रामगढ़ की रानी को शूरता और संगठन में लक्ष्मीबाई की छोटी बहन माना है। वे वर्मा जी द्वारा अँग्रेज़ी राज के विरुद्ध असंतोष का मूल कारण किसानों के शोषण पर ध्यान केन्द्रित करना बताते हैं। इसी कारण वर्मा जी द्वारा संघर्ष का आदर्श चित्र कल्पित न करके यथार्थवादी ढंग से उसकी आन्तरिक कठिनाईयों को प्रस्तुत करने का मत व्यक्त करते हैं।

उनके अनुसार "वर्मा जी ने अपने पात्रों के माध्यम से यह बताया है कि क्रांतिकारी संघर्ष का रास्ता अपनाने पर बाहर के शत्रुओं की अपेक्षा घर के शत्रुओं से निपटना और भी कठिन है।" इस बात का प्रमाण वे साईं के भेस में सरकारी चपरासी द्वारा शंकर साह का भेद कह देने से शंकर शाह और उनके पुत्र को तोप से उड़ा देने के प्रसंग के द्वारा देते हैं।

इसके अलावा वे सूबेदार बलदेव तिवारी, वीर उमराव सिंह आदि की सहायता से रानी अवन्ती बाई द्वारा क्रांतिकारी संघर्ष का संचालन करने और किसानों को बटोरने के कार्य को महत्व-पूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार रानी योद्धाओं को चुनौती देती है तथा राजनीतिज्ञों की तरह लच्छेदार भाषण न देकर जनता से सीधा सम्पर्क रखती है। इसी कारण उपन्यास में धरती की गंध मिलती है। इसका उदाहरण देते हुए बताते हैं कि किसानों को बेघर बार तबाह देखकर रानी ने उन्हें कुछ देना चाहा, इस पर एक किसान ने कहा "अभी नहीं राजा बेटा, अभी नहीं, जब जीत जाओगे तब।" डॉ. शर्मा ने इस कथन को अतुलनीय मार्मिकता से परिपूर्ण मानते हुए वर्मा जी ने उपन्यासों में अन्यत्र इसका अभाव बताया है।

उनका कहना है कि वर्मा जी के समस्त उपन्यासों में ऐसा मार्मिक वाक्य दूसरा नहीं है। जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मुसलमान हरिजनों पर कोटिन हिन्दूवाद दिये थे वैसे ही इच्छा होती है इस एक वाक्य पर सभी आधुनिकतामय उपन्यासों को निछावर कर दूँ।[1]

कथा-कौशल

डॉ. शर्मा के अनुसार वर्मा जी अपनी सरस कथा से पाठक का मन बाँधकर उसकी उत्सुकता को अंत तक ताजी बनाये रखते हैं। वे वर्मा जी के साहित्य में सामंत-वर्ग और जन-साधारण दोनों का चित्रण होने के कारण कथा के सूत्र बिखरने और जुड़ने की क्रिया को महत्वपूर्ण मानते हैं। कथानक की बहुसूत्रता से वैचित्र्य, सरसता और चित्रण की

विविधता व्यक्त होने की बात कही है। उनके अनुसार वर्मा जी के लेखन की एक और विशेषता कथा का विस्तार कर प्रभावशाली दृश्यों को अंत में प्रस्तुत करना रहा है। क्लाइमैक्स रचने की दृष्टि से वर्मा जी के कौशल की सराहना करते हैं। और वर्मा जी के साहित्य के दृश्य प्रभावशाली होने का कारण उन दृश्यों का मानववाद से गहरा सम्बन्ध बताते हैं। जिसके आधार पर वर्मा जी द्वारा "टूटे काँटे" में विधर्मी सिपाहियों की मैत्री प्रस्तुत करने का मत व्यक्त किया है।

डॉ. शर्मा वर्मा जी के वर्णन-कौशल को उभारते हुए उसमें महाकाव्यों की संस्कृति का प्रभाव और छाप मानते हैं। वर्मा जी के उपन्यास साहित्य का महत्व उभारते हुए लिखते हैं -- "उनकी रचना में सामंती निरंकुशता, सामाजिक उत्पीड़न, अंग्रेज़ों के खिलाफ जनता का संयुक्त मोर्चा, बुन्देलखंड की भाषा संस्कृति आदि के सजीव और विशद चित्र मिलते हैं। तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में पहली बार सामंती शासकों के बदले यहाँ उनकी प्रजा का चित्रण किया गया है।[1] उन्होंने वर्मा जी की कृति "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" की विशेषताओं को प्रस्तुत कर उसका युगान्तरकारी महत्व और परम्परा के विकास में स्थान निर्धारित किया है। उनके अनुसार वर्मा जी की यह कृति एक महान् ऐतिहासिक उपन्यास इसलिए है कि उसने हमारी एक महान् राष्ट्रीय परम्परा को सर्वांगीण रूप में उजागर कर दिया है। लक्ष्मी बाई के चित्रण में भक्ति के कारण बार-बार जैसे वर्मा जी की लेखनी काँप उठती है। वे सुन्दर-मुन्दर सागर सिंह, झलकारी, तात्या, गलमुहम्मद आदि का चित्रण किसी भी कृति को महान् बनाने के

---

1. कथा विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 3।

लिए यथेष्ट मानते हैं। क्योंकि ये पात्र साँचे में ढ़ले न होकर परिस्थितियों के अनुसार विकसित होते हुए मानवीय भावनाओं के घात-प्रतिघात के सजीव उदाहरण हैं। इसके अलावा उन्होंने "आहत" उपन्यास की रचना कुछ आपबीती कुछ जगबीती के आधार पर माना है। इसकी घटनाएँ और पात्र यथार्थ-जीवन से सम्बद्ध होने पर भी इसमें जीवन के तथ्य, कल्पना सृष्टि के द्वारा अधिक रोचक बनने की बात कही है। तथा इस उपन्यास के वातावरण को बुन्देल खण्डी माना है।

उन्होंने वर्मा जी को भारतीय इतिहास और समाज की चिनगारियाँ बटोरने-सँजोने वाले कलाकार बताया है।" और वर्मा जी के चरित्र-चित्रण की पद्धति पात्रों का संयोजन, भाषा-शैली पर लोक-भाषा और संस्कृति का प्रभाव, यथार्थ अभिव्यक्ति, राष्ट्रीय भावना, संघर्षशीलता, सामाजिक-चेतना, सामंत और साम्राज्यवाद विरोधी प्रवृत्ति, वीरता, रण-कौशलता, मानवीयता आदि विशेषताओं को वर्मा जी के साहित्य की कला कौशलता का प्रमाण माना।

निष्कर्ष

डॉ. शर्मा के अनुसार प्रेमचन्द के समान वर्मा जी इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यकार रहे हैं। इस कारण उनके चारों ओर ऐसे पात्र दिखाई देते हैं जो या तो उपन्यासों में आ चुके हैं या आने के उम्मीदवार हैं। उन्होंने वर्मा जी को प्रेचन्द के बाद हिन्दी का श्रेष्ठ

उपन्यासकार माना और उनकी महत्वपूर्ण रचनाओं में "गढ़ कुंडार", "कुण्डली चक्र", "विराटा की पद्मिनी", "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" "मृगनयनी" आदि कृतियों का उल्लेख किया। इन कृतियों को हिन्दी साहित्य का अमर अंग बन जाने और प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गोदान आदि के साथ कथा-साहित्य में क्लासिक का स्थान पाने में उसका महत्व माना।

डॉ. शर्मा के अनुसार प्रेमचन्द के समान ही वर्मा जी में लिखने की अपूर्व क्षमता, साधारण-जनता से गहरा-प्रेम धार्मिक अंधविश्वासों, सामंती अत्याचारों और जाति-प्रथा से घृणा, नारी की वीरता, उसके आत्म-विश्वास की अनुपम गाथाओं की अभिव्यक्ति आदि की विशेषताएँ मिलती हैं। डॉ. शर्मा ने हिन्दी के अधिकांश आलोचकों द्वारा प्रेमचन्द की तरह वर्मा जी के प्रति भी उदासीन रहने की बात कही। परन्तु साधारण-जनता में प्रेमचन्द की तरह वर्मा जी को भी लोकप्रियता प्राप्त होने का महत्व स्वीकार किया है। वे वर्मा जी के साहित्य की समीक्षा करते हुए उनके द्वारा भारतीय समाज की रूढ़िवादी दृष्टि और कूपमंडुकता की अभिव्यक्ति कर सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाली दृष्टि की प्रशंसा करते हैं। उन्होंने वर्मा जी द्वारा अपने उपन्यासों में प्रेम को सामंती संघर्ष के रूप में अभिव्यक्त करने की पद्धति को सही माना है। और "टूटे काँटे" में सामंती युद्धों और अंध-विश्वासों के नीचे पिसती हुई जनता का चित्र प्रस्तुत करने के प्रसंगों को महत्वपूर्ण बताया है। डॉ. शर्मा वर्मा जी द्वारा अपने उपन्यासों में सामंती-वर्ग के साथ-साथ उसके सहायक वर्ग की आलोचना करने की दृष्टि को उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की निजी विशेषता मानते हैं।

उन्होंने वर्मा जी के उपन्यासों की पृष्ठभूमि और आधारभूत प्रेरणा-स्त्रोतों का विश्लेषण कर उनकी सबसे प्रिय बुन्देले खण्डी क्षेत्रीय

विशेषताओं, ग्रामीण वातावरण एवं जीवन तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों को विश्लेषित किया है। वे वर्मा जी के साहित्य की जनपक्षधरता, लोकप्रियता, लोक-संस्कृति और लोक-गीतों की परिपूर्णता, उनकी जातीय एवं राष्ट्रीय-भावना आदि पक्षों से सम्बन्ध बताते हैं। वर्मा जी की कला को निषेधात्मक नहीं बल्कि आनन्दवादी माना है और उसका आधार जीवन के प्रति उदासीनता और वैराग्य नहीं बल्कि कर्म और आनन्द का समन्वय तथा जीवन की सरसता को माना है। डॉ. शर्मा वर्मा जी द्वारा प्रयुक्त ऐतिहासिक घटनाओं का सामाजिक महत्व, वर्तमान प्रासंगिकता, यथार्थवादी कल्पना, लोक-संस्कृति के प्रेरक तत्वों, प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, लोकगीतों, मुहावरों और भाषा-शैली की जातीय विशेषताओं को उभारते हुए वर्मा जी के साहित्य के महत्व को प्रस्तुत करते हैं।

4.8 मार्क्सवादी उपन्यासकार यशपाल : रचना एवं विचारधारा का समग्र मूल्यांकन

डॉ. रामविलास शर्मा यशपाल के उपन्यासों की समीक्षा के क्रम में उनके "झूठा सच" उपन्यास को सर्व-श्रेष्ठ मानते हुए उसकी कथावस्तु का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से लाहौर से दिल्ली और लखनऊ तक और कालक्रम स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व से स्वाधीनता प्राप्ति के उपरांत तक स्वीकार करते हैं। वे इस उपन्यास को सामाजिक-जीवन का विशद चित्र प्रस्तुत करने वाला उपन्यास बताते हुए उसमें पात्रों के चित्रण में, विभिन्न जातियों, राजनीतिक पार्टियों और विभिन्न अवस्था के नर-नारियों का

समायोजन देखते हैं। उन्होंने इस उपन्यास का राजनीतिक महत्व जनता को देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों से परिचित कराने में माना है। उनके अनुसार यह उपन्यास कांग्रेस के अवसरवादी नेतृत्व को मुख्य रूप से व्यक्त कर स्वाधीनता-पूर्व उसकी क्रांति विमुखता, समझौतावादी दृष्टि, देश के विभाजन की स्वीकृति, सत्ता प्राप्ति का स्वार्थ आदि को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। वे इस उपन्यास का सामाजिक महत्व वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता, उसकी घुटन और अपमान, व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह उसके क्रय-विक्रय की जघन्यता को स्पष्ट करने में मानते हैं। इसमें स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सामंती रूढ़ियों के विरुद्ध वीरतापूर्वक संघर्ष और विद्रोह करने वाली नारी का मार्मिक चित्रण मिलता है। लेखक ने उपन्यास के प्रमुख पात्र जयदेव पुरी का चित्रण पूरी तल्लीनता से किया है।

शर्मा जी इस उपन्यास में यथेष्ट करुणा, भयानक और वीभत्स दृश्यों का चित्रण, मूल कथा-वस्तु की सीमाओं से आबद्ध श्रृंगार-रस, हास्य और व्यंग्य से कथा की रोचकता में वृद्धि, जगह-जगह पंजाबी भाषा और गीतों के सौंदर्य की अभिव्यक्ति और उपन्यासकार के उद्देश्य को विश्लेषित कर लेखक की कलात्मक विशेषताओं को उभारते हैं। उन्होंने शीलों के चरित्र में लेखक द्वारा भारतीय नारी के दबे हुए शौर्य का चित्रण करने की बात कही और बंती का दुःखमय अन्त को तारा की करुण कथा से भी अधिक हृदयद्रावक माना। उनके अनुसार "बंती का बलिदान हिन्दू रूढ़िवाद की चौखट पर हुआ है तथा लेखक ने किसान पात्रों में देश के नव-निर्माण की आशा व्यक्त की है।" वे इस उपन्यास में भारतीय जनता

की मैत्री एवं एकता में दृढ़ विश्वास मिलने की बात कहते हुए इसमें चित्रित घटनाओं को भारतीय राष्ट्रीयता के लिए चुनौती बताते हैं।

इस उपन्यास की कमियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने पहले खण्ड को दूसरे खण्ड की अपेक्षा अधिक सजीव माना तथा दोनों खण्डों की विषय-वस्तु और कथा-शिल्प में अन्तर दर्शाते हुए उन्हें एक ही उपन्यास का अंग मानने में केवल कुछ पात्रों की समानता को ही सहायक बताया। इसके अतिरिक्त अखबारों और रेडियों की खबरों के सहारे कहीं-कहीं अनावश्यक कलेवर वृद्धि होने को अनुचित माना। उनका कहना है कि "यशपाल को पंजाब के सामाजिक चित्रण में विशेष सफलता मिली है तथा उनके इस चित्रण का केन्द्र बिन्दु मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार रहा है।" अतः उन्होंने यशपाल को मुख्यतः मध्यवर्ग के चितेरे कहा। इस उपन्यास में देश का विभाजन, लाखों मनुष्यों का स्थानान्तरण, भयानक दंगों का संगठन, पंजाब से उत्तर प्रदेश तक के सामाजिक जीवन में "उथल-पुथल आदि कथानक विशदताओं को देखते हुए उन्होंने श्रमिक जनता के चित्रण का अभाव खटकने की बात कही है। उनके अनुसार लेखक मध्यवर्ग का चित्रण करते हुए उस वर्ग के दृष्टिकोण से प्रभावित हो जाता है और देश में भयानक काण्ड के पीछे काम करने वाली शक्ति की ओर ध्यान नहीं देता है अर्थात् डॉ. शर्मा का कहना है कि "यशपाल जी ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय सामंतवाद की प्रतिक्रियावादी भूमिका को स्पष्ट समझ नहीं पाये और न ही उसे उपन्यास में उन्होंने चित्रित किया है।"[1] बल्कि वे भारतीय

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 77

पूँजीवाद के ढुलमुलपन को देख पाये हैं। उन्होंने लेखक द्वारा तारा का पतन न समझने और स्वाधीनता प्राप्ति से पहले भारतीय जनता की निष्क्रियता को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को देखा है। तथा उनके देश-द्रोही उपन्यास को आतंकवादियों के जीवन पर प्रकाश डालकर उनका सही चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने वाली कृति बताया जिसमें लेखक द्वारा राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को मुख्य ध्येय बनाकर शैल और हरीश के रोमांस द्वारा उसे रंगीन रूप दिया गया है। शर्मा जी देश-द्रोही का सम्बन्ध असहयोग आंदोलन से महायुद्ध तक की राजनीतिक घटनाओं से माना है और इस उपन्यास को हर दृष्टि से "दादा कॉमरेड" से आगे बताया। वे उपन्यास के अंत में लेखक द्वारा अरस्तु और कोलरिज को याद करने के प्रसंग को उद्घाटित करते हैं।

देश-द्रोही उपन्यास का घटनाक्रम अफगानिस्तान से दक्षिण रूस तक की यात्रा करते हुए वहाँ के सुन्दर दृश्यों एवं सुन्दरियों का दर्शन करता है। कथा का आरम्भ अंजानी अंधेरी राह में कथा-नायक डॉ. भगवान दास खन्ना के पकड़े जाने से होता है। उनके अनुसार लेखक फौजी डाक्टर के मनोवैज्ञानिक प्रसंगों के माध्यम से पाठक के मन में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करता है। और शर्मा जी डाक्टर के चरित्र के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्मता से विश्लेषण कर उसमें व्याप्त नपुंसकता की भावना को इब्बा द्वारा दिये गये नामकरण बोद्दा के अनुरूप बताते हैं। और यशपाल द्वारा विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से उभारे गये डॉ. खन्ना के चरित्र के सम्बन्ध में डॉ. शर्मा का कहना है कि "खन्ना को फौज का डाक्टर बनाकर, अफरीदियों द्वारा उसे उड़वाकर, अफगानिस्तान और रूस की सैर कराकर

हिन्दुस्तान में कम्युनिस्ट बनाकर और अंत में प्रेम की वेदी पर उसका बलिदान कराकर लेखक ने बाल-सुलभ कल्पना का ही परिचय दिया है। वे लिखते हैं -- "लेखक ने काल्पनिक कहानी को यथार्थ का रंग देने में प्रौढ़ों सी चतुरता दिखाई है किंतु उसकी भाव-धारा का मूल स्त्रोत और उसके व्यक्तित्व का रहस्य लेखक ने डॉ. खन्ना का बच्चों जैसा गोद में छिपने के भाव में व्यक्त किया है।"[1] इस उपन्यास की समीक्षा के क्रम में शर्मा जी ने अनेक प्रसंगों की तुलना शरतचन्द्र के उपन्यासों और उनके पात्रों के चरित्रों से करते हुए साम्यता दर्शायी है। जैसा खन्ना चन्दा की गोद में लेटना भर चाहता है उसे संभालने, साथ रखने, उसका खर्चा बर्दाश्त करने के लिए वह तैयार नहीं होता। वह शरत के पात्रों की तरह टालमटोल करता है वह चन्दा के जीवन में एक संघर्ष पैदा कर के उसका अंत करने के लिये उसे किसी तरह की भी सहायता नहीं देता, देने की चेष्टा भी नहीं करता।

डॉ. शर्मा के अनुसार लेखक ने राजाराम के द्वारा डॉ.खन्ना को धूर्त, देश-द्रोही और बदमाश है अर्थात् इस प्रकार देशद्रोही कहलाकर देश की सेवा करके भी देशवासियों की ठोकर खाकर खन्ना शहीद हो जाता है। इस उपन्यास में लेखक ने जन-युद्ध और कांग्रेस सोशलिस्टों की नीति लेकर लम्बे चौड़े विवाद को प्रस्तुत किया है और कांग्रेस के आंदोलन और हड़तालों का भी चित्रण किया है। शर्मा जी के अनुसार "लेखक की देश-द्रोही मूलतः एक रोमांटिक कृति है जिसमें खन्ना के रोमांसों की प्रधानता रही है जिस वर्ग के लिए खन्ना काम करता है उस वर्ग का इसमें उतना और वैसा चरित्र नहीं है जितना खन्ना के हृदय में प्रेम-सम्बन्धी उथल-पुथल का।"[2] उन्होंने

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प — पृ.47
2. वही, पृ.49

इस उपन्यास को राजनीतिक उपन्यास न मानकर श्रीकांत की कोटि का एक सामाजिक उपन्यास घोषित किया है। जिसमें प्रेम कहानी प्रधान रही है लेकिन यशपाल का ध्येय यहाँ राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रकाश डालना रहा है। वे इसे एक ऐसे निकम्में आदमी की प्रेम कहानी कहते हैं जिसे नालायक भी कहे तो बेजा न होगा। जो श्रीकांत की तरह स्त्रियों के साथ आकर्षण-प्रत्याकर्षण का खेल खेलता है। औरत के नजदीक आने पर वह भाग खड़ा होता है दूर होने पर प्रेम करता है। शर्मा जी के अनुसार कारण यह है कि वह आध्यात्मिक प्रेम में विश्वास करता है -- शायद बिना जाने ही। अर्थात् लेखक की प्रेम विषयक मान्यताओं को उद्घाटित कर उस पर पड़े आध्यात्मिक आवरण को हटाया और लेखक की रचना धर्मिता के संबंध में कहते हैं -- इसमें सन्देह नहीं है कि गृहस्थ-जीवन की समस्याओं के चित्रण में यशपाल को बहुत ही बड़ी सफलता मिली है, राजा राम के चरित्र को उनकी लेखनी का प्रमाण माना जा सकता है। वे यशपाल के साहित्य पर शरत् का प्रभाव होने पर भी यशपाल को हास्य और व्यंग्य के पैने अस्त्र प्रयोग में शरत से आगे बताते हैं।

डॉ. शर्मा ने "दादा कॉमरेड" को हरीश और शैली की प्रेम कहानी मानकर शैली द्वारा प्रेमी हृदय के प्रेम को दबाने और उसे भाव जगत् तक सीमित नारी जीवन के स्वतंत्र विकास में संतान और वंश-रक्षा से तृप्ति प्राप्त करती है। उन्होंने लेखक की हरीश के प्रति सहानुभूति होने के कारण शैली के साथ न्याय न करने की बात कही है। हरीश को तृप्ति नारी को नंगे देखने से होती है और लेखक द्वारा सृजन-वृत्ति को एक

मानवीय-वृत्ति के रूप में उपयोग करने के लिए हरीश को अर्द्ध विक्षिप्त दिखाना अनुचित बताया है। क्योंकि डॉ. शर्मा के अनुसार "हरीश पूरे होश में रहकर शैल को नंगा देखता है और उसे पूर्ण तृप्ति होती है विकृत मनोदशाओं का अधिक परिचय देता है स्वस्थ सृजन-वृत्ति का कम।"[1]

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा यशपाल द्वारा व्यक्त हरीश के चरित्र की आलोचनात्मक समीक्षा करते हुए कहते हैं कि "शैल के नग्न सौंदर्य में हरीश को जो आकर्षण है वह उस अवस्था का द्योतक है जिसे हम लड़कपन *(adolescence)* कहते हैं चूंकि नारी के प्रति एक विस्मय, एक जिज्ञासा का भाव ही उसमें प्रधान है सृजनव-वृत्ति का नहीं।" उनके अनुसार यह *adolescence* हरीश के राजनीतिक विचारों में भी है पहले वह क्रांतिकारी है पीछे वह समाजवादी हो जाता है। अपना पहला मार्ग छोड़ने के लिए उसने अनेक तर्क दिये परन्तु उन सबका अन्त मन्सूरी में शैल का नग्न-सौन्दर्य देखने में माना गया है। हरीश द्वारा अपनी इच्छाओं को उचित सिद्ध करने के लिए विचारों का काल्पनिक तर्क देने की बात कही गई है। उन्होंने उपन्यास का सबसे कमजोर पहलू मजदूरों की हड़ताल वाले हिस्से को माना है। शैल की प्रेम कहानी जैसी आत्मचरित सजीवता का यहाँ अभाव देखा है और शेष कहानी को समाजवादी आदर्श की पूर्ति के लिए कल्पना से गढ़ी हुई बताया है। इस उपन्यास में क्रांतिकारी "दादा कॉमरेड" के जहाँ-तहाँ ही दर्शन होते हैं। किंतु लेखक यशपाल द्वारा हरीश की जिज्ञासा में उस भावना की छाया देखना जो कि "वीनस की संसार प्रसिद्ध निरावरण मूर्ति बनाई गई है" की आलोचना करते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं -- कथा से

---

1. विराम चिह्न -- पृ. 110

स्पष्ट है शैली तृप्ति की चाह में अपने प्रेमी के मन में विभिन्न तरीकों से सृजन-वृत्ति को जगाना चाहती है। उनके अनुसार "हाडमाँस की वीनस और पत्थर की वीनस में यही अन्तर है। पत्थर की वीनस बुत बनी खड़ी रहती है, हाड-माँस की वीनस गोद में लुढ़कती और मित्र के सीने पर सिर रखती है।"[1] अर्थात् शर्मा जी ने यशपाल के आत्म-दमन के और निरावरण के तर्क का काट्य प्रस्तुत किया है और उनका कहना है कि -- "पार्टी कॉमरेड" या "देश-द्रोही" से उनके नायकों का रोमांस निकाल देने पर उन उपन्यासों का ढाँचा चरमरा कर बैठ जाएगा।

इस प्रकार यशपाल के उपन्यासों की समीक्षा कर जहाँ एक ओर झूठा-सच में चित्रित विशद सामाजिक चित्रण, कथावस्तु की भौगोलिकता, समयावधि, सीमाओं, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारा है वहीं श्रमिक जीवन का अभाव, मध्यवर्गीय परिवार तक सीमित परिधि, भारतीय जनता की निष्क्रियता की अतिशयोक्ति-पूर्ण अभिव्यक्ति, पंजाबी भाषा को पृथक न मानने की समझ आदि कमजोरियों के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय सामंतवाद के वास्तविक रूप और उनके गठबंधन की सही समझ और पहचान का अभाव देखा है। उन्होंने तर्क और बुद्धि की दृष्टि से जहाँ एक ओर यशपाल को समाजवादी माना है वहीं दूसरी ओर उनके कथा-साहित्य को सनातन त्रिकोण से उभर न पाने का मत भी व्यक्त किया है तथा देश-द्रोही उपन्यास के पात्रों के चरित्र, कथानक घटनाओं और उसकी सामाजिकता एवं प्रेम-रोमांस से परिपूर्ण कहानी

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य -- पृ. 315

का सही विश्लेषण कर अनेक सन्दर्भों में शरत की रचना-कौशलता और विशेषताओं से तुलना की है। यशपाल द्वारा अपने उपन्यासों में मुख्य रूप से प्रेम-कहानियों और सेक्स-सज्जा को महत्व देने, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने, काल्पनिकता को यथार्थ का रंग देने, आध्यात्मिक प्रेम पर यथार्थ या रोमांसकारी प्रेम का आवरण डालकर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को उजागर किया।

4.9 अमृतलाल नागर : मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष और चेतना

डॉ. रामविलास शर्मा अमृतलाल नागर के औपन्यासिक समीक्षा के क्रम में उनके उपन्यास "अमृत और विष" का विश्लेषण करते हुए उसमें उपन्यास और पाठक के मध्य उपन्यास का पात्र अरविन्द शंकर को दीवार माना है। नागर जी ने अपने इस उपन्यास में जिस उपन्यासकार अरविन्द शंकर को पात्र बनाया है उसके पात्रों का अमृत और विष के पात्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है और न ही अरविन्द शंकर के परिवार के अन्य लोग "अमृत और विष" के पात्र हैं। इस उपन्यास में अरविन्द शंकर का कथोपकथन को लेखक ने पृथक डायरी के पन्ने के रूप में प्रस्तुत किया। इसी कारण अरविन्द शंकर के जीवन में आने वाले पात्रों का "अमृत और विष" के पात्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि उनका सम्बन्ध अरविन्द शंकर के मन तक ही सीमित देखा जा सकता है। वे अरविन्द शंकर के उपन्यास के पात्रों से भी नहीं टकराते परन्तु अरविन्द शंकर की जीवन-कथा के सूत्र उपन्यास के कथा सूत्रों से भिन्न नहीं है। शर्मा जी कथा-रस के भंग

होने का कारण अरविन्द शंकर और उनके पात्रों के वातावरण की भिन्नता, उनकी बोली सोचने समझने के ढंग, संवेदना के स्तर आदि में अन्तर को मानते हैं। उन्होंने अरविन्द शंकर के कथा-पात्रों को "बूँद और समुद्र" के पात्रों के समान बोलते बतियाते हुए देखा है। नागर जी के पात्र अपने सर्जक की तुलना में अच्छा गद्य बोलते हुए देख गये हैं। अरविन्द शंकर के रचनाकार को नागर से भिन्न माना है। अरविन्द शंकर के स्वगत कथन में आत्मान्वेषण, पारिवारिक कहानी की व्याप्ति और निरसता दिखाई देती है। शर्मा जी ने अरविन्द शंकर के स्वगत कथन को "अमृत और विष" उपन्यास का सबसे कमजोर पहलू बताया है। और अरविन्द शंकर के वस्तुगत कथन को ही वास्तविक अमृत और विष माना। इस उपन्यास में रूढ़ियों से सड़ता हुआ, लड़ता हुआ, वीर-रस के आलम्बनों के बिना साधारणजनों को, असंगतियों से भरा, दल-दल से ऊपर सर उठाता हुआ अपराजेय भारत बोलता है। शर्मा जी के अनुसार "अरविन्द शंकर सिद्ध पुरुष होने के कारण इस भारत को देख ही नहीं पाता बल्कि वह अपने घोर आत्मगत क्षणों में भी उसे नहीं भूलता है तथा वह उसके लिए जीता-मरता है किन्तु वह लच्छू रमेश छैल के भारत से अलग अपने परिवार के भीतर सिमट कर अपने अहं के अन्दर अपनी निराशाओं, आकांक्षाओं की सीमा के अन्दर पस्त और बेदम दिखाई देता है। परन्तु वास्तव में वह उतना पस्त और बेबस नहीं है।"[1]

अरविन्द शंकर अपनी कहानी अच्छी तरह न कह पाने और अपने पूर्वजों के इतिहास को रोचक न बना सकने में विवश देखा गया वह

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 57

अपने परिवार और अहं का कथा वाचक नहीं बल्कि भारतीय समाज के सन् 60 और 62 के स्वतंत्र भारत का कथा-वाचक रहा है। उन्होंने अरविन्द शंकर के कथन में हिन्दी साहित्यकारों की अथक साधना और विश्रामहीन जीवन को देखा है। अरविन्द शंकर के पिता और उपन्यास के अंत में उमेश शंकर की आत्महत्या के बीच बड़े जीवट की जिन्दगी अरविन्द शंकर की रही है। वे अपने पुत्र और पत्नी की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाते हैं क्योंकि सच्चाई के मार्ग पर चलने की उनकी मजबूरी रही है किंतु अपने पौत्र में कृष्ण रूप देखकर वह उस पर सौ जान से निछावर होते हैं। अरविन्द शंकर के चरित्र का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी ने उन्हें बेहद हिन्दी प्रेमी और भाषा के प्रश्न को शतरंज के मोहरे की तरह उपयोगी करने वालों से क्षुब्ध बताया और उसे हर जगह शासकों और शासन-तंत्र समर्थकों से टकराता हुआ देखा है।

वे अरविन्द शंकर की औपन्यासिक क्षमता का विश्लेषण करते हुए कहते हैं -- "अपने राजनीतिक दृष्टिकोण के कारण अरविन्द शंकर ऐसे पात्र और परिस्थितियाँ चुनते हैं जो कथा द्वारा उसकी सामाजिक विचारधारा को मूर्त रूप दे सके उसके पात्र भटकते हुए उसी परिणाम पर पहुँचते हैं जहाँ वह पहले ही पहुँच चुके हैं।" उन्होंने अरविन्द शंकर की प्रेरणा का मूल स्त्रोत उनकी भावात्मकता को और भावात्मक प्रतिक्रिया का आलम्बन पुराने शहरी मध्यवर्गीय परिवारों को माना है। वे "अमृत और विष" को इस युग में वीभत्स का श्रेष्ठ लेखन मानते हुए उसमें नागर जी द्वारा भारतीय जीवन की गहराई का अतुलनीय रूप उजागर

करने की कौशलता की प्रशंसा करते हैं। इस उपन्यास में लखनऊ की बाढ़ के विस्तृत वर्णन हेतु लेखक द्वारा अत्यन्त सटीक यथार्थवादी चित्रण और अद्भुत प्रतीक व्यंजना का प्रयोग किया गया। शर्मा जी के अनुसार अरविंद शंकर ज्यों-ज्यों अपने उपन्यास को लेकर आगे बढ़ते हैं त्यों-त्यों उनके स्वगत कथन की लम्बाई चौड़ाई कम होती जाती है जितना ही वह अपने पात्रों में रमते हैं उतना ही अपने को भूलते जाते हैं बड़े कलाकार की तरह अरविन्द शंकर अपने पात्र बाहर की जिन्दगी से चुनते ही नहीं, वरन् उनमें कुछ अपनी चरित्रगत विशेषताएँ भी ढाल देते हैं।[1]

अरविन्द शंकर के कलाकार रूप का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी ने नागर जी के पात्रों में लेखक की विशेषताओं को खोजा है और "बूँद और समुद्र" में सज्जन, महिपाल, वनकन्या आदि को उनका प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र माना है। "अमृत और विष" में नागर जी द्वारा अपना अलग से प्रतिनिधि रूप में एक उपन्यासकार को प्रस्तुत करने के प्रयोग को नवीनतम बताया और यह पात्र उपन्यासकार होने के कारण नागर जी के प्रवक्ता के रूप में सज्जन एण्ड कम्पनी से अधिक समर्थ और सजीव देखा गया क्योंकि नागर जी बहुत निसंग और तटस्थ होकर अपने पात्रों को देखते हैं। नागर जी के युवा पात्र मानसिक संघर्ष से परिपूर्ण और वास्तविक जीवन से सम्बद्ध रहे हैं।

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 61

डॉ. शर्मा इस उपन्यास की सफलता इस बात में स्वीकार करते हैं कि इसमें आदर्श क्रांतिकारी पात्र नहीं है बल्कि नागर जी के पात्र हैमलेट, ओथेलो और लियर के क्लौडियस, इयागो गोनोरिल रीगन की तरह कलुष अपने भीतर संजोए हुए है। रमेश के आदर्शवाद की परिणति विधवा विवाह में नहीं अपितु उसके सद्यः विवाहित जीवन में बानो के आने से उत्पन्न द्वन्द्व को मानकर इसे नागर जी की अनासक्त कथाकार की दृष्टि का प्रमाण स्वीकार किया। लच्छु के कैरियर-मोह को उसके पतन का एक प्रमुख कारण मानकर गरीब परिवार में जन्म और गरीबों के प्रति आत्मीयता को उसके मध्यवर्गीय चरित्र की विशेषताएँ बताया। शर्मा जी लच्छू की गरीबी को उभारकर रूप्पन महाजन और उसके कारिन्दों के द्वारा मोर और सताये गये शोषित समाज का ही एक अंग मानते हैं। जिसके मन का निचला हिस्सा देश और समाज के पिछड़ेपन से घुटता और तड़पता है वह उस घुटन-तपन को मन पर हावी होने नहीं देता बल्कि उसे मन के निचले स्तर पर ही रखता है परन्तु रमेश को सच्चा समाजवादी बताया गया। किन्तु लच्छू के व्यक्तित्व को काजल की कोठरी में गढा हुआ मानकर उसकी तिकड़मबाजी की प्रवृत्ति, अवसरवादी व्यक्तित्व को उसके पतन का कारण स्वीकार किया। और लच्छू जैसे प्रतिभाशाली युवाओं के उचित विकास की संभावनाएँ समाप्त करने के लिए पूँजीवादी समाज व्यवस्था को दोषी बताया और उसे उन मध्यवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि माना जो गरीबी की मार सहते-सहते धैर्य खोकर फासिस्टवाद का समर्थन करने लगते। लच्छू कुंठित नौजवानों का ऐसा प्रतिनिधि है जिसमें क्रांतिकारी और फासिस्ट दोनों बनने की क्षमता देखी गई। इसी कारण शर्मा जी उसे हिन्दी उपन्यासों का अतुलनीय टिपिकल पात्र मानते हैं। और उसकी

वेदना को छैलू की पीड़ा से अधिक मर्म बेधी मान उसमें अपने चरित्र को समझने और फासिस्टवाद तथा समाजवाद के अन्तर को समझने की क्षमता देखी है। तथा उसकी पीड़ा को व्यक्तिगत होने पर भी एक बड़े युवा-समुदाय की पीड़ा माना है।

शर्मा जी ने पुत्ती गुरु के रोचक व्यक्तित्व को ताई से जोड़, "बूँद और समुद्र" में ताई का तथा "अमृत और विष" में पुत्तीगुरु का स्थान और महत्व समान माना। उनके अनुसार "अमृत और विष" उपन्यास नयी पीढ़ी को लेकर लिखा गया। वे इसके मुख्य पात्र रमेश, लच्छू, रानी हर्रो छैलू, शोभाराम, आत्माराम आदि का पार्श्वभूमि में रहना ही उचित बताते हैं। इस उपन्यास में बाह्य संघर्ष जितना महत्वपूर्ण है उतना ही आन्तरिक संघर्ष भी। यह अन्तर्द्वन्द्व मूलतः नयी पीढ़ी के मन में रहा है। इस उपन्यास की एक विशेषता स्त्रियों का संघर्ष है किंतु कथा का नायक कोई नहीं है और न ही कथानायक-नायिका की रही है न आदर्श क्रांतिकारियों की। यह पूँजीवादी समाज में पले हुए नये जीवन की तड़प लिए भारत के युवाओं के बाह्य और आन्तरिक संघर्ष की गाथा है। इसमें कथा-प्रवाह और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही युवकों के चरित्र के उत्थान-पतन को दर्शाया गया। इस उपन्यास में पात्रों की सजीवता और दो पीढ़ियों का संघर्ष अपने समस्त वातावरण के साथ सजीव रूप में देखा गया। उन्होंने इन पात्रों की नियति आज के भारत की नियति और गति स्वाधीन भारत के वस्तु समाज की गति माना है।

शर्मा जी ने अमृतलाल नागर जी के "अमृत और विष" उपन्यास की समस्त विशेषताओं का विश्लेषण करने के साथ-साथ "ये कोठे

वालियाँ" में नागर की बेरोजगारी की अवस्था में बिताये हुए बम्बई के जीवन और उनकी दयनीय अवस्था का चित्रण कर उनके इस संकटग्रस्त जीवन में सहायता देने वाली स्त्री "लल्लू की माँ" के ममत्व का प्रमाण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार "लल्लू की माँ" एक ऐसी स्त्री है जो अपनी भूख मिटाने के लिए नगर के फ्लैट के एक हिस्से में वेश्या बनती है। उसकी इस अवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए शर्मा जी कहते हैं -- पूँजीवादी कारखाने में भुखमरी मशीन की सहायता से वेश्या नामक वस्तु हर वक्त ढाली जाती है। क्योंकि पूँजीवाद का अर्थ एक ओर पूँजी को बटोरना और दूसरी ओर भुखमरी का फैलाना रहा है। इस गतिशील प्रक्रिया से निरन्तर वेश्यायें उत्पन्न होती हैं जैसे किसी समय समुद्र मन्थन से अप्सराएँ निकली थी।[1]

डॉ. शर्मा को "लल्लू की माँ" और "बद्रेमुनीर" की कहानियाँ पढ़कर "देवी" और "चतुर चमार" के लेखक की तथा "क्या से क्या" के लेखक पढ़ीस और जीवन-मार्ग के लेखक मकारेको की याद आती है। उन्हें दान्ते का नरक बद्रे मुनीर की यातना के आगे कल्पना मात्र लगता है। बद्रे मुनीर कहानी में सत्तर रूपये की कर्जदार स्त्री कर्ज से मुक्ति चाहती है उसे अपने रोग मुक्त होने की लालसा नहीं है। बद्रे मुनीर की मृत्यु का दृश्य वास्तव में वेश्या सम्बन्धी सौदगरी का स्वरूप माना गया। डॉ. शर्मा के अनुसार नागर जी का ऐसी पुस्तक लिखना ही "इन्सानियत के जिन्दा" रहने का एक बहुत बड़ा सबूत है। यह कहानियों की पुस्तक नहीं है यद्यपि उसमें कहानियाँ भी हैं, उसमें बहुत-से अनुभवों और अध्ययन का निचोड़ मिलता

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 137

है। नागर जी द्वारा वेश्या-जीवन से सम्बद्ध कहानियों के यथार्थ चित्रण और वीभत्स रूप को प्रस्तुत करने के साहस को उत्कृष्ट उदाहरण माना है।

"गदर के फूल" के सम्बन्ध में शर्मा जी का कहना है कि अठारह सौ सत्तावन की राज्य-क्रांति के शताब्दि-महोत्सव के अवसर पर कथाकार नागर अवध में अपने पुरखों की स्मृति के फूल बीनने निकले और यह पुस्तक उनकी उस तीर्थ-यात्रा का परिणाम रही है।[1] वे इस पुस्तक की विशेषता यह मानते हैं कि "यह जितनी सन् सत्तावन के वीरों और वीरांगनाओं पर है उतनी ही स्वयं श्री अमृतलाल नागर पर भी।" उन्होंने इस पुस्तक में लेखक को गुप्तकाल की ईंट टटोलने वाला पुरातत्वज्ञ, अवध की भाषा का सर्वेक्षण करने वाला कुशल भाषा विज्ञानी, अनुसंधानकर्ता के रूप में तथा दार्शनिक और विचारक के रूप अतिरिक्त इतिहास लेखन से असंतुष्ट दार्शनिक परिणाम निकालने वाले लेखक के रूप में देखा है। इस कृति में नागर जी के दार्शनिक चिंतन की बहुलता पायी गई है। इसे एक इतिहास लेखक की रचना नहीं बल्कि एक कथाकार और कुशल चित्रकार की कृति मानकर लेखक द्वारा वातावरण की सूक्ष्मता से चित्रण करने तथा हास्य और व्यंग्य की सामग्री प्राचीन इतिहास और वर्तमान समाज में ढूँढ़ने की क्रिया को उजागर किया और नागर जी द्वारा ग्रामीण बुर्जुगों की खोज, उनकी बातें उन्हीं की बोली और शैली में वातावरण की सहजता सहित अभिव्यक्त करने की बात कही। डॉ. शर्मा का कहना है कि "इस पुस्तक में शेख अब्दुल अली किदवाई की बातें सुनने से जनता का इतिहास मौखिक ढंग से सुरक्षित होने का आभास मिलता है।" इसमें जनता की वीरता और

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 140

वीर-पूजा की अनेक रोमांचकारी घटनाओं का वर्णन मिलता है। इसमें अनेक प्रसंग सन् सत्तावन से चली आती हुई हिन्दू-मुस्लिम एकता की परम्परा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। लेखक ने सन् सत्तावन के इतिहास-लेखन के क्रम में अंग्रेज़ों की बर्बरता और आतंक का भी उल्लेख किया है। नागर जी द्वारा जनता की भावना की अभिव्यक्ति हेतु उसकी वीरता के वर्णन के साथ ही लोकगीत और कविताएँ उद्धृत करने की भी बात कही है। उन्होंने नागर जी द्वारा व्यक्त जन-भाषा में अनेक विचारों की अभिव्यक्ति को लोक-गद्य का रूप माना है। शर्मा जी के अनुसार "गदर के फूल" जनता के जीवित इतिहास, चुटकलों, लतीफों, लोकगीतों, रोमांचकारी घटनाओं, अनोखे रेखाचित्रों का पिटारा है जिसमें नागर जी की कलम दो युगों की अनुपम झाँकी प्रस्तुत करती है।

उन्होंने "बूँद और समुद्र" उपन्यास को आकार और विषय-वस्तु की दृष्टि से महान् माना है क्योंकि इसमें नागर जी ने तस्लीम लखनवी के नाम से लखनऊ के बिगड़े नवाबों, उनके अर्ध-सर्वहारा मुसाहबों के चित्र खींचकर प्रसिद्धि प्राप्त की और आगरा के व्यापारियों की बोली को आधार बना कर "सेठ बाँकेमल" का चित्रण करके एक नष्ट होती हुई पीढ़ी और उसकी संस्कृति को अपने साहित्य में अमर कर दिया। उनके द्वारा लिखी गई अनेक कहानियों में से "मरघट के कुत्ते" और गोरख धन्धा का विशेष उल्लेखनीय माना है। वे नागर जी के साहित्य को जीवन के सबसे निचले स्तर तक पैठने और अप्रत्याशित वीभत्सता का उद्घाटन करने में अद्वितीय मानते हैं। और सामाजिक जीवन से आलम्बन तथा पौराणिक गाथाओं और भटियारिनों के किस्से कहानियों का आधार

लेकर हास्य की रचना करने वाले लेखक बताया। उन्होंने नागर जी की सामाजिकसमस्याओं को उभारने वाली रचनाओं में "आदमी नहीं ! नहीं !!" "पाँचवा दस्ता", "गोलक्लकर", "ढोलवलकर", "पोलवलकर" को सोद्‌देश्य माना। वे नागर जी के वैचारिक पक्ष का विश्लेषण करते हुए उन्हें गांधीवादी बताते हैं। उनके अनुसार नागर जी की कला और व्यक्तित्व के सभी उपकरण बूँद और समुद्र में एक साथ उभरते हैं। इस उपन्यास को पुरानी समाज-व्यवस्था के बनते-बिगड़ते और बदलते हुए भारतीय परिवार का महाकाव्य माना। इस उपन्यास में पायी जाने वाली अनेक देवियों का चरित्र, बोली बानी और शैली भिन्न-भिन्न होने तथा पुरुषों का वर्ग अपनी विशिष्ट मर्दानी संस्कृति के साथ चित्रित मिलता है। उन्होंने इस उपन्यास में रेखाचित्रों की सजीवता, चित्रकला की मुग्धता, वस्तुओं के चयन में लेखक का उद्‌देश्य और रुचि का परिचय मिलने की बात कही है। वे पात्रों की संख्या, उनकी विविधता, अनुकरण अथवा प्रतिच्छवि की सजीवता के विचार से नागरजी की तुलना बाल्जाक की रचनाओं से करते हैं। उन्होंने नागरजी द्वारा गली कूचों की जिन्दगी का रंग-बिरंगा चित्र, शैली, पात्र व्याकरणिक प्रयोग की विविधता प्रस्तुत करने तथा उनके उपन्यास में लिंग्विस्टिक सर्वे करने, शैलियों में समाज और भाषाओं का इतिहास बोलने आदि प्रसंगों को महत्वपूर्ण माना है। उनके हास्य-रस का दृढ आधार यथार्थ-जीवन, हास्य की सृष्टि करने वाला मनोरंजक संवाद, चित्रण की सजीवता, सांस्कृतिक गीतों की अभिव्यक्ति आदि विशेषताओं को प्रस्तुत किया।

डॉ. शर्मा इस उपन्यास की धुरी ताई को मानते हुए लखनऊ के एक रईस की छोड़ी हुई इस पत्नी में जीवन की परिस्थितियों

द्वारा विचित्र ग्रंथियाँ उत्पन्न कर देने, जादू-टोने में विश्वास करने आदि प्रवृत्तियों को उभारा है। इस ताई में भारतीय समाज का सारा अंधविश्वास और मनुष्य से घृणा करने वालों की सारी हिंसा सिमटी हुई दिखाई देती है। किंतु शर्मा जी हिंसा और अंध-विश्वास की पुतली ताई में प्रेम के बीज देखते हैं जो मानवेतर जीव के संस्पर्श से सहसा अंकुरित हो उठते हैं। उनके अनुसार इस बीज को मिटाने में रईस पति और ताई के मुहल्लेवालों ने कुछ उठा न रखा था। ताई को बिल्ले के बच्चों के बाद सज्जन से स्नेह रहा है। इस उपन्यास में अहिंसावादी समाज की रूढ़िवादी बर्बरता का चित्रण, फासिस्ट आक्रमणों का सजीव चित्रण देखा है। और ताई द्वारा अपनी हिंसा भूलकर तारा को प्रजनन करने की क्रिया को उपन्यास का सबसे मार्मिक चित्र बताया है। पुरुष-पात्रों में सज्जन चित्रकार और महिपाल उपन्यासकार को प्रमुख माना है। शर्मा जी के अनुसार बुद्धिजीवियों और मध्यवर्ग के शिक्षितजनों की अधिकांश समस्याएँ दोनों को परेशान करती हैं। दोनों में समानता, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की समस्याओं में रुचि तथा घरेलू जीवन की अनियमितता मिलती है।

शर्मा जी ने महिपाल के स्वभाव में उग्रता की अधिकता, धीरता, दृढ़ इच्छा-शक्ति, सहनशीलता आदि गुणों का अभाव और अराजकतावादी संस्कारों की व्याप्ति देखी है। उसकी कहानी उस बुद्धिजीवी की कहानी मानी है जो समाज-व्यवस्था से असंतुष्ट होने पर भी उसे बदलने के लिए जन-शक्ति को संगठित करने का धैर्य और दृढ़ मनोबल नहीं रखता है। किंतु चित्रकार सज्जन रूढ़ि-विरोधी होने पर

भी रहस्यवादी माना गया। दोनों में महिपाल को अधिक सजीव मानते हुए उसके मानसिक द्वन्द्व को ज्यादा तीखा और नाटकीय बताया क्योंकि वह अपनी कमजोरियों के बावजूद पाठक की करुणा प्राप्त करता है परन्तु सज्जन की कठिनाईयाँ उसकी अपनी गढ़ी हुई होने के साथ-साथ वह महिपाल की तरह परिस्थितियों से नहीं जूझता है। वह चित्रकार से अधिक मुहल्ले के जीवन का अध्ययन करने वाला समाज-शास्त्री माना गया और उसके व्यक्तित्व को उपन्यासकार महिपाल की ही प्रतिकृति बताया है।

पुरुष पात्रों में ताई से मिलते-जुलते पात्र कर्नल और रामजी साधु को माना। नगीनचंद जैन उर्फ कर्नल मानव-प्रेम के कारण रूढ़िवादियों का कोपभाजन बनता है परन्तु चतुराई और दृढ़ता में वह अद्वितीय माना गया। वह कलाकार की ईमानदारी के लिए संघर्ष करता है। किंतु रामजी बाबा उससे भी अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व के मालिक रहे। जो पुराने संतों की परम्परा के साकार जीवित रूप माने गये। जिसे उपन्यासकार ने अन्य पात्रों की ही तरह यथार्थ जगत से लिया है। वह सेवा को कर्तव्य मानकर समाज के बहिष्कृत पागलों की सेवा करते हैं। नारी पात्रों में वनकन्या को वातावरण से तिलमिलाकर सभी परिस्थितियों में धैर्य से काम लेते हुए रूढ़िवाद से टक्कर लेती हुई देखी गयी है। सज्जन भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास को देखता है उसे अपने चारों ओर आस्थावान पात्र होते हुए भी देश आत्म-हत्या करता हुआ लगता है। इसका कारण शर्मा जी ने लोक-कल्याण के लिए निष्ठावान् पात्रों में सामूहिक प्रयत्न का अभाव मानते हैं। इस उपन्यास में आस्थावान पात्र

सामूहिक प्रयत्न से दूर होने के कारण उनकी आस्था भी अधूरी मानी गई है। डॉ. शर्मा के अनुसार उपन्यास की भूमिका में लेखक ने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण-दोष भरा चित्र खींचने की बात कहने का उल्लेख मिलता है। उपन्यास के मुख्य पात्र सज्जन, महिपाल, वन-कन्या, ताई, कर्नल और शील आदि को मानते हुए वास्तव में बिगड़े हुए रईस या रईसों को उपन्यास के पात्र बताया। वे सज्जन द्वारा व्यक्त राजनीतिक पार्टियों के रूप की अभिव्यक्ति को क्षीण मनोबल वाले बिगड़े हुए रईस या सम्पत्ति-दान से भारत का उद्धार करने वाले कलाकार का वर्गगत दंभ माना है। उनके अनुसार सज्जन ने उपन्यास में जरूरत से ज्यादा जगह घेरी है इसलिए उपन्यास का उत्तरार्ध अपेक्षाकृत निर्बल हो गया। इस उपन्यास के अंत को काफी कमजोर मानते हुए कथावस्तु को कमजोर करने वाला एक दोष आदिम समाज का हवाला देने का रोग माना। और उपन्यास के आरंभ में आने वाले पात्रों का जीवन चरित्र बाद में देने से कथा-प्रवाह में ठहराव आने की बात स्वीकार की।

उक्त दोषों के होने पर भी शर्मा जी इस उपन्यास को एक सुन्दर उपन्यास मानते हैं जिसमें लेखक द्वारा भारतीय समाज के आत्म-संतोष के आवरण को उतारकर वीभत्सता प्रकट की गई है तथा नारी के साथ होने वाले पाशविक अत्याचारों के हृदय विदारक दृश्य प्रस्तुत किये गये। इस उपन्यास को भयानक, अद्भुत और वीभत्स के चित्रण में अद्वितीय और चित्रण और संवादों में हास्य-रस का उद्रेक देखा गया है।

डॉ. शर्मा के अनुसार नागर जी के साहित्य में विभिन्न स्वभाव के पात्रों, उनके स्वभावों की टकराहट, व्यक्ति की प्रकृति में उत्थान-पतन और नए मोड़, संस्कृति के विभिन्न स्तर, समाजवादी चेतना, पुराने संतों का सेवा-भाव, कलाकार का अहंकार, जादू-टोने की दुनिया, सहज मानव-प्रेम और भाईचारा आदि का चित्रण मिलता है। नागर जी ने अपनी विभिन्न शैलियों में भाव-विचार प्रकट करने वाले पात्रों का अक्षय भंडार प्रस्तुत किया है। उनकी कला में पात्रों का सामाजिक परिवेश सजीव बनाने की शक्ति मिलती है। "बूँद और समुद्र" में नागर जी ने अपना समस्त सामाजिक अनुभव संचित करके प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा नागर जी के उपन्यासों की समीक्षा कर उनके उपन्यास "अमृत और विष", "ये कोठेवालियाँ", "बूँद और समुद्र" का विशेष रूप से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। और उपन्यासों की कथावस्तु, पात्रों का चरित्र, उनकी विचारधारा, भाषा-शैली आदि का समाज-शास्त्रीय अध्ययन कर उनकी सांस्कृतिक प्रासंगिकता को उभारा और हिंदी साहित्यकारों में भारतीय-समाज के यथार्थ-चित्रण करने वालों में नागर का भी महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया। उन्होंने नागर जी के गद्य में लोक-शैली को विशेष महत्व देते हुए "अमृत और विष" को संवादों का पिटारा नहीं बल्कि समाज के रूढ़िवादियों, पुरातनपंथियों, भारतीय संस्कृति-दंभी ढोंगियों, पूँजीपतियों और उनके दलालों के विरुद्ध संघर्ष करने वाला उपन्यास बताया है। जो नयी पीढ़ी का मार्ग-दर्शक, पथ-प्रदर्शक तथा अधिकारों के लिए लड़ने में सहायक माना गया। इसमें संघर्ष अनेक समस्याओं को लेकर अनेक स्तरों पर आदि से अंत तक चलता हुआ दिखाई देता है।

उनके अनुसार "अमृत और विष" हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें युवकों की भावनाओं, आकांक्षाओं और संघर्ष का विस्तार से चित्रण किया गया। इसके अतिरिक्त पूँजीपतियों का आपसी संघर्ष, समाजवादी पूँजीवादी मजदूर-संघ लच्छू जैसे युवकों का अवसरवाद, पत्रकार के रूप में रमेश का संघर्ष आदि की अभिव्यक्ति इस उपन्यास में महत्वपूर्ण रही है। इस उपन्यास का अंत या संघर्ष का अंत किसी पक्ष की विजय से नहीं बल्कि रमेश की हत्या से होता है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने नागर द्वारा उपन्यास में उपन्यासकार पात्र के माध्यम से उपन्यास लेखन के प्रयोग को अद्भुत और महत्वपूर्ण माना तथा नागर जी के पात्रों के जीवन के सामाजिक संघर्ष, उनके अन्तर्द्वन्द्व तथा उनकी चारित्रिक विशेषताओं को प्रस्तुत कर उनकी समस्याओं, भाषा-शैली और व्यवहार को भारतीय संस्कृति और लोक-वातावरण के परिवेश में विश्लेषित किया है। उन्होंने नागर जी के पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण को आधार बनाकर औपन्यासिक परिवेश, विषय-वस्तु, कथानक, घटनाक्रम, संवादों, भाषा-शैली की कलात्मक विशेषताओं को उभारकर, संवादों, भाषा-शैली की कलात्मक विशेषताओं को उभारकर नागरजी के साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता और युग-सापेक्षता, यथार्थ-चित्रण की प्रवृत्ति समसामयिक समस्याओं के प्रति चेतनशीलता, जागरूकता, संघर्षशीलता, युगबोधता, अभिव्यक्ति की दृढ़ता, राजनीतिक अंतर्विरोध और वैचारिक संघर्ष के प्रति संवेदनशीलता, समाज के वर्गीय आधार और उसके संघर्ष के प्रति सचेतता को प्रस्तुत किया है। और साथ ही उनकी साहित्यिक खामियों को भी उजागर कर उनके साहित्यिक महत्व और योगदान को उद्घाटित किया है।

4.10 आंचलिक उपन्यास : भारतीयता और प्रगतिशीलता का समुच्चय

डॉ. रामविलास शर्मा प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास-साहित्य के क्षेत्र में विकसित आंचलिक-उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण कर उसकी परम्परागत विशेषताओं को प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने मुख्य रूप से प्रेमचन्द की परम्परा से आंचलिकता के सम्बन्ध को विश्लेषण का आधार बनाकर प्रेमचन्द के पात्रों में आंचलिकता से अधिक हिन्दुस्तानीपन अथवा हिन्दीपन देखा है न कि विभिन्न बोलियों के आधार पर किसानों का विभाजन या लोक-संस्कृति का चित्रण करने का प्रयास। वे प्रेमचन्द द्वारा विषय-वस्तु और चित्रण के साधारणीकरण द्वारा विशाल पाठक वर्ग उत्पन्न करने की प्रवृत्ति को उजागर कर उनमें आंचलिकता जैसे अटपटेपन का अभाव माना है।

उन्होंने वृन्दावन लाल वर्मा की रचनाओं में आंचलिकता का अधिक पुट पाया है जो उनके साहित्य में जहाँ-तहाँ बुन्देल खण्डी बोली के प्रयोग और लोक-संस्कृति की पृष्ठ-भूमि में व्यक्त हुआ है। साथ ही अमृतलाल नागर द्वारा "नवाबी मसनद" में लखनऊ के एक वर्ग विशेष की बोली और "सेठ बाँकेमल" में आगरे की बोली का उपयोग कर हास्य-रस की श्रेष्ठ-कृतियाँ प्रस्तुत करने का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार नागर जी के उपन्यासों में विशेषकर "बूँद और समुद्र" में सामंती समाज-व्यवस्था के विघटन का चित्र और विभिन्न अंचलों के प्रतिबिम्ब मिलते हैं। किन्तु नागार्जुन के "बलचनमा" में मिथिला के पिछड़े हुए सामंती समाज, उसकी घुटन, जनता का संघर्ष और उसकी नई-चेतना आदि का चित्रण देखा है।

और मूलतः "बलचनमा" की भाषा-शैली के आधार पर ही मैला आँचल की भाषा-शैली का निर्माण माना।

डॉ. शर्मा मैला आँचल के लेखक को अनेक संदर्भों में उसके पात्रों की तरह बोलते और व्याकरण सम्बन्धी भूले करते हुए देखा है और "मैला आँचल" में नई चीज़ लोक-संस्कृति के वर्णन को माना है। तथा लोकगीतों और लोक-नृत्यों के वर्णन के माध्यम से लेखक द्वारा एक अंचल विशेष की संस्कृति का चित्रण करने की बात कही। और कथानक अभिव्यक्ति की शैली को नवीन बताया।

शर्मा जी मैला आँचल उपन्यास की विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि "वह सिनेमा के चित्रों के समान बहुत-से शॉट इकट्ठे कर देता है ये शॉट एक-दूसरे से कितने विच्छिन्न हैं इसका ध्यान नहीं रखता बल्कि एक ही अध्याय में तीन चार बार कट लगाकर पाठक को चौंधिया देता है जिसके कारण चलचित्र के समान सम्बद्धता का अभाव मिलता है।[1] उन्होंने मैला आँचल की चित्रण पद्धति को यथार्थवाद से अधिक प्रकृतवाद के निकट माना तथा गतिशील यथार्थ में प्रगतिशील और मरणशील तत्वों व्यंग्यात्मक प्रसंगों, चित्रण की सहानुभूति, वातावरण और घटनाओं आदि के चित्रण और वर्णन की प्रासंगिकता तथा अभिव्यक्ति आदि कथा-शिल्प की विशेषताओं के आधार पर मैला आँचल के लेखक को प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ने वाले महत्वपूर्ण पक्ष को उभारते हुए उन्होंने पिछड़े हुए गाँवों के वर्ग-संघर्ष, वर्ग-शोषण और वर्ग-अत्याचारों के सजीव चित्रण को सबल बताया।

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 119 (पुराना संस्करण)

उनके अनुसार "मैला आँचल" की वंध्या धरती का नई सृष्टि के लिए तरसना और वहाँ के सड़े-गले समाज में आमूल परिवर्तन की बाट जोहना एक ही सिक्के के दो पहलू है। इस उपन्यास में व्यक्त मठ को दास-प्रथा के क्रूर और हिंसक रूप का रक्षक बताया और गोदान के किसानों की तरह "मैला आँचल" के किसानों को भी जमींदार और महाजन के अत्याचारों से पीड़ित देखा। डॉ॰ प्रशांत द्वारा इस अंचल में रोग के कारण की खोज गरीबी और जेहालत के कीटाणुओं के रूप में की गई है किंतु शर्मा जी डॉ॰ प्रशांत और कमला के सम्बन्ध और प्यार की अभिव्यक्ति पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं -- "यह भी साहस का काम है और उससे कई पृष्ठों में "गद्य काव्य की सृष्टि होती है किन्तु इससे गरीबी और जहालत के कीटाणुओं का नाश नहीं होता।"[1] उन्होंने गरीबी और जहालत के पुराने रक्षकों के अलावा जनता के नए शोषकों को उत्पन्न होते हुए देखा तथा प्रशांत की प्रेमिका कमला के तहसीलदार को किसानों को लड़वाने और उनकी जमीने हड़पने में उस्ताद बताया क्योंकि तहसीलदार संथालों से गाँव के किसानों को जातीय विद्वेष और कौमी नफरत के द्वारा लड़वाता है जिसका पूर्ण चित्रण लेखक ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

शर्मा जी मैला आँचल की जनता को तहसीलदार के विरुद्ध संघर्ष न करने की प्रवृत्ति को उभारते हुए लेखक की दृष्टि में जनता को तहसीलदार के दाँव-पेच, राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के स्वार्थ आदि को न समझने वाली मूर्ख होने की धारणा को प्रस्तुत करते हैं तथा किसी

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ॰ 98

सर्वोदयवादी या स्वयं तहसीलदार के प्रयत्न के बिना ही उसके हृदय परिवर्तन हो जाने तथा हर परिवार को पाँच बीघे जमीन दे देने की घटना को चमत्कारवादी प्रवृत्ति से परिपूर्ण माना। क्योंकि उनके अनुसार मैला आँचल उपन्यास का वास्तविक रूप कुछ इस प्रकार है -- दुष्ट जमींदार या मिल मालिक, उसकी खूबसूरत कोमल-हृदय वाली लड़की, जमींदार या पूँजीपति के विरोधी युवक नेता से उस खूबसूरत लड़की का प्रेम, पिता का क्रोध, फिर हृदय-परिवर्तन और दोनों का विवाह, पुरानी फिल्मों और उपन्यासों के कथानक से काफ़ी मिलती-जुलती यह तहसीलदार के हृदय-परिवर्तन की गाथा है।[1]

वे लेखक की जनता और राजनीतिक कार्यवाही में आस्था का अभाव देखते हुए उसके दृष्टिकोण में प्रगति चमत्कार से ही संभव होने तथा उसके द्वारा गाँधीवादी बालदेव के व्याख्यानों का मजाक उड़ाने के प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं। किंतु लोक-संस्कृति, अंचल की मिट्टी और उस अंचल की निरीह भोली-भाली जनता से लेखक को प्रेम होने तथा सामंती उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्षरत जनता का एक धुंधला चित्र प्रस्तुत करने के प्रसंगों को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने उपन्यास की विशेषताओं को उभारते हुए आंचलिकता के नाम पर लिखे गये सभी को सच नहीं माना बल्कि जनता के अंधविश्वासों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने और जमींदार के अत्याचारों को कम करके प्रस्तुत करने, राजनीतिक पार्टियों के दोषों को अतिरंजित और गुणों की उपेक्षा करने आदि खामियों को भी उद्घाटित किया। उनके अनुसार उपन्यास का पहला हिस्सा आज़ादी से पूर्व का है तब तक सोशलिस्ट कांग्रेस

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 99

में ही थे लेकिन उपन्यास में उनका चित्रण इस तरह किया गया है मानों काँग्रेस से उनका कोई सम्बन्ध न हो, देश के आज़ाद होने से पहले जमींदारी प्रथा की समाप्ति बताई गई। और उपन्यास का क्षेत्र मिथिला और बंगाल के बीच के प्रदेश का एक गाँव बताया गया।"[1] परन्तु उपन्यास में प्राप्त अनेक उदाहरणों के आधार पर उन्होंने पूर्णिया का यह भाग मिथिला से अधिक भोजपुरी अंचल के अन्तर्गत माना है।

डॉ. शर्मा मैला आँचल और परती परिकथा का अंचल एक ही बताते हैं। मैला आँचल का क्षेत्र नेपाल की तराई से गंगा जी के किनारे तक माना। उनके अनुसार इस मैदान का उपन्यास में बार-बार उल्लेख मिलने के बाद भी कथावस्तु में उसका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता है और परती परिकथा की परती का मैदान यही है। दोनों उपन्यासों की भाषा का विश्लेषण कर उन्होंने इस साल में इस अंचल के लोगों द्वारा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नति करने की बात स्वीकार की। उन्होंने "परती परिकथा" में "मैला आँचल" के गुण प्रायः लुप्त होते और दोषों का पूर्ण विकास होते देखा है। जैसे अनेक अंशों को पढ़ने से लोकगीतों पर लिखने का आभास मिलना, कथा-सूत्र का शीघ्र टूटना, भर्ती अंशों की अधिकता, लेखक द्वारा अपने इंद्रिय-बोध को बुद्धि की सहायता से व्यवस्थित न करना तथा तरह-तरह की आवाज़ों की हास्यास्पद नकल आदि। इसके अलावा शर्मा जी उदाहरणार्थ परती परिकथा उपन्यास में व्यक्त आवाज़ों को प्रस्तुत कर उन पंक्तियों को एकत्र करने से अति प्रयोगवादी कविता का उत्कृष्ट उदाहरण की अभिव्यक्ति की सफलता को स्वीकार किया है।

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 99

उनके अनुसार परती परिकथा में अनेक परिकथाएँ हैं जिनमें हीरो जित्तन की अंग्रेज माँ की कहानी काफ़ी सनसनी खेज रही है उन्होंने परती में पानी भरे गड्ढों की तरह इस निबन्ध-मूलक उपन्यास के विवरण-वीरान में "यूरोप और भारत के दो प्रेमी जीवों" की मर्म गाथा पाठक के लिए मृत संजीवनी का काम करने वाली माना है। और इस उपन्यास में अनेक अच्छे रेखाचित्रों का बिखराव देखा है। वे पाठक का उपन्यास के आरम्भ में ही लुत्तो से परिचित होने किन्तु जित्तन के इस प्रमुख विरोधी और कथा के खलनायक का रेखाचित्र साढ़े तीन सौ पृष्ठों के बाद आने के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार "लेखक ने उपन्यास के हीरो जित्तन को जमींदारी-प्रथा समाप्त होने और सेमल बनी पर सरकार का कब्जा होने पर भी डेढ़ हज़ार बीघे ज़मीन का मालिक बताया है। यह परिकथा इसी जमींदार की ज़मीन की है, जित्तन इस परती को वृक्षों से, खेती से हराभरा देखना चाहता है।"[1] वे मैला आंचल के प्रशांत की तरह उसका प्रेम सफल न होने तथा वास्तव में जित्तन का अपनी माँ के आँचल से बँधा होने की बात कहते हैं। तथा उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए कहते हैं -- फ्रायड़ चिकित्सालय के आउट डोर पेशेंट जित्तन को इलियट की कॉकटेल पार्टी की कुछ पंक्तियाँ स्मरण है और उसके बाग में एक नई जाति का नागफनी उग आया है जो रेयर कैक्टस वाली नागफनी रहा है। इलियट की तरह जित्तन भी अपना इलाजन कराके धरती के साथ समाज को भी वीरान समझ बैठा है।"[2]

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 128 (पुराना संस्करण)

2. वही, पृ. 129

शर्मा जी रेणु जैसे कलाकार, लोकगीतों और लोकनृत्यों का वर्णन करने वाले साहित्यकार में यांत्रिकता के कारण को उभारा और इरावती से जित्तन के जुड़ने के प्रयत्न की असफलता का कारण उसका पूरा कैक्टस होना बताया। राजनीति की भद्दी शक्ल दिखाने के लिए कुबेर सिंह की रचना करने, हास्य की सृष्टि करने में स्वयं थोड़ा हास्यास्पद हो जाने और जित्तन के माध्यम से उच्च वर्ग पर व्यंग्य करने के प्रसंगों को उभारा। उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य की आंचलिक परम्परा के विकास का विश्लेषण करते हुए मैला आँचल तक प्रेमचन्द की परम्परा के कुछ चिह्न बाकी रहने और परती परिकथा में आते-आते उनके मिट जाने की बात व्यक्त की है और अंत में आंचलिकता के नाम पर इलियट का शुद्ध प्रयोगवादी वेस्टलैण्ड रह जाने के प्रसंग को प्रस्तुत किया है।[1]

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने प्रेमचन्द की परम्परा के विकास के संदर्भ में आंचलिकता का विश्लेषण करते हुए हिन्दी कथा-साहित्य की आंचलिक धारा की कुछ विशेषताओं को प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर तथा नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में देखकर उन्हीं का विकसित रूप मैला आंचल में पाया है। अर्थात् रेणु से पूर्ववर्ती कथा-साहित्य की एक पृथक धारा का रूप आंचलिकता को मानते हुए रेणु के मैला आंचल को इस धारा का प्रतिनिधि उपन्यास स्वीकार किया है। और मैला आँचल का समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए लेखक द्वारा किये गये भाषिक प्रयोग, सांस्कृतिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति, प्रकृति-चित्रण, उसकी कथावस्तु, चरित्रों और संवादों के साथ-साथ भाषा-शैली, पिछड़े गाँवों के वर्ग-संघर्ष,

---

1. आस्था और सौन्दर्य -- पृ. 106

वर्ग-शोषण, जमींदारी अत्याचारों का सजीव चित्रण, जातीय-द्वेष और कौमी नफरत, हिंसा-वृत्ति, गरीबी और जहालत से पीड़ित समाज का चित्रण आदि विशेषताओं को उभारा और तहसीलदार के आकस्मिक हृदय परिवर्तन को दैवी चमत्कार मानने, राजनीतिक पार्टियों का गलत चित्रण करने, जनता में समझ का अभाव देख उसे मूर्ख मानने की प्रवृत्ति आदि दोषों को भी प्रस्तुत किया। साथ ही रेणु द्वारा परती परिकथा में किये गये भाषिक अन्वेषण की प्रवृत्ति को हास्यास्पद और प्रयोगवादी प्रवृत्तियों से परिपूर्ण बताया। और दोनों उपन्यासों के पात्रों के चरित्र, कथावस्तु, घटनाओं और प्रसंगों के अन्तर्गत भाषिक प्रयोगों का भी तुलनात्मक अध्ययन कर लेखक के बौद्धिक विकास के रूप में आये परिवर्तनों को उद्घाटित किया। रेणु और उनके पात्रों द्वारा लोकभाषा और लोकगीतों के प्रयोग में किये गये गलतियों को भी उभारा और मैला आँचल से परती परिकथा तक के विकास को दर्शाकर आँचलिक प्रवृत्ति का ह्रास और शुद्ध प्रयोगवादी प्रवृत्ति का विकास देखा। अर्थात् आँचलिकता का प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की परम्परा के संदर्भ में अध्ययन कर उसके विकास में रेणु के उपन्यास साहित्य के महत्व को उद्घाटित किया है।

4.11 हिन्दी कथा-साहित्य : सामाजिक विषमता और लोक-कल्याण

डॉ. रामविलास शर्मा अमृतलाल नागर, नागार्जुन, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव आदि के उपन्यासों को प्रेमचन्द के बाद विकसित व्यक्तिवाद और अतृप्ति की मरुभूमि पार करके हिन्दी कथा-साहित्य को

लोक-कल्याण के लिए नई दिशा आरम्भ करने वाले माना है। इन उपन्यासों के लेखन से प्रेमचन्द के बाद सुनीता से आरंभ चोली चीर उतारने और प्रगतिशीलता के नाम पर उच्छृंखलता प्रदर्शन की प्रवृत्ति की समाप्ति देखी है। उन्होंने इलाचन्द्र जोशी के "जहाज का पंछी" में एक शिक्षित युवक की कहानी बताई जिसमें सम्पत्तिशाली वर्गों की हृदयहीनता, शांति और व्यवस्था के रक्षकों की अन्याय-प्रियता का मार्मिक चित्रण मिलता है। और इस उपन्यास में सामाजिक जीवन के विभिन्न चित्र अपनी पूर्ण विषमता के साथ जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ प्रस्तुत हुए हैं। उनके अनुसार "जोशी जी ने मनुष्य की कठिनाइयों और मुसीबतों का मूल कारण अंतर्मन की गुत्थियों में न खोजकर समाज-व्यवस्था और प्रचलित मानव-सम्बन्धों में खोजा है जिनका आधार व्यक्तिगत अर्थ-संचय और शोषण रहा।" वे इस उपन्यास में पूँजीवादी स्वतंत्रता का अभिप्राय अर्थ-संचय और शोषण मानते हैं। और उन्होंने जहाज के पंछी को स्वाधीनता का प्रश्न उठाने वाला बताया. इस उपन्यास का नायक कलकत्ते में भटकता हुआ अमरीका की एक झलक हिन्दुस्तान में ही पा लेता है।

शर्मा जी इस उपन्यास में पात्रों के वार्तालाप में संगठित झुठाई, सामूहिक भ्रष्टाचार और अत्याचार पर जोर देते हैं और इसका सम्बन्ध पुलिस और न्यायालय द्वारा रक्षित व्यवस्था से मानते हैं। इस उपन्यास के अंत में नायक का विवाह एक धनी सुसंस्कृत महिला से हो जाने के प्रसंग को उभार कर प्रेमाश्रम के समान इस काल्पनिक समाधान को उपन्यास को कमजोर बनाने वाला बताया। और उस कमजोरी की जड़ नायक का सीमित अनुभव और उसकी चारित्रगत विशेषता को माना।

किंतु इसमें जनसंगठनों से दूर रहने वाले एक दुखी और मुसीबत के मारे नौजवान पर भी कितनी आसानी से कम्युनिस्ट होने का अभियोग लगा दिया जाता है इसका सहज चित्रण इस उपन्यास में देखा गया है। डॉ. शर्मा ने किसी को कम्युनिस्ट कहकर मुँह बन्द करने की कोशिश को संगठित झुठाई और सामूहिक अत्याचार की रक्षा करने की ही कोशिश माना है और साथ ही उनका कहना है कि कम्युनिज्म का भय दिखाकर जनता को आतंकित करने वालों में पूँजीपतियों के साथ-साथ पुरानी समाज-व्यवस्था, ऊँच-नीच का भेद-भाव, छुआछूत आदि के समर्थक रूढ़िवादी लोग भी रहे हैं जिनका प्रतीक "जहाज का पंछी" में एक बाबा है जिनका पुराण-पंथियों में बड़ा आदर है लेकिन जिन्हें नयी पीढ़ी तंग करती है। उन्होंने इस उपन्यास के नायक द्वारा समाज में अनाचार का मूल कारण सामाजिक विषमता को मानने की धारणा को सही बताया और एक अन्य पात्र करीम चाचा को करुणा-युक्त साधारण मानवता का प्रतीक माना। उपन्यासकार ने साधारण हिन्दू और मुसलमानों में एक ही अंतर्धारा को प्रवाहित किया है। करीम चाचा पात्र में मनुष्य की क्षमता की दृढ़ आस्था और नायक पात्र में जीवन की घिनौनी वीभत्सता के बीच आगे बढ़ने की प्रवृत्ति देखी गई है।

इस उपन्यास में व्यक्त पागलों के चित्रण की नागर जी के "बूँद और समुद्र" में व्यक्त व्याधि से तुलना की और सज्जन की तरह जहाज का पंछी में धनी महिला लीला का सम्पत्ति-दान करके समाज सेवा का व्रत लेने का उल्लेख किया। शर्मा जी जहाज का पंछी उपन्यास में कम्युनिस्ट होने के शक पर घर की तलाशी लेने वाली न्याय-रक्षक संस्था

के मानवतावादी रूप की अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की है। और उन्होंने इस उपन्यास के पात्रों का वैचारिक विश्लेषण करते हुए महिपाल, सज्जन, वनकन्या, लाला नगीनचन्द्र जैन, सोशलिस्ट राधेश्याम आदि के विचारों की समीक्षा प्रस्तुत की। तथा "बूँद और समुद्र" के परिवेश को "जहाज का पंछी" से अधिक विस्तृत माना। पात्रों की सजीवता, बोली-बानी द्वारा व्यक्त चारित्रिक विशेषताएँ हास्य रस की निष्पत्ति आदि को महत्वपूर्ण और अतुलनीय बताया।

डॉ. शर्मा राजेन्द्र यादव का क्षेत्र अधिक सीमित मानते हुए भी नारी के उत्पीड़न और उच्च वर्गों, विशेषकर देशभक्त पूँजीपतियों की संस्कृति की वास्तविकता चित्रित करने में उन्हें नागर जी के बराबर बताया है। परन्तु उनके हीरो शरद को सज्जन से अधिक मूर्ख बताया जो उपन्यास के अंत में उससे अधिक चतुर सिद्ध होता है। और जया, वनकन्या की तरह उग्र विचारों की न होते हुए भी उससे अधिक सहृदय और दृढ़ विचारों वाली देखी गई। उनके अनुसार "बूँद और समुद्र" में जहाँ रईस या बिगड़े हुए रईस दया और दान के आदर्श से आगे नहीं बढ़ पाये हैं वहीं राजेन्द्र यादव के "उखड़े हुए लोग" अपने वर्ग अर्थात् मध्यमवर्ग से उखड़कर सीधे मजदूर वर्ग से ही नए भाईचारे के लिए टकराते हैं। उन्होंने "बूँद और समुद्र" के लाला नगीनचन्द को सबसे सहृदय पात्र मानकर "उखड़े हुए लोग" के सज्जन को उसका जोड़ीदार बताया जो आरंभ में आधा सहृदय और आधा सिनिक दर्शन का हामी रहा। वे राजेन्द्र यादव के उपन्यास की प्रमुख विशेषता उनके पात्रों के रूप परिवर्तन को मानते हैं। और उखड़े हुए लोगों में वीभत्सता देखते हैं। इस उपन्यास में नारी के साथ हर तरह का अत्याचार

करने वाला देशबन्धु नामक पात्र देखा गया। जिसका ऊपरी व्यवहार विशुद्ध अहिंसावादी वैष्णव का रहा है। शर्मा जी के अनुसार "पूँजीवादी संस्कृति को निरावरण करने की कला में देशबन्धु का चित्रण गोदान के राय साहब के पग-चिह्नों पर चला है।" उन्होंने देशबन्धु के चरित्र को राय साहब से ज्यादा पेचीदा कुछ-कुछ प्रेमाश्रम के ज्ञानशंकर का सा माना है। साथ ही मायावती की बुदभस, कपिल के परिवार का रूढ़िवाद, शरद और जया द्वारा नई दिशा की खोज, मिल-मालिकों, राष्ट्रीय नेताओं और पुलिस का एका, वन्दन, अभिनन्दन और असहाय क्रंदन का संसार, "उखड़े हुए लोग" के सीमित दायरे में काफी विविधता रखने वाला माना है।

शर्मा जी ने पूँजीपतियों के राष्ट्र-प्रेम, संस्कृति-प्रेम और त्याग का मार्मिक चित्रण करने वाले इन उपन्यासों में कम्युनिस्म का प्रश्न उठाया स्वाभाविक माना है। "उखड़े हुए लोग" उपन्यास में सूरज और देशबन्धु को कम्युनिस्ट के रूप में कहीं-कहीं देखा गया। नागर जी की तरह यादव द्वारा न्याय और शांति के रक्षक को एक वर्ग विशेष के रक्षक दिखलाने की प्रवृत्ति को देखा। और यादव जी के उपन्यास में मजदूर वर्ग की झलक और मजदूरों की एकता देखकर उखड़े हुए लोगों के पैर जमने की बात कही। यादव जी द्वारा मजदूरों के मन की कमजोरियों की अभिव्यक्ति कुशलता सहित करने की प्रशंसा की। और "जहाज का पंछी" के नायक द्वारा सारी जनता की समस्या को अपनी समस्या बना लेने के प्रसंग को उभारा तथा इसे भारतीय समाज और प्रगतिशील लेखकों की नई दिशा माना।

डॉ. शर्मा राजेन्द्र यादव की रचना-प्रक्रिया का महत्व उजागर करते हुए कहते हैं -- हिन्दी कथा-साहित्य प्रेमचन्द वृन्दावनलाल वर्मा, निराला और प्रसाद की बनाई राह पर अग्रसर रही है परन्तु कुंठावाद ने खाई-खंदक खोद कर उस राह की स्थिति को बिगाड़ दिया था। नागर, नागार्जुन, जोशी, यादव आदि ने उस मंजिल को पारकर लक्ष्य की ओर बढ़े जहाँ वह जनता में नई चेतना और नया आत्मविश्वास जगा पाते। हिन्दी की उपन्यास कला इस कुहासे को भेदकर नई-शक्ति से उदय हो रही है। इस कला का आधार एक व्यापक सामाजिक सत्य रहा है। और उक्त उपन्यासों में सड़े-गले रूढ़िवादी सम्बन्धों की तीव्र आलोचना की गई। इस परिस्थिति को बदलने का सही रास्ता जन-साधारण की एकता और अपने अधिकारों के लिए उनका संघर्ष है। इसकी ओर राजेन्द्र यादव ने "उखड़े हुए लोग" में संकेत किया है।

इस प्रकार शर्मा जी जहाज के पंछी की तुलना बूँद और समुद्र के पात्रों से और राजेन्द्र यादव के पात्रों की तुलना नागर जी के पात्रों से करते हुए उनके चारित्रिक परिवर्तन को विकास का सूचक बताया और जोशी तथा यादव जी के उपन्यास साहित्य के पात्रों, घटनाओं, कथानक, चरित्रों और प्रसंगों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनकी प्रासंगिकता तथा सामाजिक महत्व को उभारा और "जहाज का पंछी" उपन्यास को हिन्दी कथा-साहित्य की प्रगति का महत्वपूर्ण मार्ग-चिह्न मानते हुए हिन्दी उपन्यास के विकास की नई दिशा की ओर संकेत किया है। परन्तु हिमांशु श्रीवास्तव का "लोहे के पंख" को बलचनमा का जोड़ीदार उपन्यास माना।

और दोनों में शिल्प की समानता को देखा। उनके अनुसार इस उपन्यास में एक गरीब चमार जमींदार के अत्याचारों की और अपने मजदूर जीवन की कहानी अपनी शैली में कहता है। इस उपन्यास को उन्होंने हिन्दी में यथार्थवाद की परम्परा को दृढ़ करने वाला बताया। उनका कहना है कि इस उपन्यास ने सबसे बड़ा काम यह किया है कि हिन्दी उपन्यास को जैनेन्द्र-अज्ञेय-यशपाल-अश्क के क्रांतिकारी रोमांसवाद के दलदल से बाहर निकाला है।[1] उन्होंने इस उपन्यास में जनजीवन की ताजगी अतृप्त यौन आकांक्षाओं के बदले मेहनत करने वाले स्त्री-पुरुषों के वास्तविक दुख-सुख की कहानी देखा है। उनका कहना है कि लेखक ने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से उपन्यास के पूर्वार्द्ध में मगरू और उसके परिवार का जीवन, जमींदार के अत्याचार, समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव, अछूतों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार, उनका गुलाम जैसा जीवन उनकी अपनी रूढ़ियाँ और हानिकारक रीति-रिवाज आदि चित्रित किए हैं। वे पात्रों की सजीवता को दर्शाते हुए वातावरण के चित्रण को पात्रों में प्राण-प्रतिष्ठा करने वाला बताते हैं। इस उपन्यास में गाँव के किसान और शहर के मजदूरों का समन्वित चित्रण देखा गया और उपन्यास के नायक का निर्माण संघर्षशील चेतना से परिपूर्ण रहा। इस उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता वर्ग-उत्पीड़न के प्रति पाठक को सचेत करने और रोमांसवादी प्रगतिशील लेखकों द्वारा पर्दा डाले गये भारतीय समाज के यथार्थ को सही रूप में अभिव्यक्त करने में रही है।

इस कृति में व्यक्त राजनीतिक बेईमानी और जनता को धोखा देने की प्रवृत्ति को लेखक की एकांगी दृष्टि का चिह्न मान

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 84

आरम्भिक कथावस्तु के गठन की कमजोरी और यथार्थ के नाम पर गालियाँ लिखने के प्रसंगों को उभार कर उपन्यास की कमजोरी को अभिव्यक्त किया। परन्तु साथ ही उन्होंने इन दोषों को गौण मानकर हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में "लोहे के पंख" को एक महत्वपूर्ण कदम माना। उसमें सामाजिक यथार्थ का चित्रण कर मजदूर तथा उपेक्षित वर्ग की अभिव्यक्ति को महत्व देने की बात कही।

डॉ. शर्मा मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन का यथार्थ-चित्रण करने वाले "चन्दन चाँदनी" नामक चन्द्रकिरण सौनरेक्या द्वारा लिखित उपन्यास में वर्गगत भेद के विरुद्ध ब्याह करने, रोजगार और आर्थिक कठिनाईयों से संघर्ष करने वाले जीवन की प्रस्तुति देखते हैं। शर्मा जी इस उपन्यास का महत्व प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -- "चन्दन चाँदनी" एक लेखिका की रचना है और यह लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा और श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा की भावुकता पूर्ण काव्य-परम्परा से बहुत फासले पर है उसके पैर मजबूती से यथार्थवादी भूमि पर जमे हुए है।[1] उन्होंने इस उपन्यास को नागर और यशपाल की परम्परा में स्वीकार किया और उपन्यास की कहानी का सम्बन्ध दो कायस्थ परिवारों से माना है इन परिवारों में उत्तर भारतीय शहरी परिवार की छवि मिलती है। इस उपन्यास में राज के परम्परावादी संयुक्त परिवार के टूटन की क्रिया को विस्तार से, हर तरह के अंतर्विरोधों को, सतह से नीचे छिपे भीतरी संघर्ष के साथ प्रस्तुत किया गया। उन्होंने उस परिवार में आर्थिक विषमताओं

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 80

द्वारा विचित्र रूपों में नये-नये संघर्षों को जन्म देने की बात कही। लेखिका ने विशेष प्रतीकात्मक शब्द योजना द्वारा पारिवारिक जीवन के हर पहलू का यहाँ निर्ममता-पूर्वक चित्रण किया है। इसकी कलात्मक विशेषताओं में सनसनी-खेज प्रसंगों का अभाव, कथानक में पेचीदगी का अभाव, प्रवाह में बाँकापन, व्यंग्य की भँवरे स्पष्ट कथन में तीखापन आदि मिलता है।

लेखिका द्वारा नवशिक्षित युवतियों की समस्याओं को उभारते हुए युवतियों के रूप-यौवन के लोभियों द्वारा किये जाने वाले हठकण्डों तथा दुष्चरित्र की स्त्रियों की मजबूरियों, उनके चरित्र की निर्मलता आदि के यथार्थवादी चित्रण करने की प्रवृत्ति को महत्व-पूर्ण बताया है। शर्मा जी स्त्री पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को उभारते हुए इस उपन्यास में साधारण स्त्रियों के चित्रण को महत्व देते हैं और गरिमा को नये ढंग की स्त्री माना है जो संयुक्त मोर्चा बनाकर लड़ने और संघर्ष में हर हथियार का प्रयोग करने में विश्वास रखती है। इसीलिए शर्मा जी गरिमा की आवाज में नवजागृत, अपने स्वत्वों के लिए लड़ने वाली चिरवंदिता चिर लांछिता भारतीय नारी की आवाज सुनते हैं। परन्तु उन्होंने इस उपन्यास में देश और समाज की चर्चा की अपेक्षाकृत कमी देखी है। तथा सामाजिक जीवन का विस्तार पाया है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि गरिमा का संघर्ष केवल उसका संघर्ष नहीं है न बेकार कलाकार राज ही अपने संघर्ष में अकेला है बल्कि रूढ़िवादी जमीन छोड़कर नये मनुष्योचित अधिकारों की भूमि पर नयी

समाज-व्यवस्था के निर्माण के लिए देश की विशाल जनता के व्यापक संघर्ष का ही एक अंग राज और गरिमा का संघर्ष है।[1]

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने उपन्यास के पात्रों के चरित्र और उनके जीवन संघर्ष को समाज की गतिविधियों से सम्बद्ध कर देखा है। उपन्यास के अंतिम अंश को अपेक्षाकृत कमजोर, कथा-सूत्रों को शिथिल माना तथा सामान्य जीवन में निर्भीकता-पूर्वक हृदय विदारक घटनाओं और कठिन संघर्ष का सामना करने वाली स्वतंत्र-चेता नारी के चरित्र की दृढ़ता को उद्घाटित करने की लेखिका की दृष्टि की प्रशंसा की। तथा उपन्यास में जगह-जगह व्यक्त हास्य-विनोद, मर्मस्पर्शी-व्यंग्य, कहावतों आदि के प्रयोगों की सार्थकता के आधार पर इस उपन्यास को हिन्दी के श्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यासों में स्थान प्रदान किया है।

डॉ. शर्मा शिवसागर मिश्र की औपन्यासिक विशेषताओं की समीक्षा करते हुए उनके उपन्यास "राजतिलक" और "मगध की जय" के आधार पर उनको ऐतिहासिक उपन्यासकारों की सूची में स्थान प्रदान करते हैं। उनके अनुसार "शिवसागर मिश्र ने आज के यथार्थ सामाजिक जीवन की भूमि छोड़कर प्राचीन मगध के राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन पर उपन्यासों की श्रृंखला आरम्भ की है।" किन्तु उनके "राजतिलक" उपन्यास में कथासूत्र के टूटन, भाषा-शैली में दोष आदि कमजोरियों की व्याप्ति स्वीकार की। वे मिश्र जी के दोषों उपन्यासों में इतिहास को महापुरुषों की गाथा मानने के साथ-साथ उनकी विशिष्ट भूमिका और उनके पराक्रमी कार्यों को उनका

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प — पृ. 82

साथ देने वाली परिस्थितियों के साथ देखने की समानता दर्शाते हैं। और उनके उपन्यासों के कलात्मक पक्ष को उभारते हुए कहते हैं -- मिश्र जी की शैली कहीं-कहीं इतनी कृत्रिम हो गयी है कि प्राचीन वातावरण के बदले, पारसी रंग-मंच या सोहराब मोदी की भूमिका वाले घटिया ऐतिहासिक फिल्मों की याद आती है।[1] उन्होंने दोनों उपन्यासों के कथा-गठन का सबसे बड़ा दोष उसके पात्रों का यथावसर तिलस्मी जासूसी ढंग से प्रस्तुत हो जाना माना है। और "राजतिलक" की अपेक्षा "मगध की जय" में लेखक की कला का विकसित रूप देखा। वे मिश्र जी के उपन्यासों की खूबियों के आधार पर उनके उपन्यास को राहुल जी के "सिंह सेनापति" जैसे उपन्यास से आगे बढ़ा हुआ और प्रसाद जी के नाटकों की परम्परा का उपन्यास मानते हैं। तथा उन्होंने "मगध की जय" उपन्यास के अन्त में हिंसा के भयावह चित्र की प्रस्तुति को इतिहास के प्रति एक जागरूक शोधकर्ता का दृष्टिकोण स्वीकार किया।

डॉ. शर्मा के अनुसार "यशपाल की दिव्या जैसे उपन्यासों से भिन्न यहाँ लेखक मिश्र ने दासों और उनके स्वामियों के अन्तर्विरोध को उभार कर पेश किया है।"....मिश्र जी ने यहाँ प्राचीन इतिहास का नया मूल्यांकन करते हुए एक प्रगतिशील कथा-लेखन परम्परा का सूत्रपात किया है।"[2] इस प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने मिश्र जी द्वारा भगवान् बुद्ध देव के शांति प्रवचनों के साथ कापालिकों की वीभत्स रस पंचमकार साधना के दिये गये चित्रों की वीभत्सता को निर्मूल करती हुई मगध की नवीन संस्कृति का

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 92
2. वही, पृ. 93

प्रसार होने और उसी के साथ जन-पदीय कलह और विघटन के स्थान पर मगध राज्य की जय होने के प्रसंग को उद्घाटित किया। और "मगध की जय" में अनेक करुण प्रसंगों की व्याप्ति भी स्वीकार की। शर्मा जी मिश्र जी के उपन्यासों की समीक्षा करते हुए उसमें प्राचीनता के प्रति अन्ध-आसक्ति, जागृति और वर्तमान जीवन के प्रति कुण्ठा या उदासीनता के भाव का अभाव देखते हैं। उन्होंने प्रसेन जीत, बिम्बसार आदि की विलास-प्रियता के चित्रण द्वारा अजात-शत्रु की भूमिका, कापालिकों की वीभत्स-लीला द्वारा वैष्णव धर्म की प्रगतिशीलता और लिच्छवि परिषद् की कार्यवाही के चित्रण द्वारा विस्मृत इतिहास के सजीव प्रस्तुतिकरण को प्रशंसनीय माना।

डॉ. रामविलास शर्मा कहानी-लेखन की समीक्षा के क्रम में मार्कण्डेय के "भूदान" संग्रह की कहानियों का विश्लेषण कर उसमें व्यक्त ग्रामीण जीवन के विभिन्न चित्रों को प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने "माई" कहानी में माँ को अपने एक बच्चे को शारीरिक और मानसिक रूप से रोगी बनाने के लिए उत्तरदायी माना तथा "आदर्श कुक्कट-गृह" में विकास योजनाओं पर व्यंग्य देखा क्योंकि विकास योजनाएँ गरीब जनता के लिए विनाश-योजनाएँ बन जाती है। "भूदान" कहानी में गरीब किसान द्वारा अपने जमीन खो देने का चित्रण देखा क्योंकि उसकी जमीन गोमती के पेट में चली जाती है। किंतु "उत्तराधिकार" कहानी में सामंती परिवारों की यौन-विकृतियों और भ्रष्टाचार का अच्छा चित्रण मिलता है और "बिन्दी" में नारी के असफल प्रेम, उसके घुटन भरे जीवन का चित्र देखा

है। उन्होंने इस संग्रह की सबसे अच्छी कहानी "शव-साधना" को माना है। जिसमें लेखक द्वारा योगी के भोगी रूप को प्रस्तुत किया गया उनके अनुसार "मार्कण्डेय की कहानियों की विशेषता उनकी करुणा और व्यंग्य है किन्तु करुणा की भावुकता के कारण वेदना की अनुभूति उत्पन्न होती है।" उन्होंने इन कहानियों की कमियों को उभारते हुए चरित्र और घटनाओं का सामान्य चित्रण, बातों का उलझाव, अनावश्यक विस्तार या निरर्थक बारीकियों को चित्रित करने और कहीं-कहीं भाषा को अतिशय लाक्षणिक बनाने की प्रवृत्ति आदि को प्रस्तुत किया तथा पुराने चित्रों की अभिव्यक्ति के साथ नए संघर्ष और निर्माण की शक्ति का अभाव देखा है।

परन्तु अमरकांत के कहानी-संग्रह "जिन्दगी और जोंक" में संत तुलसीदास और सोलहवाँ साल जैसी हास्य-पूर्ण कहानियों का समायोजन स्वीकार किया तथा "डिप्टी कलेक्टरी" में बूढ़े बाप की समस्त आशाओं का नाश देखा। यथावसर सहानुभूति और व्यंग्य का प्रयोग करने में लेखक को सक्षम माना तथा उनकी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग की गरीबी, व्यक्तिगत सम्पत्ति के संस्कार, ऊँचे-नीचे सपने और जिन्दगी की ठोकरें आदि का विशद चित्रण देखा है। उनकी कला की विशेषताओं में अनावश्यक शब्दों का अभाव घटनाओं का चित्रण, संवाद और चरित्र द्वारा अभिव्यक्ति को प्रमुख माना। उनके अनुसार अमरकांत की कहानियों में सामाजिक उत्पीड़न के अलावा पात्रों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर भी ध्यान दिया गया है। जैसे "जिन्दगी और जोंक" में मध्य-वित्त बाबुओं की शोषित वृत्ति का चित्रण, विभिन्न स्त्री-चरित्रों के मनोवृत्ति में परिवर्तन आदि की अभिव्यक्ति श्रेष्ठ कलाकार के अनुरूप

रही है। शर्मा जी ने इस संग्रह की कहानियों को विभिन्न स्तर और विविधता से परिपूर्ण यथार्थवादी रंग से युक्त माना।

इसके अतिरिक्त उन्होंने राजेन्द्र यादव की "कुलटा" कहानी की विशेषताओं को उभारते हुए अभिजातवर्गीय जीवन की कृत्रिमता, नारी का उत्पीड़न, रेशमी कपड़ों में लिपटी हुई जघन्यता आदि को प्रस्तुत किया और यहाँ उखड़े हुए लोगों के बदले जमे हुए लोगों को देखा। प्रतीक-चित्रण की अतिशयता आदि को व्यक्त करते हुए उन्होंने कुलटा कहानी को उखड़े हुए लोग से एक कदम आगे नहीं बल्कि दो कदम पीछे माना है।

4.12 गद्य समीक्षा के अन्य रूप

डॉ. रामविलास शर्मा गद्यालोचन के अन्तर्गत निबन्ध-लेखन की समीक्षा करते हुए श्री बनारसी दास चतुर्वेदी जी के सम्पादन और पत्रकारिता को उजागर कर उन्हें क्रांतिकारियों और शहीदों से सम्बद्ध सामग्री प्रकाशित करने वाला अत्यधिक उदार, संयत, स्पष्टवादी निर्भीक और कर्मठ व्यक्ति बताया। उनके अनुसार उन्होंने विशाल भारत का शहीद अंक, स्वामी केशवानन्द अभिनन्दन ग्रंथ और उससे सम्बद्ध क्रांतिकारियों की जीवनियाँ, अमरशहीद राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा, मन्मथनाथ गुप्त के वक्तव्य और बिस्मिल की माता से सम्बद्ध शिववर्मा की संस्मरणात्मक मेरी डायरी का एक पृष्ठ आदि को प्रकाशित करवाया है। इन सब में विशाल भारत के शहीद अंक को शर्मा जी ने अपेक्षाकृत कमजोर माना। इस

अंक में उल्लेखनीय देशवासियों के नाम अशफाक उल्ला का अंतिम पत्र है। स्वामी केशवानन्द अभिनंदन ग्रंथ के स्वाधीनता खण्ड में स्वाधीनता आंदोलन का अधिक विस्तृत और संतुलित चित्र मिलने का उल्लेख किया और इसमें सन् सत्तावन के स्वाधीनता संग्राम को उचित महत्व देने की बात कही गयी। भगवानदास माहौर द्वारा "यश की धरोहर" अंश में शहीद राजगुरु, भगत सिंह और चन्द्रशेखर आजाद के संस्मरण प्रस्तुत किये गये। इनमें उच्च स्तरीय राजनीतिक चर्चा और कलात्मक सौन्दर्य देखा गया। उन्होंने माहौर जी के संस्मरणों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी यथार्थवादी शैली को माना है। और इस कृति का सबसे महत्वपूर्ण अंश उसका अंतिम भाग माना जिसमें बिस्मिल ने क्रांतिकारियों की राजनीति की आलोचना की।

डॉ. शर्मा के अनुसार अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित किए जाने के पहले पूर्ण स्वाधीनता ही नहीं, भारत के लिए समाजवादी प्रजातंत्र का उद्देश्य भी सामने रखा। जिससे वह उस समय के राजनीतिक विचारकों में सबसे दूरदर्शी और प्रगतिशील राजनीतिक सिद्ध होते हैं।[1] उन्होंने अशफाक उल्ला के अंतिम संदेश में हिन्दू-मुसलमान सम्प्रदायवादियों की कड़ी आलोचना के दर्शन किये।

इसके अतिरिक्त निबन्ध-लेखन की समीक्षा के क्रम में शमशेर बहादुर सिंह के "दोआब" के निबन्ध संग्रह में उनके द्वारा हिन्दी-उर्दू साहित्यकारों, छायावादी व्यक्तियों तथा आधुनिकता-बोध से परिपूर्ण

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प — पृ. 155

कवियों पर लिखे गये लेखों का संकलन पाया। शर्मा जी के अनुसार शमशेर के निबन्धों का गद्य अपने समय में बहुत ही पुष्ट, सुथरा और कलात्मक रहा है। शमशेर द्वारा मुक्तिबोध और केदारनाथ अग्रवाल आदि के काव्य और व्यक्तित्व पर लिखे गये लेखों में उनके गद्य का विकास देखा है। उनके लेखन में उनके व्यक्तित्व की परिवर्तनशीलता व्यक्त होने की बात कही। उनके अनुसार शमशेर के लिए साहित्य का अध्ययन एक सजीव अनुभूति है और उस अनुभूति का प्रतिबिम्ब वह पाठक के मन में गद्य के द्वारा वैसे ही उतारना चाहते हैं जैसे अपनी किसी प्रेम या सौंदर्य की अनुभूति का प्रतिबिम्ब गद्य के ही द्वारा कविता में।[1]

वे शमशेर के लेखन की विशेषताओं को उभारते हुए उसमें राजनीतिक उतार-चढ़ाव को सरल और समर्थ शैली द्वारा मूर्तिबद्ध करने की क्षमता देखते हैं। इसके अतिरिक्त उनके गद्य में बोल-चाल का लय, वाक्य-रचना का परिवर्तन, वाक्यांशों का स्थान परिवर्तन, तत्सम शब्दों की अधिकता, हिन्दी के उर्दू रूप द्वारा गद्य की लयात्मकता का निर्माण आदि को उनके गद्य-लेखन की विशेषतायें माना जिसका प्रमाण ग्राम्या पर लिखे गये उनके लेख से मिलता है। किंतु केदार पर लिखे गये लेख में शमशेर के लेखन की लयात्मकता के आधार पर उनकी बदलती हुई मनोदशा को प्रस्तुत किया। तथा "दो-आब" के निबन्धों में शमशेर द्वारा व्यक्त रोगी व्यक्तियों, अस्वस्थ मनोदशा आदि की चर्चा की व्याप्ति स्वीकार की। उनके अनुसार "शमशेर आलोचना के द्वारा स्वयं अपने मन की निराशा

---

1. आस्था और सौन्दर्य — पृ. 193

और विषाद से लड़ते हैं तथा छायावादी कवियों के मूल्यांकन में विषाद की अधिकता मिलती है। और पल्लविनी पर लिखे लेख में पंत की काव्य विशेषताओं की प्रशंसा, "दोआब" के निबन्धों में नरेन्द्र की राजनीतिक कविताओं की चर्चा थकान और निराशा पर जोर, आधुनिक कवियों की कुंठा-प्रेम की आलोचना देखी गयी है।

डॉ. शर्मा "दोआब" संग्रह का सबसे रुचिकर लेख "सात आधुनिक कवि" को मानते हैं जिसमें लेखक द्वारा प्रयोगशीलता पर प्रश्न उठाया गया तथा प्रयोगशीलता की दृष्टि से तारसप्तक का कोई मौलिक युगान्तरकारी महत्व नहीं है। उनके अनुसार शमशेर द्वारा किया गया तारसप्तक का मूल्यांकन उस समय की प्रगतिवादी आलोचना का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है। वे शमशेर का रागात्मक सम्बन्ध उर्दू काव्य से हिन्दी की अपेक्षा अधिक मानते हैं। और लेखक में जनता की एकता और उसकी अजेय शक्ति के प्रति दृढ़ विश्वास और पूर्ण-आस्था देखी।
साथ ही उनके निबन्धों में अधिकांश कवि और लेखकों की जीवन और लेखन यात्रा के मोड़ मिलने, पुरानी मान्यताओं और कमियों का समायोजन, अनुभूति की अभिव्यक्ति, रचना-विकास की प्रक्रिया आदि का रूप देखा।

अध्याय : पाँच

डॉ. रामविलास शर्मा का समीक्षालोचन

5.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की आलोचना का समग्र मूल्यांकन

5.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की समीक्षा-दृष्टि की आलोचना

5.3 डॉ. नगेन्द्र की आलोचना-दृष्टि का समीक्षात्मक विश्लेषण

5.4 डॉ. नामवर सिंह की आलोचना-पद्धति का विवेचन

अध्याय : पाँच

डॉ. रामविलास शर्मा का समीक्षालोचन

डॉ. रामविलास शर्मा की समीक्षा-विषयक आलोचनाओं के अध्ययन के अन्तर्गत उनके द्वारा हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा के विकास में आ. शुक्ल, आ. द्विवेदी, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी के समीक्षात्मक कार्यों का महत्व और योगदान स्वीकार करने तथा उनकी दृष्टि और पद्धति की की गई समीक्षाओं का अध्ययन करेंगे। साथ ही समसामयिक आलोचकों में डॉ. नगेन्द्र और डॉ. नामवर सिंह की समीक्षा दृष्टि व पद्धति के विश्लेषण का विवेचन किया जायेगा।

5.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की आलोचना का समग्र मूल्यांकन

डॉ. रामविलास शर्मा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के दार्शनिक दृष्टिकोण का आधार "विश्वप्रपंच" की भूमिका को मानते हैं और उन्होंने हैकल के विकासवाद के विवेचन के क्रम में उनके द्वारा अभिव्यक्त भौतिकवादी तत्वों को उभारा है। वे शुक्ल जी की सबसे बड़ी देन हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना को ठोस दार्शनिक आधार प्रदान करना बताते हैं। शर्मा जी आ. शुक्ल के साहित्यालोचन और इतिहास लेखन सम्बन्धी विचारों का व्यापक रूप से आलोचनापरक अध्ययन प्रस्तुत करना ही अपना उद्देश्य मानते हैं। उन्होंने शुक्ल साहित्य के मूल्यांकन के क्रम में आलोचकों की भ्रान्त धारणाओं का खण्डन भी प्रस्तुत किया है।

शर्मा जी आ. शुक्ल की रस-विषयक अवधारणा का सम्बन्ध रस-सम्प्रदाय से बताते हुए भी शुक्ल जी की मौलिक मान्यता साहित्य के भावों और जीवन के भावों में अभेदता स्वीकारने में दर्शाते हैं। उनके अनुसार लोक-हृदय में लीन होने की कसौटी रखकर उन्होंने हर तरह की संकुचित व्यक्तिवादी और भाववादी धाराओं से साहित्य को मुक्त करके उसे सामाजिक जीवन का एक अंग बना दिया, इसे प्राचीन रसवादियों से शुक्ल जी का महत्वपूर्ण भेद माना है। चूँकि शुक्ल जी वस्तुओं से अलग उनके गुणों की कल्पना न कर जगत को सत्य मानते हैं। और वे मानव सत्ता के ज्ञान को लोकबद्ध मानने के कारण ही रस-दशा को लोक-हृदय में लीन होने की दशा कहते हैं। शर्मा जी काव्यात्मा विषयक शुक्ल जी के विचारों का विश्लेषण कर उनके द्वारा ब्रैडले, मैकेल आदि भाववादियों की स्थापनाओं का खण्डन करने के साथ-साथ काव्य के वास्तविक आधार को ही अस्वीकार करने वाले यूरोपीय अभिव्यंजनावादियों का भी विरोध करने की प्रवृत्ति को उजागर करते हैं और इसका प्रमाण "काव्य में अभिव्यंजनावाद" निबन्ध में शुक्ल जी द्वारा की गई इटली के भाववादी विचारक क्रोचे की मार्मिक समीक्षा को माना है साथ ही शुक्ल जी द्वारा फ्रांसीसी विचारक बर्गसाँ की स्थापनाओं का भी खण्डन करने के प्रसंगों को उद्घाटित किया है। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा रीति-ग्रंथों का विरोध करने तथा साहित्य पर उसके घातक प्रभाव को उजागर करने के कार्य को महत्वपूर्ण माना है। और उनके रीति-ग्रंथों के विरोध का मूल सूत्र मानव-प्रकृति की विविधता को दर्शाया है। वे शुक्ल जी द्वारा यथार्थवाद की भूमि से रीति-ग्रंथों की कृत्रिमता को व्यक्त करने की प्रवृत्ति को भी उभारते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के साहित्यिक सिद्धांतों का महत्व स्पष्ट करते हुए शर्मा जी कहते हैं -- शुक्लजी ने अपने साहित्य सिद्धांत हवा में नहीं बनाये न वे सिद्धांत केवल निषेधात्मक है। उन्होंने भारतवर्ष के चार महाकवियों — वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और तुलसीदास को अपना आदर्श और आधार बनाया और इन कवियों के प्रकृति वर्णन तथा लोक-हृदय में लीन होने की दशा को अपनी कसौटी बना हिन्दी और संस्कृत के आचार्यों के अवैज्ञानिक सिद्धांतों और अस्वाभाविक कृतियों की आलोचना की है।[1] शर्मा जी शुक्ल जी को आलोचना के क्षेत्र में भवभूति और काव्य के क्षेत्र में महाकवि निराला के समान धर्मा मानते हुए उनके साहित्य में वाल्मीकि और भवभूति की परम्परा को पुनः जीवित करने के महत्व को उभारते हैं। और साथ ही शुक्ल जी को अलंकारवादियों का विरोध करते हुए स्थायी भावों की नयी व्याख्या मानव-जीवन और स्वभाव की विविधता और यथार्थ-जीवन के प्रेम के आधार पर करते हुए देखते हैं। वे शुक्ल जी के दृष्टिकोण को सामंत-विरोधी और असहिष्णु मानते हुए उनकी आलोचना को सामंती-संस्कृति के पक्षधरों के लिए ललकार बताते हैं क्योंकि शुक्ल जी जनता का पक्ष लेकर एक नयी संस्कृति के लिए लड़ने वाली आलोचना प्रस्तुत करते हैं। जिसमें उन्होंने साहित्य में तटस्थता, जनता के प्रति उदासीनता, शुद्ध कला और शुद्ध कल्पना के हामियों से संघर्ष किया है।

शर्मा जी के अनुसार "शुक्ल जी ने साम्राज्यवादी उत्पीड़न का ही विरोध नहीं किया उन्होंने पश्चिमी देशों की संस्कृति

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 36

के मूल-सूत्र व्यक्तिवाद को भी पकड़ा और उसकी पतन-शीलता को व्यक्त किया और उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य की भौंडी और प्रगति-विरोधी प्रवृत्तियों से हिन्दी प्रेमियों और लेखकों को सावधान करते हुए यूरोप के अबुद्धिवादियों का मजाक उड़ाया तथा पश्चिमी साहित्य के निराशावादियों में मि. हाजमन और इलियट का नाम लेकर उन्हें कुंठित और बौखलाहट की प्रवृत्ति से परिपूर्ण बताया।"[1]

आलोचना के क्षेत्र में शुक्ल जी का रिचार्ईस के सिद्धांत से प्रेम होने पर भी उनके पूँजीवादी मनोविज्ञान से प्रभावित सिद्धांतों का विरोध करने की प्रवृत्ति को उभारते हैं। उनका मानना है कि शुक्ल जी ने भारतीय सामंतवाद और यूरोपीय पूँजीवाद की सांस्कृतिक धाराओं का खण्डन करने के साथ-साथ भारतीय पूँजीवाद की मूल सांस्कृतिक स्थापना और उसकी निष्क्रिय प्रतिरोध का भी विरोध किया है। वे शुक्ल जी द्वारा साहित्यिक रहस्यवादी प्रवृत्ति का विरोध करने तथा साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य के विश्लेषण के क्रम में कलात्मक सौन्दर्य का आधार साहित्य की मूर्तिमत्ता मंगल को सुन्दर और अमंगल को कुत्सित मानने की दृष्टि को उजागर करते हैं। क्योंकि शुक्ल जी काव्य में भाव, योग और लौकिक-जीवन के कर्म-योग की एकता को स्वीकार करते हैं। शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा साहित्य में धार्मिक कट्टरता का विरोध तथा देश-भक्ति का समर्थन करने तथा साहित्य में राजनीति का प्रवेश साहित्य के गुणों की रक्षा के साथ करने की आवश्यकता दर्शाने की प्रवृत्ति को भी प्रस्तुत करते हैं।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 40

शर्मा जी आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण को सुसंगत रूप से भौतिकवादी नहीं माना क्योंकि शुक्ल जी संसार की भौतिकता पर जोर देते हुए ज्ञान को भौतिक जीवन से उत्पन्न मानते हुए भी विश्व आत्मा और भौतिक जगत् में व्यक्त होने वाले ब्रह्म की बात करते हैं। शर्मा जी ने शुक्ल जी के दार्शनिक दृष्टिकोण को मूलतः वस्तुवादी और उनकी तर्क-पद्धति को द्वन्द्वात्मक माना है।

शर्मा जी आ. शुक्ल द्वारा सिद्धनाथ योगियों का निर्गुण-संतों पर प्रभाव, वेदान्त के ज्ञानवाद, सूफियों के प्रेमवाद, वैष्णवों के अहिंसावाद आदि का समन्वित प्रभाव भक्ति आंदोलन पर देखने तथा योगियों का विरोध करने का कारण उनकी दृष्टि की जनवादिता और लोक-कल्याणकारी दृष्टिकोण को मानते हैं। उन्होंने शुक्ल जी के तुलसी-प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ-साथ कबीर विषयक क्रांतिकारी अवधारणाओं को भी महत्वपूर्ण बताया है। और शुक्ल जी द्वारा लिखी गई जायसी की भूमिका को उनकी श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृतियों में एक माना। वे शुक्ल जी द्वारा जायसी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, दार्शनिक विचार, कलात्मक मूल्यों आदि के विवेचन को हिन्दी के अनुसंधान साहित्य में एक नये आधार का सूत्रपात बताते हैं। और शुक्ल जी द्वारा अवधी भाषा की समस्याओं के किये गये विश्लेषण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा जायसी को कबीर की परम्परा में रखने की दृष्टि की प्रशंसा की है और जायसी की सरस भाषा, प्रभावशाली वर्णन, शैली आदि की मुक्तकण्ठ से की गई प्रशंसा को उभारा है।

शर्मा जी शुक्ल जी के दृष्टिकोण की समीक्षा करते हुए उनके द्वारा निर्गुणपंथ को सगुणपंथ के समान प्रगतिशील न मानने के कारण कहीं-कहीं कबीर आदि पर अनुचित आक्षेप करने और भारत की मूल धाराओं का महत्व कम करके आँकने आदि दोषों का भी उल्लेख करते हैं। और भक्ति का विकास में शुक्ल जी द्वारा भारतीय भक्ति या प्रेम-मार्ग का ऐतिहासिक विकास दिखलाने और प्राचीन धर्म और दर्शन को समझने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने की बात कहते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा ईश्वर सम्बन्धी मनुष्य की कल्पना को विकासवान मानने, संसार से परे ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करने तथा उनके द्वारा अन्तर्जगत् और बाह्य-जगत् की एकता स्थापित करने के प्रसंगों को उभारते हैं। साथ ही शुक्ल जी की उपनिषदों के ब्रह्मवाद की व्याख्या को मायावादियों की व्याख्या से भिन्न मानने की दृष्टि को भी प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार शुक्ल जी यूरोपीय रहस्यवादियों का विरोध करने के क्रम में एडवर्ड कार्पेंटर, फ्रांसिसी दार्शनिक बर्गसाँ आदि के अबुद्धिवाद का खण्डन करते हैं।

शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा भक्त की भावानुभूति की दशा को ही काव्य की रसदशा मान भक्तों की भावानुभूति को भी रस की स्वाभाविक अनुभूति के स्तर तक ले आने के प्रसंग को उभारते हैं। और शुक्ल जी के सूर विषयक विश्लेषण के आधार पर उनके द्वारा सूर की कृष्ण-भक्ति को जयदेव और विद्यापति से सम्बद्ध करके देखने की दृष्टि को सर्वथा उचित माना है। शुक्ल जी ने सूर की कविता का सम्बन्ध

ब्रज की लोक-संस्कृति और लोकगीतों की परम्परा से जोड़ा है। उनके द्वारा तुलसी की तुलना में सूर का काव्य-क्षेत्र सीमित मानने तथा श्रृंगार और वात्सल्य में सूर को अद्वितीय कवि मानने की धारणा को पूर्णतः सही और वैज्ञानिक बताया है। उनके अनुसार शुक्ल जी ने सूरदास द्वारा तुलसी की अपेक्षा एक ही रस में नये प्रसंगों की उद्भावना की क्षमता, रूपलिप्सा और साहचर्य का योग सहृदयता और भावुकता के साथ चतुरता और वाग्विदग्धता प्रस्तुत करने की प्रशंसा कर दरबारी कवियों से उनकी भिन्नता को प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही शर्मा जी का कहना है कि शुक्ल जी का भ्रमरगीत-सार की भूमिका में ध्यान सीमित रहने के कारण उन्हें सूर का काव्य-क्षेत्र आवश्यकता से अधिक सीमित दिखाई देता है। फिर भी वे श्रृंगार और वात्सल्य में सूर का लोहा मानते थे इसमें सन्देह नहीं है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की तुलसी विषयक अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी उनकी तुलसीदास विषयक कृति को अत्यधिक असंगतियों और अंतर्विरोधों से परिपूर्ण और उनके युग की बोधता हेतु मौलिक स्थापनाओं से युक्त बताते हैं। उनके अनुसार सबसे पहले शुक्ल जी कबीर, सूर, जायसी और तुलसी की एकता प्रतिपादित करते हैं इस एकता का अर्थ है कि ये सब कवि एक ही सांस्कृतिक आंदोलन के अंग हैं जो केशव बिहारी की दरबारी साहित्यिक धारा से भिन्न है।[2] अर्थात् शर्मा जी इन दोनों धाराओं के द्वन्द्व के परिणाम स्वरूप ही भक्ति

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना — पृ॰ 94
2. वही, पृ॰ 95

आंदोलन के उद्भव और विकास को देखते हैं। शर्मा जी आचार्य शुक्ल की समीक्षा की सीमाओं को व्यक्त करते हुए उन्हें तुलसी के दार्शनिक विचारों की छानबीन में काफी उलझन होने के कारण उनके द्वारा तुलसी के दार्शनिक विचारों को लेकर अद्वैत और विशिष्टाद्वैत मतों की स्थापनाओं का सामंजस्य स्थापित करने की बात कहते हैं। और तुलसी की रचनाओं में ज्ञानमार्गीय सिद्धांतों की खोज करना अनुचित बताते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार "शुक्ल जी हिन्दी आलोचना को सामंती विचारधारा की पराधीनता से मुक्त कर तुलसी के मूल्यांकन के माध्यम से आलोचना के नये मानदण्ड स्थापित किये हैं।"[1] परन्तु डॉ. शर्मा आ. शुक्ल के समक्ष भक्ति-आंदोलन के सामंत विरोधी पहलू के स्पष्ट न होने के कारण उन्हें सूर साहित्य में लोक-संग्रह की भावना की कमी, कबीर आदि संतों में लोक-विरोधी पक्ष और तुलसी विरोधी दिशा के कवि दिखाई देने के संदर्भों को स्पष्ट कर उनकी समीक्षा दृष्टि की सीमाओं और कमियों को भी प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार शुक्ल जी के विवेचन का यह सबसे कमजोर पहलू है कि उन्होंने शुरुआत की थी कबीर आदि का लोक-विरोधी रूप दिखाने से पहुँच गए रूसी क्रांति और लेनिन तक और अन्त में जनता को ही मूर्ख और जड़ कहने लगे। इससे यह परिणाम निकालना कि शुक्ल जी क्रांति-विरोधी थे जनता में उन्हें विश्वास न था वह वर्ण-व्यवस्था और सामंती समाज के हिमायती थे गलत होगा। शर्मा जी शुक्ल जी के इन शब्दों को आवेश में लिखे गये कहते हुए उनकी मूल विचारधारा से इनका मेल न होने का मत व्यक्त करते हैं। और इस आवेश के कारण तुलसी के महत्व का गलत प्रतिपादन करने के जोश में शुक्ल जी द्वारा अनेक असंगतियों में फंस जाना बताते हैं।

---

1. आचार्य शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 100

शुक्ल जी तुलसी साहित्य में लोक-धर्म का वास्तविक तत्व प्रेम को पहचान कर उसकी सराहना करते हैं तथा उसे केशव-बिहारी के प्रेम से एकदम भिन्न मानते हैं। शर्मा जी के अनुसार यही उन्हें हिंदी का महान् आलोचक बनाता है, तुलसी में वेद-शास्त्रों की व्याख्या ढूँढ़ना नहीं।

शर्मा जी रामायाण में शूद्रों के बारे में व्यक्त उक्तियों को सही ठहराने में शुक्ल जी द्वारा काफ़ी कठिनाई का सामना करने का मत व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार यहाँ शुक्ल जी का तर्क कमजोर पड़ता है लेकिन उसकी कमजोरी ही उसकी शहजोरी है। यह तर्क साबित करता है कि स्वयं शुक्ल जी को इस तरह की उक्तियों से जरा भी सहानुभूति न थी वे या तो शूद्र शब्द का लोक-प्रचलित अर्थ छोड़कर दूसरा अर्थ करते थे या तुलसी की दूसरी उक्तियाँ उद्धृत करते थे जिनमें उन्होंने जाति-पाँति की अवज्ञा दिखलाई है। और आचार्य शुक्ल द्वारा स्त्रियों की निन्दा के विषय में तुलसी साहित्य के सम्बन्ध में कही गई बातों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं -- "शुक्ल जी ने मानो तय कर लिया है कि रामचरितमानस में जो भी उक्तियाँ मिलेगी उनका समर्थन करेंगे ही इसीलिए उन्होंने मानस में नारी के प्रति निन्दा सूचक वाक्यों को किसी तरह सही ठहराने के लिए कहीं तुलसी के वैराग्य का सहारा लिया तो कहीं उन्हें सिद्धांत वाक्य न मानकर अर्थवाद मात्र समझने पर जोर दिया है। किंतु शर्मा जी के अनुसार शुक्ल जी के जनवादी अन्तःकरण का यह एक और प्रमाण है धर्मसंकट में पड़ने पर वह तुलसी का पक्ष छोड़कर स्त्रियों का पक्ष लेना ही ज्यादा उचित समझते हैं अपने वैराग्य के लिए गोस्वामी जी स्त्रियों का जी दुखाये यह आचार्य शुक्ल को सहन

नहीं है।" अर्थात् शुक्ल जी द्वारा व्यक्त तुलसीदास जी के वैराग्य सम्बन्धी दलील की कमजोरी को प्रस्तुत किया।

डॉ. शर्मा को ढोल गंवार शूद्र पशु नारी की पंक्ति के विषय में शुक्ल जी द्वारा ताडन की व्याख्या ढोल शब्द के योग में अलंकारिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किया जाना स्वीकारने की प्रवृत्ति संतोषजनक नहीं लगती है। शुक्ल जी का यह मानना कि "स्त्री का समावेश भी सुरुचि विरुद्ध लगता है पर बैरागी समझकर उनकी बात का बुरा न मानना चाहिए" की आलोचना करते हुए शर्मा जी प्रश्न करते हैं कि यदि वैरागी कह कर तुलसी को माफी देना है तो उन्हें लोक-धर्म का संस्थापक, समाज-व्यवस्था का रक्षक क्यों कहा ? और शर्मा जी तुलसी को वैरागी कहकर बख्शने की जरूरत नहीं मानते बल्कि उनका कहना है कि महाकवि तुलसी जीवन के प्रति उदासीन नहीं है वह राम में अनुरक्त है क्योंकि तुलसी के समाज में स्त्रियों को वही दर्जा दिया गया था जो वर्ण-व्यवस्था में शूद्रों का था और शूद्रों का दर्जा पशुओं का था। तुलसी का महत्व इस विषम समाज-व्यवस्था को ढहने से बचाने में नहीं है न उन्होंने उसे बचाया, तुलसी का महत्व इसमें है कि उन्होंने अपने को समाज के इन्हीं पतितों का एक अंग समझा, उनके अपमान को अपना अपमान समझा, उनके सम्मान के लिए मान-मात्र के लिए सुलभ भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया।[1] अर्थात् मानस में व्यक्त उक्त उक्ति की अभिव्यक्ति हेतु उन्हें दोषी नहीं माना बल्कि उस उक्ति को

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 107

उनके साहित्य में समाज की वास्तविक अवस्था की यथार्थ अभिव्यक्ति का प्रमाण माना। उनके अनुसार तुलसी की रचनाओं में जो लिरिक रचनाओं का सौन्दर्य, तुलसी की आत्मीयता, तन्मयता, व्यक्तित्व की झलक, आत्म-निवेदन, स्वतः स्फूर्तगेयता इन सबका मूल्य या तो उन्होंने पहचाना नहीं या उसके बारे में वह क्षमाप्रार्थी दिखाई देते हैं। शुक्लजी द्वारा तुलसी के महाकवि होने का दावा सबसे अधिक उनकी प्रबन्ध पटुता के कारण किया गया। और तुलसी द्वारा व्यक्त कलियुग के वर्णन को तत्कालीन देश की दशा से जोड़ना उचित और सही बताया।

शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा विनय में व्यक्त करुणा के लोकवादी पक्ष का विस्तृत विवेचन न करने के कारण तुलसी की करुणा की और मार्मिक व्याख्या न कर पाने की बात कहते हैं। और उनके द्वारा कविता-वली, विनयपत्रिका का उपयुक्त मूल्यांकन न कर पाने और मानस के विवेचन में पात्रों के अनेक नैतिक गुणों का उद्घाटन करने, कला-विवेचन के क्रम में छन्द कौशल पर प्रकाश न डालने आदि कमियों को उजागर किया। परन्तु शुक्ल जी द्वारा कला का आधार वास्तविक जीवन को और भक्ति का आधार जीवन की स्वीकृति की स्वीकृति तुलसी साहित्य में देखने की दृष्टि को उभारा और साथ ही उनके द्वारा दरबारी कवियों से भिन्न और उनकी परम्परा के विरुद्ध तुलसी के लोक-साहित्य की पद्धति को प्रामाणित करने तथा तुलसी की भावुकता से परास्त होकर उन्हें प्रेम का उत्कर्ष दिखाने वाले महाकवि के रूप में देखने की दृष्टि को महत्वपूर्ण माना है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा आ. शुक्ल द्वारा की गई रीति-साहित्य की समीक्षा का विश्लेषण करते हुए अन्य आलोचकों की अवधारणाओं से तुलना की है। उनके अनुसार रीतिकालीन कवियों के सीमित भाव-क्षेत्र, श्रृंगार-प्रियता और साहित्यिक सुरुचि के अभाव की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने इसका कारण आश्रयदाताओं की रुचि को माना है। शुक्ल जी रीतिकालीन आचार्यों की मौलिकता का विश्लेषण करते हुए उनकी रचनाओं का आधार संस्कृताचार्यों की सैद्धांतिक मान्यता और कृतियों को माना है। जिसे शर्मा जी ने शुक्ल जी द्वारा रीति-कालीन कवियों के कन्धों से आचार्यत्व की रामनामी उतारना बताया है। उनके अनुसार शुक्ल जी को दरबारी कवियों की श्रृंगारी कविता में सबसे बड़ा दोष उसकी कृत्रिमता दिखाई देती है। इसी कारण उन्होंने रीति-काव्य में व्याप्त अतिरंजित चित्रों की तीव्र आलोचना की है। और रीतिकालीन कवियों द्वारा श्रृंगारिकता की अभिव्यक्ति में मर्यादा की सीमाओं का अतिक्रमण करने की प्रवृत्ति को उजागर किया। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा केशव की "रामचंद्रिका" को "फुटकर पद्यों का संग्रह" मानने की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए उनके द्वारा केशव की भाषा की आलोचना करने उसमें पदन्यूनता, वाक्य-शून्यता, फालतू शब्दों का प्रयोग आदि दोष दिखलाने की बात कही। वे शुक्ल जी द्वारा केशव की बार-बार और कठोर आलोचना करने का कारण उनके समय में और उनसे कुछ पूर्व केशव का मूल्य बढ़ा चढ़ाकर आँकने की परम्परा से चिढ़ होना बताया है। और केशव को भाषा छन्दों और अलंकारों का आचार्य कहना तथा उनके काव्य को समझे बिना उसकी सराहना करने और उनके काव्य को समझे बिना उसकी सराहना करने और उनकी विद्वत्ता की दाद

देने की प्रवृत्ति के प्रति आक्रोश देखा है। उन्होंने केशव को सूर और तुलसी के बाद स्थान देना अनुचित मानते हुए शुक्ल जी द्वारा आलोचना के पुराने सामंती मानदण्डों को बदलने के कार्य को महत्वपूर्ण माना है। और शुक्ल जी के इस कार्य का महत्व उभारते हुए शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा की गई केशव की आलोचना से लाला भगवानदीन और रावराजा श्याम बिहारी मिश्र आदि के युग की समाप्ति स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि आ. शुक्ल ने उस युग में यह कार्य किया जब केशव के पांडित्य की धाक थी। उस समय शुक्ल जी ने घोषित किया था कि "रामचन्द्रिका" में प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक, अनर्घ राघव, कादम्बरी और नैषध की बहुत-सी उक्तियों का अनुवाद करके रख दिया गया है और कहीं-कहीं अनुवाद भी अच्छा नहीं हुआ और उक्तियाँ विकृत हो गयी है। इस सम्बन्ध में शर्मा जी कहते हैं कि आचार्य शुक्ल ने इस तरह हिन्दी के पाठकों के मन से केशव का आतंक हटाया और उन्हें तुलसी-सूर-जायसी-कबीर आदि का सही मूल्यांकन करने का मार्ग सुझाया।[1]

डॉ. शर्मा अन्य साहित्यकारों से सम्बन्धित शुक्ल जी की आलोचनाओं से केशव विषयक आलोचना की तुलना करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार तुलसी और जायसी की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उनकी काव्य-वस्तु और कलात्मक सौन्दर्य का विवेचन किया उसी तरह केशवदास की खामियाँ बतलाते हुए उनकी कथावस्तु और कला दोनों ही के मौलिक दोषों को उदघाटित किया।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 116

उन्होंने शुक्ल जी द्वारा केशवदास के अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों में बिहारी की अत्युक्ति और कृत्रिमता के लिए आलोचना की है। उनके इस आलोचनात्मक कार्यों का महत्व उजागर करते हुए शर्मा जी कहते हैं -- शुक्ल जी ने आलोचना क्षेत्र में लोगों की रुचि बदलने, एक पूरी पीढ़ी को सामंती काव्यालोचन के प्रभाव से मुक्त करने, उसे स्वाधीन चिंतन के नये मार्ग पर आगे बढ़ाने में सबसे अधिक काम किया। यह उनका युगान्तर-कारी कार्य है।[1] अर्थात् शुक्ल जी ने देव और बिहारी को लेकर संघर्ष करने वाले तमाम आचार्यों की परवाह न करके उनके संकुचित और कृत्रिम भाव-क्षेत्र की असलियत व्यक्त कर दी। शर्मा जी के अनुसार इतिहास में शुक्ल जी ने बिहारी के अनुभवों और भावों की योजना को सुन्दर कहा है और उनकी सरसता की प्रशंसा की है किन्तु बिहारी के दोहों में गागर में सागर भरने की कला की जा तारीफ की जाती है उसको शुक्ल जी ने रूढ़ि की स्थापना कहा है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि "शुक्ल जी के लिए केशव और बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं प्राचीन रूढ़िवाद के सब अवगुणों की खान हैं इसलिए किसी कवि की श्रेष्ठता दिखाने के लिए शुक्ल जी सहज ही केशव और बिहारी से उनकी भिन्नता दिखाने लगते हैं।"[2] उन्होंने शुक्ल जी की मान्यता में मतिराम को रीतिकालीन श्रेष्ठ कवि के रूप में उभरता हुआ पाया है। और मतिराम की साहित्यिक विशेषताओं को व्यक्त करते हुए उनकी श्रेष्ठता की सिद्धि हेतु उनकी

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 120
2. वही, पृ. 120

तुलना केशव और बिहारी से करने की विधि को प्रस्तुत किया। शुक्ल जी द्वारा मतिराम के दोहों को नाद सौंदर्य में बिहारी से श्रेष्ठ मानने की धारणा व्यक्त की।

इसके अतिरिक्त शुक्ल जी द्वारा देव के आचार्यत्व को अस्वीकृत कर उन्हें मौलिक चिंतक मानने तथा मतिराम की तरह उनमें सहज प्रतिभा का अभाव देखने के प्रसंग को उभार कर शर्मा जी कहते हैं-- शुक्ल जी ने देव की मौलिकता में मूल को खोज निकाला है और छल संचारी की उद्भावना को मौलिक कहकर देव की तारीफ करने वालों का खण्डन देव की सूझ में मौलिकता का अभाव और संचारियों से भावों की संख्या अधिक होने के कारण को प्रस्तुत किया है। और शुक्ल जी द्वारा देव की सरसता को भाव-निर्वाह पर निर्भर मानने की धारणा को व्यक्त किया। शर्मा जी के अनुसार मतिराम की तरह पद्माकर में भी शुक्ल जी को सहज कवि प्रतिभा के लक्षण मिलते हैं। उन्होंने पद्माकर में अतिरंजित चित्रों का अभाव और भाषा में लाक्षणिकता को देखा है।

डॉ. शर्मा आचार्य शुक्ल जी द्वारा किये गये रीतिकालीन साहित्यकारों के विश्लेषण को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -- "शुक्ल जी ने रीतिकालीन कवियों पर विस्तार से नहीं लिखा यदि लिखे होते तो रीतिकालीन कवियों की रचनात्मक मौलिकता व्यक्त हो जाती।" अर्थात् शुक्ल जी ने सामंती साहित्य के चमत्कारवाद की सीमाओं को दिखाकर उससे काव्य के स्वाभाविक विकास में उत्पन्न होने वाली बाधा को स्पष्ट किया है तथा कवियों और आलोचकों को यथार्थवाद की भूमि पर बढ़ने की प्रेरणा दी है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा आचार्य शुक्ल की रीतिकालीन समीक्षा के अध्ययन के क्रम में डॉ. नगेन्द्र द्वारा रीतिकाल विषयक व्यक्त अवधारणाओं का खण्डन शुक्ल जी की मान्यताओं के आधार पर करते हैं जिसका अध्ययन डॉ. नगेन्द्र विषयक समीक्षा साहित्य के अन्तर्गत इसी अध्याय में विस्तार से किया जायेगा।

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी गद्य का विकास और भारतेन्दु काल के सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए शुक्ल जी द्वारा हिन्दी भाषा और हिन्दी गद्य के विकास को सामाजिक विकास के साथ सम्बद्ध करके देखने की प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा भारतेन्दु के खड़ीबोली के प्रसार का सम्बन्ध व्यापार से जोड़कर देखने के सूत्रों और व्यापारी जातियों के फैलने के साथ खड़ीबोली के प्रसार को सम्बद्ध करने की पद्धति को उचित मानने की धारणा को भी प्रस्तुत करते हैं। और उन्होंने शुक्ल जी द्वारा बाजारों के साथ खड़ीबोली के प्रसार का सम्बन्ध जोड़ना उनकी सूझ-बूझ का श्रेष्ठ प्रमाण माना है। उनके अनुसार शुक्ल जी ने खड़ीबोली के प्रचलित रूप के आधार पर ही हिन्दी गद्य का विकास दिखलाया है और प्रमाणस्वरूप उन्होंने लल्लू जी लाल से पहले के हिन्दी गद्य के नमूने दिये। वे शुक्ल जी द्वारा बालमुकुन्द गुप्त की शैली की प्रशंसा करते हुए वे उर्दू के अच्छे लेखक होने के कारण उनकी हिन्दी बहुत अच्छी चली हुई और फड़कती हुई मानते हैं।

भारतेन्दुयुगीन साहित्य की समीक्षा करते हुए शुक्ल जी द्वारा व्यक्त मान्यताओं के विषय में शर्मा जी का कहना है कि उन्होंने भारतेन्दुयुगीन लेखकों में काव्याभास गद्य कहकर लल्लू जी लाल की सारी

कमजोरियों को जाहिर कर दिया है और इंशा अल्ला खाँ के लेखन में कुछ विचित्रताओं के होते हुए भी बड़ी प्यारी ठेठ घरेलु ठेठ भाषा के व्यवहार को देखा है। और प्रेमघन के लम्बे वाक्य पद-विन्यास के मध्य विराम-स्थलों को देख इंशा और लल्लू जी लाल का स्मरण करते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा रूढ़िवादी शैली के दोष बताते हुए नया-साहित्य अयथार्थवाद की ओर बढ़ने के कारण उसमें लम्बे वाक्य, बीच-बीच में अनुप्रास और चमक-दमक आदि यथार्थवादी रुझान के विरुद्ध उत्पन्न होने की स्थिति से अवगत करवाने की बात कहते हैं। उनके अनुसार शुक्ल जी ने इस चमत्कार का सम्बन्ध निर्भीकता के साथ संस्कृत के चमत्कारवादी साहित्यिक गद्य-शैली से जोड़ उसका विरोध किया था और संस्कृत गद्य के चमत्कारवादियों की सीमाओं को व्यक्त किया। और शुक्ल जी ने भारतेन्दुकालीन लेखकों के सामान्य गुण उनकी सजीवता या जिन्दादिली का जिक्र किया है तथा राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह से भिन्न हरिश्चन्द्र मंडल के लेखकों में उन्होंने चपलता, स्वच्छता और उमंग की तारीफ की है। इसके अतिरिक्त वे ब्रिटिश भक्त आलोचकों के विपरीत शुक्ल जी द्वारा भारतेन्दु युग के साहित्य का साम्राज्य-विरोधी पक्ष और उसका स्वाभाविक जन-जीवन से उत्पन्न होने वाला पक्ष उभारने का उल्लेख करते हैं। क्योंकि शुक्ल जी ने भारतेन्दु-युग की जिन्दादिली और मौलिकता से बाद के साहित्य की तुलना की है। और उन्होंने द्वितीय उत्थान के लेखकों में भारतेन्दुयुगीन सामाजिकता नहीं पाया जिसका कारण शर्मा जी सामूहिक रूप से हिन्दी लेखकों का जन-जीवन से भारतेन्दु युगीन लेखकों के समान सम्पर्क न होना बताते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा

भारतेन्दु-युग के नवजागरण का श्रेय तथा हिन्दी गद्य के विकास का श्रेय अंग्रेज़ों को न देकर उस युग के साहित्य पर जन-जीवन का रंग देख उसकी मौलिकता की दाद देने और उनकी जिन्दादिली को उनकी मौलिकता की दाद देने और उनकी जिन्दादिली को उनकी मौलिकता मानने की धारणा को प्रस्तुत करते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा भारतेन्दु-युग की कविता की नयी विषय-वस्तु का स्वागत करने और भारतेन्दु युगीन कविता की नयी विषय-वस्तु का स्वागत करने और भारतेन्दु युगीन कविता की सीमाओं से परिचित होने के कारण उनके द्वारा उस युग की कविता की अपेक्षा निबन्धों की प्रशंसा करने के संदर्भ को प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि आचार्य शुक्ल जी काव्य लक्षणों की माँग करते हुए कविता में संकल्प की दृढ़ता, अवसाद और खिन्नता के बदले आवेश और उत्साह का तथा वेदना के बदले न्याय को आग्रह करते हैं। और उनके द्वारा नयी कविता के तीसरे उत्थान से अंग्रेज़ों के प्रति कृतज्ञता का भाव, देशभक्ति में राज-भक्ति का स्वर मिलने, दयामय भगवान् को पुकारने, देशवासियों को कोसने आदि की सीमाओं को उभारते हुए भारतेन्दु युग की तुलना करने तथा द्विवेदी-युग के पश्चात् की परिस्थितियों के परिवर्तन को सारगर्भित और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने के प्रसंगों को उजागर किया।

इसके अतिरिक्त शुक्ल जी द्वारा छायावाद का विरोध करने के पीछे कारण यथार्थ मानव-जीवन के उनके प्रेम को माना क्योंकि वह साहित्य को परोक्ष-चिंतन, रहस्यवाद, अटपटी और दुरूह शैली से बचाना चाहते थे। तथा भाग्यवाद, निराशावाद और पश्चिमी कविता के पतनशील रुझानों से हिन्दी साहित्य की जातीय परम्परा की रक्षा करना चाहते थे।

उनके अनुसार जहाँ छायावादी कवि रहस्यवाद और निराशावाद से बचाकर यथार्थ जीवन का चित्रण कर सके हैं वहाँ शुक्ल जी ने बराबर उन्हें सराहा है जहाँ वे इन गलत स्थानों से प्रभावित हुए वहाँ बराबर उनका विरोध किया है। क्योंकि शुक्ल जी चाहते थे कि साहित्य में रोमांटिक कविता या स्वच्छन्दवाद का प्रसार हो लेकिन यह धारा स्वाभाविक हो, विषय-वस्तु में रहस्यवाद और रूप में अटपटापन लिए हुए न हो वह सच्ची रोमांटिक कविता के लिए लोक-गीतों को आधार बनाना जरूरी समझते थे। वे आचार्य शुक्ल की आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियों से सम्बद्ध धारणा और दृष्टि को व्यक्त करते हुए उनके द्वारा स्कॉटलैण्ड के कवि बर्न्स की प्रशंसा करने के प्रसंग को उभारते हैं जिससे शुक्ल जी की जनवादी दृष्टि और आधार का बोध होने के साथ-साथ उनकी रोमांटिक धारा की समर्थक दृष्टि का आभास होता है। शर्मा जी छायावादीधारा के प्रति उनके दृष्टिकोण और अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "शुक्ल जी ने श्रीधर पाठक को स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक और श्रीराम नरेश त्रिपाठी को उनका अनुवर्ती बतलाया और मुकुटधर पाण्डेय को भी उन्होंने नूतन स्वच्छन्द मार्ग पर चलने वाला कवि कहा है क्योंकि वे रहस्यवाद और शैली की अति लाक्षणिकता का विरोध करते हैं।"[1] उनके अनुसार शुक्ल जी ने अपने व्यावहारिक तर्क के अनुसार प्रसाद जी, निराला और पंत आदि के काव्य की समीक्षा कर अनेक दोषों को प्रस्तुत किया। शर्मा जी बताते हैं कि "प्रसाद जी अपने आनन्दवाद और रहस्यवाद को एक ही चीज मानते थे, निराला का अद्वैतवाद और उसकी विरोधी धाराएँ मायावाद का खण्डन आदि रहस्यवाद कहलाता था और पंत जी दर्शन में

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 161

सबसे कच्चे लेकिन छायावाद की कमजोरियों के सबसे अच्छे प्रतिनिधि रहे हैं।" इसी कारण शुक्ल जी ने छायावाद को सीमित अर्थ में लिया मानना अनुचित माना है। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा छायावाद का ऐतिहासिक विवेचन न करने पर भी उसकी वास्तविक विशेषताओं पर आक्रमण करने की दृष्टि को सही बताया। क्योंकि शुक्ल जी ने रहस्यवाद को नयी कविता के लिए सबसे घातक विचारधारा माना है। उन्हें रहस्यवादी कविता का प्रचलित भाव-व्यापार दरबारी कवियों के नायिका भेदी संसार के समान कृत्रिम लगने का मत-व्यक्त किया। उनके अनुसार उपनिषदों से लेकर योग मार्ग तक का हवाला देकर रहस्यवाद को भारतीय साबित करने वाली दलिलों से शुक्ल जी को संतोष नहीं होता वह उसे विदेशी चीज कहते हैं, रहस्यवादियों पर अभारतीय होने का दोष लगाते हैं। और उन्होंने काव्य में रहस्यवाद शीर्षक अपने निबन्ध में रहस्यवाद पर विस्तार से सैद्धांतिक विवेचन करते हुए हल्ला बोला है।...आचार्य शुक्ल रहस्यवादियों को ज्ञान का दावेदार बनते देखकर असभ्य और पिछड़ी हुई जातियों के अन्ध-विश्वासों को याद करते हैं।[1]

शर्मा जी शुक्ल जी के"काव्य में रहस्यवाद" निबन्ध में आ. शुक्ल की वैचारिक असंगतियाँ देखते हुए उनके द्वारा रहस्य-भावना को रमणीय और मधुर कहने तथा उसे कवियों का एक मूड़ मानने को तैयार होने परन्तु किसी वाद से जोड़कर काव्य का सिद्धांत मंजूर न करने बल्कि वाद के संदर्भ में उसे साम्प्रदायिक कहने के प्रसंगों को उभारा है।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 162

शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा प्राचीन भारतीय तर्क शास्त्रियों की तरह किसी भी विचारधारा का विरोध करने के लिए उसे अभारतीय कहने की पद्धति का उपयोग करने की धारणा को व्यक्त कर उसका खण्डन करते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा जायसी के परोक्ष प्रेम को, सूर और मीरा तक को, अभारतीय सूफी मत से प्रभावित बतलाने, नये रहस्यवादियों का विरोध करने के लिए पुनः अभारतीयता की दुहाई देने के प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं किंतु छायावादी कवियों द्वारा उपनिषदों आदि का हवाला देकर रहस्यवाद को भारतीय सिद्ध करने पर शुक्ल जी द्वारा पैतरा बदलकर रहस्यवाद को साधना की चीज मान लेने, परन्तु काव्य की चीज न मानने की धारणा और वैचारिक असंगति को उद्घाटित किया है। और उसका कारण शुक्ल जी के सम्मुख रहस्यवाद का वर्ग आधार स्पष्ट न होना माना है। डॉ. शर्मा के अनुसार उनके सम्मुख मध्यकालीन, आधुनिक पश्चिमी और भारत के रोमांटिक कवियों के रहस्यवाद का अन्तर भी स्पष्ट न था इसलिए उन्होंने सभी का एक साथ विरोध किया है। परन्तु शुक्ल जी द्वारा भाग्यवाद पर हमला कर वस्तुवाद के समर्थन में दिये गये तर्क को अकाट्य और मूल्यवान बताया है।

शर्मा जी ने शुक्ल जी द्वारा काव्यानुभूति को प्रत्यक्ष जीवन की अनुभूति मानने उसकी वास्तविकता स्वीकारने तथा जगत् के ज्ञान को इंद्रियबोध के आधार पर बोधगम्य बनाने की धारणा को व्यक्त किया। और उनके द्वारा यूरोप की कविता में अज्ञात के लिए प्रेम उमड़ने के संदर्भ में सीधे जर्मन दार्शनिकों के प्रत्ययवाद *(Idealism)* का खण्डन करने तथा संसार की और मनुष्य के ज्ञान की वस्तुगत सत्ता स्वीकारने की दृष्टि को

प्रकट किया। साथ ही उनके द्वारा छायावादी कविता की रहस्यवादी विषय-वस्तु के अलावा उसके निराशावाद, अबुद्धिवाद, भाग्यवाद आदि का भी खण्डन करने की प्रवृत्ति को उभारा। उनके अनुसार शुक्ल ने छायावादी कवियों में निराला को सबसे बहुमुखी प्रतिभा कवि माना है, शुक्ल जी निराला में रहस्यवादी उड़ान और मर्मपीड़ा के हृास वाली शैली सबसे कम पाते हैं। क्योंकि निराला हिन्दी साहित्य की यथार्थवादी धारा के सबसे निकट थे। तथा प्रसाद जी सुख सौन्दर्य के कवि हैं, परोक्ष चिंतन बहाना मात्र है।[1] परन्तु छायावादी कवियों ने जहाँ भी लोक-जीवन पर लिखा है शुक्ल जी ने उसका स्वागत किया और उन्होंने प्रसाद द्वारा कर्ममय जीवन के विशद चित्र प्रस्तुत न करने तथा पंत जी की रहस्य भावना को साम्प्रदायिकतावाद से मुक्त स्वाभाविक बताया। वे पल्लव की भूमिका को प्रतिभा के उत्साह का श्रेष्ठ-प्रदर्शन मानते हुए अंग्रेजी कविता से भाव और प्रयोग लेने की प्रवृत्ति को दोष-पूर्ण बताते हैं।

अतः डॉ. शर्मा आचार्य शुक्ल द्वारा की गई छायावादी समीक्षा का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "नयी कविता के विवेचन में शुक्ल जी ने द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक कविता की सीमाएँ दिखाकर रहस्यवाद का खण्डन किया और कविता से निराशावाद, भाग्यवाद अति लाक्षणिकता की शैली को दूर करने का आग्रह किया है यद्यपि छायावाद की व्याख्या ऐतिहासिक दृष्टि से सही नहीं है और रहस्यवाद को अभारतीय कहने से उसका खण्डन नहीं होता फिर भी शुक्ल जी ने

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 180

छायावादी कवियों की लोक-जीवन से सम्बद्ध कविताओं का समर्थन किया है और लोकगीतों की परम्परा से जोड़ते हुए सच्ची रोमांटिक भाव-भूमि पर विकसित करने का सुझाव दिया है।"[1] इसके अतिरिक्त शर्मा जी आचार्य शुक्ल के इतिहास, जातीयता और साहित्य-विषयक विचारों और अवधारणाओं की समीक्षा करते हुए शुक्ल जी द्वारा अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की खोजों से लाभ उठाने और जायसी पर अनुसंधान परक कार्य करने की प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं। परन्तु इससे भी अधिक महत्व शुक्ल जी द्वारा इतिहास के अध्ययन की एक व्यवस्थित पद्धति कायम करने की प्रवृत्ति का माना है। वे शुक्ल जी द्वारा हिन्दी साहित्य इतिहास की काल विभाजन व्यवस्था में कालक्रम और किसी साहित्यिक धारा की विशेषताएँ मिलाने की कोशिश करने का कारण उनके द्वारा इतिहास एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति हेतु लिखा जाना बताते हैं। वे डॉ. नगेन्द्र द्वारा आचार्य शुक्ल की काल-व्यवस्था को स्वीकारने तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा आदिकाल से छायावाद तक उन्हीं धाराओं के हिसाब से इतिहास लेखन करने परन्तु आदिकाल और आधुनिक काल का नाम यथावत स्वीकार कर मध्यकाल छोड़ देने के अन्तर को उद्घाटित करते हैं। उनका कहना है कि"आदि है और आधुनिक है तो मध्य भी होना चाहिए। उसे छोड़ने का कोई संगत कारण नहीं दिखाई देता है। और आदिकाल की मुख्यधारा को भी उन्होंने व्यक्त नहीं किया है। किंतु द्विवेदी जी द्वारा, शुक्ल जी द्वारा प्रतिपादित साहित्यिक धाराओं और प्रवृत्तियों को ही मुख्य रूप से स्वीकार करने की बात कही। और मध्यकाल का नाम लेते हुए भक्ति और रीतिकालों की चर्चा करने का उल्लेख किया है। अर्थात

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 183 §पु. सं.§

शर्मा जी आचार्य शुक्ल की इतिहास-लेखन की पद्धति और आधार को द्विवेदी जी द्वारा स्वीकार करने और प्रतिपादित करने का उल्लेख करते हैं।

शर्मा जी आचार्य शुक्ल द्वारा हिन्दी गद्य और भाषा के विकास को अंग्रेज़ों की कृपा का फल न मानते हुए अपनाई गई खण्डनात्मक प्रवृत्ति का स्त्रोत अंग्रेज़ों द्वारा हिन्दी जातीयता की भावना के विकास में अवरोध मानने की दृष्टि स्वीकार करते हैं। और प्रमाणस्वरूप शुक्ल जी के इस मत को व्यक्त करते हैं -- "अंग्रेज़ी या संस्कृत या अरबी-फारसी जानने से हिन्दी की जानकारी नहीं हो पाती। हिन्दी का अपना जीवन है, अपनी विशेषताएँ हैं इन्हें सीखे, समझे बिना कोई हिन्दी लेखक नहीं बन सकता।"[1] उन्होंने शुक्ल जी द्वारा हिन्दी लेखक होने की अपेक्षा अंग्रेज़ी-संस्कृत या अरबी-फारसी का विद्वान कहने-कहलवाने में ज्यादा गौरव समझने वालों को फटकारने के प्रसंग को उभारा है। और अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित होकर निराशा और दुःखवाद की अभिव्यक्ति करने वाले लेखकों द्वारा हिन्दी के अभावों की पूर्ति हेतु दुःखवाद की माँग करने पर उन्हें फटकारते हुए शुक्ल जी द्वारा बौद्धों के दुःखवाद के संस्कार का जर्मनी के शोपनहावर से होता हुआ हार्डी तक पहुँचने की क्रिया जानने की आवश्यकता व्यक्त करने की अवधारणा को उनकी समीक्षा का उचित रूप दर्शाया। उनके अनुसार शुक्ल जी साहित्य में आशा-उल्लास, जीवन में आस्था, मानव-शक्ति में विश्वास के हामी थे। शुद्ध कलावादियों और निराशावादियों का विरोध करते हुए शुक्लजी

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 179

द्वारा शैली और बर्न्स जैसे जनवादी कवियों की प्रशंसा करने की प्रवृत्ति को उनके अंतर्राष्ट्रीयतावाद का प्रमाण माना है। आ. शुक्ल जी ने पतनशील कवियों का विरोध करने के साथ-साथ शैली की क्रांतिकारी चेतना की भी दाद दी है और बर्न्स की सच्ची रोमांटिक भावधारा से शिक्षा लेने एवं जर्मनी के भाव-शास्त्रियों का खण्डन कर वहाँ के महान कवि गेटे की प्रशंसा की है। शर्मा जी आचार्य शुक्ल द्वारा बंगाल के गलत प्रभाव से सावधान करते हुए अति-रंजित शैली और हिन्दी के लिए भौंडे शब्द लेने वाले हिन्दी लेखकों की आलोचना करना सही माना है। परन्तु शुक्ल जी ने बंगला के प्रभाव से बहुत ही परिमार्जित और सुन्दर संस्कृत पद-विन्यास की परम्परा को हिन्दी में विकसित करने की प्रवृत्ति की प्रशंसा भी की है। किंतु उन्होंने बंगला कविता के रहस्यवाद का भी विरोध किया है। शर्मा जी उनके द्वारा अरबी-फारसी के शब्दों से लदी हुई उर्दू की संस्कृताचार्यों के अन्धानुकरण की आलोचना करने की प्रवृत्ति को उभारते हैं। उनके अनुसार "कविता क्या है" निबन्ध में शुक्ल जी द्वारा कही गई बातें साहित्य के विस्तृत रूप में ही अर्थ की सार्थकता रखती है। अतः शुक्ल जी की धारणा को यूनानी विचारक अरस्तु से जोड़ते हुए उनके द्वारा साहित्य के लोक-पक्ष पर विशेष बल देने की बात कही।

शर्मा जी का कहना है कि नाटक और काव्य रूपों में अन्तर स्पष्ट करने के लिए आचार्य शुक्ल ने भारतीय साहित्य-शास्त्र का हवाला देकर नाटक के लक्ष्य को स्पष्ट किया है तथा काव्य-चर्चा के समान ही नाटक चर्चा में उन्होंने रस-सिद्धांत को सूत्र रूप में ही लिया है संस्कृत साहित्य में

उसके विशेष विस्तार को स्वीकार नहीं किया। उनके द्वारा बाण और दण्डी के गद्य के साथ-साथ संस्कृत साहित्य की रूढ़ि विशेष का खण्डन करने की प्रवृत्ति को रीति-ग्रंथों के विरोध का प्रमाण माना है। और नाटक को शुद्ध गद्यात्मक बनाने वाली यूरोपीय पद्धति और नाटकों से काव्यत्व हटाने की प्रवृत्ति उन्हें सह्य न होने की बात कही। शुक्ल जी द्वारा हिन्दी नाटकों में काव्यत्व की रक्षा और यथार्थ चरित्र विधान को महत्व देने की धारणा को प्रस्तुत किया। शर्मा जी के अनुसार शुक्ल जी ने नाट्य रचना के पुराने बन्धन ढ़ीले करके उसमें शील वैचित्र्य लाने और नाटक का रूप विकृत न होने देने की जरूरत पर बल दिया है।

इसके अतिरिक्त शुक्ल जी के उपन्यास विषयक दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी उनके द्वारा उपन्यास को समाज-सुधार का प्रबल अस्त्र और शक्ति मानने की धारणा को व्यक्त करते हैं। और शुक्ल जी की इस अवधारणा का कारण प्रेमचन्द और प्रसाद के उपन्यासों में शुद्ध मानव-चित्रण के बदले वर्गों की परस्पर स्थिति पर विचार करना शुक्ल जी की आलोचना-पद्धति के अनुकूल होना बताया है। क्योंकि शुक्ल जी का आग्रह उपन्यासकार द्वारा सर्व-सामान्य के जीवन को अभिव्यक्त करने के पक्ष में रहा है। अपनी इस अवधारणा और कसौटी के आधार पर उन्होंने प्रेमचन्द के यथार्थ-चित्रण और बंगला से अनूदित सर्व-सामान्य जीवन के मार्मिक चित्रों से परिपूर्ण उपन्यासों की प्रशंसा की है। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों के विशद विकास को विस्तृत रूप में अभिव्यक्त करने के प्रसंग को भी उभारा है। और शुक्ल जी द्वारा उपन्यास की तरह निबन्ध को भी साहित्य का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग मानने की धारणा को व्यक्त किया।

शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा आलोचना में रूढ़िवाद का बहुत ही स्पष्ट और तीव्र खण्डन करने, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों को नई आलोचना का जन्मदाता मानने की धारणा को व्यक्त करते हुए कहते हैं शुक्ल जी से पूर्व यह नई आलोचना बहुत ही अविकसित दशा में थी जो आलोचना के रूप में रीतिकालीन परम्परा का ही विस्तृत रूप रहा है। और शुक्ल जी ने इस निर्जीव परम्परा के खण्डन की ओर विशेष ध्यान दिया था। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा संस्कृत साहित्यालोचन की गुणदोष विवेचन सम्बन्धी रूढ़ियों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनकी सैद्धांतिक चर्चा और अनेक कवियों की प्रतिभा की मार्मिक व्याख्या करने की दृष्टि को उजागर किया है। और उनके अनुसार आचार्य शुक्ल ने हिन्दी में व्याप्त रूढ़िवादी आलोचना के सन्दर्भ में मिश्र बन्धुओं और पं. पद्म सिंह शर्मा की आलोचनात्मक पद्धति को कवि प्रतिभा की मार्मिक व्याख्या करने में असमर्थ बताया है। और उन्होंने पण्डितों में प्रचलित पुराने ढंग की आलोचना का उदाहरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को बताया। शर्मा जी ने आ. शुक्ल द्वारा साहित्य की मूल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए रीतिकाल के बदले यथार्थवाद के अनुकूल नये साहित्य सिद्धांतों की प्रतिष्ठा, रूढ़िवादी साहित्य का विरोध और नये राष्ट्रीय और जनवादी साहित्य का समर्थन करने तथा दूसरे आलोचकों की नुक्ताचीनी करते हुए आलोचना के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली नयी रूढ़ियों और तर्क-संगत पद्धति के स्थान पर गद्य काव्य रचने की प्रवृत्ति के बढ़ाव के प्रति हिन्दी लेखकों को सावधान करने की प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है। और शुक्ल जी द्वारा आलोचना के रूप पर विचार करते हुए अलंकार और रस निरूपण वाली पद्धति की सीमाएँ बतलाने की बात कही।

डॉ. रामविलास शर्मा आचार्य शुक्ल जी के चिंतामणि में संकलित निबन्धों का विश्लेषण करते हुए उन निबन्धों का सम्बन्ध मनोविज्ञान से बताते हैं। और उन्होंने इन निबन्धों को शुक्ल जी के साहित्यालोचन का मनोवैज्ञानिक आधार स्वीकार किया है। तथा इनमें शुक्ल जी द्वारा रीति-शास्त्र के भाव-विवेचन को और पश्चिम के मनोविज्ञान को अपने विवेचन का आधार न बनाने की बात कही। परन्तु शुक्ल जी की स्थापनाओं को मौलिक मानते हुए साहित्य-शास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण देन बताया है।

शर्मा जी के अनुसार शुक्ल जी के साहित्यालोचन का वस्तुवादी सूत्र यह है कि शब्द काव्य की सिद्धि के लिए वस्तु काव्य का अनुशीलन परम आवश्यक है।[1] वे शुक्ल जी द्वारा मानव के विकास के साथ उसके ज्ञान-प्रसार और भाव-सार का विकास दिखाने की प्रवृत्ति को उभारते हैं। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा मनुष्य की रुचि और भावना के आधार को पहचान कर सामंती संस्कारों और सामंती साहित्य-शास्त्र का बार-बार खण्डन करने तथा आई. ए. रिचार्ड्स की प्रशंसा करने के प्रसंगों को उजागर किया। उनके अनुसार भावों की अनुभूति का नाम ही रस है। इसी कारण शुक्ल जी द्वारा काव्य या कला को अभिव्यंजना मानने वाले क्रोचे का खण्डन करने के साथ-साथ कहीं-कहीं दबी जबान से भावानुभूति स्वीकार भी कर लेने की प्रवृत्ति को उनके अंतर्विरोध का प्रमाण बताया। और शुक्ल जी द्वारा पश्चिमी विचारकों द्वारा साहित्य की गोचरता को इंद्रियबोध और रूपरंग की सुन्दरता तक सीमित कर देने का विरोध करना सही बताया है।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 193

शर्मा जी के अनुसार साहित्य या कला की गोचरता का सिद्धांत शुक्ल जी के ज्ञान-शास्त्र का ही परिणाम है। इस तरह के ज्ञान शास्त्रों का विरोध करने के बाद शुक्ल जी ने अपना वैज्ञानिक सिद्धांत रखा है जो मनुष्य के बौद्धिक चिन्तन का विकास इंद्रिय-ज्ञान के आधार पर ही हुआ है। शुक्ल जी प्रत्यक्ष या स्मरण द्वारा जागृत वास्तविक अनुभूति को विशेष दशाओं में रसानुभूति की कोटि में मानते हैं। उनकी इस स्थापना को शर्मा जी ऐडिसन के चिन्तन से बहुत दूर बताते हैं। और बौद्धिक चिन्तन, इन्द्रियबोध और भावन का समन्वय साहित्य की विशेषता मानते हुए इसके मौलिक व्याख्याता आचार्य शुक्ल को बताते हैं। परन्तु शुक्ल जी को अंग्रेज़ी आलोचकों में ऐडीसन के सबसे ज्यादा निकट पाया है। क्योंकि ऐडिसन ने कल्पना के सिद्धांत द्वारा काव्य की विशेषता उसके रूप-विधान को माना है किंतु शुक्ल जी ने कल्पना का सम्बन्ध भावानुभूति से जोड़ा है। और शुक्ल जी द्वारा क्रोचे के सौन्दर्य-शास्त्र का खण्डन करते हुए यूरोप के आत्मवाद या आइडियलिज्म का भी खण्डन करने तथा उसके प्रतिक्रियावाद की जड़ पर आघात करने की पद्धति को उभारा है। शुक्ल जी क्रोचे द्वारा जिसे आत्मा के कारखाने का निकला हुआ माल समझने के विपरीत उसे व्यवहार जगत् का ही प्रतिबम्ब सिद्ध करते हैं। परन्तु शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा अपवाद रूप से आत्मवादी विचारधारा की ओर झुकने पर क्रोचे की उपर्युक्त धारणा से मिलती-जुलती अभिव्यक्ति करने की बात कहते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा शुक्ल जी के आलोचनात्मक कार्यों के विवेचन के क्रम में उनके दार्शनिक दृष्टिकोण को समझने में "विश्व-प्रपंच" की

भूमिका को सहायक मानते हैं। वे शुक्ल जी द्वारा पादरियों के धर्म का खण्डन करने वाले हैं कल को जगद्विख्यात प्राणी तत्ववेत्ता मानने की धारणा को व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार शुक्ल जी है कल के बाद की वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करके मूल विवेचन को अपने युग के पाठक के लिए पूर्ण बनाया है तथा भूमिका के प्रथम भाग में आधुनिक भौतिक-शास्त्र के कतिपय तत्वों का परिचय और उसके बाद जीव-शास्त्र और डारविन के विकासवाद का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर अंतिम अंश में भौतिकवाद और भाववाद या अध्यात्मवाद के पक्षों के विभिन्न तत्वों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र आदि अन्य विज्ञानों का प्रसंगानुसार जिक्र आया है।[1] और उन्हें डारविन की विचारधारा से प्रभावित ही नहीं वरन् उसे सामाजिक क्षेत्र में स्वयं भी लागू करने की बात कहते हैं। वे शुक्ल जी के विकासवाद विषयक दृष्टिकोण और धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए मानते हैं कि "ऐतिहासिक भौतिकवाद की मान्यताओं के अनुरूप शुक्ल जी के लिए कोई शाश्वत ईश्वर विरचित या ऋषिकृत कर्तव्य शास्त्र नहीं है बल्कि शुक्ल जी ने भारतीय समाज को असभ्यता से सभ्यता की ओर अन्य देशों के समान विकसित होते हुए देखा है।" इस विकासवादी दृष्टिकोण के कारण शुक्ल जी द्वारा साहित्य का अध्ययन करते हुए उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि की चर्चा करने, दरबारों और उससे सम्बद्ध काव्यधारा की नुक्ताचीनी करने और जनता से सम्बन्धित साहित्य का समर्थन करने की दृष्टि को महत्वपूर्ण माना है। और शुक्ल जी की सबसे बड़ी देन यह स्वीकार की है कि "उन्होंने हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना को एक ठोस दार्शनिक आधार दिया चूँकि शुक्ल जी के समय में ही पूँजीवादी सामंती

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 11 (पु. सं.)

राजनीतिज्ञों और उनके सांस्कृतिक प्रतिनिधियों ने अध्यात्मवाद का धुँआधार प्रचार किया था जिसके विरुद्ध शुक्ल जी प्रायः अकेले थे।[1]

इस प्रकार डॉ. शर्मा आचार्य शुक्ल की समीक्षा-दृष्टि का विवेचनात्मक अध्ययन करते हुए उनके द्वारा "कला कला के लिए" सिद्धांत के विरोध किये जाने का, जीवन से पृथक सौन्दर्य की सत्ता न स्वीकारने वाली दृष्टि का, अन्याय और शोषण के विरोध में तालस्तायवादी निष्क्रिय प्रतिरोध को अमान्य घोषित करने का, साहित्य में कलाबाजी एवं चमत्कार-प्रदर्शन को महत्वहीन मानने तथा कोरे अध्यात्म तथा रहस्यवाद को नकारने की दृष्टि का और रीतिकालीन नायिका-भेद वाली समीक्षा-शैली को तोड़ने एवं अन्याय और शोषण के विरुद्ध क्षत्रिय धर्म को समर्थक देने की पद्धति का, संसार को सत्य और जगत् को ज्ञान का आधार मानने की दृष्टि का, जायसी को इस्लाम का प्रच्छन्न प्रचारक न मान अवध की लोक-संस्कृति का कवि स्वीकारने और सिद्धों, नाथों और हठयोगियों की अपेक्षा संतों को भारतीय जनता के नवजागरण का संवाहक घोषित कर भक्तिकालीन साहित्य को भारतीय जनता के जनवादी सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में आँकने की पद्धति का उद्घाटन किया और रीतिकालीन सामंती साहित्यिक दृष्टिकोण का विरोध करने, भारतेंदु-युग के राष्ट्रीय तथा समाज सापेक्ष साहित्य की प्रशंसा करने एवं छायावादी कविता में लोक-जीवन के यथार्थ का समर्थन करने की पद्धति और सिद्धांतों की प्रशंसा करते हुए समर्थन व्यक्त किया है। तथा शुक्ल जी के इन आलोचनात्मक कार्यों के आधार पर ही उन्हें यथार्थवादी समीक्षा का प्रस्तोता स्वीकार किया।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 12

शर्मा जी ने आचार्य शुक्ल विषयक समीक्षा-साहित्य के अध्ययन हेतु उनके सम्पूर्ण आलोचनात्मक कार्यों को संत साहित्य में योगियों की भूमिका, जायसी का प्रेम-मार्ग, भक्ति का विकास और सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, दरबारी काव्य-परम्परा हिन्दी गद्य का विकास और भारतेन्दु काल, नयी हिन्दी कविता और छायावाद, इतिहास जातीयता और साहित्य के रूप, निबन्ध-रचना शैली और व्यक्तित्व शीर्षक के अन्तर्गत विभक्त किया है। और शुक्ल जी की भक्तिकाल से आधुनिक काल तक की विभिन्न विधाओं से सम्बद्ध सामग्री को और शुक्ल जी के साहित्यालोचन तथा इतिहास-लेखन से सम्बन्धी विचारों का व्यापक स्तर पर विश्लेषण प्रस्तुत किया और हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में अ. शुक्ल को लेकर चलने वाले वैचारिक संघर्ष को समाप्त करने के लिए तथा आ. शुक्ल के सिद्धांतों के सम्बन्ध में व्यक्त भ्रान्त अवधारणाओं का खण्डन करते हुए समाज सापेक्ष आलोचक एवं संवर्धक के कार्यों के अवमूल्यन पर अंकुश लगाया है। तथा अपने आलोचकीय व्यक्तित्व की स्थापना के मोहांध समीक्षकों द्वारा दिये जा रहे गलत धारणाओं और भ्रान्त स्थापनाओं का कठोरता के साथ खण्डन कर उनकी आलोचना की है।

शर्मा जी ने आ. शुक्ल की आलोचना-दृष्टि और समीक्षात्मक कार्यों के मूल्यांकन के क्रम में उसमें व्याप्त असंगतियों को भी निर्देशित किया है जिससे शुक्लोत्तर आलोचना के विकास की वैज्ञानिक पद्धति स्पष्ट होती है। उन्होंने शुक्ल जी की सबसे बड़ी देन हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना को ठोस दार्शनिक आधार प्रदान करना माना है। परन्तु साथ ही आलोचना के लेखकों में शिवदान सिंह चौहान द्वारा शुक्ल जी के दृष्टिकोण

को एकांगी और समाज-शास्त्रीय कहने, नामवर सिंह द्वारा शुक्ल जी के इतिहास में सामाजिक परिस्थितियाँ तथा साहित्यकार साथ होने पर भी एक दूसरे से अलग होने का, आरोप लगाने, रांगेय राघव द्वारा शुक्ल जी के इतिहास विषयक दृष्टिकोण को शुद्ध ब्राह्मणवादी बताने के अतिरिक्त धीरेन्द्र वर्मा आदि की शुक्ल जी विषयक भ्रान्त अवधारणाओं का शुक्ल जी के समीक्षा साहित्य के विश्लेषण के क्रम में तर्क-पूर्ण तथ्य और प्रमाणों के आधार पर उत्तर देकर खण्डन किया है। और आ. शुक्ल की रस सम्बन्धी अवधारणा की प्रगतिशीलता तथा युगान्तरकारी मौलिक उपलब्धि को मूल्यांकित कर उनकी रस-निष्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा की प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों से भिन्नता व्यक्त की है। शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा फ्रायड को पिण्डदान करके काव्य को अतृप्त कामवासना की काल्पनिक पूर्ति मानने वाले अनेक आलोचकों का विरोध करने तथा पूर्व और पश्चिम के भाववादियों, साहित्य-शास्त्रियों के काव्य का उद्देश्य आनन्द मानने वाली धारणाओं को निर्मूल करने, साहित्य-शास्त्र से अवैज्ञानिक रहस्यवादी कल्पनाओं को बाहर करने, रीति-ग्रंथों का विरोध करते हुए उसके प्रभाव को घातक मानने, यथार्थवाद की भूमि से रीति-ग्रंथों की कृत्रिमता दिखलाने की प्रवृत्ति को उजागर कर उनके जनवादी सामंत विरोधी दृष्टि को व्यक्त किया है। और उनकी समीक्षा दृष्टि और पद्धति की संघर्षशीलता और जन-सामान्य की पक्षधरता तथा नयी संस्कृति के निर्माण की शक्ति से पूर्ण बताया है।

इसके अतिरिक्त शर्मा जी शुक्ल जी द्वारा साम्राज्यवादी उत्पीड़न का विरोध करने, पश्चिमी देशों की संस्कृति के मूल सूत्र व्यक्तिवाद को पकड़कर उसकी पतनशीलता को व्यक्त करने और अंग्रेज़ी

साहित्य की भोंडी और प्रगति-विरोधी प्रवृत्तियों की ओर से हिन्दी प्रेमियों और लेखकों को सावधान करने तथा यूरोप के अबुद्धिवादियों का मजाक उठाने के प्रसंगों को उभारा है। और शुक्ल जी द्वारा पूँजीवाद की मूल सांस्कृतिक स्थापना और उसकी निष्क्रिय प्रतिरोध का भी खण्डन करने, अन्याय अत्याचारी शोषण, अंध-विश्वास रूढ़िवादी, कलावादी, चमत्कारवादी,अलंकारवादी रूपों का विरोध करने, रहस्यवादी प्रवृत्ति में निष्क्रिय प्रतिरोध की भावना और अध्यात्मवादी रहस्य के रूप को देखने, कलात्मक सौन्दर्य की अनिवार्यता मानने की दृष्टि को प्रस्तुत किया है। और साथ ही आचार्य शुक्ल के ज्ञान की सीमाओं और जानकारी के अभाव तथा दृष्टि की अस्पष्टता के कारण उत्पन्न भ्रामकताओं का सही रूप में विश्लेषकर शुक्ल जी की भाषा, साहित्य-संस्कृति, आंदोलनों और क्रांति सम्बन्धी, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समझ को व्यक्त किया है। और शुक्ल जी के सम्मुख मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी भूमिका स्पष्ट न होने की शंका प्रकट की है। तथा शुक्ल जी द्वारा आवेश में आने के कारण व्यक्त हुई भ्रामक और गलत धारणाओं को भी व्यक्त किया है। उनके आलोचना-क्षेत्र की सीमाओं या परिधि की अभिव्यक्ति कर उनकी प्रेरणा स्त्रोत के रूप में जातीय सम्मान की भावना को देखा है। और उनके भारतेन्दु-युगीन साहित्य और साहित्यकार विषयक, छायावाद की प्रवृत्तियों के प्रति दृष्टिकोण, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना विषयक विचारों और अवधारणाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है। साथ ही आचार्य शुक्ल के साहित्यिक दृष्टिकोण, विवेचनात्मक पद्धति, तर्क-युक्त वैज्ञानिक शैली, जनवादी और समाज-शास्त्रीय दृष्टि को प्रस्तुत कर उनके समीक्षात्मक कार्यों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

डॉ. शर्मा शुक्ल जी की आलोचना दृष्टि की गंभीरता को उभारते हुए उसका आधार वस्तुवादी दृष्टिकोण मानते हैं तथा उन्हें भौतिक जगत् और मनुष्य के व्यवहार जगत् को सत्य स्वीकार करने वाले आलोचकों में स्थान देकर उनकी गम्भीरता का कारण उनकी तर्क और चिन्तन पद्धति को बताते हैं। जिसके द्वारा उन्होंने निर्माण के साथ ध्वंस को भी आवश्यक माना, माधुर्य के साथ भीषणता में भी सौन्दर्य देखा। तथा इसी पद्धति से रूप-विधान और भाव का सम्बन्ध इंद्रिय बोध और विचार का सम्बन्ध, साहित्य में सामान्य और विशेष का सम्बन्ध दर्शाया है। शुक्ल जी द्वारा विदेश के सामाजिक आंदोलनों से भारत का सम्बन्ध जोड़ने, क्रोचे आदि विचारकों और अंग्रेज़ी के इलियट आदि कवियों के हानिकर प्रभाव से हिन्दी लेखकों और पाठकों को सावधान करने के कार्य को महत्वपूर्ण बताया। हिन्दी और संस्कृत के दरबारी काव्य-परम्परा, चमत्कारवाद रहस्यवाद का विरोध करते हुए सामाजिक दृष्टिकोण अपनाने तथा उसके द्वारा मानवतावादी, सामंत-विरोधी देश-भक्ति, जन-प्रियता, सांस्कृतिक-प्रेम आदि अभिव्यक्त करने की दृष्टि को उजागर किया। और कहीं-कहीं तुलसी को महान् सिद्ध करने की धुन में साहित्य का सम्बन्ध धर्म से जोड़ने, हिन्दी और उर्दू का सम्बन्ध कहीं-कहीं साम्प्रदायिक वर्गों से देखने की खामियों को भी उजागर किया।

शुक्ल जी द्वारा साम्राज्यवाद और सामंतवाद की निर्मम आलोचना करते हुए मानव सम्बन्धों के आधार पर पूँजीवादी सभ्यता, यूरोपीय उपनिवेशवाद का वास्तविक रूप प्रस्तुत कर उसकी आलोचना करने की पद्धति को प्रशंसनीय माना। और उनकी काव्य-शास्त्रीय मान्यताओं

का दार्शनिक क्षेत्र और साहित्यालोचन का सामाजिक क्षेत्र में समान महत्व स्वीकार किया। उन्होंने शुक्ल जी की दृढ़ता, आत्मविश्वास और निर्भीकता को उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषताएँ और गुण बताया है। तथा उन्हें सहृदय आलोचक एवं तर्क-शास्त्री से अधिक भावुक साहित्य-प्रेमी माना है। और उनकी शैली को वैज्ञानिक विवेचन की शैली बताते हुए सारगर्भित वाक्य रचना की क्षमता को उनकी एक मुख्य विशेषता दर्शाया। और अंत में डॉ. शर्मा का कहना है कि किसी लेखक का कृतित्व ही उसका सच्चा व्यक्तित्व है, शुक्ल जी के कृतित्व का अब तक जो विवेचन हुआ है, उसी को उनके मेधावी व्यक्तित्व का विवेचन समझना चाहिए।"[1]

शर्मा जी शुक्ल जी की यथार्थवादी कसौटी द्वारा अद्भुत रस की उत्पत्ति होने, उनके निबन्धों द्वारा हिन्दी के काव्य-शास्त्र को एक नया मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक आधार प्राप्त होने की धारणा व्यक्त करते हैं। और उनकी निर्भीकता, दृढ़ता, गहन अध्यवसाय और आत्म-विश्वास के गुण उनके काव्य-सिद्धांतों और साहित्यालोचन की ही तरह हिन्दी-प्रेमियों के लिए शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक होने का मत प्रस्तुत किया है।

5.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की समीक्षा-दृष्टि की आलोचना

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी आचार्य शुक्ल विषयक कृति में "संत-साहित्य में योगियों की भूमिका" शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के वैचारिक अन्तर्विरोध व असंगतियों का विस्तृत रूप से विश्लेषण करते हुए संत-साहित्य को हिन्दी भाषी जनता के नवजागरण

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 208

तथा जातीय उत्थान का साहित्य बताया है। और आचार्य शुक्ल के इतिहास का विश्लेषण कर उसकी विकसित परम्परा को आदिकाल से लेकर छायावाद तक हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा शुक्ल जी के द्वारा विवेच्य धाराओं के क्रम में इतिहास लिखने की बात कही।

शर्मा जी इतिहास-लेखन में धाराओं की समानता व्यक्त करने के साथ-साथ अन्तर यह बताते हैं कि द्विवेदी जी ने आदिकाल की तरह आधुनिक काल नाम तो रखा है लेकिन मध्यकाल नाम छोड़ दिया है। अर्थात् ह.प्र. द्विवेदी जी ने नामकरण के क्रम में आदि और आधुनिक तो स्वीकार किया है किन्तु मध्य छोड़ दिया जबकि आदि और आधुनिक के बीच मध्य होना आवश्यक है उसे छोड़ने का द्विवेदी जी ने कोई संगत कारण नहीं दिखलाया है। शर्मा जी के अनुसार "द्विवेदी जी ने आचार्य शुक्ल द्वारा व्यक्त साहित्यिक धाराओं और प्रवृत्तियों को मुख्य माना है किन्तु आदि काल की मुख्य धारा को स्पष्ट नहीं किया है और साथ ही मध्य काल का नाम न लेते हुए द्विवेदी जी ने भक्ति और रीति-काव्यों की चर्चा की है।"[1] शर्मा जी का मानना है कि द्विवेदी जी ने इतिहास विषयक दृष्टि का मूलाधार आचार्य शुक्ल जी से प्राप्त करके उनके ऋण को स्वीकार करने से इंकार किया है। अपनी इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है कि "शुक्ल जी आदिकाल की मुख्यधारा वीरगाथा काव्य को मानने के कारण उसे वीरगाथा काल कहा है कि आ. द्विवेदीजी ने कालक्रम के अनुसार उसे आदिकाल कहते हुए किसी धारा या साहित्यिक प्रवृत्ति का नाम नहीं लिया परन्तु विषय-सूची में शुक्ल जी द्वारा चर्चा

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 172

की गई पुस्तकों का ही उल्लेख किया है।" इसका अभिप्राय शर्मा जी ने द्विवेदी जी द्वारा आचार्य शुक्ल के साहित्य-लेखन के समस्त लक्षणों का प्रयोग करते हुए उनका नाम न लेकर मौलिकता का भ्रम उत्पन्न करना माना है। और उन्होंने द्विवेदी जी द्वारा वीरगाथा काल के ग्रंथों को संदेह की दृष्टि से देखने के कार्य को मौलिक नहीं बल्कि शुक्ल जी का अनुकरण बताया है। उनके अनुसार ग्रंथों में हेर-फेर की खबर शुक्ल जी को भी थी लेकिन उन्होंने वीरगाथा काल का नाम उस परम्परा के आधार पर दिया जिसकी खबर उनके कुछ परवर्ती इतिहासकारों को नहीं है। शर्मा जी ने शुक्ल जी द्वारा वीरगाथा-काल नाम देने के पीछे हिन्दी की जातीय परम्परा का बोध माना है। यह आचार्य शुक्ल की नामकरणवादी दृष्टि का आधार रहा या न रहा हो परन्तु शर्मा जी के इतिहास विश्लेषण का आधार अवश्य है। वे शुक्ल जी की इतिहास विषयक धारणाओं को दोहराने के साथ-साथ उनका ऋण स्वीकार करना आवश्यक मानते हैं। और विशेषकर सामग्री के अतिरिक्त वाक्यों की भी यदि साम्यता हो। उन्होंने आ. शुक्ल और आ. द्विवेदी जी के वाक्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया है।

परन्तु उन्होंने द्विवेदी जी के विचारों की आ. शुक्ल से भिन्नता दिखाते हुए द्विवेदी जी की बौद्ध-धर्म विषयक दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं और द्विवेदी जी द्वारा ईसा की सातवी सदी में पूर्वी भारत में बौद्धधर्म का प्रभाव साहित्य पर स्वीकारते हुए शैव और बौद्ध साधनाओं के समन्वय से नाथपंथ की उत्पत्ति मानना तथा कबीरदास, सूरदास और जायसी की रचनाओं पर और अवतारवाद पर बौद्ध सम्प्रदाय का प्रभाव देखना उचित मानते हुए निष्कर्ष निकालते हैं कि बौद्ध धर्म क्रमशः लोकधर्म

का रूप ग्रहण कर रहा था और उसका निश्चित चिह्न हम हिन्दी साहित्य में पाते हैं। वे आ. द्विवेदी जी की यह पंक्ति - "इतने विशाल लोकधर्म का थोड़ा पता भी यदि यह हिन्दी साहित्य दे सके तो उसकी बहुत बड़ी सार्थकता है।" उद्धृत करते हुए कहते हैं कि आ. शुक्ल पर इतिहास को ब्रह्मणवादी दृष्टि से देखने का आरोप लगाने वाले द्विवेदी जी की उक्त पंक्ति या कथन से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् शर्मा जी ने द्विवेदी जी की लोकधर्म के विकास को देखने वाली सार्थक दृष्टि को स्पष्ट करते हुए उसे शिक्षाप्रद ही नहीं मानते बल्कि उसकी मौलिकता को भी व्यंग्यात्मक ढंग से विश्लेषित करते हैं।

शर्मा जी का कहना है कि शुक्ल जी ने जहाँ तीर्थाटन, पर्व-स्नान आदि कर्मकाण्डों को संकुचित कहा था और हिन्दू-मुसलमानों, ऊँच-नीच सभी जातियों के लिए लोक-कल्याण का मार्ग निकालने वाले भक्त कवियों का स्वागत किया था वहाँ द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य और उसके अध्ययन की सार्थकता बौद्ध धर्म जैसे विशाल धर्म का पता देने में देखते हैं। उन्होंने आ. शुक्ल और आ. द्विवेदी जी की दृष्टि के अन्तर को स्पष्ट करते हुए व्यंग्यात्मक ढंग से द्विवेदी जी द्वारा हिन्दी साहित्य में बौद्ध धर्म के प्रभाव को देखने वाली दृष्टि का खण्डन किया है। उनके आलोचनात्मक तीखे बाण जैसे "द्विवेदी जी का मूल सूत्र बहुत सीधा है" या द्विवेदी जी द्वारा बौद्ध धर्म के लोकधर्म में समन्वय के क्रम में ब्राह्मण धर्म का विच्छिन्न होना कहने पर व्यंग्य करते हुए "यह सूत्र काफी मौलिक है" कहने और "उसकी मौलिकता का श्रेय महापंडित राहुल सांकृत्यायन को है" कहते हुए उनके अनुसार "बौद्ध धर्म वैज्ञानिक और भौतिकवाद का ही पूर्व रूप है" जिनके अनुसार "बौद्ध कवि अश्वघोष सामंतों के चाकर हिन्दू कवि वाल्मीकि

और कालिदास से श्रेष्ठ था" आदि कही गई उक्तियों से व्यक्त होता है। उन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी जी और राहुल सांकृत्यायन जी की दृष्टि का खण्डन किया है और भारतीय संस्कृति को धर्म का पर्याय समझने का चलन राहुल जी द्वारा आरम्भ करने की बात कही है। और शर्मा जी प्रश्न करते हैं कि धर्मों का इतिहास ही लिखना है तो राहुल जी या हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को इतना तो बताना ही चाहिए था कि आखिर उस लोक धर्म का भारत से प्रायः लोप क्यों हो गया।"[1]

डॉ. शर्मा बौद्ध धर्म के लोकधर्म के रूप में देखने की दृष्टि को मौलिकता कहना वास्तव में उस प्रकार की समीक्षा दृष्टि पर किया गया व्यंग्य बताते हैं जो राहुल जी और ह.प्र. द्विवेदी जी की वास्तविक दृष्टि को उजागर करने का प्रयास है। शर्मा जी राहुल जी की दृष्टि के वास्तविक रूप को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "राहुल जी की विशेषता है कि उन्होंने साहित्य, संस्कृति इतिहास और भाषा विज्ञान को भी धर्म की दृष्टि से ही नहीं नस्ल की दृष्टि से भी देखा है। उनके लिए आर्यों के शुद्ध जनतंत्र के पतन का मुख्य कारण अनार्थ रक्त का सम्मिश्रण रहा है।"[2] उन्होंने द्विवेदी जी द्वारा राहुल जी के नस्लवाद को आंशिक रूप से ग्रहण करने का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए द्विवेदी जी की इस धारणा को व्यक्त किया है कि "पश्चिमी प्रदेशों में बसे हुए आर्य पूर्वी प्रदेशों में बसे हुए आर्यों से भिन्न प्रकृति के हैं।" और द्विवेदी जी का यह कहना कि पूर्वी प्रदेशों में भारतीय इतिहास के आदिकाल से रूढ़ियों और परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह करने वाले संत होते रहे। और वैदिक कर्मकाण्ड के मृदु-विरोधीजनक और याज्ञवल्क्य तथा अग्र-विरोधी बुद्ध और महावीर आदि आचार्य इन्हीं पूर्वी प्रदेशों में उत्पन्न हुए थे।

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 51
2. वही

डॉ. शर्मा के अनुसार इससे द्विवेदी जी की नस्लवादी दृष्टि का प्रमाण मिलता है। वे पूछते हैं कि क्या द्विवेदी जी को ऋग्वेद, रूढ़िवाद और कर्मकाण्ड का ग्रंथ लगा या उक्त धारणा व्यक्त करने का कारण जनक, याज्ञवल्क्य बुद्ध और महावीर को क्रांतिकारी सिद्ध करना रहा है। और शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा विचारधारा का स्त्रोत मनुष्य के सामाजिक जीवन में न खोजकर उसकी नस्ल में तलाश करने की कोशिश को व्यक्त करते हैं। और उनके इस दृष्टिकोण को पूर्णतः अवैज्ञानिक माना है। उन्होंने द्विवेदी जी की तुलना में आ. शुक्ल की दृष्टि को प्रकट करते हुए कहा है कि "शुक्ल जी ने अपने इतिहास के आरम्भ में जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार माना है। जबकि द्विवेदी जी का जोर आन्तरिक परिस्थितियों पर भी नहीं नक्ल पर रहा है।[1] इसके साथ ही द्विवेदी जी की दृष्टि के अन्तर्विरोधों को भी उघाड़ते हुए शर्मा जी लिखते हैं "भारत में हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य इसलिए श्रेष्ठ है क्योंकि द्विवेदी जी के अनुसार समग्र भारतीय साहित्य में हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसमें पश्चिमी आर्यों की रूढ़ि-प्रियता, कर्म-निष्ठा के साथ ही पूर्वी आर्यों की भाव-प्रवणता, विद्रोही वृत्ति और प्रेम-निष्ठा का मणिकांचन योग हुआ है।" द्विवेदी जी के उक्त विचारों का विश्लेषण करते हुए शर्मा जी कहते हैं -- "इस व्याख्या से यह पता नहीं चलता कि पूर्व के सिद्धों और पश्चिम के नाथपंथियों में जो समान गुण मिलते हैं उनका कारण क्या गृहस्थों को गाली देना, योग और चमत्कारों से भोली जनता पर धाक जमाना सामाजिक जीवन से विमुख होना आदि है।"

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 52

द्विवेदी जी के विचारों और दृष्टिकोण के अन्तर्विरोधों को प्रस्तुत करते हुए शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा "कबीर" में नाथपंथ के स्मार्त आचारों का महत्व न स्वीकारने परन्तु "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" में उसी नाथपंथ को स्मार्त धर्म का आश्रय पाने के कारण वह निर्गुणपंथी सहनशील उदासीन बना रहना स्वीकार करने की दृष्टि को प्रस्तुत किया। और द्विवेदी जी का "हिन्दी साहित्य की भूमिका" में कबीर में वेदान्त-ज्ञान को देखना तथा कबीर पुस्तक में कबीर को तात्विक ज्ञान नहीं मानना आदि अवधारणाओं को प्रस्तुत कर पूछते हैं कि क्या इसे द्विवेदी जी द्वारा भाव-प्रवणता में उलटबाँसी कहना मानना चाहिए।[1] उन्होंने शुक्ल जी और द्विवेदी जी में अन्तर स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी द्वारा सिद्धों और योगियों की तुलना केवल निर्गुण सम्प्रदाय से करने एवं द्विवेदी द्वारा सगुणोपासक कवियों पर भी बौद्धधर्म का प्रभाव देखने की दृष्टि भिन्नता को व्यक्त किया है। तथा एक और अन्तर स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी द्वारा साहित्य की लोक-कल्याणकारी पक्ष-विरोधी आलोचना द्वारा धार्मिक कर्मकाण्ड, वर्ण-भेद आदि की आलोचना को अंशतः सही मानने तथा आदर्श न स्वीकार किंतु द्विवेदी जी द्वारा ऐसी आलोचना को प्रगतिशील मानने की धारणाओं को व्यक्त किया और शुक्ल जी ने जहाँ सिद्धों के वामाचार की तीव्र भर्त्सना की वहाँ द्विवेदी जी द्वारा चुप्पी साध लेने की बात कही।

शर्मा जी के अनुसार "शुक्ल जी ने जीवन की सहज अनुभूतियों का प्रश्न उठाकर सिद्धों और योगियों की असली कमजोरी प्रकट कर दी है

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 52-53

किन्तु द्विवेदी जी ने इस प्रश्न को भारतीय चिन्तन की लम्बी चर्चा में छिपा दिया है।" इसके साथ ही आचार्य शुक्ल जी द्वारा सिद्धों और योगियों की जीवन-विमुखता चमत्कारवाद जनता पर धाक जमाने की प्रवृत्ति को तथा उनके योग को आड़े हाथों लेते हुए इस प्रकार के अन्ध-विश्वासों की खुलकर आलोचना करने परन्तु द्विवेदी जी द्वारा कभी-कभी दबी जबान से इस योग का लोक-विरोधी रूप स्वीकार करते हुए भी योगियों के व्यवहार को सही मानने की प्रवृत्ति को उजागर किया है।

शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा कबीर के सम्बन्ध में समाधिस्थ हो परमपुरुष का साक्षात्कार कर पवन को सहस्त्रार चक्र में ले जाने के प्रसंग को उभार कर उसे पूर्व के आर्यों की भाव-प्रवणता का एक प्रमाण बताया है। और शुक्ल जी द्वारा कबीर में सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद और हठ-योगियों के साधनात्मक रहस्यवाद दोनों तत्वों की व्याप्ति देखने की धारणा को व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी के तर्कों की भ्रांतियों को तथा शुक्ल जी का खण्डन करने के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए द्विवेदी जी के आक्रमण के बाँकेपन का एक उदाहरण प्रस्तुत कर कहते हैं-- द्विवेदी जी ने कबीर आदि सन्तों और योगियों के मौलिक भेद को भुलाकर भारतीयता के जोश में उनकी समस्त राजनीति, साधना आदि की प्रणाली तक को पुराने भारतीय आचार्यों, सिद्धों और योगियों की देन घोषित कर दिया है। तथा साथ ही "मुसलमानी जोश" का खण्डन करने के लिए उन्होंने कबीर आदि को कनफटे जोगियों का जरूरत से ज्यादा देनदार बना दिया। यह "मुसलमानी जोश" का टुकड़ा है कहाँ का ? द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में उसका उद्गम न बताते हुए उल्टे कौमा

लगाकर कहीं से उसके उद्भूत होने का संकेत कर दिया है। यही आक्रमण का बाँकापन है।[1] और शर्मा जी ने शुक्ल जी द्वारा अपने इतिहास में पृ. 85 पर कबीर के सम्बन्ध में लिखे गये अंश को उद्धृत कर उस "मुसलमानी टुकड़े" का मूल निवास स्थान बताया है। उन्होंने द्विवेदी जी द्वारा "कबीर में" सिद्धों और योगियों के चिन्तन की लम्बी चर्चा करने के बाद कबीर को उन्हीं सिद्धों और योगियों के दर्शन से मुक्त कहने के अंतर्विरोध को उजागर किया है। और द्विवेदी जी द्वारा शुक्ल जी के मुसलमानी जोश के कल्पित अर्थ का तीव्र खण्डन करने के साथ-साथ कबीर की साहसिकता को मुस्लिम परिवारों में पालित होने का उत्तम फल बनाने की धारणा को व्यक्त किया। शर्मा जी व्यंग्यात्मक लहजे में कहते हैं -- कबीर की साहसिकता की दाद दीजिए। कबीर के सहृदय समालोचक द्विवेदी जी साहसिकता की दाद और भी दिल खोलकर दीजिए। क्या ही अच्छा हो कि साहसिकता का विकास करने के लिए इस तरह के लालन-पालन की व्यवस्था कर दी जाय।[2]

डॉ. शर्मा ने शुक्ल जी और द्विवेदी जी के वक्तव्यों के माध्यम से उनकी भक्ति-काव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में दी गई स्थापनाओं की तुलना कर यह सिद्ध किया है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने "सूर साहित्य", "कबीर", "हिन्दी साहित्य की भूमिका" आदि ग्रंथों में शब्दों के हेर-फेर और परिवर्तन के द्वारा आचार्य शुक्ल द्वारा दी गई स्थापनाओं के अनुरूप ही मन्तव्य व्यक्त किया है। और उन्होंने शुक्ल जी द्वारा भक्ति को हिन्दू-मुसलमानों का सामान्य मार्ग मानने तथा द्विवेदी जी द्वारा सूफी कवियों को हिन्दू प्रभावापन्न मुसलमान साधकों का दल कहने की धारणा को व्यक्त किया। और शुक्ल जी की मुसलमानों के

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 60-61
2. वही, पृ. 62

अत्याचार से हिन्दुओं में निराशा के परिणामस्वरूप भक्ति की उत्पत्ति होने सम्बन्धी स्थापना के खण्डन में द्विवेदी जी द्वारा दी गई स्थापनाओं से शुक्ल जी की अवधारणा का समरूपी अर्थ व्यक्त होने की बात कही है। और शुक्ल जी की उक्त मान्यता के विरोध में उन्हीं के कथन को प्रस्तुत कर उससे व्यक्त होने वाले अर्थ से भक्ति का आरम्भ महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराण काल में होने का मत प्रस्तुत किया है। उन्होंने आचार्य शुक्ल के हिन्दू समाज के अंतर्विरोधों के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों की साम्यता सूर-साहित्य में द्विवेदी जी द्वारा व्यक्त कथन से की है। और भक्ति काव्य मायावाद का विरोधी था, शुक्ल जी की इस स्थापना को भी द्विवेदी जी द्वारा दोहराये जाने के प्रसंग को उभारकर शुक्ल जी द्वारा सूरदास और कबीर के प्रसंग में भक्ति को उभार कर शुक्ल जी द्वारा सूरदास और कबीर के प्रसंग में भक्ति को तंत्रवाद और योग का विरोधी मानने के विपरीत द्विवेदी जी द्वारा उसे तंत्रवाद और योग से सम्बद्ध करने की स्थापनाओं को व्यक्त किया है।

डॉ. शर्मा आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी जी की सूर साहित्य से सम्बद्ध विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए शुक्ल जी द्वारा सूर-सागर की भाषा और काव्य-कला से ब्रज के लोकगीतों का सम्बन्ध जोड़ने तथा द्विवेदी जी द्वारा सूर पूर्व गीत परम्परा की बात जयदेव, विद्यापति आदि पूर्वी कवियों के प्रभाव को ध्यान में रखकर कहने के प्रसंगों को उभारते हैं। उनके अनुसार शुक्ल जी ने कृष्ण लीला के लोकगीतों का सम्बन्ध जयदेव-विद्यापति की पदावली से जोड़ा था, द्विवेदी जी इस सम्बन्ध को पूरी तरह अस्वीकार न करके लोकगीत परम्परा के नाम पर

धमाली-जोगीड़ा अश्लील गीत पद्धति को भक्ति से जोड़ते हैं।" शर्मा जी द्विवेदी जी को मध्यकालीन वैष्णव कवियों के परम कवियों के परम भक्त मानते हुए उनके मध्यकालीन साहित्य के आकर्षण का कारण आध्यात्मिक न होकर सामाजिक बताते हैं। और द्विवेदी जी के चिंतन के आधार पर उनके मानसिक विकास को शास्त्र और प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ता हुआ नवीन समाज हित कर लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ देखते हैं। और साथ ही द्विवेदी जी द्वारा अपने भक्त कवियों को हिन्दू समाज की बुराईयों से लड़ने के लिए प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को उभारा। डॉ. शर्मा के अनुसार "द्विवेदी जी ने हिन्दुस्तान की उन दलित-पीड़ित जातियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है जो अपनी सजीवता के बल पर कबीर, सज्जब आदि संतों को जन्म दे सकी थी। और द्विवेदी जी ने भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति की परिस्थितियों को उजागर करते हुए उसका मुख्य साधन इन्हीं जातियों के लोकगीत, कथानक और लोकोक्तियाँ बताया है। परन्तु उन्होंने द्विवेदी जी की दृष्टि को उभारते हुए उसे प्राचीन शास्त्रीय परम्परा की विरोधी नहीं बल्कि उस पर अत्यधिक अभिमान करने वाली माना है।

शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा "नयी समस्या" शीर्षक लेख में साहित्य और समाज के सम्बन्ध की विवेचना करते हुए साहित्य का ध्येय मनुष्य के जीवन को सुखी बनाना मानने की धारणा का खण्डन करते हुए रोटी कपड़े की समस्या को मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण समस्या बताते हैं। और समाज और साहित्य की समस्या पर टिप्पणी के रूप में प्राप्त लेख "गतिशील चिन्तन" में समाजवाद को अत्यन्त सुन्दर मानते हुए उसमें

विश्वास न करने की प्रवृत्ति को देखा है। तथा "हमारी संस्कृति और साहित्य का सम्बन्ध" नामक लेख में द्विवेदी जी द्वारा अनार्यों का प्रभाव साहित्य और ललित कलाओं में ज्यादा दिखायी देने की बात कहने की धारणा प्रस्तुत करते हैं। और शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा आर्येतर जातियों का प्रभाव पड़ने और भाषिक परिवर्तन के सम्बन्ध में दी गई अवधारणा का विरोध करते हैं। उन्होंने द्विवेदी जी के कुछ लेख महावीर प्रसाद द्विवेदीजी पर रचित मानते हुए साथ ही द्विवेदी जी द्वारा कामायनी को दिये गये स्थान की समीक्षा करते हुए पल्लव, तुलसीदास, राम की शक्ति-पूजा, ग्राम्या की बहुत-सी कविताओं में विषय और भाषा के सामंजस्य को महत्वपूर्ण बताया है। उनके अनुसार द्विवेदी जी का मानववाद यथार्थवाद से टकराकर लौट जाता है।

इस प्रकार शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा बड़ी उदारता-पूर्वक भारतीय संस्कृति की व्याख्या करने तथा प्राचीन साहित्य से आज की रचनाओं का क्रम जोड़ने के प्रयास को उभारते हैं। हिन्दी साहित्य में बौद्ध धर्म के प्रभाव को देखने वाली दृष्टि का खण्डन किया है। और भारतीय संस्कृति को धर्म का पर्याय समझने का चलन राहुल जी द्वारा प्रतिपादित करने की बात कही, उन्होंने आ. द्विवेदी जी द्वारा बौद्ध धर्म सम्बन्धी और वैदिक धर्म कर्मकाण्ड विरोधी अवधारणाओं की समीक्षा में अपनाई गई नस्लवादी दृष्टि को उभार कर उसे अवैज्ञानिक बताया। और उनकी कबीर विषयक गलत धारणाओं का खण्डन किया। वे रांगेय राघव द्वारा शुक्ल जी पर ब्राह्मणवादी होने और तुलसी पर सामंतों के समर्थक होने का आरोप लगाने से सम्बद्ध मत के एकाध कीटाणु द्विवेदी जी में भी

देखते हैं। और इतिहास, साहित्य मध्ययुगीन कवियों और भक्ति-भावना, सम्बन्धी विषयों से सम्बद्ध दोनों आचार्यों के विचारों और अवधारणाओं तथा दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनकी मान्यताओं की समानता और वैषम्य दर्शाया है। और साथ ही आ. शुक्ल जी की अवधारणाओं का तर्क-संगत खण्डन कर उसकी असंगतियों को उभारा है तथा द्विवेदी जी की मान्यताओं की मौलिकता सम्बन्धी विश्लेषण कर उनकी अधिकांश मान्यताओं को शुक्ल जी की मान्यताओं का अनुसरण और प्रतिरूप माना है तथा द्विवेदी जी के विचारों को शुक्ल जी के विचारों से तुलना कर उसके यथावत रूप को शब्दों के हेर-फेर द्वारा प्रस्तुत करने और कहीं-कहीं उन्हीं शब्दों सहित व्यक्त कर देने के प्रसंगों को उभार कर द्विवेदी जी के अधिकांश विचारों और मान्यताओं को खंडित किया है। द्विवेदी जी द्वारा अनेक प्रसंगों में आचार्य शुक्ल का अनुसरण करने पर भी उनके प्रति द्विवेदी जी में कृतज्ञता का अभाव देखा है।

डॉ. शर्मा हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा सूर-साहित्य की भूमिका में आक्रमण का लक्ष्य, कबीर की भूमिका में विरोध का लक्ष्य, हिन्दी साहित्य : उसका उद्‌भव और विकास में उपहास का आलम्बन पंडित रामचन्द्र शुक्ल को बनाने की बात कहते हैं। परन्तु शर्मा जी उनकी आलोचना करते हुए लिखते हैं -- हिन्दी आलोचना की परम्परा को महान् बनाने वालों में सबसे ऊपर नाम है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का। द्विवेदी जी इस परम्परा से अच्छी तरह परिचित थे उसका सहारा लिए बिना न वह सूर-साहित्य लिख सकते थे, न हिन्दी साहित्य की भूमिका, न अपनी अन्य पुस्तकें। जहाँ वह इस परम्परा से उलझे हैं, वहाँ नुकसान

उन्होंने अपना ही किया है।[1]

शर्मा जी भक्ति काव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध द्विवेदी जी और शुक्ल जी की कुछ स्थापनाओं की तुलना करते हुए कहते हैं -- मुसलमानों का राज्य कायम हुआ, इससे जनता निराश हुई, यह स्थापना शुक्ल जी और द्विवेदी जी दोनों की है। इसके बाद शुक्ल जी ने जहाँ भक्ति को हिन्दुओं और मुसलमानों का सामान्य मार्ग माना वहाँ द्विवेदी जी ने हिन्दू संस्कृति का सुरक्षात्मक प्रयत्न कहा अथवा उसे इस्लाम प्रभावित हिन्दू संस्कृति माना। हिन्दू धर्म अर्थ शून्य विधि-विधान में फँसा हुआ था यह स्थापना शुक्ल जी और द्विवेदी जी दोनों की है। भक्ति-काव्य मायावाद का विरोधी था, शुक्ल जी की इस स्थापना को भी द्विवेदी जी ने दोहराया है किन्तु सूरदास और कबीर के प्रसंग में शुक्ल जी भक्ति को तंत्रवाद और योग का विरोधी मानते हैं और द्विवेदी जी उसे तंत्रवाद और योग से सम्बद्ध मानते हैं।[2]

शर्मा जी दोनों आचार्यों के सूर सम्बन्धी विचारों का विवेचन करते हुए सूरदास को कृष्ण की बाललीला के वर्णन के लिए प्रसिद्ध मानते हैं और बाललीला क्रमशः विकसित होकर यौवन की प्रेमलीला बन जाने से उसमें श्रृंगार रस का व्यापक सामायोजन हो जाना स्वीकार किया है। और कृष्ण-भक्त कवियों का श्रृंगार वर्णन कहीं-कहीं विलासिता का भाव जगाने और अश्लील रूप ले लेने के प्रसंगों को भी उभारा है। उनके

---

1. लोक-जागरण और हिन्दी साहित्य -- पृ. 18
2. वही, पृ. 22

अनुसार "यह श्रृंगार-परक लोक-धर्म ऐसा है कि वह भक्त कवि को सामाजिक रूढ़ियों के प्रति तटस्थ और उदासीन बना सकता है। और कृष्ण-भक्तों ने भगवान् के मधुर रूप पर अधिक जोर दिया, उनके लोक-रक्षक रूप की भूमिका गौण रखी।"

उक्त विषयों से सम्बद्ध दोनों आचार्यों का शर्मा जी ने विश्लेषण प्रस्तुत किया है। और द्विवेदी जी द्वारा सूर पूर्व गीत परम्परा की बात जयदेव, विद्यापति आदि पूर्वी कवियों के प्रभाव को ध्यान में रखकर कहने तथा शुक्ल जी द्वारा सूरसागर की भाषा और काव्य-कला से बृज के लोकगीतों का सम्बन्ध जोड़ने के प्रसंगों को उभारा है। तथा बृजभाषा कवियों पर जयदेव-विद्यापति प्रभाव के बारे में द्विवेदी जी का मत अनिश्चित-सा मानते हैं। शर्मा जी जयदेव-विद्यापति से भिन्न द्विवेदी जी द्वारा सूरदास का सम्बन्ध वामाचारी सिद्धों के पदों से जोड़ने की बात कहते हैं। और साथ ही प्रश्न करते हैं पश्चिमी भारत में कृष्ण-लीला परंपरा पहले से वर्तमान थी फिर सूरदास उन नीरस पदों का साँचा क्यों ढूँढ़ने जाते? इसे शर्मा जी कृष्ण-लीला सम्बन्धी बृजभाषा काव्य के विकास में विद्यापति के साथ वल्लभाचार्य की भूमिका का भी अवमूल्यन मानते हैं। और उनका कहना है कि -- "द्विवेदी जी के चिन्तन में जो कड़ी सूरदास को कबीर से जोड़ती है वह है तंत्रवाद।" उनके अनुसार शुक्ल जी ने कृष्ण-लीला के लोकगीतों की परम्परा पर जोर दिया था, सूर-काव्य का सम्बन्ध जयदेव-विद्यापति की पदावली से जोड़ा था। द्विवेदी जी इस सम्बन्ध को पूरी तरह अस्वीकार न करके लोकगीत परम्परा के नाम पर धमाली-जोगीड़ा अश्लील गीत पद्धति को भक्ति से जोड़ते हैं। शुक्ल जी ने वल्लभाचार्य की भूमिका पर काफ़ी जोर दिया था, द्विवेदी जी ने उसे एक ओर हटा कर

महायान, नाथपंथ और तंत्रवाद की भूमिका पर जोर दिया। साथ ही उन्होंने स्वीकार किया कि सूरदास योग क्रियाओं को अनावश्यक मानते थे और निर्गुण उपासना को फीका समझते थे। इस तरह वह असंगतियों में फँस गये, इनसे बाहर निकलने का उनके सामने कोई मार्ग न था।[1]

इस प्रकार शर्मा जी द्विवेदी जी की संत-साहित्य विषयक अवधारणा, इतिहास-लेखन की दृष्टि के विश्लेषण के क्रम में बौद्ध धर्म विषयक मान्यता, नाथपंथ की उत्पत्ति सम्बन्धी विचारों, पर राहुल जी का प्रभाव और शुक्ल जी का ऋण माना है। और कबीर सूर-साहित्य सम्बन्धी तथ्यों का विवेचन शुक्ल जी की मान्यताओं से तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी के साहित्यिक तत्वों सम्बन्धी मान्यताओं की गंभीरता का विवेचन करते हुए उनकी समीक्षा और वैचारिक दृष्टि के महत्व को उभारते हैं।

5.3 डॉ. नगेन्द्र की आलोचना-दृष्टि का समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ. रामविलास शर्मा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के समीक्षा-साहित्य विचारों एवं मान्यताओं का विश्लेषण करते हुए उनकी अवधारणाओं से असहमत आलोचकों की समीक्षा-दृष्टि का भी विश्लेषण करते हैं। इस क्रम में शुक्ल जी की रीतिकालीन अवधारणाओं से असहमत आलोचक डॉ. नगेन्द्र की अनेक मान्यताओं को तर्क सहित प्रमाण प्रस्तुत

---

1. लोक-जागरण और हिन्दी साहित्य -- पृ.29

कर खण्डित किया है तथा उनकी भ्रामक और समाज-विरोधी कलावादी दृष्टि की आलोचना की है। डॉ. शर्मा के अनुसार "साधारण जनता और दरबार की रुचि में भेद करते हुए शुक्ल जी ने जिस तरह रीतिकालीन कविता के मूल्यांकन का सवाल उठाया है उससे कुछ आलोचक असहमत हैं।" इस प्रकार के आलोचकों में डॉ. नगेन्द्र ने बीसवी सदी के साहित्यकारों द्वारा रीतिकाव्य की अपेक्षा पर खेद व्यक्त कर अपना शुद्ध कलावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए शर्मा जी कहते हैं कि शुक्ल जी के आलोचना-साहित्य का अध्ययन हिन्दी-साहित्य को अवांछित प्रभावों से मुक्त करने के लिए एक महान् साधन है। इसलिए इस तरह के आलोचक कहीं खुलकर कहीं छिपकर शुक्ल जी की मूल स्थापनाओं पर प्रहार करते हैं। इनके प्रहारों से उनका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, यह दूसरी बात है। वास्तव में इससे शुक्ल जी का युगान्तरकारी महत्व सभी की आँखों के सामने और भी स्पष्ट हो जाता है। वे डॉ. नगेन्द्र की अवधारणा से यह अर्थ स्पष्ट करते हैं कि बीसवीं सदी के हिन्दी लेखक ज्यादातर रीतिकालीन परम्परा के विरोधी रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य कुल मिलाकर सामन्त-विरोधी मार्ग पर आगे बढ़ा है इसीलिए नगेन्द्र जी ने रीतिकाल की उपेक्षा करने वालों में द्विवेदी-युग के लेखकों, छायावादियों और प्रगतिवादियों, इन सभी को रखा है। रीतिकाल की इतनी उपेक्षा या विरोध होने के कारण उसे मिश्रबन्धु से हिन्दी काव्य की सुनहली परम्परा के रूप में रखने का साहस वाम लोगों ने किया और उसका विशेष महत्व दिखाने के लिए शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उसका मूल्य आँकने की बात उठाई गई। नगेन्द्र जी का दृष्टिकोण उनकी इच्छा रहने पर भी शुद्ध साहित्यिक नहीं रह पाया, यह युग का प्रभाव है। शुक्ल जी और उनके बाद की हिन्दी आलोचना में साहित्य के सामाजिक

आधार को इतना महत्व दिया गया है कि उस प्रभाव से शुद्ध रस-दृष्टि वालों का बच निकलना भी सम्भव नहीं है।[1]

डॉ. शर्मा के अनुसार "डॉ. नगेन्द्र की इतिहास सम्बन्धी मूल स्थापना यह है कि हिन्दी साहित्य का रीतिकाल मुगल साम्राज्य का ह्रास काल है और यह मनुष्य के सम्पूर्ण ह्रास का भी काल है। सबसे पहले राज्य व्यवस्था का ह्रास हुआ दक्षिण में उपद्रव आरम्भ हो गये थे।" डॉ. शर्मा कहते हैं कि इससे अधिक दुख की बात क्या हो सकती थी कि दक्षिण की कुछ जातियाँ मुगल साम्राज्य से अलग होने का प्रयत्न करने लगी थी ? अर्थात् यहाँ डॉ. नगेन्द्र की मुगल साम्राज्य विषयक ज्ञान की कमी का प्रमाण मिलता है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा व्यक्त "इधर पंजाब में सिखों का असंतोष बढ़ रहा था दक्षिण की दशा और भी खराब थी" अवधारणा का विवेचन करते हुए शर्मा जी लिखते हैं कि --"यहाँ के सामाजिक जीवन में जातीय संगठन की क्षमता रखने वाली जो शक्तियाँ उभर रही थी उन्हें अंग्रेज़ इतिहासकारों ने वाम देखा है, उन्हीं के प्रभाव से नगेन्द्र जी ने लिखा है -- संवत् 1764 के बाद भारतीय इतिहास घोर राजनीतिक पतन और अव्यवस्था का इतिहास है।"

डॉ. शर्मा नगेन्द्र जी की समझ पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं - इस पतन और अव्यवस्था से लगता है हमें अंग्रेज़ों ने उबारा। इसका प्रमाण यह है कि 1857 का स्वाधीनता-संग्राम नगेन्द्र जी को पतन और अव्यवस्था की चरम परिणति मालूम होता है। आँखों पर सहसा विश्वास नहीं होता लेकिन ऊपर के वाक्य के बाद ही नगेन्द्र जी ने लिखा है -- "यह अशांति

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 126

और अव्यवस्था क्रमशः बढ़ती ही गई और अन्त में सं. 1914 अर्थात् सन् 1857 के गदर में जाकर इसका पूर्ण पर्यवसान हुआ है।" इसके अतिरिक्त डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं कि "इस समय हिन्दुस्तानियों का बौद्धिक धरातल बहुत नीचा हो गया था।" डॉ. शर्मा पूछते हैं कि हिन्दू और मुसलमान संयुक्त मोर्चा बनाकर जब बौद्धिक ह्रास में लगे हुए थे तब जीवन दर्शन का भी ह्रास हुआ यह ठीक भी है। व्यंग्यात्मक लहजे में शर्मा जी पूछते हैं कि "तब बचा क्या था" और उत्तर में नगेन्द्र की पंक्ति देते हैं -- "एक बंधा हुआ रूग्ण जीवन शेष था" और बुद्धि के नाम पर क्या बचा था - केवल स्थूल भोगबुद्धि ही बच रही थी।" इन सब बातों का रीतिकालीन कविता से क्या सम्बन्ध है प्रश्न करते हुए शर्मा जी डॉ.नगेन्द्र की इस अवधारणा पर व्यंग्य करते हैं कि "रीति-कविता शुद्ध सामंतीय वातावरण की सृष्टि है।"

डॉ. नगेन्द्र के विचारों का विवेचन करने के पश्चात् शर्मा जी कहते हैं कि "यह सब देखने सुनने के बाद यह नहीं कहा जा सकता कि नगेन्द्र जी ने रीतिकालीन कविता का विश्लेषण शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से किया है। उन्होंने सामाजिक पृष्ठभूमि का बराबर ध्यान रखा है लेकिन न तो इस पृष्ठभूमि की समझ सही है, न उससे साहित्य का सम्बन्ध सही-सही दिखाया गया है। नगेन्द्र ने जिसे उपद्रव, अव्यवस्था आदि कहा है -- वह अवसर स्वाधीनता के लिए जनता के प्रयास का रहा है ये वह भूल गये हैं। डॉ. शर्मा नगेन्द्र जी द्वारा आर्थिक पराभव की बात करते हुए यहाँ के बड़े-बड़े व्यापारियों और महाजनों को भूलने की बात कहते हैं जिनमें से कुछ के बुते पर अंग्रेज उधार लेकर यहाँ व्यापार करते थे।

और डॉ. नगेन्द्र को यहाँ के उद्योग-धंधों के विकास से बिल्कुल बेखबर बताया जिन्हें 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेज़ों ने पाशविक बर्बरता से तहस-नहस किया था।

शर्मा जी डॉ. नगेन्द्र की ऐतिहासिक बोधगम्यता की न्यूनता को उद्घाटित करते हुए उनके द्वारा अपनी कल्पित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह घोर निराशा का युग था और कामिनी-सेवन के अलावा लोगों के लिए और कोई चारा न था। निष्कर्ष निकालने की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार "नगेन्द्र जी के लिए रीतिकालीन कविता जैसे जीवन का एक विराम-स्थल है जहाँ सभी प्रकार की दौड़-धूप से श्रान्त होकर मानव-नारी की मधुर अंचल-छाया में बैठकर अपने दुःखों और पराभवों को भूल जाना चाहता है।" दुखों और पराभवों की बात कहकर नगेन्द्र जी द्वारा दरबारी कविता के प्रति सहानुभूति जगाने के लिए दिया गया तर्क यह है कि रीतिकालीन कविता का यह आधार सीमित है, वह एकांगी है इसलिए आपको उनकी निष्पक्षता में सन्देह न होगा। और साथ ही नगेन्द्र जी सिफारिश करते हैं कि "घोर निराशा के इस युग में जीवन में किसी न किसी प्रकार ये कवि रस-संचार करते रहे मैं समझता हूँ कम से कम इसके लिए तत्कालीन समाज को उनका कृतज्ञ अवश्य होना चाहिए।" डॉ. नगेन्द्र की इस उक्ति पर व्यंग्य कसते हुए शर्मा जी कहते हैं -- तत्कालीन समाज तो अब है नहीं, इसलिए सिफारिश उस तक पहुँच नहीं सकती। नगेन्द्र जी का समकालीन समाज अभी जरूर बना हुआ है और सिफारिश है भी उसी के लिए।[1]

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 127

डॉ. शर्मा के अनुसार "डॉ. नगेन्द्र द्वारा इस युग में सामंती वर्ग का ही ह्रास नहीं हो रहा था, समस्त जनता का ह्रास हो रहा था मानने की अवधारणा से सिद्ध होता है कि नगेन्द्र जी "जीवन" शब्द का कवित्व-पूर्ण प्रयोग करके जनता और उसके सामंती शासकों का भेद मिटा देते हैं। इसका प्रमाण शर्मा जी नगेन्द्र जी के इस कथन से देते हैं कि "घोर अव्यवस्था से क्षत-विक्षत सामंतवाद के भग्नावशेष की छाया में त्रस्त और क्षीण जीवन एक बँधी लीक पर पड़ा हुआ यन्त्रवत् चल रहा था।" डॉ. नगेन्द्र द्वारा अपनी इस धारणा का और स्पष्टीकरण रीतिकाव्य की भूमिका के अंतिम पृष्ठों में करने की बात कही है। और डॉ. नगेन्द्र द्वारा रीति-परम्परा के लिए कहे गये इस कथन "चिंतामणि के समय तक उसे जन-रुचि का भी बल प्राप्त हो गया, उनके समय से जन-रुचि भी उनके साथ हो गई और रीति-ग्रंथों का ताँता बँध गया से शर्मा जी यह अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि नगेन्द्र जी ने दरबारी कवियों के पापों के लिए जन-रुचि को उत्तरदायी ठहराया है।[1] उन्होंने नगेन्द्र जी द्वारा रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार "प्रकरण में ध्वनि, अलंकार, रस आदि के बारे में संस्कृताचार्यों के मतों का परिचय देने का कारण हिन्दी के रीति-काव्य का आधार संस्कृत में होना बताया। और उनके द्वारा शुक्ल जी द्वारा दिये गये आधार ग्रंथों के नामों की प्रस्तुति को भी उभारा है। और नगेन्द्र जी द्वारा शुक्ल जी के अनुकरण पर या उनके आतंक के कारण रीतिकालीन कवियों के लिए आचार्यत्व के क्षेत्र में मौलिकता का दावा न करने की भी बात कही है। तथा नगेन्द्र जी द्वारा रीति-कालीन कविता को प्राचीन परम्परा का नियमित विकास मानने की उक्ति को अत्यन्त सारगर्भित बताया है। और

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 128

उनके द्वारा रीति-परम्परा का आरम्भ हिन्दी के जन्म से मानने का खण्डन कर हिन्दी साहित्य के आरम्भ से मानना उचित बताया है। डॉ. शर्मा का कहना है कि यदि यह सच है तो निराशा, बुद्धि का ह्रास, मुगल साम्राज्य का पतन, उपद्रव और अव्यवस्था आदि को प्रस्तुत करते हुए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के नाम पर नगेन्द्र जी ने जो भानमती का कुनबा जोड़ा था उसका क्या हुआ ? वास्तव में उस कुनबे की सार्थकता क्या यही थी कि वह नारी की मधुर अंचल-छाया में बैठने की कल्पना को एक आधार दे दे, वरना ह्रासवादी व्याख्या का कोई महत्व नहीं है।

डॉ. शर्मा के अनुसार रीतिकालीन कविता में नगेन्द्र जी ने जो यह गुण ढूँढ़ निकाला है कि उसमें एक मधुर रमणीयता-मन को विश्राम देने का गुण अवश्य है "वह वर्तमान समाज के मध्यवर्गीय कवियों के लिए ज्यादा सही है। दरबारी वैभव में रहने वाले सामंतों के चाटुकार कवियों के लिए नहीं।" और डॉ. नगेन्द्र जी द्वारा आलराउंड ह्रास के युग में केवल विलास की प्रगति हो रही थी "मानने की धारणा को उभारकर दुख और पराभव के कारण कवि नारी के आँचल की मधुर छाया तलाश करते थे" अवधारणा को देख उनकी उलझी हुई बातों कारण दरबारी कवियों के प्रति सहानुभूति जगाने के लिए कारणों की खोज के क्रम में अपनी कही हुई बातों के परस्पर सम्बन्ध का ध्यान नहीं रहना माना है।[1] शर्मा जी डॉ. नगेन्द्र द्वारा कहीं-कहीं सामन्ती वातावरण से दरबारी कवियों को जरा अलग करके देखने की कोशिश को भी उजागर करते हैं।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 128-129

और उन्हीं के कुछ प्रशंसा-वाक्यों को उद्धृत कर दरबारी कवियों की श्रृंगार भावना में सर्वत्र ही गार्हस्थिक जीवन का स्वरूप मिलने की भावना को उभारा है और उन्हें रीतिकालीन काव्य के उन प्रशंसकों में माना है जिनकी परम्परा निर्मूल करने के लिए शुक्ल जी ने जीवन-भर संघर्ष किया था। डॉ. शर्मा के अनुसार नगेन्द्र जी ने एक नया काम किया है वह यह है कि रीतिकालीन कविता के लिए उन्होंने मनोविज्ञान की दुहाई देना भी शुरू किया है। उन्होंने नायिका-भेद के लिए एक आंशिक मनोवैज्ञानिक आधार ढूँढ़ निकाला है दरबारी कवियों की नायिकाओं को केवल उपभोग की वस्तुओं के दृष्टिकोण को ही नगेन्द्र जी ने मनोविज्ञान का आधार माना है। ...संस्कृत साहित्य में श्रृंगार को रसराज या एकमात्र रस मानने वालों के विवेचन को नगेन्द्र जी ने अत्यन्त गम्भीर और मनोवैज्ञानिक कहा है।[1]

डॉ. शर्मा नगेन्द्र जी की मौलिक सूझ-बूझ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "आनन्द से अहंकार की उत्पत्ति हुई, अहंकार से अभिमान की, अभिमान से रति की, -- इस तरह के विवेचन को मनोवैज्ञानिक कहने वालों के लिए संसार में अवैज्ञानिक कुछ भी नहीं है।" डॉ. नगेन्द्र ने भारतीय दर्शन के सार-तत्व रूप में राग और द्वेष को मौलिक प्रवृत्तियाँ माना है तथा काम-भावना को जीवन की मूल प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। जिसे नगेन्द्र जी के मनोविज्ञान का सैद्धांतिक रूप माना है। डॉ. शर्मा के अनुसार इस मनोविज्ञान के अनुसार कविता रचते, ऐसे गये-गुजरे रीतिकालीन कवि भी नहीं थे। डॉ. नगेन्द्र जैसे आलोचक हिन्दी

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 130

साहित्य की उस तलछट के प्रतिनिधि हैं जो दरबारी संस्कृति की धारा के बह जाने पर कुछ दिमागों में जमा हो गई है। आज उन्हें अपने अनुकूल वातावरण नहीं मिलता इसलिए वेद-पुराण और आधुनिक मनोविज्ञान की दुहाई देकर वे अपनी समाज विरोधी प्रवृत्तियों के लिए जगह तलाश कर रहे हैं। इनका विवेचन अन्तर्विरोधों से भरा पड़ा है क्योंकि ये नायिका भेदी परम्परा के खत्म हो जाने पर खुलकर आँसू नहीं बहा सकते। वे एक साँस में उसकी ऐन्द्रियता विलासिता और सीमित भाव-जगत को भला-बुरा कहते हैं दूसरी साँस में वासना की निश्छल अभिव्यक्ति प्रेम की गम्भीर अनुभूति, मनोवैज्ञानिक गहराई आदि को उसमें ढूँढ निकालते हैं। पश्चिम के मनोविज्ञान में जो कुछ घटिया है, पतनशील है वही इन्हें प्रिय है।[1]

शर्मा जी प्रसाद जी की कामायनी से नगेन्द्र जी की नायिका की तुलना कर उसके सम्बन्ध में कहते हैं जिसका अवचेतन मन बलात्कार के समय आक्रान्ता की ओर सहानुभूति पैदा करता है। नारी पर पाशविक अत्याचारों के लिए कैसी बढ़िया मनोवैज्ञानिक सफाई है। अर्थात् शर्मा जी ने डॉ. नगेन्द्र की मनोवैज्ञानिक दृष्टि की भ्रामकता और ओछेपन की व्यंग्यात्मक आलोचना की है। और उनके कार्यों की प्रगतिशीलता को उजागर करते हुए शर्मा जी लिखते हैं -- डॉ. नगेन्द्र जैसे आलोचक दरबारी साहित्य की हिमायत करते हुए भारतीय दर्शन भारतीय साहित्य-शास्त्र की दुहाई देकर इन्हें भी बदनाम करते हैं। यदि भारतीय दर्शन और साहित्य-शास्त्र दरबारों तक सीमित रहे होते तो यह प्रयत्न कुछ सार्थक भी होता लेकिन शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण की दुहाई देकर जब ये आलोचक सामन्तवाद के पतन काल के साहित्य का समर्थन करने चलते हैं, तब भारतीय दर्शन और साहित्य-शास्त्र की प्रगतिशील परम्परा से वे पहले ही नाता

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 13।

तोड़ लेते हैं।[1]

शर्मा जी नगेन्द्र जी के लेख-संग्रह विचार और अनुभूति के नामकरण की समीक्षा करते हुए अनुभूति सन् 36 के छायावादी की और विचार सन् 26 के अधकचरे फ्रायड़ भक्तों के माना है। उनके अनुसार "जहाँ वह मन की पार्थिवता में विश्वास करते हैं, वहाँ यह भी कहते जाते हैं कि आध्यात्मिकता में उन्हें अविश्वास नहीं है और छायावाद की उत्पत्ति जहाँ अतृप्त कामवासना से मानते हैं वहाँ उसे स्थूल का विद्रोह भी करार देते जाते हैं मानो तृप्ति स्थूल होती है और अतृप्त रहना ही सूक्ष्मता का परिचायक है।[2]

शर्मा जी डॉ. नगेन्द्र को ऊँचे दर्जे के व्यक्तिवादी मानते हुए उनके सभी सिद्धांतों को व्यक्तिवाद से सम्बद्ध बताते हैं। और उनके सिद्धांत अनुसार साहित्य को दुर्दमनीय अहं की अभिव्यक्ति बताते हुए उनके साहित्यकार में अंतर्मुखी-वृत्तियों की प्रधानता को देखते हैं। उन्होंने नगेन्द्र जी द्वारा अपने इंट्रोवर्ट साहित्यकारों की श्रेणी में गोर्की, इकबाल और मिल्टन को बैठाकर उन साहित्यकारों को अपने अहं के बल पर ही बड़े बने दर्शाने की प्रवृत्ति को उभारा है। और उनके विचारों की समीक्षा कर उनके द्वारा आलोचना को भी आत्माभिव्यक्ति मानने की धारणा और आलोचक का कर्तव्य आलोच्य वस्तु के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करने की मान्यता को प्रस्तुत कर उसका खण्डन करते हुए कहते

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना -- पृ. 132
2. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 108

हैं -- उनकी आलोचना तभी साहित्य पद को प्राप्त कर सकती है जब उसके अहं के विस्फोट का शब्द गोर्की इकबाल वगैरह से किसी कदर भी घटकर न हो।[1]

इसके अलावा डॉ. शर्मा का कहना है कि "नगेन्द्र जी फ्रायड की तरह अतृप्त कामवासना को साहित्य की प्रेरणा मानने के साथ-साथ एडलर की तरह मनुष्य की हीन भावना ही साहित्य की प्रेरक शक्ति है मानते हैं।" इस तथ्य की पुष्टि हेतु नगेन्द्र जी द्वारा तुलसीदास और छायावादी कवियों का उदाहरण प्रस्तुत करने के प्रसंगों को उभारा है। उन्होंने नगेन्द्र जी की ट्रैजेड़ी यह मानी है कि वे यूरोप के व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिकों का अन्धानुकरण करके अभाव और अतृप्ति को ही काव्य की प्रेरणा मानते हैं। तथा पलायनवादी, व्यक्तिवादी निर्जीव और कभी-कभी अस्वस्थ साहित्य को वे तरह-तरह के रंगीन विशेषण पहनाकर विचार और अनुभूति के नाम पर हिन्दी पाठकों के सामने पेश करते हैं।

शर्मा जी का मानना है कि नगेन्द्र जी छायावाद का समर्थन करते हुए उसका अहित करने वाली स्थापनायें देते रहे हैं क्योंकि उन्होंने छायावाद को अंतर्मुखी वृत्तियों का प्रकाशन मानकर उसके प्रगतिशील पहलू को नज़रअन्दाज कर देते हैं। उन्होंने नगेन्द्र जी को शुद्ध कविता, शुद्ध रस और शुद्ध सौन्दर्य शास्त्र के प्रेमी मानते हुए उनके द्वारा प्रगतिवाद को

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 109

मार्क्सवाद का पर्यायवाची शब्द मानकर उस पर एकांगिता आदि के दोष लगाने की प्रवृत्ति को उजागर किया है। और इसे उनकी आत्माभिव्यक्ति माना है। उनका कहना है कि नगेन्द्र जी का विरोध मार्क्सवाद से ही नहीं है वरन् "साहित्य समाज का दर्पण है" इस साधारण सिद्धांत से भी है। वह वस्तुतः "कला कला के लिए" की गुहार मचाने वालों में है।[1]

इस प्रकार डॉ. शर्मा नगेन्द्र जी की आलोचना की बुनियादी कमजोरियों की ओर संकेत करते हैं और नगेन्द्र जी के दृष्टिकोण को समाजहित से दूर अहंकार का पोषक माना है। जिसके कारण ही उनके द्वारा सम्पूर्ण साहित्य को अतृप्त कामवासनाओं से उत्पन्न होने वाली कपोल कल्पना मानने की धारणा को उभारा तथा समूचे साहित्य को अहं का विस्फोट कहकर अपनी अक्ल का गुब्बारा फोड़ते हुए देखा है।

5.4 डॉ. नामवर सिंह की आलोचना-पद्धति का विवेचन

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी आलोचकों के आलोचना कर्म, उनकी समीक्षा-दृष्टि और विश्लेषण-पद्धति के विवेचन के क्रम हिन्दी आलोचना के पितामह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र के अतिरिक्त डॉ. नामवर सिंह के समीक्षा-साहित्य का मूल्यांकन

---

1. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प -- पृ. 112

प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने "नयी कविता : नये प्रतिमानों की खोज" के अन्तर्गत कुछ आलोचकों द्वारा कविता के प्रतिमान मैले हो जाने के कारण नयी कविता के लिए नये प्रतिमानों की खोज करने की प्रवृत्ति को उजागर किया है। उनके अनुसार विजयदेव नारायण साही द्वारा नई कविता को देखने के लिए नये प्रतिमानों की आवश्यकता दर्शायी गयी है। साही के इस सुझाव को नामवर जी द्वारा कार्य रूप दिया गया परन्तु लक्ष्मीकांत वर्मा द्वारा "नयी कविता के प्रतिमान" में अपना दायित्व पूर्णतः न निभाने के कारण नामवर जी का इस क्षेत्र में किया गया प्रयास विशेष महत्व रखता है। उनकी पुस्तक "कविता के नये प्रतिमान" को शर्मा जी ने आलोचना में "बाजरे की कलँगी" कहा है।[1]

शर्मा जी नये प्रतिमानों के संस्थापकों द्वारा छायावादी और नयी कविता की रचना-प्रक्रिया में किये गये भेद के पीछे व्याप्त दर्शन नामवर सिंह को अज्ञेय से, अज्ञेय को सार्त्र से, सार्त्र को किर्केगार्ड से किर्केगार्ड को यूरोप के अनेक भाववादी दार्शनिकों से प्राप्त होने की धारणा व्यक्त करते हैं। वे इस चिंतन की विशेषता मनुष्य की चेतना से स्वतंत्र किसी भी वस्तु की सत्ता स्वीकार न कर सत्य को सदैव आत्मगत मानने में बताते हैं। शर्मा जी नामवर सिंह द्वारा छायावाद और नयी कविता में अन्तर केवल अनुभूतियों के स्त्रोत का मानते हुए अज्ञेय के कथन से पुष्टि की गई धारणा को नामवर सिंह से पहले अज्ञेय द्वारा प्रस्तुत किया जाना स्वीकार करते हैं। और अज्ञेय को रागात्मक सम्बन्ध आचार्य शुक्ल से प्राप्त होने का तर्क देते हैं।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 56

डॉ. शर्मा के अनुसार "नामवर सिंह की कठिनाई यह है कि वह नयी कविता में दो धाराएँ शामिल करते हैं -- एक प्रगतिशील, दूसरी उसकी विरोधी। इन दोनों को सही साबित करने के लिए उन्हें दो प्रतिमान चाहिए जिनके परस्पर विरोध को दबाकर वह संतुलन स्थापित कर सकें। इन दो प्रतिमानों के दो आधार हैं -- वस्तुगत सत्ता और आत्मगत सत्य। वस्तुगत सत्य के समर्थन के लिये आत्मगत सत्य का खण्डन जरूरी है और आत्मगत सत्य का खण्डन अज्ञेय के खण्डन के बिना संभव नहीं है तो नामवर सिंह आत्मगत सत्य और अज्ञेय के खण्डन में तत्पर होते हैं।" शर्मा जी नामवर सिंह की समीक्षा-दृष्टि के अन्तर्विरोधों को उजागर करते हुए कहते हैं कि अज्ञेय को प्रमाण मानकर नामवर सिंह ने पहले नई कविता को बाहर से भीतर की ओर मोड़ा फिर अज्ञेय को दोषी ठहराते हैं कि अन्वेषण की राह उन्होंने बाहर से भीतर को मोड़ दी। शर्मा जी अन्वेषण की राह मुड़ने का परिणाम बौद्धिकता का स्थान रागात्मकता द्वारा ले लेने और उसी रागात्मकता के माध्यम से नामवर सिंह द्वारा नगेन्द्र आदि आलोचकों के स्थायी भावों की आलोचना करने की दृष्टि को उभारते हैं। और नगेन्द्र के स्थायी भाव और अज्ञेय के राग को अपरिवर्तनशील बताया है। वे अज्ञेय के सहारे नगेन्द्र की नामवर सिंह द्वारा किये गये खण्डन को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -- "स्थायी भावों वाले आचार्य यथार्थ-जीवन के चित्रण पर बल नहीं देते, अज्ञेय भी वास्तविकता के चित्रण पर नहीं, उसे आन्तरिक सत्य बनाने पर बल देते हैं। नामवर सिंह भी यथार्थ जीवन के चित्रण पर बल नहीं देते, बल देते हैं वास्तविकता से उत्पन्न होने वाली वृत्तियों को उजागर करने पर।"[1] अर्थात् शर्मा जी यहाँ अज्ञेय और नामवर सिंह में अभिन्नता को प्रस्तुत करते हुए नामवर सिंह

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 60

द्वारा भाव और अनुभूति शब्द पसन्द न होने पर भाव के लिए वृत्ति और अनुभूति के लिए अनुभूति शब्द के प्रयोग की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। और नये प्रतिमानों की चर्चा अनुभूति के खण्डन से ही शुरू होना स्वीकार किया है। वे नामवर सिंह के लिए सघन भाव या भावों की सघनता ही अनुभूति मानते हैं।

उनके अनुसार नामवर सिंह ने छायावाद और नयी कविता में भेद अनुभूति की प्रधानता या गौणता के कारण नहीं बल्कि जटिलता और सरलता के कारण किया है। परन्तु दोनों में समान रूप से अनुभूति पर बल दिया जाता है इसलिए दोनों में कोई मौलिक अन्तर न हुआ, न अनुभूति को काव्य का मूल तत्व मानने से कोई नया प्रतिमान स्थापित होता है। उन्होंने नामवर सिंह को रस का प्रतिमानत्व स्वीकार होने और रस सिद्धांत से आपत्ति होने की बात कही है। रस की नगेन्द्री परिभाषा से नामवर सिंह की परिभाषा की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए शर्मा जी आस्वाद की प्रक्रिया का आधार अर्थ-मीमांसा होना ही भिन्नता का कारण मानते हैं। और साथ ही रस-मीमांसा के लिए अर्थ-मीमांसा को आधार बनाना कोई मौलिक स्थापना न मानते हुए उसे आचार्य शुक्ल द्वारा किया हुआ कार्य बताया है।

नामवर सिंह के विभिन्न उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए डॉ. शर्मा ने नामवर सिंह द्वारा नगेन्द्री परिभाषा को ध्वस्त करने के लिए शुक्ल जी का अर्थ-मीमांसा वाला शस्त्र ही चलाने की बात कहते हैं। और नये प्रतिमानों की स्थापना के लिए आचार्य शुक्ल का महत्व असंदिग्ध होना

मानते हैं। नामवर सिंह की समीक्षा-दृष्टि के अन्तर्विरोध को उजागर करते हुए उन्होंने नगेन्द्र द्वारा अज्ञेय की "सोन मछली" की की गई व्याख्या के संदर्भ में नामवर सिंह द्वारा आलोचना करने और अंतिम अध्याय में गद्य में कविता का अर्थ-लिखने में नगेन्द्र की कुशलता व्यक्त करने के प्रसंगों को प्रस्तुत किया है।[1]

इसके अलावा शर्मा जी नामवर सिंह द्वारा आचार्य शुक्ल की स्वच्छन्दतावाद विरोधी प्रवृत्ति की समीक्षा करते हुए उसका कारण शुक्ल जी में छायावादी संस्कारों की दृढ़ता एक संदर्भ में और दूसरे संदर्भ में छायावादी संस्कारों से मुक्त होने सम्बन्धी अवधारणाओं की अभिव्यक्ति करने में अंतर्विरोध को प्रस्तुत किया है। डॉ. नामवर सिंह की समीक्षा का अभिप्राय बताते हुए शर्मा जी कहते हैं कि एक बार छायावादी संस्कारों से मुक्त हुए तो शुक्ल जी सीधे नयी कविता के सार्थक बन जाते हैं। समग्र भारतीय साहित्य की परम्परा छायावाद-विरोधी बन जाती है। और नयी कविता स्वभावतः उससे जुड़ जाती है। डॉ. शर्मा रस-मीमांसा में नामवर सिंह को विरोधों के सामंजस्य वाला सिद्धांत पसन्द आने तथा उसके माध्यम से मुक्तिबोध की कविता "अँधेरे में" की समीक्षा प्रस्तुत करने के प्रसंग को उजागर करते हैं।[2]

शर्मा जी के अनुसार कविता के नये प्रतिमानों की यह विशेषता है कि इनमें किस प्रतिमान का मूल्य कब कहाँ बढ़ जायेगा या

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 63
2. वही, पृ. 64

गिर जायेगा आप कुछ कह नहीं सकते। कहीं शुद्ध काव्य-मूल्य कीमती है तो कहीं नैतिक मूल्य। वे नामवर सिंह के गद्य में काव्य-बिम्बों का अनेक संदर्भ में उभारते हैं। तथा नामवर जी द्वारा शमशेर बहादुर सिंह की सफलता का साधन बिम्ब मानते हुए उनकी प्रशंसा करने और कुछ समय पश्चात् ही बिम्ब विधान को कविता के लिए अनावश्यक भार मानने की प्रवृत्ति को प्रस्तुत कर उनके कथन के अन्तर्विरोधों को दर्शाते हैं। उन्होंने नामवर सिंह की दृष्टि में आधुनिकता के महत्व को उजागर करते हुए व्यंग्यात्मक शैली तर्क देते हैं कि आधुनिकता बहुत जल्दी-जल्दी बदलती है उसके साथ आधुनिकता-बोध बदलता है, आधुनिकता-बोध के बदलने के साथ कविता के नये प्रतिमान भी बदलते हैं। उनके अनुसार "नामवर सिंह द्वारा पाश्चात्य भाववादी और अस्तित्ववादी दार्शनिकों की आधुनिकता को निचोड़ कर अपनी पुस्तक में प्रस्तुत करने तथा उसमें आचार्य शुक्ल, अज्ञेय और साही के विचार नयी कविता में दर्शन घुलकर अनुभूति बन जाने के समान घुल जाते हैं। उन्होंने नामवर सिंह द्वारा मुक्तिबोध की कविता में सर्वत्र विद्यमान होना स्वीकार किया है और प्रतिमानों के बीच तनाव कुछ कम कुछ ज्यादा होने के साथ-साथ नाटकीयता की कमी का अभाव दर्शाया है। तथा पात्रों में प्रमुख भूमिका नगेन्द्र को देते हुए उनकी टक्कर कहीं आचार्य शुक्ल से तो कहीं अज्ञेय से कराने और तारसप्तक के कवियों को मुक्तिबोध से भीड़ा देने तथा इलियट की डोनाल्ड देवी से ठान देने की प्रवृत्ति को उभारा है। डॉ. शर्मा के अनुसार "नाटक में सस्पेन्स की कमी नहीं। आप पता ही लगाते रह जायेंगे कि नये प्रतिमान कौन हैं, कहाँ है। नाटकीयता के अनुरूप शैली है। कहीं छायावादी शैली का शब्द माधुर्य और कहीं अंग्रेज़ी शब्दों-मुहावरों से रँगे-पँगे आधुनिकता बोध वाले

वाक्य हैं। अर्थात् कुल मिलाकर "कविता के नये प्रतिमान" पुस्तक हिन्दी आलोचना में बाजरे की कलँगी है।[1] शर्मा जी इस पुस्तक में डॉ. नामवर सिंह द्वारा साही से बीज मंत्र लेकर हिन्दी कविता के सामने अस्तित्ववाद या ऐसी किसी विचारधारा के प्रभाव का खतरा न मान छायावाद या छायावादी संस्कारों को खतरा मानने की धारणा को प्रस्तुत करते हैं। तथा इस चुनौती को स्वीकार करके नामवर सिंह द्वारा सैद्धांतिक विवेचन में आगे बढ़ते हुए अस्तित्ववाद और अनेक प्रकार के व्यक्तिवाद से संघर्ष करने की बात दर किनार कर देने की प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया है। वे नामवर सिंह द्वारा छायावादी संस्कारों से युद्ध करने के लिए अपनाई गई आधार भूमि को विजय देव नारायण साही द्वारा निर्मित बताते हैं। और नामवर सिंह द्वारा जहाँ-तहाँ अज्ञेय की नुक्ताचीनी करते हुए साही से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने की प्रवृत्ति को भी उभारा है।

डॉ. शर्मा का कहना है कि नामवर सिंह ने मुक्तिबोध के नाम का उपयोग इस ढंग से किया है कि साही की स्थापनाएँ सही जान पड़ने लगे।[2] छायावादी कविता स्वयं विशेष सामाजिक परिस्थितियों की उपज रही है इन परिस्थितियों के सम्बन्ध में साही और नामवर सिंह जी की राय में एकता रही है। शर्मा जी के अनुसार "जिस स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि में छायावादी साहित्य का विकास हुआ है उसमें साही और सिंह को अनुभूति का सरलीकरण दिखायी देता है। और शर्मा जी साहित्य और राजनीति की परम्परा के प्रति "कविता के नये

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 66
2. वही, पृ. 173

प्रतिमान" में नामवर सिंह द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण को मुक्तिबोध से विपरीत बताते हैं। उनके द्वारा मुक्तिबोध की एक कविता "एक स्वप्न कथा" पर व्यक्त विचारों के सम्बन्ध में नामवर सिंह द्वारा की गई टिप्पणी का उत्तर देते हुए शर्मा जी नामवर सिंह की दृष्टि में अस्तित्ववाद एक निश्चित जीवन-दृष्टि होने और भाव-जगत के कुछ क्रिया-कलापों से उसका सम्बन्ध न होने की बात कहते हैं और नामवर सिंह द्वारा मुक्तिबोध की ऐतिहासिक क्रिया को नूतन रहस्यवाद कहने की धारणा व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार आत्मपीड़ा के बोध और जगत् पीड़ा के बोध में कोई बुनियादी विरोध नहीं है। जैसे अस्तित्ववादी में अकेलेपन के बावजूद समाज के प्रति दायित्व का बोध होता है उसी प्रकार रहस्यवादी में अस्तित्ववादी की अपेक्षा संसार की पीड़ा का बोध अधिक होता है। अपनी इस धारणा के आधार पर डॉ॰ शर्मा नामवर सिंह द्वारा अपनी रचना पर की गई टिप्पणी का उत्तर देते हुए कहते हैं -- "चाहे आत्म-पीड़ा हो, चाहे जगत्-पीड़ा उसकी शुरूआत होती है कवि के आत्म-केन्द्रित व्यक्तित्व से।"[1] और अपनी बात की पुष्टि हेतु मुक्तिबोध की कविताओं से अनेक उद्धरण प्रस्तुत कर मुक्तिबोध की कविता में वेदना का मुख्य स्त्रोत आत्म-केन्द्रित व्यक्तित्व को मानते हैं। उन्होंने मुक्तिबोध की कविताओं को उनके व्यक्तित्व से अलग रखकर देखना असम्भव बताया है। परन्तु नामवर सिंह द्वारा मुक्तिबोध को उनकी कविताओं से अलग रखने पर अधिक जोर देने के दृष्टि को उभारा है। वे लिखते हैं कि नामवर सिंह के अनुसार "अंधेरे में" का काव्य नायक आत्म-निर्वासित व्यक्ति है और वह मुक्तिबोध से भिन्न है और सिंह ने अपनी बात की

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ॰ 207

पुष्टि हेतु अग्न्येश्का सोनी के लेख से उद्धरण दिये हैं उसी लेख से अन्य अंशों को उद्धृत कर शर्मा जी नामवर सिंह जी की मान्यताओं का खण्डन करते हैं। उन्होंने नामवर जी की मुक्तिबोध विषयक आलोचना का अध्ययन करते हुए लिखा है -- नामवर सिंह के अनुसार अंधेरे में कविता की अंतिम पंक्तियाँ उस अस्मिता या आइडेन्टिटी की खोज की ओर संकेत करती है जो आधुनिक मानव की सबसे ज्वलंत समस्या है। परन्तु शर्मा जी मुक्तिबोध द्वारा अपनी कविताओं में अस्मिता की खोज को आधुनिक मानव की सबसे ज्वलन्त समस्या बनाने का अर्थ निम्न मध्यवर्ग की समस्या को समाज की सबसे ज्वलन्त समस्या मानना बताते हैं। परन्तु नामवर सिंह जी ने मुक्तिबोध की कविता में जिस वर्ग द्वारा अस्मिता की खोज की जाने की बात कही है उसे शर्मा जी मध्यमवर्ग बताते हैं। किन्तु नामवर सिंह मुक्तिबोध द्वारा अपनी रचनाओं में जिस अलगाव पर दृष्टि केन्द्रित की है उसका प्रमुख आलम्बन निम्न मध्यवर्ग को मानते हैं। इसका उत्तर देते हुए शर्मा जी कहते हैं कि इस तरह अस्मिता की खोज मजदूरों द्वारा नहीं की जाती, बहुत से बहुत उनके संघर्ष की पृष्ठभूमि में इतर वर्ग का व्यक्ति अस्मिता की खोज करता है।[1]

शर्मा जी के अनुसार अस्मिता की खोज आत्म-निर्वासित से जुड़ जाती है। आत्म निर्वासन का अर्थ है व्यक्तित्व का विभाजन। इसका कारण शर्मा जी इस प्रकार सिद्ध करते हैं कि नामवर सिंह के अनुसार अंधेरे में कविता में एक है काव्य-नायक मैं और दूसरा है उसका प्रतिरूप वह।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 226

यह विभाजन वस्तुतः एक नाटकीय कौशल मात्र नहीं बल्कि इसका आधार आत्म-निर्वासन है। "अंधेरे में" का काव्य-नायक एक आत्म-निर्वासन व्यक्ति है। जिसके आत्म-निर्वासन का प्रतीक है उसका गुहा-वास।

डॉ. शर्मा के अनुसार अस्मिता के लोप और आत्म-निवार्सन की व्याख्या करने के लिए नामवर सिंह ने "एलिएनेशन" और "री-इफिकेशन" शब्दों का प्रयोग किया है।

नामवर सिंह के अनुसार "यह रैकरण और आत्म-निर्वासन पूँजीवादी व्यवस्था के सबसे बड़े अभिशाप है। इसमें मजदूर अपनी उपज से ही अलग नहीं होता बल्कि अपने आप से भी अलग हो जाता है और वह इस प्रक्रिया में मानव-स्वत्व के साथ ही मानव-सम्भावनाओं से वंचित रह जाता है।" नामवर सिंह के उक्त विचारों को प्रस्तुत करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं -- यदि इतने बड़े अभिशाप के विरुद्ध मुक्तिबोध की कविताओं के नायक संघर्ष करते हैं तो वे एक क्रांतिकारी काम करते हैं। उन्हें मुक्तिबोध से अलग करने का इतना आग्रह क्यों है ? इस प्रश्न के साथ ही डॉ. शर्मा उत्तर देते हैं -- किन्तु नामवर सिंह ने आत्म निर्वासन को व्यक्तित्व विभाजन से जोड़ा है। आगे डॉ. शर्मा लिखते हैं -- नामवर सिंह ने मार्क्स के एलिएनेशन का हवाला देने के बाद उसकी जगह स्थापित कर दिया व्यक्तित्व-विभाजन जो अर्ध विक्षेप का एक लक्षण है। डॉ. शर्मा के अनुसार विभाजित व्यक्तित्व का लक्षण मानसिक असंतुलन का सूचक है। विक्षेप की अनेक प्रक्रियाओं के समान यथार्थ से आत्म-रक्षा का यह भी एक रूप है। डॉ. शर्मा के अनुसार "मुक्तिबोध "अंधेरे में' कविता लिखने के बहुत पहले

से व्यक्तित्व विभाजन की स्थिति से परिचित थे।" और इसका प्रमाण उनके कविता "व्यक्तित्व और खंडहर" तथा उसके पूर्व गद्य में दी गई उनकी टिप्पणी को माना है।

डॉ. शर्मा मानते हैं कि "व्यक्तित्व विभाजन मुक्तिबोध की अनेक कविताओं का विषय है। वह ऐसी स्थिति है जिससे उनका निकटतम सम्बन्ध है। उन्होंने "अन्तरात्मा और पक्षधरता" निबन्ध में व्यक्तित्व विभाजन के कारण बतलाये हैं।"[1]

डॉ. शर्मा के अनुसार "विभाजित व्यक्तित्व से आगे बढ़कर नामवर सिंह अस्मिता का सम्बन्ध वर्ग-भेद से जोड़ते हैं।" और शर्मा जी वर्ग-भेद समाज में श्रम-विभाजन से उत्पन्न मानते हैं। इसके साथ ही डॉ. शर्मा व्यंग्यात्मक शैली में लिखते हैं -- शायद यह श्रम-विभाजन अस्मिता के लोप का एक रूप है जो भी हो, अस्मिता का लोप व्यक्ति के स्तर पर होता है अतः व्यक्ति के स्तर पर ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। व्यक्ति-केन्द्रित अस्तित्ववाद की मान्यता इससे मिलती-जुलती होगी। और जो अस्मिता व्यक्ति के स्तर पर लुप्त होती है वह पुनः प्राप्त होती है वर्ग की अस्मिता के रूप में।"[2]

डॉ. शर्मा के अनुसार "काफ़ी अनुभव संघर्ष और संगठन के बाद वर्ग-चेतना का उद्भव और विकास होता है। मिथ्या-चेतना का अस्तित्व अस्मिता का लोप हुआ। यानी वर्ग-चेतना अस्मिता नहीं है,

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 228
2. वही, पृ. 229

अस्मिता की खोज वर्ग-चेतना है। मजदूर या मध्यवर्ग का व्यक्ति वर्ग-चेतना प्राप्त कर लेने के बाद अस्मिता की खोज शुरू करता है अस्मिता कोई ऐसी चीज है जो वर्ग-चेतना से और आगे बढ़ने पर मिलती है।[1]

इसके अलावा डॉ. शर्मा व्यक्ति और अभिव्यक्ति संबंधी नामवर सिंह की अवधारणाओं की समीक्षा करते हुए व्यंग्यात्मक शैली में अस्मिता को आधुनिक मानव की सबसे ज्वलन्त समस्या मानने की दृष्टि पर व्यंग्य करते हैं। और मुक्तिबोध के काव्य में जनक्रांति के स्वरूप पर विचार करने के क्रम में नामवर सिंह की अवधारणाओं का विश्लेषण कर "अंधेरे में" कविता में जन-क्रांति का चित्रण मानते हैं। "भूल-गलती" कविता में अकेले व्यक्ति द्वारा सैन्य संगठन करने के प्रसंग को उभारते हैं। डॉ. शर्मा "चाँद का मुँह टेढ़ा है" संग्रह की कविताओं, "एक आत्म वक्तव्य अपने कवि से"में जनक्रांति का रूप देखते हैं। उनके अनुसार मुक्तिबोध सन् 43 से क्रांति का सशस्त्र रूप ही देखते आये थे। अनेक कविताओं में जनक्रांति का उल्लेख है कहीं भी पार्टी के रूप में क्रांति-वादियों के संगठन का उल्लेख नहीं है। हर जगह क्रांति करने वाला, क्रांति की प्रेरणा देने वाला, क्रांति का संगठन करने वाला एक ही व्यक्ति है, वह है कविताओं का नायक।[2] इसी कारण डॉ. शर्मा का कहना है कि मुक्तिबोध के चिन्तन का केन्द्र है व्यक्ति। इस व्यक्ति को समझने के लिए, उसके आत्म-संघर्ष उसकी सम्भावनाओं के विवरण के लिए वर्ग और समाज

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 229
2. वही, पृ. 233

पार्श्व-भूमि में चित्रित किये जाते हैं, केन्द्र भूमि में रहता है व्यक्ति।"[1]

डॉ. शर्मा के अनुसार "नामवर सिंह दीर्घ और गहन होती हुई अन्तर्मुख दशाओं, कविता में उसकी अभिव्यक्ति, मुक्तिबोध के व्यक्तित्व से उनका सम्बन्ध आदि को नहीं समझ पाये हैं। कविता में जहाँ आत्म-ग्रस्तता, आत्म-भर्त्सना दिखाई देती है वहाँ वह उसे कवि के व्यक्तित्व से अलग कर देते हैं।[2] इसके अलावा डॉ. शर्मा का कहना है कि मुक्तिबोध फैन्टेसी और स्वप्न को पर्यायवाची शब्दों की तरह प्रयोग करते हैं। नामवर सिंह स्वयं भी मानते हैं कि स्वप्न-कथा फैन्टेसी का एक प्रकार मात्र है।

डॉ. शर्मा "अंधेरे में" कविता स्वप्न-कथा है या फैन्टेसी इस प्रश्न पर विचार करते हुए नामवर सिंह द्वारा कथन-शैली की दृष्टि से "अंधेरे में" कविता को एक स्वप्न-कथा बताते तथा हिन्दी में कविता के अन्तर्गत फैण्टेसी के लिए मुक्तिबोध को विख्यात मानते हुए भी "अंधेरे में" कविता की फैण्टेसी की कलात्मकता न स्वीकार करने की दृष्टि की समीक्षा करते हैं। नामवर सिंह की व्यावहारिक समीक्षा से अनेक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -- ऐसा प्रतीत होता है कि व्यावहारिक आलोचना में नामवर सिंह के लिए भी फैण्टेसी और स्वप्न में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं है।[3] इसके साथ ही डॉ. शर्मा का कहना है कि नामवर सिंह "अंधेरे में"

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 233
2. वही
3. वही, पृ. 235

कविता की व्याख्या करते हुए उसमें "एक ही व्यक्ति दो में विभक्त" एक है काव्य-नायक "मैं" और दूसरा है उसका प्रतिरूप "वह" मानते हैं। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "अंधेरे में" का काव्य-नायक एक आत्म-निर्वासित व्यक्ति है जिसके आत्म-निर्वासन का प्रतीक है उसका गुहावास।" डॉ. शर्मा "मैं" और "वह" के प्रसंगों को उद्धृत कर उनके क्रियाकलापों और कथा-वस्तु से सम्बन्ध को उभारते हैं और उनका कहना है कि काव्य-नायक "मैं" और प्रतिरूप "वह" को अलग करने के बाद नामवर सिंह ने फिर दोनों को मिलाकर खोह में डाल दिया और कौन मनु ? का प्रश्न उपस्थित होने पर काव्य-नायक को पहली बार प्रकट होते दिखाया। शर्मा जी के अनुसार "कविता में कोई ऐसी अस्पष्टता नहीं है कि दोनों का भेद दिखाई न दे। जिन्दगी के कमरों में कोई एक चक्कर लगाता है। एक है यह कोई और दूसरा है उसकी चर्चा करने वाला। यह चर्चा करने वाला काव्य-नायक है और वह स्वयं खोह में नहीं है।[1]

नामवर सिंह द्वारा कविता का "वह" काव्य-नायक का उससे जुड़ा होने वाला प्रतिरूप मानने पर डॉ. शर्मा नामवर जी से पूछते हैं कि वह कब जुदा होता है ? नामवर सिंह जी का कहना है कि "अंधेरे में" कविता में तीन घटनाओं का वर्णन है, मृतदल की शोभा-यात्रा, सैनिक शासन और जनक्रांति का सूत्रपात, स्पष्टतः पहली दोनों घटनाएँ कवि की दृष्टि में अस्मिता के खोने का वस्तुगत कारण उपस्थित करती है। डॉ. शर्मा इस तर्क का उत्तर देते हुए कहते हैं -- ये दोनों घटनाएँ कविता में काफी विलम्ब से घटित होती है उनके घटित होने से पहले ही आत्म-

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 236

निर्वासित व्यक्ति "वह" खोह में कैसे पहुँच गया ? वस्तुगत कारण उपस्थित हुए बाद को, कार्य उपस्थित हो गया पहले ही।[1]

इसके अलावा डॉ. शर्मा नामवर सिंह द्वारा "एक स्वप्न-कथा" में साम्राज्यवाद के सागर और ज्ञानी-पूर्वज की नदी को मिलाकर एक कर देने की बात कहते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध को एक प्रेमिका की सख्त जरूरत थी इसका प्रमाण वे "अंधेरे में" कविता का अंतिम अंश मानते हैं।

डॉ. शर्मा मुक्तिबोध के काव्य में विविधता देखते हुए उस काव्य पर अपना गढ़ा हुआ साँचा जमा देने के कारण नामवर सिंह को सूर्य-कन्या मुक्तिबोध का ही प्रतिरूप जान पड़ने और "अंधेरे में" कविता के गदय-रूपान्तरण में प्रणायिनी वाली बात का उल्लेख अनावश्यक समझने की धारणा को स्पष्ट करते हैं।

डॉ. शर्मा नामवर सिंह द्वारा मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष को अस्तित्ववादी आत्म-पीड़न से बहुत आगे बढ़ाकर मार्क्सवादी सिद्धांत और कर्म की सीमा में प्रवेश करने की धारणा व्यक्त करने पर डॉ. शर्मा पूछते हैं -- मार्क्सवादी सिद्धांत और कर्म की सीमा में प्रवेश करने से पहले वह किसकी सीमा में था, यह स्पष्ट नहीं बताया।[2] इसके अलावा मुक्तिबोध के लिए नामवर सिंह का यह कहना कि --"वे मार्क्सवाद के साथ रहस्यवाद के समन्वय का प्रयत्न नहीं करते बल्कि मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि के द्वारा इन दोनों की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं।" की समीक्षा करते हुए

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 236
2. वही, 242

डॉ. शर्मा लिखते हैं -- मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष ने मार्क्सवाद की सीमा में प्रवेश किया और फिर सीमा का अतिक्रमण किया यह बात समझ में आती है किन्तु रहस्यवाद की सीमाओं में प्रवेश किये बिना ही मुक्तिबोध उसकी सीमाओं का अतिक्रमण कैसे कर गये, यह स्पष्ट नहीं है।[1]

नामवर सिंह का यह मानना कि "बुद्धिजीवी पूँजीवादी व्यवस्था को तोड़ने के लिए स्वयं भी टूटने को तैयार दिखते हैं"की आलोचना करते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं -- पूँजीवाद के विकास के साथ मध्यवर्ग के कुछ लोग ऊपर की ओर खिंचकर पूँजीपतियों के नजदीक पहुँचते हैं और बहुत-से लोग नीचे की ओर खिसक कर सर्वहारा वर्ग के नजदीक पहुँचते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था के विकास का यह नियम है। उस व्यवस्था को तोड़ने वाले लोग स्वयं टूटे इसका कोई कारण नहीं। जो अलगाव आधुनिक जीवन की सबसे ज्वलन्त समस्या है, उसका आलम्बन मुक्तिबोध के साहित्य में निम्नमध्य-वर्ग है।"[2]

डॉ. शर्मा के अनुसार "नामवर सिंह मार्क्सवाद की सीमाओं का अतिक्रमण करके जिस भूमि पर पहुँचते हैं वह पूर्व परिचित मध्यवर्गीय चिन्तन की भूमि है। इस वर्ग का बुद्धिजीवी अपने को बहुत बड़ी क्रांतिकारी शक्ति मानता है। उसके लिए सामाजिक विकास में क्रांतिकारी शक्ति वह वर्ग नहीं है जो उत्पादन में प्रत्यक्ष भाग लेता है।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 242
2. वही, पृ. 243

क्रांतिकारी शक्ति है मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी जो इस उत्पादन-प्रक्रिया से तटस्थ रहता है। नामवर सिंह के इस चिन्तन को कोई मार्क्सवाद का विकास न माने तो वह नाराज होते हैं। उनका तर्क यह है : मार्क्सवाद का विकास सम्भव है जब तुम यह मानते हो तो मैंने जो मार्क्सवाद का विकास किया है, उसे क्यों नहीं मानते ?[1]

डॉ. रामविलास शर्मा नामवर सिंह की आलोचना करते हुए लिखते हैं जो लोग मार्क्सवाद के बारे में अपने पूर्ण-ज्ञान का दावा करते हैं उन्हें सारा स्वाधीनता-संग्राम संतुलन का नाटक दिखाई देता है और वामपक्षी-दल नेहरू-युग के अंतर्विरोध से पीड़ित लगता है। डॉ. शर्मा के अनुसार "पूर्ण-ज्ञान की ऊँचाई सारा स्वाधीनता-आंदोलन और उसके साथ अनेक वामपक्षी दल एक निरर्थक स्वाँग करते दिखाई देते हैं। ऐसी है मार्क्सवाद के पूर्ण-ज्ञान की ऊँचाई। डॉ. शर्मा "भूल-गलत", "चम्बल की घाटी", "एक स्वप्न कथा" में आत्म-संघर्ष के चित्रण के साथ-साथ सत्ता से समझौता भी समाहित मानते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार नामवर सिंह ने यह मान लिया है कि मुक्तिबोध की कविताओं का नायक समझौता नहीं करना चाहता इसीलिए समझौते के कारण जो आत्म-संघर्ष पैदा होता है, उसे वह देख नहीं पाते इसलिए अपना वर्ग छोड़कर, सर्वहारा वर्ग के साथ रहकर, अपने व्यक्तितत्व को बदलने की जो समस्या है, वह उनकी आँखों से ओझल रहती है।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 243

डॉ. शर्मा नामवर सिंह की उक्त धारणा का खण्डन करते हुए लिखते हैं -- मुक्तिबोध निम्न-मध्यवर्ग को भले न छोड़ पाएँ, पर वह बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि समाज का प्रमुख क्रांतिकारी वर्ग सर्वहारा है। इसीलिए "अंधेरे में" कविता में बुद्धिजीवी युवक अपने आप व्यक्तित्व परिवर्तन नहीं करते। यह काम करते हैं मजदूर। प्रतीक है साँवले रंग का एक बलवान लुहार। उसने कंडों की आग जलाकर लोहे का चक्का गरम किया है। उसके सहयोगी कुछ बलवान जन साँवले मुख के घन मारकर लाल लोहे की पट्टी लकड़ी के चक्के पर जबरन चढ़ाते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध की कविताओं में बुद्धिजीवियों को क्रांति का पाठ पढ़ाने वाले दूसरी तरह के लोग विद्यमान हैं।[1] इसी तरह "मुझे याद आते हैं" कविता में डॉ. शर्मा श्रमिक-वर्ग के प्रतीक लुहार का चित्रण देखते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार यहाँ मुक्तिबोध मार्क्सवाद की सीमाओं में प्रवेश करते हैं। वे अतिक्रमण करते हैं निम्न-वर्ग की सीमाओं का।[2]

इस प्रकार डॉ. शर्मा नामवर सिंह की समीक्षा-दृष्टि का विश्लेषण करते हुए उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण तथा विवेचन की पद्धति की त्रुटियों को मुक्तिबोध की समीक्षा के प्रसंगों के माध्यम से उजागर करते हैं।

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद -- पृ. 245
2. वही, पृ. 246

अध्याय : छः

6. डॉ. रामविलास शर्मा की जीवनी-परक आलोचना

अध्याय : छः

डॉ. रामविलास शर्मा की जीवनी-परक आलोचना

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी चिंतन प्रक्रिया के विकास के क्रम में न केवल साहित्य के क्षेत्र में ही पहल की है बल्कि अपनी मार्क्स-वादी दृष्टि को आधार बना कर साहित्य की अनेक विधाओं में स्वतंत्र रूप से साहित्यिक अवधारणायें प्रस्तुत की हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य की अल्प-विकसित जीवनी-साहित्य की विधा के क्षेत्र में निराला की साहित्यिक जीवनी लिखकर इस विधा के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया है चूँकि डॉ. शर्मा के द्वारा निराला के जीवन को उनके साहित्य से जोड़कर लिखे गये साहित्यिक-जीवन चरित से पूर्व जीवनी-साहित्य के क्षेत्र में अमृतराय द्वारा प्रेमचन्द के जीवन पर लिखी गई कृति "कलम के सिपाही" और विष्णु प्रभाकर द्वारा शरतचन्द्र के जीवन से सम्बद्ध लिखी गई कृति

आवारा मसीहा को ही विशेष उल्लेखनीय माना है। डॉ. शर्मा ने निराला की साहित्य-साधना शीर्षक तीन-खण्डों में निराला का सम्पूर्ण जीवन चरित प्रस्तुत करके इस विधा की परम्परा को विकसित किया है। डॉ. कमला प्रसाद के अनुसार "डॉ. शर्मा निराला के मित्र, समकालीन और सहयोगी होने के नाते रचनाकार के दायित्व की दृष्टि से यह कार्य किया है। रामविलास जी ने निराला की वास्तविक हैसियत को आत्मसात कर जीवन चरित्र की पुनर्रचना की है।"[1]

डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला विषयक लेखन के क्रम में सबसे पहले 1946 में "निराला" शीर्षक कृति की रचना की परन्तु वास्तव में देखा जाय तो डॉ. शर्मा के आलोचक जीवन का आरम्भ ही अपने प्रिय कवि निराला पर होने वाले चहुँ मुखी आक्रमणों के प्रत्युत्तर से ही हुआ है। जो लेख "निराला जी की कविता" शीर्षक से चाँद पत्रिका के अक्तूबर 1934 के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख से डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचक जीवन की शुरूआत होती है। इस बात को स्वयं डॉ. रामविलास शर्मा स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "निराला को लेकर हिन्दी में कितना संघर्ष हो चुका है तब मुझे इसका पता न था। सन् 1934 में यह संघर्ष ही मुझे आलोचना के क्षेत्र में घसीट लाया और मेरा पहला आलोचनात्मक निबन्ध निराला की काव्य प्रतिभा के समर्थन में प्रकाशित हुआ। सम्भव है यह संघर्ष न होता मेरे प्रिय कवि पर द्वेष-पूर्ण आरोपों की वर्षा न की गई होती तो मैं आलोचना के क्षेत्र में आता ही नहीं।"[2]

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा — सं. नत्थन सिंह -- पृ. 267-68
2. वही

डॉ. शर्मा के उक्त कथन से व्यक्त होता है कि उनके आलोचक बनने का कारण उनके प्रिय कवि पर आक्षेप रहा है। अमृतलाल नागर जी का कहना है कि "रामविलास के प्रति निराला के मन में वात्सल्य-भाव था वे उनके जीवन में तब आये जब या तो वे अपने भक्तों से घिरे हुए थे या कटु आलोचकों से। ...रामविलास निराला जी की दृष्टि में निरालाविद् सिद्ध हुए। रामविलास जी ने उन्हें अपनी उन खूबियों और बारीक निगारियों की सराहना तो मिलती ही थी जिन्हें वे समझते थे कि केवल वही समझते हैं, साथ ही उन्हें रामविलास से अपनी उन विशेषताओं का भी पता मिलता था जिनकी ओर स्वयं उनका ध्यान तक न गया होता था।"[1]

चूँकि देखा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा और निराला में आत्मीय सम्बन्ध और प्रगाढ़ स्नेह होने पर भी डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी निराला विषयक कृतियों में निराला के चरित्र के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों का चित्रांकन किया है। और निराला के चरित्र के दोनों पहलुओं को अर्थात योगी और भोगी रूप तथा कठिन और कोमल चरित्र को अत्यन्त मर्म-भेदी दृष्टि से विश्लेषित किया है जिससे डॉ. शर्मा की निष्पक्ष-दृष्टि और प्रखर प्रतिभा का परिचय मिलता है। उन्होंने "निराला की साहित्य-साधना कृति" में अपनी रचनात्मक शक्ति के द्वारा तथा कथा-शिल्प के प्रयोग से औपन्यासिकता की सृष्टि की है।

डॉ. शर्मा द्वारा कृत निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्ध कृतियों में निराला, निराला की साहित्य-साधना तीन खण्ड

---

1. आलोचना पत्रिका अंक-9, सं. नामवर सिंह -- पृ. 82

और छिटपुट निबन्ध मिलते हैं। निराला की साहित्य-साधना का प्रथम खण्ड ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा समांकलित निराला के व्यक्तित्व की पुनर्रचना है। दूसरा खण्ड निराला के कृतित्व का विश्लेषण है जबकि तीसरा खण्ड एक लम्बी भूमिका सहित निराला के पत्रों का संकलन है। डॉ. शर्मा द्वारा निराला के जीवन और कृतित्व से सम्बद्ध इन कृतियों के निर्माण का आधार उनकी परम्परावादी दृष्टि ही रही है इसीलिए डॉ. शर्मा कहते हैं कि --"इस तरह की समीक्षा के बिना हम अपनी परम्परा की कड़ियाँ न जोड़ सकेंगे और न हमारे नये साहित्य का आंदोलन सही प्रगति कर सकेगा।"[1] अर्थात् डॉ. शर्मा ने निराला सम्बन्धी जीवनी-परक साहित्यिक कृतियों की रचना करके न केवल परम्परावादी दृष्टि का परिचय दिया है बल्कि निराला के साहित्यकार रूप को जन-सामान्य में स्थान दिलाया है। इस सम्बन्ध में डॉ. शर्मा के विचार देखे जा सकते हैं -- "इस पुस्तक को लिखने का मूल उद्देश्य यह रहा है कि साधारण पाठकों तक निराला साहित्य पहुँचे, दुरूहता की जो दीवाल खड़ी करके विद्वानों ने निराला को उनके पाठकों से दूर करने का प्रयत्न किया था, वह दीवाल ढह जाय।"[2] उक्त उद्देश्य से प्रेरित होकर जीवनी लेखन के द्वारा उन्होंने निराला जी को जन-सामान्य का कवि बनाया है तथा उन्हें जनता के मध्य प्रेमचन्द की तरह स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण प्रयास किया है। डॉ. नन्दकिशोर नवल ने इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व उस पुस्तक द्वारा प्रथम बार साधारण पाठकों के लिए निराला साहित्य का द्वार उन्मुक्त किये जाने में बताया है।[3] और डॉ. कमला प्रसाद डॉ. शर्मा

---

1. हिन्दी आलोचना का विकास -- नन्दकिशोर नवल -- पृ. 242-243
2. निराला की साहित्य-साधना - प्रथम खण्ड -- भूमिका
3. हिन्दी आलोचना का विकास -- पृ. 243

की निराला साहित्य-साधना कृति का विवेचन करते हुए यह मानते हैं कि निराला की साहित्य-साधना पुस्तक के प्रथम खण्ड में निराला के जीवन से सम्बद्ध अनेक अनुत्तरित प्रश्नों को सुलझाया गया है वह जीवन चरित्र की पुस्तक है तीसरे खण्ड की सामग्री जीवन चरित की आधार है। आधार-सामग्री का संकलन लेखक के बाद तक किया है इसलिए प्रथम पुस्तक में अंतर्विरोध रह गये हैं। कमला प्रसाद जी का कहना है कि "अच्छा होता कि तीसरा खण्ड पहला, जीवन वाला दूसरा और कला वाला तीसरा खण्ड होता। आधार सामग्री के समूचे उपभोग के बाद भ्रमों की गुंजाइश न रहती।"[1]

"निराला की साहित्य-साधना" शीर्षक तीन खण्डों में विभक्त निराला की साहित्यिक जीवन का अध्ययन करने से डॉ.कमला प्रसाद जी का विचार सही प्रतीत होता है। चूँकि डॉ. शर्मा अपने निराला विषयक अध्ययन के क्रम में अंत तक सामग्री संगृहित करते रहे हैं इस कारण डॉ. शर्मा द्वारा लिखित निराला की साहित्य-साधना के पहले और दूसरे खण्ड़ों के लेखन में उपयोग की गई सामग्री को डॉ. शर्मा ने तीसरे खण्ड के रूप में एक लम्बी भूमिका के साथ प्रस्तुत किया है जिससे डॉ.शर्मा के निराला सम्बन्धी दृष्टिकोण और विचारों तथा प्रयोग किये गये तथ्यों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है और पाठक को डॉ. शर्मा द्वारा निराला के सम्बन्ध में व्यक्त विचार और धारणाओं का आधार प्राप्त होता है जिसके बाद भी यदि किसी को निराला के विवेचन में डॉ. शर्मा की अंध-भक्ति दिखाई देती है तो इसमें डॉ. शर्मा के कर्म का कोई दोष नहीं

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- सं. नत्थन सिंह -- पृ.269

बल्कि उस व्यक्ति की दृष्टि भ्रामक ही सिद्ध होती है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने रिाला और निराला की साहित्य-साधना (तीन खण्डों) में अत्यन्त विस्तार से निराला के जीवन-चरित्र को उनके साहित्यिक कर्म से सम्बद्ध करके अध्ययन किया है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार से जीवनी लेखन के कार्य का अभाव मिलता है। डॉ. शर्मा ने इन कृतियों में निराला की रचना-शीलता को उनके जीवन में घटित विभिन्न घटनाओं, सामाजिक-संघर्ष और मानसिक संघर्ष से जोड़कर उनके साहित्य को उनकी संघर्षशील मन की भावात्मक अभिव्यक्ति का रूप बताया है। तथा निराला के जीवनी-लेखन में डॉ. शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व को रचना और आलोचना की द्वन्द्वात्मक भूमि के आधार पर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कृतित्व को व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं से सम्बद्ध करके देखने की यह दृष्टि उनकी अपनी निजी मौलिकता के साथ प्रस्तुत हुई है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार की साहित्य-लेखन की दृष्टि का अभाव दिखाई देता है।

निराला के साहित्य साधना के प्रथम खण्ड में रामविलास ने निराला को पारिवारिक-सामाजिक परिवेश उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों और उनके जीवन के अंतरिक और बाह्य असंगतियों से जोड़कर उसके वास्तविक रूपों का अनूठा विश्लेषण प्रस्तुत किया है। "निराला" पुस्तक में डॉ. शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है कि "उनका व्यक्तित्व एक उपन्यास के अच्छे-खासे हीरो का सा रूप है उनके

जीवन के एक संक्षिप्त अध्ययन से हमारे सामाजिक संगठन की असंगतियाँ उसकी रूढ़ि-प्रियता और उसका खोखलापन बहुत कुछ समझ में आ जायेगा।"

डॉ. शर्मा की निराला सम्बन्धी उक्त दृष्टि का व्यावहारिक रूप निराला की साहित्य-साधना के प्रथम खण्ड में स्पष्ट रूप में व्यक्त होता है। प्रथम खण्ड में वर्णित निराला की जीवनी के अध्ययन से औपन्यासिक आनन्द की प्राप्ति होती है क्योंकि इस कृति में निराला को वास्तविक जीवन-संघर्ष के नायक रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिस कारण निराला के व्यक्तित्व के सामाजिक विश्लेषण से समकालीन समाज व्यवस्था की असंगतियाँ उभर आती हैं। डॉ. शर्मा द्वारा निराला के जीवन की विसंगतियों और विरोधाभास को व्यक्त करने के क्रम में समाज के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों की अंतरंग छवियाँ उभर आई हैं जबकि डॉ. शर्मा का इस कृति में उद्देश्य यह नहीं था बल्कि वे इस पुस्तक की रचना में अपना उद्देश्य निराला के व्यक्तित्व का विश्लेषण मानते हुए इस कृति की भूमिका में लिखा है कि "निराला पर मेरी पहली पुस्तक से यह भिन्न है संग्रह और विश्लेषण दोनों ही दृष्टि से। ...पुस्तक का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व का अध्ययन है इसलिए निराला के प्रत्येक लेख, प्रत्येक रचना का हवाला देना मैंने आवश्यक नहीं समझा।"[1] इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा ने निराला की साहित्य-साधना के प्रथम खण्ड के उपसंहार में अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मेरा उद्देश्य निराला को हीरो बनाकर कल्पित-वार्तालाप से यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करना नहीं रहा। मैंने भरसक उनका वस्तु-परक जीवन-चरित दिया है

---

1. निराला की साहित्य-साधना - प्रथम खण्ड -- भूमिका

जिसका उद्देश्य पाठक को मुग्ध करना नहीं विवेक से निराला के व्यक्तित्व को समझने में सहायक होना है।"[1]

इस कृति में डॉ. शर्मा की उक्त दृष्टि का व्यावहारिक रूप भी मिलता है क्योंकि इस कृति के कई अध्याय वास्तव में निराला के व्यक्तित्व विश्लेषण पर आधारित है जिसमें डॉ. शर्मा का मूल उद्देश्य निराला के व्यक्तित्व का सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत करना ही रहा है। अमृतलाल नागर जी निराला की साहित्य-साधना कृति की महत्ता स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "रामविलास शर्मा लिखित निराला की साहित्य-साधना अपने चरित नायक के सजीव और यथार्थ चित्रण में नाम-चिह्न विदेशी जीवन-चरितों से बराबर की टक्कर लेने में कहीं अधिक समर्थ है।"[2] कुछ इसी प्रकार से विचार व्यक्त करते हुए विष्णुकांत शास्त्री जी निराला की साहित्य-साधना के प्रथम खण्ड में निराला के जीवन-चरित का प्रकाशन ऐतिहासिक महत्व की घटना मानी है। और विष्णुकांत शास्त्री जी का कहना है कि "हिन्दी में प्रचलित सर्वगुण सम्पन्न हमारे चरित नायकवाद की अतिशय भावुकता-पूर्ण, आधे तथ्य, आधे अनुमान से भरे जीवन चरित-लेखन की धारा से सहज ही अलग दिखने वाली इस गौरवशालिनी कृति का सबसे बड़ा गुण है आत्मीयता-पूर्ण श्रद्धा के बावजूद नीर-क्षीर-विवेकी वैज्ञानिक की सी वस्तुपरकता एवं तथ्यों के प्रस्तर खण्डों को तराशकर उन्हें जीवन्त कर देने वाले शिल्पी की सी भावमयता का मणिकांचन संयोग।"[3]

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- प्रथम खण्ड -- भूमिका
2. आलोचना पत्रिका -- अंक-9, सं. नामवर सिंह -- पृ. 89
3. वही

शास्त्री जी का मानना है कि रामविलास शर्मा ने निराला को देवता या सन्त बनाये बिना, उनकी दुर्बलताओं पर पर्दा डाले बिना, उनके सहज महान् मानव रूप को इसमें मूर्त कर दिया है। डॉ. शर्मा ने निराला के रीति-विरोधी कृतित्व को रेखांकित करते हुए निराला के सामंतवाद-विरोधी व्यक्तित्व और रीतिवाद-विरोधी कृतित्व के प्रामाणिक मूल्यांकन को प्रस्तुत किया है। साथ ही निराला के समीक्षात्मक एवं जीवन चरितात्मक लेखन को अपनी आलोचना दृष्टि द्वारा निराला और उनके साहित्य के सम्बन्ध में द्वेष-पूर्ण आरोपों की धुन्ध को छाँटकर उनके सही मूल्यांकन को प्रस्तुत किया है। किन्तु नेमिचन्द्र जैन डॉ. शर्मा की इस कृति की महत्ता स्पष्ट करते हुए लिखते हैं -- "निराला का जीवन और कृतित्व इस बात का बड़ा जीता-जागता प्रमाण है कि वे जिन्दगीभर अपने व्यक्तित्व और लेखन दोनों से ही अतिवादी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते रहे और उनकी मृत्यु के बाद भी उनके बारे में जो कुछ लिखा गया है उसमें श्रद्धांजलि का भाव अधिक है एक समर्थ कृतिकार और तेजस्वी व्यक्ति का वस्तु-परक मूल्यांकन या विश्लेषण बहुत कम। रामविलास शर्मा के तीन खण्डों में प्रस्तावित ग्रंथ निराला की साहित्य-साधना का जीवन चरित सम्बन्धी प्रथम खण्ड इस कार्य की सभी कठिनाईयों, चुनौतियों और खतरों को जाहिर करता है। ग्रंथ का उद्देश्य निस्संदेह बड़ा भी है और महत्वकांक्षी भी।"[1] जो डॉ. शर्मा के अनुसार इस प्रकार है -- "निराला के पारिवारिक-सामाजिक परिवेश से, उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों से, उनके जीवन के बाह्य रूपों के साथ उनके अंतर्जगत से पाठकों को परिचित कराना मेरा उद्देश्य है।"[2] अपने

---

1. आलोचना पत्रिका -- अंक-9 -- सं. नामवर सिंह -- पृ. 95
2. निराला की साहित्य-साधन -- खण्ड-1 -- भूमिका

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने निराला के जीवन-सामग्री का संकलन अत्यन्त विवेक-युक्त दृष्टि से करते हुए उनके साहित्य में व्यक्त आत्म-व्यंजन उल्लेखों, पत्राचार सामग्री, पत्रिकाओं और पुस्तकों में व्यक्त विचारों, आलोचना और प्रत्यालोचनाओं का सम्यक दृष्टि से मूल्यांकन गाथा-भंजक के रूप में तथ्यों का प्रामाणिकता के आधार पर ग्रहण कर गलत और भ्रामक अवधारणाओं को धूलिसात किया है। डॉ. शर्मा की इस विवेचनात्मक दृष्टि और पद्धति का कारण नेमिचन्द्र जैन ने रामविलास शर्मा का निराला से दीर्घकालीन सम्पर्क, निजी आत्मीयता, कवि के बाह्य और आंतरिक संघर्षों के निकट साक्षी होना मानते हुए कहा है कि "निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ उनका लगाव और तादात्म्य भी ऐसा रहा है जो सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और सहानुभूति के साथ लिखने में सहायक हुआ है।"[1] परन्तु अमृतलाल नागर जी का कहना है कि "रामविलास जी ने अपने चरित-नायक का चित्रण खास तौर से उसके कठिन क्षणों में बड़ी ही अन्तरंगता और कलात्मकता से किया है।"[2] और साथ ही डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के जीवन से सम्बद्ध प्रचलित विश्वासों के प्रतिकूल स्थापनायें दी हैं। जैसे निराला का जन्म वसंत पंचमी को नहीं हुआ, लालन-पालन राजकुमार जैसा नहीं बल्कि अभावों में हुआ, बड़े होने पर साधारण नौकरी और प्रचुर लांछना मिली, मतवाला का प्रकाशन निराला की प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिये नहीं हुआ, उग्र के आगमन के बाद वैचारिक भिड़ंत के कारण मतवाला से हट जाना, जूही की कली 19 वर्ष की आयु में नहीं लिखी गई तथा वह पहली कविता भी न थी, सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजा नहीं गया था, मुक्तक-छन्द के

---

1. आलोचना-पत्रिका अंक-9 -- सं. नामवर सिंह -- पृ. 95
2. वही, पृ. 89

आविष्कारक निराला नहीं, बंगला नाटककार गिरीशचन्द्र घोष हैं, दुलारेलाल भार्गव द्वारा पोषण कम शोषण अधिक किया गया, निराला द्वारा पंत की काव्य-प्रतिभा का अपहरण नहीं किया गया, निराला पागल नहीं हुये थे उनका मानसिक विक्षेप न्यूरोसिस और पैरोनोइया से आगे नहीं बढ़ा, निराला अपव्ययी नहीं थे, आश्रितों की यथाशक्ति आर्थिक सहायता करते रहें, भोग के पुरस्कार में रोग पाना, छतरपुर नरेश की प्रशस्ति में कविता लिखना पड़ा, प्रौढ़ावस्था में संगीन आघातों का होना, रवीन्द्र एवं पंत के प्रति ईर्ष्या भरी स्पर्धा होना आदि अनेक नवीन एवं प्रतिकूल स्थापनायें रामविलास शर्मा द्वारा अपने निराला संबंधी विवेचन में प्रस्तुत की गई है। इसके साथ ही शास्त्री जी कहते हैं कि इन सबके बावजूद निराला कवि के रूप में ही नहीं, मनुष्य के रूप में भी महान् थे। अपने प्रतिकूल चलने वाले संगठित विरोध अभियान प्रकाशकों के हृदयहीन शोषण एवं नियति के कूर आघातों के विष से दग्ध होते हुए भी अमृत संधानी निराला की अदम्य आशावादिता, जीवट भरी संघर्ष-शीलता, मर्मस्पर्शी कृतज्ञता एवं आघात जर्जर मन की अपराजेय, आस्था के प्रचुर उदात्त, करुण-चित्र इस पुस्तक में मिलेंगे।"[1]

इस प्रकार रामविलास शर्मा की निराला विषयक कृतियों में न केवल निराला का संघर्षशील व्यक्तित्व ही मिलता है बल्कि उनके युग का भी यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इस सम्बन्ध में नेमिचन्द्र जैन का कहना है कि डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक "निराला की साहित्य साधना" में विशेषकर जिस युग में निराला की प्रतिभा विकसित होकर

---

1. आलोचना -- पत्रिका - अंक-9 -- सं. नामवर सिंह -- पृ. 90

निखरी, उस पूरे दौर के साहित्यिक इतिहास की बहुत-सी महत्वपूर्ण स्थितियों और घटनाओं तथा उनके साथ निराला के संबंध पर प्रकाश पड़ा है।"[1] इसके अतिरिक्त नेमिचन्द जैन रामविलास शर्मा की निराला विषयक साहित्य की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि -- "रामविलास शर्मा द्वारा प्रस्तुत निराला का जीवन-चित्र वस्तुपरक से अधिक रोमांटिक है और उसके पीछे नायक-पूजा का भाव तथा प्रतिभा-सृष्टि का उद्देश्य ही प्रधान है इसीलिए उसमें निराला के व्यक्तित्व का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है वह उसके बुनियादी अंतर्विरोध का बेझिझक सामना करने की बजाय उसके मनोविश्लेषण मूलक या अन्य प्रकार के औचित्य खोजने में उलझ जाता है।"[2]

डॉ. रामविलास शर्मा की निराला विषयक साहित्य समीक्षा का विवेचन प्रस्तुत करते हुए जहाँ एक ओर नेमिचन्द जैन निराला की जीवनी लेखन में वस्तुपरकता की अपेक्षा रोमांटिकता की बहुलता बताते हैं वहीं दूसरी ओर विष्णुकांत शास्त्री जी कहते हैं कि डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला विषयक लेखन के क्रम में स्वयं को वीर पूजा की अन्ध-श्रद्धाभरी प्रवृत्ति से बचाया है। और साथ ही करूणा उगाहने की रूग्ण मनःस्थिति से भी स्वयं को बचाये रखा है। साथ ही शास्त्री जी लिखते हैं कि "निराला के जीवन के करूणतम प्रसंग सरोज की मृत्यु पर जिस तरह सूचना पाकर निराला ने न एक भी आँसू गिराया, न एक भी शब्द कहा उसी तरह रामविलास जी की लेखनी ने उस चरम पीड़ा-भोग को परम-वाक् संयम द्वारा अत्यन्त प्रभविष्णु बना दिया है।"[3] इतना ही नहीं बल्कि रामविलास

---

1. आलोचना-पत्रिका - अंक-9, सं. नामवर सिंह -- पृ. 95
2. वही
3. वही, पृ. 90

शर्मा निराला द्वारा व्यक्त दुःखानुभूति के संदर्भ में लिखते हैं -- "निराला ने अन्तर की समस्त शक्ति बटोर कर भ्रम और प्रवंचना से दूर अपने क्षुब्ध मन को शांत किया।"[1] निराला के अन्तर की उस शक्ति का स्पष्टीकरण करते हुए रामविलास लिखते हैं कि -- "जो शक्ति रहस्यवादियों के ज्ञान और प्रकाश से न मिली थी वह उन्हें अपने मन में संचित अपमान से मिली। लांछना की अग्नि विकट-प्रेरक शक्ति बनकर उन्हें आयु के शेष वर्षों के पार ले जाएगी।"[2] किन्तु विष्णुकांत शास्त्री रामविलास शर्मा द्वारा निराला की अन्तःशक्ति के प्रेरणा स्त्रोत भौतिक स्त्रोतों में खोजने की मार्क्सवादी अवधारणा और दृष्टि बताते हुए लिखते हैं कि "उनकी प्रेरणा की शक्ति लांछना की अग्नि नहीं, भक्ति की शीतलता है ... निराला का सम्बल लांछना की अग्नि जैसी निषेधक भावना नहीं, विश्वास और जगन्माता की आज्ञा से अनुसरण के निश्चय जैसे विधायक भाव है।"[3] परन्तु रामविलास शर्मा अपनी मार्क्सवादी दृष्टि से निराला की अन्तर्शक्ति का स्त्रोत भौतिकवादी मानते हुए माइकेल एंजेलो और निराला की तुलना करते हुए लिखते हैं कि अपने मित्र के यह पूछने पर कि इस ठंड में कौन-सी चीज़ आपको जिलाये थी ? माइकेल ने कहा -- अपमान की ज्वाला। अपने गीत में निराला ने लिखा था-- लांछना इन्धन हृदय तल जले अनल-तब वह माइकेल एंजेलो की वही अनुभूति व्यक्त कर रहे थे।"[4]

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-एक -- पृ. 298
2. वही, पृ. 264
3. आलोचना-पत्रिका अंक-9 -- सं. नामवर सिंह -- पृ. 92
4. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-एक -- पृ. 513

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की साहित्य-साधना में निराला के विषम-जीवन का यथार्थवादी चित्रण भौतिकवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है तथा साथ ही यह भी दिखाने का प्रयास किया कि किस प्रकार किन कारणों से निराला जैसे संघर्षशील साहित्यकार की भावाभिव्यक्ति में समाज की वास्तविक छवि तथा उसके निजी जीवन की असंगतियाँ व्यक्त हुई हैं। परन्तु नेमिचन्द्र जैन डॉ. शर्मा द्वारा व्यक्त निराला के यथार्थवादी जीवन में एक भाववादी की तरह रोमांटिकता की खोज करते हुए अपनी समीक्षात्मक अवधारणा कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं -- नेमिचन्द जैन का कहना है कि "निराला के जीवन को रामविलास ने सफलता की कुछ ऐसी रोमांच-कथा के रूप में प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार सुर्जकुमार तेवारी नामक एक साधारण गरीब परिवार में जन्म लेने वाला बालक शिक्षा के अवसरों, साधनों और सुविधाओं से वंचित और अपने सहज स्वाभाविक क्षेत्र से दूर प्रतिकूल प्रदेश में रहकर भी, केवल अपनी कल्पना, मेधा और ऊर्जा के बल पर अपने अनवरत स्वाध्याय और अथक परिश्रम के सहारे अपनी भीतरी क्षमता प्रतिभा और प्रेरणा के जोर से, अमानवीय परिस्थितियों, विरोधों और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तुलसीदास के बाद हिन्दी का महानतम कवि बन गया।" आगे इसी क्रम में नेमिचन्द्र जैन कहते हैं कि "रामविलास ने निराला की तस्वीर जिस चौखटे में और जिस अभिभूत भाव से पेश किया है वह इस समग्र चित्र को वस्तुपरक से अधिक कल्पना रंजित बना देता है।"[1]

नेमिचन्द जैन को डॉ. शर्मा द्वारा व्यक्त निराला जीवनी का रूप यदि इस प्रकार का लगता है तो इस में दोष डॉ. शर्मा का नहीं

---

1. आलोचना-पत्रिका -- अंक-9 -- पृ. 97

बल्कि नेमिचन्द जैन की दृष्टि का है क्योंकि उक्त उनके विचारों से सिद्ध होता है कि वे मेधा कल्पना शक्ति, स्वाध्याय की प्रवृत्ति और परिश्रम, प्रतिभा आदि को एक निश्चित वर्ग विशेष की बपौती समझते हैं न कि जन-सामान्य सुलभ प्रवृत्ति। यदि वे प्रतिभा, मेधा शक्ति, कल्पनाशीलता और परिश्रम को मानव समाज का सामान्य गुण मानते तो उन्हें सुर्जकुमार जैसे गरीब निर्धन परिवार में जन्मे, अभावों में पले, स्वाध्यायी और परिश्रमी बालक का बड़ा होकर प्रतिभाशाली बनाकर अमानवीय शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना सही लगता असामान्य नहीं लगा और न ही डॉ. शर्मा द्वारा व्यक्त निराला की जीवनी उन्हें काल्पनिक जीवनी मूलक कहानी लगती। चूँकि सामाजिक विषमताओं और असंगतियों से जीवनभर संघर्ष करने वाले वीर-योद्धा का नाम सूर्यकांत त्रिपाठी निराला है जिसने अपने जीवन में झुकना नहीं सीखा था चाहे भले ही वह टूट जाये उन्होंने अपने जीवन में कभी-भी परिस्थितियों और व्यवस्था से समझौता नहीं किया बल्कि जीवन भर अनेक असामान्य कष्ट उठाते और मन को दहला देने वाले दुःखों का सामना करते रहे। अतः नेमिचन्द जैन की यह मान्यता कि "डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की साहित्य-साधना कृति के प्रथम अध्याय में बालक सुर्जकुमार की कथा बड़े प्रगीतात्मक लहजे में, किसी उपन्यास के काल्पनिक चरित्र की सृष्टि के अन्दाज से कहानी जैसी सजावट और बुनावट के साथ लिखी है, निस्संदेह यह अंश अपने आप में बड़ा रोचक लगता है पर उसकी विश्वसनीय वस्तु-परक जीवनी जैसी न होकर एक जीवनी मूलक कहानी जैसी है।"[1] मानना वास्तव में नेमिचन्द जैन की दृष्टि की भ्रामकता और समझ का फेर है वास्तविकता की अभिव्यक्ति नहीं। जबकि शास्त्री जी का कहना है कि यह जीवन-चरित एक व्यक्ति का होते हुए भी व्यक्ति सीमित ही नहीं है। निराला एक व्यक्तिमात्र ही तो नहीं थे वे संघर्ष, श्रमजीवी

---

1. आलोचना-पत्रिका -- अंक-9 — सं. नामवर सिंह -- पृ. 97

हिन्दी लेखकों के प्रतिनिधि थे अतः उनकी जिन्दगी बहुत दूर तक सर्व-सामान्य श्रमजीवी लेखक की जिंदगी है। वे अपने युग के प्रमुख निर्माताओं में से एक थे स्वभावतः उनके चरित में उनके युग की प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ और अन्तर्विरोध भी उभरे हैं। साहित्यिक स्तर पर वह छायावाद के उपहास, विरोध, प्रतिष्ठापन एवं प्रगतिशील, प्रयोगशील धाराओं में रूपांतर की कहानी है तो राष्ट्रीय स्तर पर कर्मठ वेदांत, राष्ट्रीयता, गाँधीवाद और काल्पिक समाजवाद के समवाय की गाथा। और फिर वे केवल अपने युग के ही नहीं हैं रूढ़ियों को निर्ममता-पूर्वक तोड़ने वाला यह क्रांतिकारी परम्परा से सर्वाधिक जुड़ा भी होने के कारण न केवल हिन्दी भाषी जाति का ही बल्कि आद्यमानकाल से चली आने वाली भारतीय संस्कृति का मुख पात्र भी है, अतीत का भी है और भविष्य का भी। रामविलास ने निराला चरित के इन विविध स्तरों को सचेत रूप से उद्घाटित किया है। डॉ. शर्मा लिखते हैं -- "आज हर लेखक का भाग्य, निराला के भाग्य से जुड़ा हुआ है-- उस हर लेखक का भाग्य जिसने ईमान बेचा नहीं है, जो अपनी कला के प्रति सच्चा है विशेष रूप से हिन्दी लेखक जो अभावों और रूढ़ियों की दुनिया में एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए जूझ रहे हैं निराला के भाग्य को अपना भाग्य मानते हैं।"[1]

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-एक -- पृ. 522

डॉ. शर्मा निराला का विवेचन न केवल युग सापेक्षता की दृष्टि से करते हैं बल्कि परम्परावादी दृष्टि को अपनाते हुए वे निराला को भारतेन्दु की क्रांति को आगे बढ़ाने वाले रूप में प्रस्तुत किया है। डॉ. शर्मा के अनुसार "निराला अपने युग के साथ महान् थे। भारतेन्दु ने जो आंशिक क्रांति की थी उसे बहुत कुछ पूरा किया निराला और उनके सहयोगियों ने।"[1] अर्थात् यहाँ डॉ. शर्मा का अभिप्राय यह है कि निराला में जो समकालीन व्यवस्था शोषण असंगतियों और विरोधाभास के प्रति जो विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित मिलती है वास्तव में उसकी चिन्गारी भारतेन्दु युगीन रही है जो काल के साथ-साथ परम्परागत रूप से विकसित होते-होते निराला में ज्वाला के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। चूँकि डॉ. शर्मा के अनुसार निराला का अर्थ है हिन्दी साहित्य की परम्परा। जिसने परम्परा की कड़ियाँ सबसे ज्यादा तोड़ी थी, वही उस परम्परा का सबसे समर्थ प्रतिनिधि था। साथ ही हिन्दी भाषी जाति की अतुल शक्ति और उसके अन्तर्विरोधों के प्रतीक भी थे। क्योंकि वाल्मीकि और व्यास का उदात्त स्वर भक्ति काल की विनम्र वाणी में खो गया था वह स्वर भारतीय जनता ने फिर से इस युग में सुना निराला के काव्य में।"[2]

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा जी ने अपने निराला विषयक कृति में निराला के साहित्यिक जीवन का समीक्षात्मक अध्ययन युग सापेक्षतावादी पारम्परिक जनवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। विष्णुकान्त शास्त्री जी डॉ. शर्मा की इस कृति के सम्बन्ध में विचार

---

1. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-1 -- पृ. 548
2. वही, पृ. 550

व्यक्त करते हुए कहते हैं कि --"प्रस्तुत जीवन चरित के सम्बन्ध में यही कहना है कि अत्यन्त व्यापक दृष्टि से संवलित होने के कारण यह निराला और उनके युग को प्रतिबिम्बित करने वाला महत्वपूर्ण आलेख बन गया है।"[1] परन्तु नेमिचन्द जैन का कहना है कि "आरंभिक अध्याय लिखते समय रामविलास का आदर्श अर्विंग स्टोन, माइकेल एंजेलोके जीवन पर लिखे उपन्यास "दि ऐगनी एंड दि एक्सटैसी" ही रहा है।"[2] और इस कृति की समीक्षा के क्रम में नेमिचन्द जैन लिखते हैं - निराला की काव्य-साधना में भी प्रारंभ में शायद ऐसी औपन्यासिक प्रकार की प्रामाणिकता की ही तलाश ज्यादा थी मगर शैली की दृष्टि से दरअसल यह रामविलास शर्मा का अपना स्थायी निजी रंग नहीं। उनका असली रंग है किसी पूर्व-निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए सुविधानुसार तथ्यों तथा तर्कों की एक पर एक चुनाई और प्रतिकूल तथ्यों और तर्कों की या तो उपेक्षा या व्यंग के द्वारा उनकी धुनाई। इस पुस्तक के बाद के "मृत्यु से संघर्ष" तक बाकी अध्यायों में रामविलास ने अपनी इसी सुपरिचित पद्धति का बेझिझक उपयोग किया है।"[3] जबकि निराला ने साहित्यिक अभिव्यक्ति हेतु दो प्रकार की कलाओं का प्रयोग किया है जिसमें एक परिवेश कल्पना के माध्यम से परिवर्तित रूप में प्रस्तुत करना है तो दूसरा यथावत प्रस्तुत करने की कला जो यथार्थवादी प्रवृत्ति से सम्बद्ध मानी जाती है। जिसका विकास 1936 के बाद से आरम्भ हुआ था। इसी कारण डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि -- "नये पत्ते में निराला की कला का ह्रास नहीं विकास है जीवन को नये ढंग से देखने

---

1. आलोचना - पत्रिका - अंक - 9, सं. नामवर सिंह -- पृ. 91
2. वही, पृ. 96
3. वही, पृ. 96

और चित्रित करने का प्रयास है। यह कला नये ढंग की है जिसे निखारने के लिए निराला के सामने बने-बनाये साँचे नहीं थे। निराला ने यहाँ हिन्दी कविता के विकास का नया मार्ग दिखाया।"[1] परन्तु डॉ. नन्दकिशोर नवल का कहना है कि रामविलास शर्मा ने अपनी पहली पुस्तक में कहा था -- "निराला नये पत्ते की कविताओं में जिस तरह का यथार्थवाद प्रतिष्ठित कर रहे थे उसका पूर्ण विकास उनकी कविता में नहीं, गद्य में है और बहुत पहले से है और नये पत्ते में इस वाद का अवशेष है उसकी शुरूआत वहाँ नहीं है।"[2] इसे नन्दकिशोर नवल डॉ. शर्मा का वैचारिक अन्तर्विरोध बताते हैं किंतु डॉ. रामविलास शर्मा निराला के गद्य-साहित्य पर विचार करते हुए कहते हैं कि -- "निराला के कथा-साहित्य में दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ देखी जाती है एक प्रवृत्ति काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपने रचने की है, दूसरी वास्तविक जीवन-संघर्ष को चित्रित करने की।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि डॉ. रामविलास शर्मा में वैचारिक अन्तर्विरोध नहीं है बल्कि वे निराला के सम्पूर्ण साहित्य में ही दो प्रकार की प्रवृत्तियों को देखते हैं जो वास्तव में निराला का वैचारिक अंतर्विरोध रहा है जो कि निराला की जूही की कली और कुकुर मुत्ता जैसी रचनाओं के रचयिता की मानसिक प्रवृत्ति को व्यक्त करता है।

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-2 -- पृ. 451
2. वही
3. वही, पृ. 462

"साधना-प्रारम्भ" अध्याय में डॉ. रामविलास शर्मा निराला को नई कविता का नेता और योद्धा सिद्ध करने के लिए लिखा है -- "निराला की निगाह इस समय हिन्दी के हर प्रसिद्ध पत्रिका पर थी कहाँ क्या निकला, छायावाद के पक्ष में कहाँ क्या लिखा गया, विरोध में क्या, यह सब कुशल नेता की तरह वह चौकन्ने होकर देखते थे। प्रसाद वाद-विवाद से दूर रहते थे पंत अभी उभार रहे थे। गद्य वैसे भी न लिखते थे। केवल निराला ललकार-ललकार कर शत्रुओं का वध करने में लगे थे। पर जो साहित्य की सेवा कर रहे थे अथवा नई कविता को सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे, उनके प्रति वह आदर और स्नेह भी प्रकट करते थे।"[1]

इस प्रकार निराला का साहित्य युग सापेक्ष्य और परिस्थितियों और परिवेश से प्रभावित रहा है। डॉ. शर्मा ने निराला की अनेक रचनाओं में युद्धकाल का प्रभाव स्वीकार करते हुए द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाओं की पृष्ठभूमि में ही कुकुरमुत्ता, बेला और नये पत्ते आदि की व्याख्या संभव माना है तथा इन कविताओं में निराला यथार्थवाद की दिशा में प्रगति करने की बात स्वीकार की है। इससे स्पष्ट होता है कि निराला का साहित्य युग सापेक्ष्य होने के कारण उसमें वैचारिक अन्तर्विरोध परिस्थितियों और परिवेश के कारण उत्पन्न हुआ है। जहाँ एक ओर निराला जूही की कली जैसी घोर श्रृंगारिक रचना प्रस्तुत करते हैं वहीं यथार्थवादी दृष्टि से कुकुरमुत्ता में सामाजिक शोषण को भी व्यक्त किया इसके अतिरिक्त "वह तोड़ती पत्थर", "भिक्षुक" आदि कविताओं में निराला की यथार्थवादी दृष्टि देखी जा सकती है।

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-1 -- पृ. 77

जो वास्तव में निराला के वैचारिक विकास की दिशा को व्यक्त करता है। इसी कारण निराला के साहित्य-मूल्यांकन सम्बन्धी आलोचकों की त्रुटियों का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं कि "आलोचक निराला के यथार्थ दुःख को, साहित्य में व्यक्त देशवासियों के दुःख को भूल जाते हैं वहीं निराला को महान् कवि बनाता है।"[1]

इसका अभिप्राय कदापि यह नहीं होगा कि निराला का साहित्य केवल उनके व्यक्तिगत दुःख और देश के दुःख को अभिव्यक्त करने का स्त्रोत मात्र है बल्कि निराला ने अपने मानव-समाज के दुःख को अपनी साहित्यानुभूति द्वारा व्यक्त करते हुए उससे मुक्ति के लिए स्वयं ने भी जीवन भर संघर्ष किया तथा सम्पूर्ण मानव समाज को दुःखों से मुक्त कराने की कामना रखते थे इस कारण वे संघर्षशील कवि और साहित्यकार माने गये हैं। और साथ ही वे मुक्ति की कामना और प्रेम-श्रृंगार के भी कवि रहे हैं जिस कारण उनके साहित्य में मानव जीवन का संयोग और वियोग अर्थात् दुःख और सुख दोनों पक्षों का सफल चित्रण मिलता है। इस कारण डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं --"निराला मानव-दुख का कवि नहीं है वह उससे मुक्ति पाने की प्रबल कामना का भी कवि है और वह प्रेम और श्रृंगार का भी कवि है। मानव जीवन को स्वीकार करने वाला कवि।... निराला के गद्य-साहित्य में सामाजिक यथार्थ का चित्र विशदता सहित रेखाओं और रंगों की सजीवता के साथ प्रस्तुत हुआ है।"[2]

---

1. निराला -- रामविलास शर्मा -- पृ. 164
2. वही, पृ. 165-66

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की जीवनी-लेखन के माध्यम से निराला का साहित्यिक जीवन का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है जिससे निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व का पूरक सम्बन्ध व्यक्त होता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तथा निराला के जीवन और उनके साहित्य का कारण कार्य-मूलक सम्बन्ध व्यक्त किया गया है जो वास्तव में जीवनी-लेखन की एक नई परम्परा के आरम्भ की सूचना देता है। डॉ. शर्मा की अपनी निजी लेखन पद्धति है। डॉ. रामविलास शर्मा निराला के जीवन-लेखन के क्रम में निराला की विचारधारा और भावाभिव्यक्ति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-- "निराला जी अपनी विचारधारा में वेदान्त के मानने वाले थे, लेकिन अपने सहजबोध में महाअद्वैतवादी प्रकृतिवादी हैं उनकी जो उद्भावनाएँ हैं वह सहज रूप में विकसित होती है। उनको उन्होंने व्यवस्थित रूप नहीं दिया अन्यथा वह बहुत बड़े दार्शनिक होते। लेकिन शास्त्र पढ़कर जो दर्शन लिखते हैं उसका मेरी दृष्टि में विशेष मूल्य नहीं है। निराला ने जीवन के संघर्ष में उसे पाया था। निराला ने जीवन की ट्रेजेडी से जिस उद्भावना को पकड़ा उसे मैं उनका सहज बोध कहता हूँ जो इस चीज को पकड़ सकता है वह बहुत बड़ा कलाकार है हर क्रांतिकारी विचारधारा को लेकर चलता है। लेकिन क्रांति भी विचारधारा और सहजबोध दोनों के समन्वय से पैदा होती है।"[1]

डॉ. राम विलास शर्मा अपनी सामाजिक दर्शन की दृष्टि से निराला को जहाँ एक ओर शेक्सपीयर और भवभूति के बाद दुनिया का सबसे बड़ा ट्रैजिक कवि माना है वहीं दूसरी ओर निराला को श्रेष्ठ

---

1. रामविलास शर्मा -- सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी -- पृ. 15

साहित्य-कार होने के साथ-साथ श्रेष्ठ कलाकार भी बताया है क्योंकि निराला जी की जो निर्माण कौशलता है वह स्थापत्य-कला विशारद की तरह काव्य-रूप को तराशने और गढ़ने से निर्मित हुई है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी समीक्षात्मक दृष्टि के द्वारा निराला के काव्यों का विश्लेषण परिमल से आरम्भ करते हुए उसकी संगृहित कविताओं की प्रमुख प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन किया है उन्होंने निराला की रहस्यवादी, श्रृंगारिक प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी और सामाजिक यथार्थवादी रचनाओं की विशेष चर्चा की है। तथा गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते आदि संग्रहों की कविताओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष निकाला कि "निराला में प्रारम्भ से ही आदर्शवादी (रोमाण्टिक या छायावादी) और यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ मिलती रही हैं जैसे-जैसे निराला-काव्य का विकास होता गया वैसे-वैसे उनका यथार्थवादी, जनवादी एवं प्रगतिवादी पक्ष प्रबल होता गया। उनका रहस्यवाद-छायावाद कमजोर पड़ता गया। उनके प्रत्येक कविता-संग्रह में प्रगतिशीलता को लेकर चलने वाली कविताएँ मिल जायेंगी। अनामिका की "राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" छायावाद शैली का चरम विकास है। में संक्रमणकालीन रचनाएँ हैं।"[1] इसके अतिरिक्त "निराला" तथा "निराला और मुक्त-छन्द", "कवि निराला" आदि निबन्धों में डॉ. शर्मा की व्यावहारिक समीक्षा का सबसे संतुलित रूप दिखाई पड़ता है लेखक ने कवि का सर्वांगीण विवेचन किया है उसकी उपलब्धियों और सीमाओं पर तटस्थ भाव से विचार किया है। इसी

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह -- डॉ. हरदयाल -- पृ. 105

प्रकार डॉ. शर्मा ने शैली और रवीन्द्रनाथ के साथ निराला की तुलना करते हुए उनकी सौंदर्य चेतना के विविध रूपों को उद्घाटित किया है। डॉ. शर्मा लिखते हैं -- ऐसी व्यापक प्रसिद्धि उतने कम समय में अब तक हिन्दी में किसी कवि को न मिली थी, उन कवियों को भी नहीं जिनकी रचनाएँ स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने "सरस्वती" में छापी थी एण्ट्रेन्स फेल सुर्जकुमार ने अपनी प्रतिभा और पौरुष से युग-प्रवर्तक सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की इस भव्य मूर्ति का निर्माण किया था।"[1]

डॉ. रामविलास शर्मा की "निराला" पुस्तक में बैसवाड़े का जीवन, साहित्य की पृष्ठभूमि और एक आकर्षक व्यक्तित्व नामक तीन अध्याय हैं जिसमें बैसवाड़े का साहित्यिक वातावरण की विशेषता, निराला का घटना-संकुल जीवन और उनके मित्रों परिचितों, विरोधियों, समर्थकों आदि का विवरण इस ढंग से दिया गया है कि उनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि समझ में आ जाती है। डॉ. शर्मा ने जाने-अनजाने निश्चय ही उन घटनाओं और वातावरण के उन संघटकों का ध्यान रखकर यह विवरण दिया जो निराला के कवि-व्यक्तित्व को समझने में सहायक होता है। डॉ. शर्मा ने अपनी इस छोटी-सी पुस्तक में निराला और उनके युग का पूर्ण और संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। तथा इस पुस्तक में निराला के आन्तरिक रचना संसार को परिमल से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। डॉ. शर्मा ने व्यक्त किया कि निराला का सौन्दर्य आनन्द ब्रह्मानन्द का सहचर है सौन्दर्य या वासना की तृप्ति की परिणति शांति में होती है, जहाँ किसी प्रकार की ईति-भीति नहीं रहती। यह

---

1. निराला की साहित्य-साधना खण्ड-1 -- पृ. 81

निराला की भौतिकता की आध्यात्मिकता है।"[1] इसके अतिरिक्त निराला के काव्य में प्रकृति के प्रति आकर्षण की पुष्टि करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं कि "यह निराला का प्रकृति अद्वैत दर्शन है जो अनेक कविताओं में तरह-तरह से चित्रित हुआ है।"[2] निराला में प्रकृति के विविध रूपों के साथ-साथ नारी के प्रति भी आकर्षण मिलता है। इस सम्बन्ध में डॉ. शर्मा कहते हैं -- "निराला नारी के सौन्दर्य, पुरूष और नारी की काम-चेतना और उस चेतना की स्वाभाविक परिणति के कवि हैं।"[3] इसका तात्पर्य स्पष्ट करते हुए डॉ. नवल कहते हैं कि "उनमें पुरूष और नारी के पारस्परिक आकर्षण को लेकर कोई हीन भावना नहीं है बल्कि वे जीवन सत्य के रूप को स्वीकार करते हुए यौन-सम्बन्ध में उसकी स्वाभाविक परिणति के पक्ष-पाती हैं। उनका सौन्दर्य-प्रेम से युक्त है और प्रेम काम से। किन्तु उनमें दमित काम-वासना और अशरीरी प्रेम प्रायः नहीं मिलता है। लेकिन जीवन-यथार्थ को स्वीकारने की प्रवृत्ति के साथ-साथ उसे झुठलाने की भी प्रवृत्ति मिलती है। डॉ. शर्मा निराला के इस अन्तर्विरोध की ओर संकेत करते हुए कहते हैं -- "निराला काल्पनिक इच्छापूर्ति, आत्म प्रवंचना और रहस्यवादी रूढ़ियों के कवि भी हैं। उनके साहित्य में इस तरह की प्रवृत्तियाँ उनकी साम्राज्य-विरोधी क्रांतिकारी चेतना, उनके यथार्थोन्मुख मानवतावाद के आड़े आती हैं। ये प्रवृत्तियाँ उनके साहित्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक रहती है और अनेक स्तरों पर उस साहित्य को प्रभावित करती है।"[4]

---

1. निराला -- डॉ. रामविलास शर्मा -- पृ. 54
2. निराला -- वही, पृ. 198
3. वही, पृ. 198
4. वही, पृ. 214

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने अपनी निराला सम्बन्धी रचनाओं में निराला के व्याकरण, साहित्य प्रत्युत्तरात्मक आलोचना, धर्म संस्कृति और राजनीति से सम्बद्ध निबन्धों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस क्रम में डॉ. शर्मा ने "स्वामी सारानन्द और मैं" शून्यऔर शक्ति, काव्य में रूप और अरूप, पन्त जी और पल्लव वर्तमान धर्म, मेरे गीत और कला अधिकार समस्या वर्णाश्रम की वर्तमान स्थिति, कला के विरह में जोशी बन्धु इत्यादि निबन्धों की चर्चा करते हुए निराला के विचारों में द्विधा स्वीकार किया है। डॉ. शर्मा के अनुसार "निराला दैवी चमत्कारों में विश्वास और वर्णाश्रम धर्म या वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं तथा बाद में वैज्ञानिक विचारधारा का समर्थन करने लगते हैं।...एक ओर निराला जी सृष्टि को अमैथुनी मानकर चमत्कारवाद का समर्थन करते हैं तो दूसरी ओर देशकाल के बन्धन तोड़ने के लिए वे भौतिक विकास का भी समर्थन करते हैं।"[1] इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के निबन्धों में तर्कशीलता को देखते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. हरदयाल का कहना है कि "शर्मा जी ने जहाँ निराला जी के निबन्धों के वैचारिक पक्ष का विवेचन किया है वहीं उनकी तर्क प्रणाली, आलोचना शैली और अभिव्यक्ति कुशलता का भी कुशल उद्घाटन किया है।"[2]

डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के जीवन से सम्बद्ध सभी घटनाओं और स्थितियों का द्वन्द्वात्मक तर्क पद्धति द्वारा क्रमबद्ध रूप से संयोजित और सम्पादित किया है। नेमिचन्द जैन के अनुसार "उनका वजन

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह -- डॉ. हरदयाल -- पृ. 106
2. वही, पृ. 107

घटाया या बढ़ाया है, उन्हें शामिल किया या छोड़ दिया है इसलिए सारे प्रसंग यथार्थ होकर भी खास ढंग से सजाए हुए लगते हैं।"[1] इसी क्रम में नेमिचन्द जी डॉ. शर्मा की निराला की साहित्य साधना खण्ड-1 की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि -- "रामविलाश शर्मा को तो निराला की आधे मन से भोगी और आधे से संयासी" की प्रतिभा गढ़नी है। इसलिए उन जैसे सौन्दर्य-प्रेमी, ऐन्द्रिक जगत् के रूप-रस-गंध-वर्ण के वैभव के प्रति असाधारण रूप से संवेदनशील कवि के जीवन में किसी अनुराग का, प्रेम-प्रसंग का, किसी भावात्मक अंतर्द्वन्द्व या उलझाव एक का भी उल्लेख इस इतने बड़े ग्रंथ में नहीं है। ...बल्कि पूरे ही परवर्ती जीवन का चित्र बड़ा अस्पष्ट अधूरा और भ्रामक है।"[2] परन्तु इस प्रकार की आलोचना पद्धति की समीक्षा करते हुए विष्णुकांत शास्त्री जी लिखते हैं -- "तुलसी की मर्यादावाद के अनुगामी रामविलास जी उनकी तफरीह में शामिल होने से इन्कार करते हैं, वे कुछ तथ्य-पूर्ण संकेतों में ही उनके भोगी रूप की चर्चा यथेष्ट समझते हैं।... इस कृति में निराला के सन्यासी भाव की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक हुई है किंतु मार्क्सवादी होने के कारण डॉ. शर्मा उसे पूरा समर्थन नहीं दे पाते। उनका कर्मण्ठ वेदान्ती (ज्ञानी) रूप और रामचरित मानस तथा महावीर का उपासक कर्मण्य, लोक-संग्रही भक्त रूप उन्हें फिर भी पसन्द है किन्तु समर्पणशील विनय परायण भक्त रूप उन्हें संस्कारतः प्रिय नहीं लगता है इसीलिए निराला के उत्तरवर्ती काव्य की एवं तद्नुरूप मनोभाव की सम्यक् विवेचना उन्होंने नहीं की है।"[3] परन्तु नेमिचन्द जैन डॉ. रामविलास शर्मा की उक्त प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं -- लगता है रामविलास कोई

---

1. आलोचना -- पत्रिका - अंक-9 -- सं. नामवर सिंह -- पृ. 97
2. वही
3. वही, पृ. 92

ऐसा प्रसंग या घटना या व्यवहार नहीं देना चाहते जो निराला की वेदी पर प्रतिष्ठित मूर्ति को नीचे उतार दे जो कुछ प्रसंग दिए भी हैं उनका औचित्य दिखाने की या कारण खोजने की कोशिश की है।"[1]

किन्तु वास्तव में देखा जाय तो डॉ. शर्मा ने निराला की जीवनी लेखन में ऐसी किसी प्रवृत्ति का उपयोग नहीं किया बल्कि उन्होंने निराला के सम्बन्ध में मान्य प्रचलित धारणाओं का खण्डन करते हुए भोग का फल रोग, मतवाला में महत्व, जुही की कली की रचना अवधि, रवीन्द्रनाथ, पंत आदि से ईर्ष्या-द्वेष की भावना आदि का स्पष्ट उल्लेख किया जीवनी लेखन में डॉ. शर्मा ने कहीं भी किसी भी प्रसंग में गोपनीयता की पद्धति नहीं अपनाई बल्कि यथाप्रसंग घटनाओं और परिवेश का उल्लेख किया न कि अतिशयोक्ति और प्रशंसापूर्ण वर्णन। एक स्थान पर डॉ. शर्मा संदर्भवश लिखते हैं कि निराला के चरित की बड़ी चर्चा थी इसलिए कि निराला निर्धन थे और पुरानी समाज-व्यवस्था की नींव हिलाने वाले क्रांतिकारी भी थे।" तथा एक अन्य स्थान पर लिखते हैं -- निराला में युग की असंगतियाँ पुँजीभूत थीं।"[2] इसका गलत और भ्रामक अभिप्राय लगाते हुए नेमिचन्द जैन लिखते हैं कि "निराला की महानता को कम से कम उनके काव्य की महानता को, आड़ या बचाव की जरूरत नहीं है। उनके जीवन के दो-टूक स्पष्ट और तथ्य परक चित्र से तो उनका कवि-व्यक्तित्व और भी अधिक स्पष्टता से उभरेगा और परवर्ती मानसिक असंतुलन को सही परिप्रेक्ष्य मिल सकेगा।" इस बात से स्पष्ट होता है कि नेमिचन्द जैन ने डॉ. शर्मा द्वारा निराला के जीवनी लेखन के क्रम में उनके

---

1. आलोचना - पत्रिका - अंक-9 -- सं. नामवर सिंह -- पृ. 97
2. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-1 -- पृ. 539 और 612

व्यक्तित्व और साहित्य के प्रसंगों और संदर्भों में कारण कार्य मूलक पद्धति द्वारा द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध स्पष्ट करने की पद्धति को ठीक से नहीं समझा है बल्कि उसे निराला की साहित्यिक महत्ता को घटाने वाले रूप में स्वीकार कर व्यक्तित्व से सम्बन्ध प्रसंगों को निराला के साहित्यिक जीवन से अलग करके देखा है जो वास्तव में सही सामाजिक समीक्षा पद्धति नहीं है। परन्तु डॉ. हरदयाल शर्मा जी की निराला विषयक साहित्य की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि "शर्मा जी ने समग्र निराला साहित्य के विकास में एक सामान्य सूत्रता खोज निकाली है। यह सामान्य सूत्र है कि निराला के साहित्य और जीवन में दो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं -- रोमाण्टिक, अवैज्ञानिक अयथार्थवादी और दिवास्वप्न देखने वाली प्रवृत्ति और यथार्थवादी, प्रगतिवादी और वैज्ञानिक प्रवृत्ति। निराला के और उनके साहित्य के भाव, विचार, शैली और शिल्प के क्षेत्र में विकास के क्रम में पहले क्षीण होती गयी और दूसरी जोर पकड़ती गयी।"[1] जिसका विस्तृत अध्ययन डॉ. शर्मा ने निराला की साहित्य-समीक्षा खण्ड-दो में किया है। जिसमें निराला की विचार-धारा भाव-बोध और काव्य-रूप का भी अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ. शर्मा का कहना है कि "निराला की रचना-प्रक्रिया का स्त्रोत है उनका भाव-बोध यह भाव-बोध उनकी विचार धारा से सम्बद्ध है किंतु उसका प्रतिबिम्ब नहीं है। निराला का स्वाधीनता-प्रेम उनके साहित्य में अप्रत्याशित नये-नये रूपों में व्यक्त होता है। उनकी आस्था के प्रतीक अनेक हैं उनका अधिष्ठान एक है।"[2] चूँकि निराला के पास एक वैचारिक आधार है जिस के द्वारा वे अपने काव्य में अनेक कलात्मक रूपों

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह -- डॉ. हरदयाल -- पृ. 107
2. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-दो -- पृ. 5-6

में स्वाधीनता की भावना की अभिव्यक्ति करता है क्योंकि वे मूलतः स्वाधीनता की भावना के कवि हैं। और उनकी विचारधारा क्रांतिकारी नहीं बल्कि समकालीन राजनीतिक नेताओं से अधिक प्रगतिशील और सुसंगत है। इसी कारण वे विदेशी साम्राज्यवाद और देशी-सामंतवाद का विरोध करते हैं तथा साथ ही उन्होंने आमूल परिवर्तन के पक्षधर रहे हैं न कि समझौतावादी। इतना ही नहीं वे पुरुष स्त्री के मध्य की विषमता की समाप्ति को स्वाधीनता आंदोलन का अंग स्वीकार करते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार निराला की विचारधारा का महत्व यह है कि उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक क्रांति के रूप में देखा । उस क्रांति के प्रत्येक स्तर को तीक्ष्ण विश्लेषक की दृष्टि से देखा और इन स्तरों के परस्पर सम्बन्ध को पहचाना।"[1] इसके अतिरिक्त निराला के प्रति अपनाये गये बहुमुखी विरोध का कारण भी डॉ. शर्मा ने स्वाधीनता आंदोलन की समस्त प्रवृत्तियों का निराला में केन्द्रित होना स्वीकारा है। चूँकि निराला के गंभीर भावावेश के मूल में स्वाधीनता-प्रेम रहा है तथा उनकी क्रांतिकारी भावधारा का स्रोत उनकी गंभीर मानवीय करुणा में देखा जा सकता है। डॉ. शर्मा निराला के क्रांतिकारी स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -- "निराला के चिंतन में क्रांतिकारी वीर और जनता का गहरा सम्बन्ध है, दोनों एक-दूसरे को परखते एक-दूसरे की बात समझते हैं। विप्लवी वीर आतंकवादी नहीं, किसानों का पक्ष लेकर लड़ने वाला क्रांतिकारी है। फिर भी उसमें और किसान जनता में थोड़ा फासला है वह जनता का ही अभिन्न अंग नहीं है। सन् 30 के बाद की रचनाओं में यह फासला प्रायः खत्म हो जाता है। क्रांति करना क्रांतिकारियों का ही काम नहीं है क्रांति जनता करती है तभी सफल होती है।"[2]

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-दो -- पृ. 41

2. वही, पृ. 154

डॉ. शर्मा की उक्त विचारधारा में उनकी जनवादी दृष्टि द्योतीत होती है। वे मार्क्सवादी विचारधारा और दृष्टि से क्रांति को विश्लेषित करते हैं। तथा उसे जनता द्वारा किये जाने के पक्ष को विशेष महत्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला साहित्य की समीक्षा के क्रम में न केवल मुख्य बल भावों की यथार्थता तथा विचारों की वैज्ञानिकता पर दिया है बल्कि दूसरे पक्षों की भी उपेक्षा नहीं की है उसकी भी बौद्धिक विवेचना प्रस्तुत करते हैं परन्तु निराला सम्बन्धी विवेचन और मूल्यांकन के विषय में डॉ. शर्मा के प्रति यह धारणा बनी गयी है कि वे अधिक महत्ता भावों एवं विचारों को देते हैं, कला एवं शिल्प को नहीं जबकि विवेचन की इस शैली के दर्शन उनकी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द और उनका युग आदि रचनाओं में भी मिलती है किन्तु निराला की साहित्य-साधना के दूसरे खण्ड में इस सीमा का अतिक्रमण होना अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है। इससे सिद्ध होता है कि डॉ. रामविलास शर्मा में कला-पक्ष के विवेचन की भी भरपूर क्षमता है। चूँकि डॉ. शर्मा की निराला साहित्य के प्रगतिशील पक्ष से सम्बद्ध निष्कर्षों का विरोध प्रगतिवाद विरोधियों द्वारा किया गया साथ ही उन लोगों ने भी विरोध किया जो निराला के साहित्य में छायावादी प्रवृत्ति को ही विशेष महत्व देते रहे हैं।

डॉ. हरदयाल के अनुसार डॉ. शर्मा की निराला संबंधी मान्यताओं का प्रत्यक्ष विरोध करने वाले हैं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय। उनकी विरोध करने की शैली अनर्गल और फूहड़ है। यह विरोध आवेश में और व्यक्तिगत स्तर पर किया गया है। शर्मा जी की अनेक स्थापनाओं को अपनी स्थापनाओं के रूप में उपस्थित करके उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।[1]

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह -- डॉ. हरदयाल -- पृ. 108

इससे स्पष्ट होता है कि डॉ. शर्मा के निराला विषयक समीक्षा-साहित्य की अधिकांश आलोचना दृष्टि की भ्रामकता और व्यक्तिगत कारणों से ही हुई है परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि रामविलास शर्मा की समीक्षा करने वाले सभी आलोचक या कोई एक आलोचक पूर्ण सही या गलत है। चूँकि आलोचना का कार्य ही साहित्य के दोनों पक्षों का समान रूप से विवेचित करना है न कि किसी एक पक्ष को लेकर प्रशंसा या आलोचना ही करना बल्कि सम्यक दृष्टि से पूर्व निर्धारित अवधारणाओं, द्वेष या व्यक्तिगत विरोध आदि को दूर रखकर समीक्षा करनी होगी। इस क्रम में देख सकते हैं कि महेश्वर सिंह डॉ. शर्मा की निराला की साहित्य-साधना खण्ड-दो की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि "हिन्दी समीक्षा में निराला के समीक्षक रूप में सुकीर्ति का आधार-स्तम्भ उनकी पुस्तक निराला की साहित्य-साधना खण्ड-दो मानी गयी है। इस खण्ड में डॉ. शर्मा ने मुख्यतः निराला की कविता का विवेचन किया है। डॉ. शर्मा ने निराला सम्बन्धी काव्यालोचन के मूल्यांकन के लिए इस एक पुस्तक को आधार सामग्री के रूप में ग्रहण कर लेना पर्याप्त माना है।"[1] जहाँ महेश्वर सिंह डॉ. शर्मा की निराला विषयक साहित्य समीक्षा कृति के द्वितीय-खण्ड को आधार भूत ग्रंथ स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी ओर डॉ. शर्मा की इस कृति के प्रथम-खण्ड के विषय में विष्णुकांत शास्त्री लिखते हैं -- "प्रस्तुत जीवन चरित के सम्बन्ध में यही कहना है कि अत्यन्त व्यापक दृष्टि से संवलित होने के कारण यह निराला और उनके युग को प्रतिबिम्बित करने वाला महत्वपूर्ण आलेख बन गया है।"[2] परन्तु इसके विपरीत रूप में नेमिचन्द जैन का कहना है कि दरअसल रामविलास ने अपने इस ग्रंथ "निराला

---

1. दस्तावेज - पत्रिका - अंक-58 -- पृ. 14
2. आलोचना -पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 91

की साहित्य-साधना खण्ड-एक" में निराला को शत्रुओं, विरोधियों और शोषकों से घिरे हुए पीड़ित किन्तु निरन्तर संघर्षशील क्रांतिकारी योद्धा की भांति ही देखा और अंकित किया है दुनिया निराला समर्थक और निराला-विरोधियों दो शिविरों में बँटी हुई थी जिसमें जो निराला का आलोचक या विरोधी था वह अक्षम्य था।"[1] किंतु डॉ. हरदयाल लिखते हैं कि "डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के जीवन व्यक्तित्व और कृतित्व का मौलिक प्रामाणिक और महत्वपूर्ण विवेचन एवं मूल्यांकन किया है।"[2]

इसी विचार क्रम में देखते हैं कि डॉ. निर्मला जैन की डॉ. शर्मा के साहित्य-समीक्षा के प्रति क्या अवधारणा या विचार है।

डॉ. निर्मला जैन के अनुसार "डॉ. शर्मा ने आलोचक कर्म की पराकाष्ठा निराला साहित्य के मूल्यांकन में ही दिखाई पड़ी। दो खण्डों में प्रकाशित निराला की साहित्य साधना को स्वयं रामविलास शर्मा की साहित्य-साधना का चरम बिन्दु समझा जाना चाहिए।"[3] इनके अतिरिक्त एक और समीक्षक डॉ. हरदयाल डॉ. शर्मा द्वारा निराला पर लिखी गई पुस्तकों का महत्व स्पष्ट करते हुए लिखते हैं -- "निराला के जीवन और साहित्य के डॉ. रामविलास शर्मा असंदिग्ध रूप से विशेषज्ञ सिद्ध हो गए हैं। स्वभावतः निराला पर लिखने वाले दूसरे लेखक डॉ. शर्मा द्वारा प्रदत्त तथ्यों का उपयोग करते हैं निराला जी का एक ही साथ ओज और कोमलता यथार्थ और रहस्य, उत्साह और रति, व्यंग्य और करुणा की प्रवृत्तियाँ

---

1. आलोचना - पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 97
2. आधुनिक बोध और विद्रोह -- पृ. 108
3. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी -- पृ. 71

का मूल कहाँ है इसका स्पष्ट अनुमान डॉ. शर्मा जी के विवरण को पढ़कर लग जाता है।"[1]

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा के निराला विषयक साहित्य-समीक्षा को जहाँ एक ओर निर्मला जैन डॉ. शर्मा की साहित्य साधना का चरम बिन्दु बताया है वहीं दूसरी ओर डॉ. हरदयाल ने डॉ. शर्मा के निराला के समीक्षा साहित्य का महत्व परम्परा के विकासक्रम में स्वीकार कर भावी पीढ़ी को अमूल्य देन और पथ-प्रदर्शक कार्य माना है। इससे डॉ. शर्मा के समीक्षा साहित्य का वास्तव में सही रूप उभरता है तथा समीक्षा के क्षेत्र में उनकी महत्ता और स्थान भी स्पष्ट होता है।

डॉ. रामविलास शर्मा निराला की साहित्य-समीक्षा के क्रम में उनकी राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, सरोज-स्मृति तथा अन्य कविताओं की व्याख्या प्रस्तुत की है जिसके विषय में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी जी कहते हैं कि -- "यह व्याख्या इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी कि लोग निराला की कविताओं को दुरूह और निरर्थक तक कहते थे।... निराला की कविता की व्याख्या कर देने का मतलब होता था उनके काव्योत्कर्ष को प्रकट कर देना। संभवतः इसीलिए डॉ. शर्मा ने निराला की कविताओं की व्याख्या करने में विशेष उद्यम किया है।"[2] इसके अतिरिक्त डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी जी का कहना है कि निराला अपने युग से जूझने वाले कवि थे वे प्रबुद्ध कवि तो थे लेकिन उनका संघर्ष सांस्कृतिक था इसलिए उनका संघर्ष इस देश की जनता के संघर्ष का प्रतीक बन गया यह

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह -- पृ. 102
2. हिन्दी आलोचना -- पृ. 192

संघर्ष उनकी तीन लम्बी कविताओं में -- "तुलसीदास," "राम की शक्ति-पूजा" और "सरोज-स्मृति" में अभिव्यक्त हुआ है। इन कविताओं में निराला के व्यक्तिगत और युगीन संघर्षों ने वाणी पाई है। इसमें कवि का व्यक्तित्व युग व्यक्ति से एकमेक हो गया है इस तथ्य को पहचानना डॉ. रामविलास शर्मा जैसे संघर्षशील और निराला को नजदीक से जानने वाले आलोचक का ही काम था।"[1]

डॉ. शर्मा ने तुलसीदास के प्रतीकों के निहितार्थों को स्पष्ट करके इस कविता की पूर्णत्तर अर्थवत्ता सामने रखी है। तथा राम की शक्ति पूजा का महत्व इस बात में खोजा है कि जीवन को जो पाता ही आया विरोध" पंक्ति में पूरी कविता का सूत्र ही नहीं है बल्कि वह पंक्ति पूर्ण रूप से स्वयं कवि के जीवन के संदर्भ में सार्थक सिद्ध होती है। राम की शक्ति पूजा का ही संघर्ष सरोज-स्मृति में भी चल रहा है -- इस सूत्र की खोज में डॉ. शर्मा ने इन दोनों कविताओं के यथार्थवादी अन्तर्स्वर को स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा निराला के कथा-साहित्य पर भी विचार करते हुए उसमें व्यक्त सामाजिक यथार्थ और व्यंग्य को उभारा है। निराला के गद्यकार रूप के बारे में डॉ. शर्मा कहते हैं-- "गद्य-लेखक निराला ने बालमुकुन्द गुप्त और प्रेमचन्द की परम्परा को ऊँचा उठाया है, उसने गद्य लेखन को वाक्य-रचना के समान ही सरस और कला-पूर्ण बना दिया है। हिन्दी भाषा की नयी क्षमता निराला के गद्य में प्रकट हुई है।"[2] परन्तु साथ ही "देवी" और "चतुर चमारी" के लेखन के बाद भी निराला का पीछे छोड़े हुए रोमांस की ओर झुकाव से उनके अन्तर्द्वन्द

---

1. हिन्दी आलोचना -- पृ. 192
2. निराला -- पृ. 170

या अन्तर्विरोध का रूप उजागर होता है। निराला का अलका उपन्यास उनके संक्रमण काल का द्योतक माना गया जबकि अपने पहले उपन्यास अप्सरा में अयथार्थवादी चित्रण मिलता है किन्तु दूसरा उपन्यास "अलका" में भी यथार्थ और अयथार्थ का मेल है। इसके सम्बन्ध में डॉ. शर्मा का कहना है-- "यह स्पष्ट है कि यह उपन्यास निराला के जीवन में संक्रमणकाल का द्योतक है। वे इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि उनकी रोमांस की दुनिया ज्यादा दिन न चलेगी। अपनी कला के विकास के लिए जनता के दुःख-दर्द की तस्वीरें खींचना जरूरी है। इस कशमकश में ज्यादा खिंचाव अब भी रोमांस की दुनिया का है।"[1]

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा निराला के वैचारिक परिवर्तन को उनके साहित्य के माध्यम से उद्धृत करते हैं तथा निराला के जीवन साहित्य में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को एक सिक्के के दो पहलू के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार से किसी साहित्यकार की जीवन-लेखन पूर्णतः नवीन पद्धति का द्योतक है। इस पद्धति का रूप उनके काव्य-समीक्षा कर्म में स्पष्ट दिखाई देता है।

डॉ. शर्मा निराला के काव्य का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास काव्य के स्थापत्य की विशेषता इस प्रकार व्यक्त करते हैं -- कविता में जैसे दो तरह की संस्कृतियों के द्वन्द्व से तनाव पैदा किया गया है वैसे ही रचना में दो शैलियाँ निर्माण कला के भीतर तनाव पैदा करती हैं।"[2] ...निराला ने तुलसीदास में रत्नावली के शब्दों के माध्यम से

---

1. निराला -- पृ. 114
2. निराला की साहित्य साधना खण्ड-दो -- पृ. 304

साहित्य और संस्कृति की समस्त रीतिकालीन परम्परा को धिक्कारा है। इस प्रकार डॉ. शर्मा काव्य के विश्लेषण में साहित्यकार के जीवन को सम्बद्ध करके देखते हैं। जिसका प्रमाण डॉ. शर्मा द्वारा तुलसीदास और राम की शक्ति-पूजा में अन्तर करते हुए व्यक्त इन विचारों से मिलता है -- "तुलसीदास में कवि एक हद तक तटस्थ है, राम की शक्ति-पूजा पर कवि के अपने व्यक्तित्व की छाप है।" ...राम की शक्ति पूजा एक नाटकीय कविता है जिसमें कवि अपने प्रति इतना तटस्थ हो गया है कि सहसा मुख्य पात्र से उसके तादात्म्य को हम समझ नहीं पाते। ...राम की शक्ति-पूजा में राम के संघर्ष का चित्र जितना प्रभावशाली है उतना उनकी विजय का नहीं क्योंकि कवि के जीवन में संघर्ष ही सत्य रूप में आया है।"[1] इसके विपरीत "सरोज स्मृति" निराशा के साथ समाप्त होती है सरोज की जीवन गाथा स्वयं कवि की दुख गाथा है जिसमें निराला द्वारा यथार्थ जीवन की एक नयी और कटु अनुभूति व्यक्त की गई है। परिमल में व्यक्त छायावादी बहुमुखी प्रवृत्तियों के आधार पर डॉ. शर्मा ने निराला के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया है। और निराला के नये पत्ते की कविताओं में द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद देश में आये क्रांतिकारी जन उभार का चित्रण स्वीकारा है।

डॉ. शर्मा द्वारा की गई निराला की आलोचना के सम्बन्ध में डॉ. नवल कहते हैं -- "उन्होंने निराला के साहित्य की आलोचना उसकी समग्रता और सम्पूर्ण जटिलता में प्रस्तुत की है जितने ही विस्तार से उतनी ही बारीकी से।"[2] परन्तु डॉ. शर्मा द्वारा निराला के साहित्य की

---

1. निराला -- रामविलास शर्मा -- पृ. 110 से 115
2. हिन्दी आलोचना का विकास -- पृ. 253

की गई समीक्षा के विषय में डॉ. कमला प्रसाद कहते हैं -- "यह सही है कि वे §रामविलास§ जब निराला की रचना से हर अगली बार टकराते हैं तो उस समय तक के नये संचित कथ्य और कला-बोध के साथ।"[1] इस प्रकार डॉ. शर्मा जिस घनिष्ठ सम्पर्क और जनता के प्रति आत्मीयता की बात करते हैं उस भाव की कसौटी में निराला बहुत खरे उतरते हैं। इसी कारण कला के विविध रूपों को उन्होंने बारीकी से साधा है। इसके साथ ही डॉ. कमला प्रसाद का कहना है कि "रामविलास जी ने अपने इस प्रिय कवि का आलोच्य व्यक्तित्व के जरिये पुनर्सृजन किया है निराला की साहित्य-साधना के प्रथम भाग में। वहाँ निराला नायक हैं अपने जीवन और सृजन के साथ। रामविलास जी छायावादी काल की प्रगतिशीलता के केन्द्र में रीतिवाद और रहस्यवाद का विरोध मानते हैं इसी आधार पर उन्होंने छायावाद तथा निराला का मूल्यांकन किया है।"[2]परन्तु नेमिचन्द्र जैन का कहना है कि "उन्हें इस बात की बड़ी खीझ होती है कि निराला की नायक या योद्धा जैसी तस्वीर बनाए रखने के मोह में रामविलास ने या तो जान-बूझकर उनके जीवन की बहुत-सी घटनाओं का संग्रह ही जरूरी नहीं समझा या संग्रह किया भी तो उन्हें छोड़ दिया और जिनको शामिल भी किया उन्हें पूरी निरपेक्षता और वस्तुपरकता से नहीं रक्खा बल्कि एक पूर्व-निर्धारित चित्र के अनुसार उनका सम्पादन-संयोजन और बलाबल में इतनी घटा-बढ़ी की है कि पूरी तस्वीर ही अधूरी धुंधली, विकृत और इसलिए अप्रमाणिक और असंतोषजनक हो गई है।"[3] किन्तु विष्णुकांत शास्त्री जी नेमिचन्द्र जैन जी के विपरीत अवधारणा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि निस्संदेह

---

1. साहित्य और विचारधारा -- पृ. 46
2. वही, पृ. 48
3. आलोचना-पत्रिका अंक-9 — पृ. 97 और 98

इस ग्रंथ के वे परिच्छेद अधिक मार्मिक और रोचक है जो निराला के लखनऊ निवास से सम्बद्ध है क्योंकि उस समय रामविलास जी निराला के घनिष्ठ सम्पर्क में थे। ... रामविलास जी उनकी अन्तः प्रकृति को करीब-करीब ठीक-ठीक समझ पाये थे। सरोज-स्मृति, तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा जैसी महान् कविताओं एवं प्रभावती, चमेली जैसी गद्य-कृतियों की सृजन-प्रक्रिया के साक्षी होने कारण ही वे उनकी पृष्ठभूमि को साधिकार स्पष्ट कर सके हैं।"[1] इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा के विवरणों से निराला के व्यक्तित्व-विश्लेषण में मनोविज्ञान की सहायता ली है। निराला का व्यक्तित्व पूर्णतः स्वस्थ नहीं था उनके जीवन की परिस्थितियाँ प्रारम्भ से ही उनके भीतर परस्पर विरोधी तत्वों में संघर्ष उत्पन्न करती रही है। पारिवारिक पेची-दगियों ने, आर्थिक-तंगी सामाजिक और साहित्यिक विरोध ने उनके मन में अनेक प्रकार की ग्रंथियाँ उत्पन्न कर दी थी इन ग्रंथियों के कारण उन्होंने अपने सम्बन्ध में गाथाएँ गढ़ी। डॉ. शर्मा इसके प्रेरणा स्त्रोतों को उद्घाटित करते हुए तथ्यों और तर्कों के आधार पर इन गाथाओं को भंग किया है। इतना ही नहीं डॉ. शर्मा जी ने निराला की विक्षेप या अर्ध विक्षेप की अवस्था के विश्लेषण के लिए एक अध्याय प्रथम-खण्ड में लिखा है। निराला का विक्षेप यथार्थ से सम्बन्ध तोड़ने वाला नहीं था। यथार्थ जगत् के प्रति वे अन्त तक असाधारण रूप से सचेत रहे। इसके लिए डॉ. शर्मा आर्थिक विषमता और संघर्ष-जन्य वर्तमान अवस्था का उत्तरदायित्व पूँजीवादी समाज और हिन्दी की प्रकाशन व्यवस्था को देते हैं।" डॉ. शर्मा के इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए डॉ. हरदयाल कहते हैं -- "साहित्य को देखने का शर्मा जी का

---

1. आलोचना-पत्रिका अंक-9 -- पृ. 91

एक सुनिश्चित और स्पष्ट दृष्टिकोण है यह दृष्टिकोण निराला के साहित्य के विवेचन एवं मूल्यांकन में भी सर्वत्र विद्यमान है।"[1] परन्तु निराला के मानसिक असंतुलन के सम्बन्ध में डॉ. रामविलास शर्मा अपने विक्षेप-अर्ध-विक्षेप अध्याय के शुरू में मानते हैं कि "प्रारम्भ से ही निराला के व्यवहार में असाधारणता थी वे जल्दी आवेश में आ जाते थे, विरोधियों के बारे में अद्भुत कल्पनाओं द्वारा उनसे प्रतिरोध लेते थे या अपने जीवन के अभावों की पूर्ति कल्पना द्वारा कहानियाँ गाथाएँ गढ़कर करते थे।...इन सब सपनों के साथ त्रास की भावना जुड़ी हुई थी। त्रास से बचने के लिए ही वह अपनी महिमा के भव्य स्वप्न रचते थे।"[2] लेकिन डॉ. शर्मा द्वारा निराला की व्यक्त इस अवस्था की समीक्षा करते हुए नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं -- "उनमें (निराला) अद्वितीय प्रतिभा और सर्जनशीलता के साथ-साथ एक प्रकार का मानसिक असंतुलन भी प्रारम्भ से था जिसने एक स्तर पर यदि उनके रचनाकार्य में एक विशेष प्रकार की तीव्रता, सघनता और कल्पनाशीलता उत्पन्न की तो एक स्तर पर उनका जीवन से और परिस्थितियों से समायोजन कठिन ही नहीं असंभव बना दिया। यह स्थिति दुर्भाग्य-पूर्ण हो सकती है पर इससे एक रचनाकार की अद्वितीयता या महानता में कोई अन्तर नहीं आता। महानता पर आँच आने की झूठी आशंका से निराला के विक्षेप के तथ्य पर, उसके कारणों और परिणामों पर लीपा-पोती या उनकी बड़ी-बड़ी सैद्धांतिक व्याख्याएँ न केवल गैर जरूरी है बल्कि वे बौद्धिक खोखलेपन की सूचक है, भले ही वे निराला के प्रति सच्चे भक्ति भाव से ही उत्पन्न हुई है। "रामविलास ने अपनी पुस्तक में निराला के मानसिक असंतुलन की जैसी व्याख्या की है वह उनके भावुकतापूर्ण भक्ति-भाव को सूचित करने के साथ हास्यास्पद भी लगती है।"[3]

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह — पृ. 104
2. निराला की साहित्य-साधना, खण्ड-एक -- पृ. 501
3. आलोचना - पत्रिका - अंक-9, पृ. 98

नेमिचन्द जैन द्वारा डॉ. शर्मा के निराला की मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में की गई टिप्पणियों के प्रति इस प्रकार की टिकायें व्यक्त करना कुछ और भले ही न हो समीक्षा दृष्टि का विश्लेषण नहीं हो सकता बल्कि वास्तव में लगता है यह नेमिचन्द जैन का ही बौद्धिक खोखला-पन है। चूँकि इस प्रकार की टिप्पणी न केवल समीक्षक महोदय की दृष्टि के संकुचा को प्रस्तुत करते हैं बल्कि उनकी समझ और बुद्धि को भी प्रश्न-चिह्न लगाती है। डॉ. शर्मा द्वारा त्रास और उससे उत्पन्न असुरक्षा भाव का मनोविश्लेषणात्मक तथा समाज-शास्त्रीय कारण खोजना किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं है। क्योंकि मनोविज्ञान मनुष्य की बौद्धिकावस्था उसके आचार-विचार और व्यवहार की अवस्थाओं को सूचित करता है। इस कारण डॉ. शर्मा द्वारा निराला की मानसिक अवस्था और स्थितियों को सही और पूर्ण-रूप में जानने के लिए मनोविज्ञान का आधार लेना कोई अनुचित नहीं है। डॉ. शर्मा का कहना है कि "निराला का मानसिक संतुलन बिगाड़ने में उनके साहित्यिक विरोधियों का बड़ा हाथ था। निराला इस विरोध को बढ़ा-चढ़ाकर देखते थे पर वह विरोध था वास्तविक।"[1] परन्तु रामविलास शर्मा द्वारा निराला के मन को चोट लगने की बात स्वीकारने का कारण नेमिचन्द जैन डॉ. शर्मा द्वारा निराला की महान् योद्धा वाली प्रतिभा की पुष्टि और विरोधियों की दुष्टता और नीचता की स्थापना मानते हैं। तथा डॉ. शर्मा द्वारा साहित्य के क्षेत्र में संगठित रूप से निराला के विरुद्ध आन्दोलन चलाने की बात स्वीकारने को साफ-साफलफ्फाजी भावुकतापूर्ण, एकदम बेकार और झूठी बात माना है। और साथ ही जैन कहते हैं -- प्रचारवादी राजनैतिक आन्दोलन की शब्दावली में निराला के मानसिक असंतुलन की बात करना बेमानी और भ्रामक ही

---

1. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-एक -- पृ. 51।

नहीं, बौद्धिक ईमानदारी की कमी भी सूचित करता है।"[1] इतना ही आगे विवेचन के क्रम में आगे नेमिचन्द जैन का यह भी कहना है कि डॉ. शर्मा निराला के अहंकार को ठीक से समझ नहीं पाये हैं क्योंकि निराला का अहंकार उनके भीतरी असंतुलन से उपजा उन्हें पागलपन की ओर धकेलने वाला था। डॉ. शर्मा की समीक्षा-पद्धति की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार के वक्तव्यों में भोलेपन की अदा के बावजूद बड़ी चतुराई से बात को गलत रास्ते पर ले जाने की कोशिश है।...मनोविश्लेषण शास्त्र और समाज-शास्त्र का यह प्रदर्शन इतना अंधकचरा और सतही है कि इस पर कोई भी टिप्पणी बेकार है। और अंत में जैन का कहना है कि डॉ. शर्मा ने निराला की असंतुलनता की अभिव्यक्ति में जो प्रवृत्ति अपनाई है वही निष्कर्षवादी सरलीकरण की प्रवृत्ति अन्य अध्यायों में निराला के समग्र व्यक्तित्व के विश्लेषण में भी प्रायः मौजूद है। तथा विवेचन आत्म-परक नायक पूजा-ग्रस्त और भावुकतापूर्ण है।"[2]

डॉ. रामविलास शर्मा के निराला विषयक समीक्षा साहित्य के विवेचन में नेमिचन्द जैन द्वारा अपनाई गई दृष्टि और पद्धति को देखने से आभास होता है कि वह उनकी दृष्टि पूर्णतः संकीर्ण और एकपक्षीय तथा आलोचना पद्धति पूर्व नियोजित है। इसी प्रकार की भ्रामक-दृष्टि रखने वाले के प्रति डॉ. शर्मा कहते हैं -- आज निराला साहित्य का मूल्यांकन करते हुए बहुत से आलोचक उनके रहस्यवादी पक्ष को लेते हैं उनके अपने यथार्थ दुख को भूल जाते हैं अपने देशवासियों के दुख को उन्होंने जो अभिव्यक्ति

---

1. आलोचना-पत्रिका अंक--9 -- पृ. 99
2. वही

दी है जिसे वह भूल जाते हैं मनुष्य और उसका दुःख वही निराला को महान् कवि बनाता है।"[1] डॉ. शर्मा द्वारा की गई निराला विषयक आलोचना का मूल्यांकन करते हुए डॉ. कमला प्रसाद कहते हैं कि लेनिन ने मार्क्स के बारे में लिखा था — ही इज रिच इन कण्टेण्ट *He is reach in Cantant* उसी प्रकार डॉ. शर्मा निराला के बारे में वही सूत्र दोहराते हैं क्योंकि डॉ. शर्मा को निराला के अध्ययन से प्रत्येक बार नयी दिशा प्राप्त हुई है। इसी कारण डॉ. शर्मा के आलोचना संसार में निराला का स्थान सबसे ऊपर है।"[2] किंतु माहेश्वर सिंह का कहना है कि डॉ. शर्मा ने निराला काव्य के भक्ति-पक्ष की भी समीक्षा स्वाधीनता-प्रेम से स्वरूप-निरूपण के प्रसंग में ही की है।[3] डॉ. शर्मा की मूल स्थापना है कि "निराला की धार्मिक आस्था, उनकी भक्ति का आधार है भारत।"[4] डॉ. शर्मा की इस स्थापना का खण्डन करते हुए महेश्वर सिंह कहते हैं कि "डॉ. शर्मा की यह स्थापना निराला के भक्ति-परक गीतों और उनकी काव्य-चेतना दोनों से पूर्णतः निरपेक्ष और उनकी नितान्त अपनी है। निराला के काव्य में निःसन्देह राष्ट्रीय-भावना की भरपूर अभिव्यक्ति हुई है लेकिन उसका स्वर भक्ति-परक नहीं है। इसलिए भारत को कवि की धार्मिक आस्था का आधार मानना डॉ. शर्मा की विशुद्ध मनमानी है।"[5]

डॉ. शर्मा की समीक्षा करने के क्रम में महेश्वर सिंह बताते हैं कि "गीतिका की कविता की समीक्षा करते हुए डॉ. शर्मा जहाँ एक ओर निराला की समस्त साधना मातृभूमि को अर्पित दिखाते हैं वहीं प्रकृति पूजा

---

1. निराला — पृ. 164
2. साहित्य और विचारधारा — पृ. 44-45
3. दस्तावेज-58 — पृ. 22
4. निराला की साहित्य साधना — खण्ड-दो — पृ. 146
5. दस्तावेज-58 -- पृ. 22

शीर्षक उपखण्ड में युद्ध क्रांति संघर्ष स्वाधीनता-आंदोलन से प्रकृति शक्ति अथवा माया का गहरा सम्बन्ध बताते हुए उसे कवि की साधना का लक्ष्य और हृदय की प्रेरणा दर्शाते हैं।" इस प्रकार महेश्वर सिंह व्यक्त करते हैं कि डॉ. शर्मा की अन्तर्दृष्टि में विरोधाभास मिलता है। परन्तु वास्तव में लगता है कि सिंह जी ने डॉ. शर्मा की निराला की भक्ति सम्बन्धी अवधारणाओं को ठीक से समझने का प्रयास नहीं किया है अन्यथा उन्हें यह डॉ. शर्मा की दृष्टि का अन्तर-द्वन्द्व नहीं बल्कि अपनी दृष्टि भी भ्रामक दिखाई देती चूँकि डॉ. शर्मा ने दोनों स्थानों पर निराला की साधना का लक्ष्य एक ही रखा है परन्तु दोनों स्थानों पर मात्र शब्दों के प्रयोग की भिन्नता व्यक्त होती है न कि लक्ष्य की भिन्नता। यहाँ देख सकते हैं कि जहाँ एक ओर निराला की साधना मातृ-भूमि को अर्पित है वहाँ दूसरी ओर प्रयुक्त युद्ध क्रांति संघर्ष और स्वाधीनता आंदोलन क्या इसी अर्पण की प्राप्ति के लक्ष्य और प्रेरणा-स्त्रोत नहीं हो सकते।

इस प्रकार देख सकते हैं कि महेश्वर सिंह डॉ. शर्मा की निराला विषयक समीक्षा दृष्टि का विवेचन प्रस्तुत नहीं करते हैं बल्कि यहाँ वे बाल की खाल निकालने की पद्धति को अपनाते हैं जो वास्तव में उनकी सही समझ के रूप और भ्रामक दृष्टि को ही व्यक्त कर सकती है जिसका प्रमाण उनके इस कथन से सिद्ध हो जायेगा -- "वस्तुतः डॉ. शर्मा ने (इस पुस्तक में) निराला की भक्ति-भावना को अपने अध्ययन का विषय ही नहीं बनाया। उनकी आग्रही दृष्टि ने देश-भक्ति में ही उसका समाहार करके संतोष किया है और यह नितान्त अकारण नहीं है। उनके मार्क्सवाद में ऐहिक भावभूमि से अलग अध्यात्म-चिन्ता की गुंजाइश भी तो

नहीं है। अब इससे निराला के प्रति न्याय नहीं हो सका तो यह दुर्भाग्य निराला का है।"[1] परन्तु निर्मला जैन लिखती हैं कि "डॉ. शर्मा द्वारा निराला के जीवन-चरित पर आधार निराला की साहित्य-साधना के प्रथम खण्ड में तथ्य संग्रह न होकर निराला के साहित्य-सृजन की व्याख्या के लिए कवि व्यक्तित्व को समझने-समझाने का प्रयत्न मिलता है।... निराला के जीवन के उस रहस्यमय खण्ड का जिसे उनकी विक्षिप्त मनःस्थिति कहा जाता रहा है अत्यन्त सूक्ष्म और गहरा अध्ययन करके डॉ. शर्मा ने उनके साहित्य के मर्म से जोड़ने का प्रयत्न किया।...उनके कवि व्यक्तित्व के अध्ययन के माध्यम से डॉ. शर्मा ने पहली बार करुणा को उनके मूल भाव के रूप में रेखांकित करते हुए उन्हें ट्रेजेड़ी के महान् लेखकों की पश्चिमी परंपरा से जोड़ा इसके अलावा निराला के जीवन के बहाने डॉ. शर्मा ने उस समय के हिन्दी साहित्य के वातावरण और परिवेश का जो अन्तरंग परिचय प्रस्तुत किया है वह जैसे इतिहास ग्रंथों में अनुपलब्ध घटनाओं के आधार पर निराला के समकालीन साहित्यिक इतिहास की पुनर्रचना है।"[2]

इस प्रकार इस ग्रंथ में निराला के साहित्य का मूल्यांकन उनके युग के साहित्येतिहास के साथ प्रस्तुत करने की पद्धति से डॉ. शर्मा की युग सापेक्षतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है। परन्तु डॉ. शर्मा द्वारा किये गये इस जीवनी-परक समीक्षात्मक साहित्य-लेखन के कर्म की आलोचना करते हुए नेमिचन्द जैन कहते हैं कि डॉ. शर्मा ने निराला के जीवनी-लेखन में वस्तु-परक तथ्यों की अपेक्षा मनोविश्लेषण शास्त्रीय शब्दावली का अधिक प्रयोग करते हुए सरलीकरण वस्तुओं और विचारों के सतही गैर-बुनियादी

---

1. दस्तावेज -- अंक-58 -- पृ. 25
2. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी -- पृ. 71-72

सम्बन्धों को अधिक बल दिया है। जिस कारण निराला की साहित्य साधना जीवनी-मूलक उपन्यास और प्रामाणिक सर्जनात्मक जीवन-चरित दोनों में से एक भी ठीक नहीं बन पाया है।"[1] परन्तु इस आलोचना का अभिप्राय यह नहीं होना चाहिए कि नेमिचन्द जैन ने डॉ. शर्मा की आलोचना ही की है बल्कि उन्होंने निराला की साहित्य-साधना कृति की उपलब्धियों का विश्लेषण करते हुए लिखा है -- इस पुस्तक में तथ्यों और सामग्री का संग्रह बहुत उपयोगी है।...जिन बहुत से अंशों में सामग्री अधूरी या नामौजूद है उनके कुछ-कुछ स्त्रोतों का भी अंदाजा इस पुस्तक से हो जाता है। साथ ही निराला के जीवन के अतिरिक्त हिन्दी साहित्यिक इतिहास के चालीस साल के इतिहास से सम्बन्धित भी बहुत-सी नयी और उपयोगी सामग्री इसमें मौजूद है। विशेषकर सन् 20 से 50 तक के दौर के साहित्यिकवाद-विवाद, उलझनों, समस्याओं और उनके सन्दर्भों में व्यक्तियों और संस्थाओं के व्यवहार का बहुत ब्यौरा बड़ा रोचक और जानकारी भरा है इससे कई स्थलों पर निराला के सामाजिक और सांस्कृतिक साहित्यिक परिवेश की बड़ी जीवन्त तस्वीर तो बनी ही है कोई साहित्यिक तथा राजनैतिक-सामाजिक घटनाओं के गहरे बुनियादी सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ा है और एक पूरे युग का साहित्यिक जीवन उभर आया है।"[2]

डॉ. शर्मा का निराला विषयक समीक्षा साहित्य का प्रथम खण्ड निराला के ही नहीं बल्कि उनके सम्पूर्ण युग के साहित्यिक जीवन को उभारता है वहीं दूसरी ओर इस पुस्तक का द्वितीय-खण्ड निराला-साहित्य समीक्षा विषयक डॉ. शर्मा की दृष्टि, आलोचना-पद्धति और विचारों को

---

1. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 100-101

2. वही, पृ. 101

पूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है। तथा निराला के व्यक्तित्व को उनकी साहित्यिक कृतियों को निर्माण का आधार और पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार कर उनकी जीवनी-मूलक साहित्य समीक्षा प्रस्तुत की गई है। जिसका रूप इस प्रकार है। डॉ. निर्मला जैन के अनुसार "दूसरे खण्ड का सीधा सम्बन्ध उनके साहित्य से है। इस खण्ड की विशेषता जो रामविलास शर्मा के इससे पहले के कृतित्व में कम पायी जाती है। निराला-साहित्य के कला-पक्ष का विस्तृत अध्ययन है। पुस्तक में जितने पृष्ठ निराला की विचारधारा और भावबोध विवेचन को दिये गये हैं, लगभग उतने ही कला-विश्लेषण को भी। इस विवेचन में कलागत तत्वों की सूक्ष्म और गहरी पकड़ है किन्तु इसकी योजना में कोई मौलिकता नहीं।"[1]

दूसरे खण्ड अर्थात् साहित्यिक खण्ड के प्रथम उपखण्ड स्वाधीनता प्रेम में निराला के स्वाधीनता-प्रेम के स्वरूप, अधिष्ठान, वैशिष्ट्य आदि का विवेचन उनकी काव्य पंक्तियों के साक्ष्य के साथ किया गया है। तथा अन्तर्द्वन्द्व उपखण्ड में निराला के मृत्यु-दर्शन, आत्म-निर्वासन त्रास की चरम परिणति वाली मनोदशा से जोड़ दिये गये हैं। महेश्वर सिंह का कहना है कि डॉ. शर्मा ने काव्यालोचन के क्रम में काव्यांशों का यादृच्छिक उपयोग करते हुए अपनी अपेक्षानुसार भिन्नार्थक उपयोग किया है जो सही आलोचना कर्म नहीं है।[2] इसके साथ-साथ महेश्वर सिंह का यह भी कहना है कि डॉ. शर्मा की समीक्षा-दृष्टि और समीक्षा-पद्धति का साँचा अब यहाँ आकार लेता नज़र आता है भाव-बोध के स्वरूप को स्पष्ट करने के क्रम में उनकी दृष्टि निराला के काव्य के काव्यत्व, उसके भावात्मक-कल्पनात्मक पक्ष

---

1. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी -- पृ. 72
2. दस्तावेज-58 -- पृ. 17

पर नहीं सामाजिक-राजनीतिक उपयोगिता पर है। सामाजिक क्रांति की सामान्य चर्चा के बाद निराला की क्रांति चेतना को मानवीय करुणा से जोड़ते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं -- "जो दलित और उपेक्षित हैं, वे निराला के स्नेह-भाजन हैं। दीनजनों के लिए भी निराला ने अनेक प्रतीक अपनाये हैं।"[1] इस प्रकार डॉ. शर्मा निराला की क्रांति की आकांक्षा को किसान चेतना से जोड़कर अपने मौलिक चिन्तन का परिचय देते हैं। तथा इस खण्ड के उपसंहार में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं -- "निराला की क्रांति सम्बन्धी रचनायें औसत प्रगतिवादी रचनाओं से भिन्न हैं प्रगतिवादी कवियों ने पूँजीवादी के खिलाफ तो बहुत लिखा है लेकिन साम्राज्यवाद और उसके सहायक सामान्तवाद के बारे में वे सामान्यतः चुप रहे हैं। निराला-साहित्य में भारतीय क्रांति का सामंत-विरोधी पक्ष जैसा उभरकर आया है वैसा प्रेमचन्द के अलावा किसी हिन्दी लेखक की रचनाओं में उभर कर नहीं आया। औसत प्रगतिवादियों और निराला में यह अन्तर है कि अंग्रेज़ीराज में पूँजीवाद को कोसने वाले कविगण भारत के स्वाधीन होने पर समाजवाद को भूल गये। निराला की क्रांति सम्बन्धी भावधारा सन् 47 के बाद भी प्रवाहित रहती है।"

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला की क्रांतिकारी विचारधारा और भावधारा को प्रगतिवादियों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और विकसित माना है। इसका अभिप्राय यह नहीं होगा कि डॉ. शर्मा ने निराला को प्रगतिवादी कवि या साहित्यकार माना है यहाँ डॉ. शर्मा का मन्तव्य निराला को प्रगतिवादी सिद्ध करना नहीं बल्कि उनके साहित्य की प्रगतिशीलता को व्यक्त करना रहा है। परन्तु यहाँ देख सकते हैं कि महेश्वर सिंह

---

1. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-दो -- पृ. 153

अपनी दृष्टि भ्रामकता के कारण किस प्रकार डॉ. शर्मा के कथन का गलत अभिप्राय लगा रहे हैं।

महेश्वर सिंह का कहना है कि "डॉ. शर्मा ने मुख्य रूप से निराला को अपने इसी प्रगतिवादी (विचारधारात्मक) साँचे में जबरन अन्वित करने का प्रयास किया है और इसके लिए उनकी काव्य-पंक्तियों के संदर्भ-विच्छिन्न, यादृच्छिक आरोपित और भ्रामक है इतना ही नहीं, जो गीत इन्हें गरिष्ठ प्रतीत हुआ, जो इन्हें अपने सिद्धांत की दृष्टि से अत्यंत घातक मालूम पड़ा उसके शब्दों में हेर-फेर कर देने में भी इन्होंने संकोच नहीं किया।"[1] इसके अतिरिक्त महेश्वर सिंह डॉ. शर्मा द्वारा व्यक्त उक्ति - "निराला के साहित्य का एक स्तर विशुद्ध प्रचारात्मक है।" की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि जिस कवि ने साहित्य से प्रचारात्मकता को मंजिलों दूर माना है उसी की आलोचक दो एक कविताओं को उद्धृत कर इस प्रकार की उक्ति देते हैं। साथ ही डॉ. शर्मा का निराला विषयक दृष्टिकोण का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए महेश्वर सिंह कहते हैं -- "एक ही कविता की चर्चा जब स्वाधीनता-प्रेम शीर्षक उपखण्ड में होती है तब उसका स्तर प्रचारात्मक कोटि का हो जाता है और उसका उद्देश्य बहुत कम पढ़े-लिखे लोगों की राजनीतिक चेतना को जागृत करना होता है लेकिन जब उसी कविता का जिक्र "मृत्यु" शीर्षक उपखण्ड में होता है तो उसमें राम की शक्ति-पूजा की शब्द-योजना की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है जिस कविता की पद-योजना में राम की शक्ति-पूजा की प्रतिध्वनि हो, वह क्या प्रचारात्मक स्तर की कविता हो सकती है।"[2] इसका उत्तर होगा हाँ प्रचारात्मक हो

---

1. दस्तावेज-58 -- पृ. 32-33
2. वही, पृ. 19

सकती है क्योंकि कोई भी कविता मात्र शब्द-योजना के स्तर पर किसी भी श्रेष्ठ कविता की यदि प्रतिध्वनि रूप को व्यक्त करती है तो इसका अर्थ यह नहीं होगा कि वह कविता भी तुलनीय कविता के समान श्रेष्ठ और उत्तम हो। चूँकि किसी भी कविता की श्रेष्ठता का गुण उसकी कलात्मकता ही नहीं बल्कि उस कविता में व्यक्त भावानुभूति की अभिव्यक्ति और उसका स्तर भी होता है। केवल कलात्मक विशेषताओं के आधार पर श्रेष्ठ कविता भावना के स्तर पर प्रचारात्मकता से मुक्त होगी यह जरूरी नहीं है। संभवतः निराला ने अपनी उस कविता में अपनी कला-कौशलता का उत्कृष्ट प्रमाण देते हुए भी अपने प्रचारवादी विचारों या भावों की अभिव्यक्ति की होगी। तभी तो डॉ. शर्मा ने उस कविता की पद-योजना में राम की शक्ति-पूजा की प्रतिध्वनि सुनते हुए भी उस कविता को विशुद्ध प्रचारात्मक माना है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने निराला विषयक समीक्षा पुस्तक निराला की साहित्य-साधना के द्वितीय खण्ड में निराला का साहित्यिक विश्लेषण और समीक्षा करते हुए निराला के विचार-पक्ष या भाव-पक्ष के समान ही उनके साहित्य के कला-पक्ष को भी महत्व देकर समान रूप से विवेचित किया है। इस क्रम में वे निराला के बिम्ब-विधान के सम्बन्ध में कहते हैं -- "निराला-काव्य में मूर्ति-विधान केवल चित्रकार का बिम्ब नहीं है बिम्बों का आकार-प्रकार उनके गुरुत्व का बोध मूर्तिकार की दृष्टि का परिणाम है। उसे मूर्ति-विधान कहना सार्थक है।"[1]

इस प्रकार निराला की काव्य-कलात्मक विश्लेषण के क्रम में डॉ. शर्मा ने साहित्य-साधना में अत्यन्त सूक्ष्मता से विवेचन प्रस्तुत किया है।

---

1. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-दो -- पृ. 318

डॉ. शर्मा के अनुसार "निराला की उद्‌बोधनात्मक कविताओं में उस वक्तृत्व कला का पूर्ण विकास हुआ है। ...इस वक्तृत्व कला को निराला ने चित्रात्मकता और नाटकीयता के द्वारा उत्कर्ष प्रदान किया है। जिसका सम्बन्ध एक हद तक राष्ट्रीय स्वाधीनता-आंदोलन से भी है।"[1]
डॉ. शर्मा द्वारा किये गये निराला के कला पक्ष की समीक्षा के सम्बन्ध में डॉ. नन्दकिशोर नवल कहते हैं कि "निराला की काव्य कला का विश्लेषण करते हुए डॉ. शर्मा ने ध्वनि पर विशेष बल प्रदान किया है इसका कारण यह है कि निराला के काव्य में ध्वनि को बहुत अधिक महत्व प्राप्त है।"[2]
डॉ. शर्मा के अनुसार "निराला की ध्वनि संरचना के मूल तन्तु सघोष अल्पप्राण-वर्ण है अन्य ध्वनियों के साथ वे इन वर्णों का वैषम्य दिखाकर अथवा सामंजस्य स्थापित कर चमत्कार उत्पन्न करते हैं।"[3] इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा निराला की काव्य-कला का मानवीय जीवन से सम्बन्ध व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "निराला का रूप-रस-गन्ध बोध पेचीदा है। वर्ण गन्ध बन जाता है गन्ध स्वर, स्वर अग्नि। वह प्रकृति और मनुष्य में एक ही जीवन मृत्यु की प्रक्रिया का अनुभव करते हैं। वह चेतना में तरंगे उठते दिखाकर उसे रूप स्पर्श-बोध के स्तर पर उतार लाते हैं। उनका मूर्ति-विधान खण्ड-सत्य प्रस्तुत न करके मानव-प्रकृति का संश्लिष्ट यथार्थ गहराई से चित्रित करता है।"[4]

निराला ने मुक्त-छन्द को कवित की लय के आधार पर निर्मिति का समर्थन करते हुए कहा कि भावों की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। डॉ. शर्मा निराला के इस वैचारिक अन्तर्विरोध की ओर संकेत

---

1. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-दो -- पृ. 274
2. हिन्दी आलोचना का विकास -- पृ. 250
3. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-दो -- पृ. 367
4. वही, पृ. 336

करते हुए छन्द के विषय में कहते हैं -- "छन्द में बँधन और मुक्ति दोनों है इनका संतुलन बिगड़ने पर छन्द या तो ध्वनि की यांत्रिक आवृत्ति बन जायेगा या अतिशय मुक्ति से पीड़ित होकर अव्यवस्थित शब्द जंजाल बन जायेगा।"[1] इस प्रकार डॉ. शर्मा द्वारा निराला के साहित्य की कलात्मक समीक्षा प्रस्तुतिकरण की पद्धति के सम्बन्ध में विचार करते हुए डॉ. निर्मला जैन का कहना है कि "निराला साहित्य का सर्वांग अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रेरणा के साथ इस अंश की रचना के पीछे यह प्रामाणित करने का आग्रह जान पड़ता है कि वे सामाजिक चेतना के अध्येता होने के साथ ही कुशल कला पारखी भी हैं।"[2] चूँकि डॉ. शर्मा ने द्वितीय-खण्ड के पिछले भाग में नये सिरे से छायावाद के विषय में अध्ययन किया तथा रवीन्द्र, तुलसी और सूर आदि कवियों के साथ निराला साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। इनके साथ-साथ डॉ. शर्मा ने निराला की साहित्य-साधना प्रथम-खण्ड में पंत-ग्रंथि पर"पंत और निराला" शीर्षक से एक अलग से अध्याय ही लिख डाला। जो इन छायावादी प्रमुख कवियों का आपसी सम्बन्ध और विवाद के विषय से परिपूर्ण है। नेमिचन्द जैन के अनुसार रामविलास ने इस परस्पर सम्बन्ध को वशीकरण और उच्चाटन की विरोधी लहरों के संघर्ष के रूप में देखा और पेश किया है।"[3]
डॉ. रामविलास शर्मा पंत और निराला का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि --"छायावाद के दो प्रमुख कवि, व्यक्तित्व में समानता और बहुत बड़ा वैषम्य दोनों में परस्पर आकर्षण और दुराव,दोनों के दुःस्वप्नों की प्रक्रिया काफी मिलती-जुलती सी।"[4]

---

1. निराला की साहित्य-साधना - खण्ड-दो -- पृ.423
2. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी -- पृ. 72
3. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 99
4. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-एक -- पृ. 580

डॉ. शर्मा द्वारा की गई पंत और निराला की तुलनात्मक व्याख्या पर टिप्पणी करते हुए नेमिचन्द जैन लिखते हैं -- "यह सब तुलना बेहद दिलचस्प और कई बातों में सूक्ष्म होकर भी कुल मिलाकर प्रभाववादी ढंग की और अर्ध सत्यों से भरी है और दोनों कवियों के विवेकपूर्ण तुलनात्मक मूल्यांकन की बजाय रामविलास के पूर्वाग्रह को ही अधिक जाहिर करती है। पुस्तक में और भी कई स्थलों पर रामविलास ने पंत को प्रायः या तो कृपा के स्वर में या व्यंग्य के साथ याद किया है।...पन्त-निराला के सम्बन्धों का यह विवेचन पढ़ने में चाहे जितना रोचक और नया लगे पर वह आलोचक या जीवनीकार रामविलास की "वस्तुपरक" दृष्टि का सूचक नहीं है।"[1] परन्तु इस सम्बन्ध में विष्णुकांत शास्त्री जी का कहना है कि "निराला के व्यक्तित्व का विश्लेषण एवं पंत और निराला का तुलनात्मक अध्ययन रामविलास जी का बौद्धिक विदग्धता एवं साहित्यिक मर्मज्ञता का निश्चित प्रमाण तो है ही, इस बात का सूचक भी है कि वे सन् 48 के संकीर्णतावादी दौर से बहुत ऊपर उठ चुके हैं।" साथ ही शास्त्री जी कहते हैं कि निराला की प्रतिभा इतनी इन्द्रधनुषी और उनकी प्रवृत्तियाँ इतनी बहुमुखी थी कि अपनी इस कृति के सम्बन्ध में स्वयं रामविलास जी की यह विनम्र उक्ति कि "उसके सर्वथा निर्भ्रम और पूर्ण होने का दावा मैं नहीं करता बहुत उचित है।"[2] किन्तु इस सम्बन्ध में अमृतलाल नागर जी का कहना है कि "रामविलास ने पंत और निराला के ऐतिहासिक सहयोग को सही महत्व दिया है उन्होंने अलग से भी कवि पंत के महत्व को खुले दिल से सराहा है। डॉ. शर्मा निराला के उस फरेब का पर्दाफ़ाश करने से भी नहीं चुके जो उन्होंने "जुही की कली" की रचना और अपनी आयु की तिथियों में उलट-फेर करके पंत

---

1. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 — पृ. 100
2. वही, पृ. 91

पर अपनी सीनियारिटी का रौब जमाने के लिए किया था।"[1] साथ ही नागर जी ने पंत द्वारा लोकायतन में वाग्विलास बनाकर तान्त्रिक का यश प्रदान करने की भ्रमित दृष्टि की आलोचना की है। नेमिचन्द जैन का कहना है कि "इस पुस्तक में रामविलास अपने द्वारा रची निराला की छवि पर कुछ विस्मित, कुछ मुग्ध ही है इसलिए निराला के विरोधियों की चर्चा में उनकी खबर लेते हैं।"[2] डॉ. शर्मा का कहना है "वे मौके की तलाश में थे कि ऐसा दबोचे कि युग-प्रवर्तक महाशय जमीन से फिर उठ न पाएँ।"[3]

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला की जीवनी-लेखन के क्रम में उनके विरोधियों की जमकर खबर ली है। चूँकि विष्णु शास्त्री के अनुसार डॉ. रामविलास शर्मा को निराला के दो रूप सर्वाधिक भाए हैं। उनमें से एक है मर्यादा निभाने के लिए अपने को होम देने वाला, धरती और लोक जीवन से सम्बद्ध रहने वाला, उनका वज्र देहाती रूप जो अमीर माँ-बाप के विदेश-फिरत इंटलेक्चुअलिहा नवाबज्यादों को चाहे वे राष्ट्रवादी हों, चाहे समाजवादी-फटकार देता था। और दूसरा है -- आस्थावान, संघर्षशील योद्धा लेखक का - वाल्मीकि, व्यास और तुलसीदास की परम्परा से जुड़ने वाले लेखक का रूप जो गाँधी नेहरू या सेठ-साहुकारों के सामने अपना मस्तक उन्नत रखता था। स्वभावतः इन्हीं दोनों रूपों को इस ग्रंथ में प्रमुखता प्राप्त हुई है।[4] किन्तु नेमिचन्द जैन डॉ. शर्मा द्वारा रचित निराला की जीवनी की समीक्षा करते हुए कहते हैं --"निराला की साहित्य-साधना

---

1. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 87
2. वही, पृ. 105
3. निराला की साहित्य-साधना -- पृ. 97
4. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 91-92

में व्यक्त हर प्रसंग में कुछ ऐसा आभास निरन्तर होता है कि रामविलास निराला के व्यवहार या विचार को उचित और सही तथा दूसरे को अनुचित और गलत साबित करने का पहले से निश्चय कर चुके हैं। शायद इसीलिए ऐसे प्रसंगों को जिनमें उनकी निगाह में कवि की तस्वीर कुछ कम गौरवशाली दिखाई पड़ती या तो वे टाल गए हैं, बचा गए हैं या छूकर छोड़ दिया है या गोल-मोल रहने दिया है। कई जगह उन्होंने कहने के लिए कुछ उल्लेख भर कर दिया है। ऐसे प्रसंगों में निष्पक्षता या वस्तुपरकता से अधिक चतुराई ही अधिक प्रकट होती है।"[1]

नेमिचन्द जैन द्वारा व्यक्त विचारों से डॉ. शर्मा कृत निराला की जीवनी साहित्य की समीक्षा ही प्रस्तुत नहीं होती बल्कि इस बात का भी आभास होता है कि नेमिचन्द जैन को जीवनी लेखन के सम्बन्ध में बहुत अच्छा ज्ञान है फिर भला उन्होंने दूसरों के कार्यों में कमियाँ ढूँढ़ने की अपेक्षा स्वयं इस प्रकार का लेखन कार्य नहीं किया संभवतः वह हिन्दी साहित्य को डॉ. शर्मा से भी कहीं श्रेष्ठतम साहित्य प्रदान करने में सफल हो पाते। चूँकि किसी के कार्यों पर टीका-टिप्पणी करना और कमियाँ निकालना तथा बुराईयाँ देखना आसान है जबकि उस प्रकार का कार्य स्वयं करना वास्तव में लोहे के चने चबाने के समान होता है। परन्तु फिर भी यहाँ इस प्रकार के दृष्टिकोण के प्रत्येक पहलु को देखना तथा उसकी वास्तविकता को पहचान कर सत्य की खोज करना भी शोध कार्य के अंतर्गत सम्मिलित है। अतः इसके लिए समीक्षात्मक अध्ययन अतिआवश्यक है। इस क्रम में देख सकते हैं कि नेमिचन्द जैन ने न केवल डॉ. शर्मा द्वारा लिखित निराला-जीवनी-साहित्य में मात्र कमियों को ही देखा बल्कि कुछ स्थानों

---

1. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 97

पर उन्होंने उपलब्धियों को भी प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार हैं -- नेमिचन्द जैन लिखते हैं कि "इस पुस्तक में निराला के पारिवारिक जीवन के कुछ पक्षों और सम्बन्धों का बड़ा आत्मीय और संवेदनशील प्रस्तुतीकरण है विशेषकर निराला की कुछ कविताओं को और उनके काव्य-संसार की कुछ समस्याओं को उनके जीवन की घटनाओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों से जोड़ने में भी रामविलास ने बड़ी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इससे कई कविताओं के एकदम नये और अनोखे अर्थ तथा व्यंजनाएँ उभर आती हैं। इस पुस्तक में जहाँ रामविलास अपने पूर्वाग्रहों और सरलीकरण की प्रवृत्तियों के बावजूद इस कार्य में सफल हुए हैं वहाँ उन्होंने एक नयी दिशा और सफलता की सूचना दी है।"[1] इसके साथ-साथ उनका यह भी कहना है कि इस ग्रंथ की एक बड़ी असफलता इसकी रूपगत अराजकता है इसमें कही कथात्मक शैली अपनाई गई है कहीं विशुद्ध वर्णनात्मक, कहीं व्यंग और वाद-विवाद की और कहीं शुद्ध निबन्ध की। पद्धतियों का इस प्रकार गडमड करने के कारण प्रभाव की समग्रता खंडित हो गई है। सामग्री के चयन और उपयोग में न केवल आवश्यक बौद्धिक तटस्थता और वस्तुपरकता की कमी है बल्कि रचनात्मक विवेक, संवेदनशीलता का अभाव भी खटकता है। लेखक का मुख्य उद्देश्य विवरण को अधिक रोचक बनाता है, रचना के आंतरिक या बाह्य रूप के बारे में वह लापरवाह है।"[2] परन्तु वास्तव में डॉ. शर्मा की प्रत्युत्तरात्मक आलोचना-पद्धति में विरोधियों के अज्ञान, तर्क-मूढ़ता, द्वेष-भावना का उद्घाटन, कथनों में अन्तर्विरोध खोजना और प्रस्तुत तथ्यों और तर्कों को अकाट्य प्रमाणों के आधार पर गलत सिद्ध करना विशेष शत्रु संहारक शस्त्र रहे हैं। इसका प्रयोग डॉ. शर्मा ने बच्चन द्वारा निराला पर लिखे गये लेखों के प्रत्युत्तर में किया है। डॉ. शर्मा अपनी इस प्रकार की

---

1. आलोचना-पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 101
2. वही, पृ. 98

आलोचना-पद्धति में उस व्यक्ति को ही अत्यन्त व्यंगात्मक तीखे मर्म बेधी शब्दों द्वारा शिकार बनाते हैं। बच्चन द्वारा अपने लेख में यह लिखना कि "निराला जी को ग़ज़ल छन्द में कोई विशेष सफलता ही नहीं मिली।" पर डॉ. शर्मा व्यंग्य करते हुए कहते हैं -- "यह तो स्वयं सिद्ध बात है कि जब कवित्त छन्द के आधार पर निराला हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल कोई चीज़ न दे सके तब "ग़ज़ल छन्द" में हिन्दी को क्या देते ? काश ! उन्होंने दोहे लिखे होते, जो हर चौराहे पर ढोलक मंजीरों की ध्वनि के साथ गूँजते होते।" इसके साथ ही बच्चन की बापू की मृत्यु पर रचित कविता के कुछ पंक्तियों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया। बच्चन ने कुकुरमुत्ता कविता पर टीका करते हुए लिखा कि कुकुरमुत्ता कविता पंत जी के विरुद्ध लिखी गयी और निराला जी ने पंत जी को गुलाब मानकर गालियाँ दी है स्वयं कुकुरमुत्ता बने हैं। साथ ही बच्चन ने गुलाब निश्चित रूप से पंत जी को ही सिद्ध करने के लिए 1943 ई. की पंत की बीमारी का उत्तरदायित्व कुकुरमुत्ता की रचना पर डाला है। इस आरोप का खण्डन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने यह तर्क प्रस्तुत किया -- "कुकुरमुत्ता का पहला हिस्सा हंस में छपा था मई 1941 में। उसी में गुलाब को गालियाँ दी गई थी। बच्चन के अनुसार पंत जी बीमार पड़े 1943 में। आह को चाहिए एक उमग असर होने तक। गालियों का असर डेढ़-दो साल में हो गया है काफी जल्दी हुआ।"[1] इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला पर की गई आलोचनाओं का प्रति उत्तर बड़े ही तीखे स्वर और व्यंगात्मक शैली में दिया है। इसके अतिरिक्त निराला के जीवन से सम्बद्ध अनेक भ्रांतियों का भी निवारण डॉ. शर्मा ने निराला की साहित्य-साधना कृति के प्रथम खण्ड

---

1. आधुनिक बोध और विद्रोह — डॉ. हरदयाल -- पृ. 101

में प्रस्तुत किया है। साथ ही डॉ. शर्मा ने इस खण्ड के अंत में हिन्दी जातीयता के सम्बन्ध में भी अपने विचार विस्तार से प्रस्तुत करते हुए निराला की जीवनी का उससे सम्बन्ध भी स्पष्ट किया है। इस सम्बन्ध में विष्णु कांत शास्त्री जी का कहना है कि "इस पुस्तक में हिन्दी जातीयता की रट इतनी अधिक लगायी गई है कि कहीं-कहीं उसके आगे हिन्दू जातीयता और भारतीय राष्ट्रीयता भी दब गई है। ....यहाँ {हिन्दू-वादी दृष्टिकोण के संदर्भ में} रामविलास जी ने दुहरा अन्याय किया है। एक तो निराला पर उन्होंने अपनी मानसिकता आरोपित की है दूसरे तू कभी न ले दूसरी आड़ के विश्वासी निराला को कूटनीतिज्ञ बना दिया है। जबकि निराला के लिए हिन्दू-जातीयता आन्तरिक श्रद्धा और सम्मान की भावना थी। यह भी एक दिलचस्प बात है कि हिन्दू जातीयता को प्रतिक्रियाशील मानने वाले रामविलास जी हिन्दी जातीयता को प्रगतिशील भावना मानते हैं। यहाँ शास्त्री जी के उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि वे डॉ. शर्मा की हिन्दी जातीयता की अवधारणा की प्रगतिशीलता को समझने का प्रयास नहीं करते हैं। इसी कारण उन्हें हिन्दू जातीयता और हिन्दी जातीयता में अन्तर का आभास नहीं हो रहा है। परन्तु वास्तव में अन्तर स्पष्ट है। चूँकि हिन्दू जातीयता इसलिए प्रतिक्रियाशील है क्योंकि उसका सम्बन्ध सम्प्रदाय विशेष से है। जबकि हिन्दी जातीयता का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से नहीं बल्कि भाषा-विशेष से है अतः हिन्दू जातीयता को प्रतिक्रियाशील मानना तथा हिन्दी जातीयता को प्रगतिशील स्वीकारना सही और स्वाभाविक है। डॉ. शर्मा अपनी इस सूक्ष्म विश्लेषण-दृष्टि के कारण ही निराला के हिन्दूवादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं क्योंकि उसका सम्बन्ध एक सम्प्रदाय विशेष से है न कि जन-सामान्य से। चाहे वह हिन्दू जातीयता निराला के लिए आन्तरिक श्रद्धा और सम्मान की भावना ही

कर्म न रही हो। इस समीक्षा-पद्धति से डॉ. शर्मा की भौतिकवादी दृष्टि और द्वन्द्वात्मक समीक्षा-पद्धति का परिचय मिलता है।

शास्त्री जी का यह भी कहना है कि संभवतः हिन्दी जातीयता के भाव के जोर मारने पर उपसंहार में रामविलास जी ने यह भी जोड़ दिया -- "बंगला उनके लिए मातृभाषा के समान न थी न आरंभ में वह बंगला या संस्कृत में कविता करते थे। ...जीवन के किसी मंजिल में भी उनका बंगला-ज्ञान उनके हिन्दी-ज्ञान के समकक्ष या उससे बढ़कर न था।"[1] डॉ. शर्मा के इन विचारों की समीक्षा करते हुए शास्त्री जी कहते हैं कि बंगाल के ग्रामांचल में पलने और बंगाली के माध्यम से एंट्रेंस तक पढ़ने वाले निराला के लिए बंगला मातृभाषा के समान हो गयी होगी, यह अनुमान अत्यन्त संगत है बिना किसी प्रतिकूल प्रमाण के इसका निषेध करना हठ-धर्मिता का परिचय देना है।[2] यह शास्त्री जी ने संभावना व्यक्त की है परन्तु यह होना आवश्यक भी तो नहीं कि वातावरण और माध्यम के होते हुए किसी व्यक्ति पर उस भाषा की अपेक्षा उसकी मातृभाषा का प्रभाव अधिक हो सकता है इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता अतः समीक्षा के क्षेत्र में संभावनायें देकर किसी की सही आलोचना नहीं की जा सकती बल्कि सही समीक्षा के लिए तर्क युक्त सबल प्रमाणों की आवश्यकता होती है। अंत में विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं कि रामविलास की वर्षों की एक-निष्ठ साधना के फलस्वरूप तुलसीदास के बाद हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ कवि की इतनी विशद जीवनी हमें प्राप्त हुई है। किन्तु डॉ. कमलाप्रसाद के अनुसार "निराला साहित्य की साधना के तीनों भागों को देखने के बाद

---

1. निराला की साहित्य-साधना -- खण्ड-एक -- पृ. 610
2. आलोचना - पत्रिका - अंक-9 -- पृ. 94

लगता है कि जीवनीकार का मूड़ प्राय: अकादमिक ही रहा है यहाँ वहाँ प्राप्त स्थूल सामग्री का आकलन और उसे जोड़ने की कोशिश का अच्छा उदाहरण बन जाने के बावजूद तीनों संकलनों की परस्परता किंचित खटक जाती है। ...रामविलास जी जीवनी-लेखन के क्षेत्र में पहली बार आये हैं। परन्तु वे समाज शास्त्री, भाषाविद और साहित्य के मूल्यों से निरन्तर जुड़े रहने के कारण शब्द-शिल्पी निराला का बोध कर सके हैं यह बोध, मूल्यांकन और आलोचना के लिए उतना नहीं जितना जीवन को रचनाओं के आधार पर देखने के लिए था।"[1]

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व को उनके साहित्य से जोड़ते हुए एक सफल साहित्यिक-जीवनी प्रस्तुत की है जो हिन्दी साहित्य में अतुलनीय है।

---

1. आलोचक रामविलास शर्मा -- डॉ. नत्थन सिंह — पृ. 274

उपसंहार

डॉ. रामविलास शर्मा ऐसे मार्क्सवादी साहित्य समीक्षक हैं जिन्होंने अपनी भौतिकवादी विचारधारा और द्वन्द्वात्मक विश्लेषण दृष्टि एवं पद्धति के माध्यम से साहित्य की समीक्षा समग्रता के परिप्रेक्ष्य में की है। उन्होंने सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की समस्त विधाओं के विकास में लोक-जागरण की चेतना को सक्रिय देखा है। उनका समीक्षा-साहित्य मानव-जीवन और समाज की प्रत्येक गतिविधि से सम्बद्ध रहा है इसी कारण उनकी साहित्य-विषयक अवधारणायें उनकी समग्र समीक्षा-दृष्टि और साहित्य के सांस्कृतिक इतिहास को प्रस्तुत करती है।

डॉ. शर्मा ने काव्य, गद्य और समीक्षा के अन्तर्गत जिस साहित्य का अध्ययन किया है उसे हिन्दी जाति का साहित्य कहते हुए उसकी जातीय सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत की है। किन्तु उन्होंने इस सांस्कृतिक विकास की साहित्यिक परम्परा के अध्ययन के लिए कोई व्यवस्थित साहित्येतिहास की रचना नहीं की। किन्तु समय-समय पर विभिन्न साहित्यकारों, कृतियों और प्रवृत्तियों पर पुस्तकों व लेखों के रूप में जो कुछ भी उन्होंने लिखा वह हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास ही है। इसी दृष्टि से उनके कृतित्व को विभिन्न अध्यायों में बाँटा गया है।

हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा का मार्क्सवादी विचारधारा और चेतना से अटूट सम्बन्ध रहा है। और हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवेश 1917 की रूसी क्रांति से पूर्व ही हो चुका था। और इस विचारधारा के भारतीय समाज में प्रसार से राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर नवीन चेतना की उत्पत्ति हुई जिससे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष में देश का श्रमजीवी वर्ग भी पूर्णतः सम्मिलित हो गया उसकी यह चेतना ही भारतीय समाज की चेतना रही है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में वामपंथी दल का उदय, मजदूरों के अखिल भारतीय संगठन, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी आदि की स्थापना इसका प्रमाण रहा है। साहित्य तथा विचारधारा के क्षेत्र में "केसरी" की सम्पादकीय टिप्पणियाँ, विपिनचन्द्रपाल के कथन, गणेश शंकर विद्यार्थी का तीव्र आक्रोश, जी.वी. कृष्णा राव की रचना, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तत्कालीन लेख, अमृत डांगे का "सोशलिस्ट" पत्र, गुलाम हुसैन का "इन्कलाब", मुज्जफर अहमद का "गणवाणी", मजदूर किसान गजट आदि भारतीय समाज में मार्क्सवादी चेतना की उत्पत्ति और विकास के प्रमाण रहे हैं। कालान्तर में सत्य भक्त द्वारा पृथक दल की स्थापना, एम. एन. राय की मार्क्सवादी विचारधारा और कार्य-नीतियों तथा अवनी मुखर्जी की रचनाओं, आचार्य नरेन्द्र देव का नेतृत्व, "जागरण" और "हंस" इत्यादि पत्रों द्वारा समाजवादी आकांक्षाओं को दिया गया मूर्त रूप राजनीति में कम्युनिस्ट या साम्यवादी आंदोलन तथा साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन की स्थापना की आधार भूमि के निर्माण के स्त्रोत एवं प्रेरक रहे हैं। परन्तु हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में प्रेमचन्द के नेतृत्व में प्राचीनता भक्त बुर्जुआ-वर्गीय बुद्धिजीवियों के विरुद्ध संगठन का असफल प्रयास, भारतीय साहित्य परिषद् की स्थापना हमें प्रथम साहित्यिक जागरण से अवगत कराने के साथ-साथ 1857 की राजनीतिक क्रांति के असफल साहित्यिक रूप से भी परिचित कराती है। यह चेतना कालान्तर में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के द्वारा ही

चरम परिणति तक पहुँचा है। जिसकी स्थापना हेतु भारतीय बुद्धिजीवी और युवाओं द्वारा भूमिका का निर्माण किया गया था। जो पूर्णतः भारतीय जन-चेतना युक्त युवाओं के अथक परिश्रम का फल रहा है। 1936 में कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू का सभापति बनना और प्रलेस के अध्यक्ष के रूप में प्रेमचन्द द्वारा कार्यभार संभालना वास्तव में बुद्धिजीवी और युवा-वर्ग की चेतना और कार्यशीलता का प्रमाण रहा है। इसी समय प्रेमचन्द द्वारा "हंस" को प्रलेस की स्थापना के उद्देश्य की पूर्ति हेतु सौंपा गया परन्तु उन्हें प्रतिक्रियावादियों के भी अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि प्रलेस से सम्बद्ध साहित्यकारों पर व्यक्तिगत रूप से भी आक्रमण किया गया। किन्तु समस्त विपदाओं और समस्याओं तथा सरकार की दमन-नीतियों का धैर्य से सामना करते हुए भारतीय साहित्यकारों ने देशी भाषाओं में प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर प्रलेस के उद्देश्यों को पूरा करने के साथ-साथ प्रलेस की शाखायें स्थापित कर शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग के कर्तव्यों को निर्धारित किया। जिसके फलस्वरूप समस्त भारतीय भाषाओं में प्रगतिशील साहित्य की रचना होने के साथ-साथ सामाजिक-चेतना उत्पन्न हुई जिससे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तेजी आयी।

इस चेतना युक्त प्रेरक साहित्य के विश्लेषण और मूल्यांकन हेतु हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिशील समीक्षा का आरम्भ हुआ जो अपने मानदण्डों का निर्माण प्रगतिशील साहित्य के जीवन्त तथ्यों, उद्देश्यों से करते हुए पारम्परिक चेतना और प्रगतिशील तत्वों को स्वीकार करती है। प्रगतिशील समीक्षा का विकास प्रगतिशील साहित्य और प्रलेस से पूर्णतः सम्बद्ध रहा है। इस समीक्षा के विकास की पृष्ठभूमि में परम्परागत यथार्थ-चित्रण की दृष्टि , सार्वभौमिक दृष्टिकोण, सामाजिक विश्लेषण की पद्धति

का विशेष महत्व रहा है। साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि की प्रखरता आचार्य शुक्ल के माध्यम से आयी है। आचार्य शुक्ल की समीक्षा-दृष्टि और पद्धति को मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तकों ने साभार स्वीकार कर प्रगतिशील समीक्षा का विकास किया। डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील आंदोलन को उसकी पूर्ववर्ती साहित्यधारा तथा उससे सम्बद्ध पृष्ठभूमि से जोड़कर देखने का कारण यही रहा है। इसके अतिरिक्त आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की अनेक साहित्यिक मान्यताओं और विचारों से भी हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन के विकास में सहायता प्राप्त हुई है। वाजपेयी जी द्वारा व्यक्तिवादी और कलावादी प्रवृत्तियों की तीखी आलोचना करने का दृष्टिकोण मार्क्सवादी चिंतन के समीप रहा है। जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की लोक-मंगल-दृष्टि जातीय स्वत्व के सिद्धांतों ने समाजवादी यथार्थवाद की मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि का विकास किया है। परन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का मानवतावादी चिन्तन, साहित्य और कला को मानव-जीवन में केन्द्रीय स्थान प्रदान करने वाला दृष्टिकोण, सामाजिक मूल्यों से परिपुष्ट विचारों का भी मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन और प्रगतिशील समीक्षा के विकास में कोई कम महत्व नहीं रहा है।

प्रगतिशील समीक्षा के विकास में उक्त आचार्यों के महत्वपूर्ण योगदान के साथ-साथ अनेक प्रगतिशील जीवन मूल्यों एवं स्वस्थ सामाजिक-साहित्यिक दृष्टिकोण, प्रगतिशील चिंतन-दृष्टि को विकसित करने वाले साहित्य चिंतकों का भी विशेष योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, चन्द्रबली सिंह, अमृतराय, प्रकाशचन्द्र गुप्त,

राहुल सांकृत्यायन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, केदार, रांगेय राघव, हंसराज रहबर, मन्मथनाथ गुप्त इत्यादि साहित्य-समीक्षकों और विचारकों की कृतियों और लेखों के द्वारा प्रलेस के घोषणा-पत्रों, प्रस्तावों आदि से प्रगतिशील समीक्षा का विकास हुआ। परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील समीक्षा के क्षेत्र में एक ऐसे मार्क्सवादी विचारक और समीक्षक रहे हैं जिन्होंने एक साथ दोहरे स्तर पर संघर्ष किया है उन्हें एक ओर प्रगतिवाद विरोधी प्रतिक्रियावादी साहित्यकारों से वैचारिक संघर्ष करते हुए उनके आरोपों का खण्डन करना पड़ा और दूसरी ओर ऐसे प्रगतिवादियों की भी आलोचना करनी पड़ी जो यांत्रिकतावादी दृष्टि अपना कर मार्क्सवादी विचारधारा के नाम पर समस्त भारतीय जीवन-मूल्यों, परम्पराओं, संस्कृति आदि का तिरस्कार कर रहे थे। जो वास्तव में वैचारिक ह्रास का द्योतक रहा है। डॉ. शर्मा ने आलोचना के क्षेत्र में पदार्पण अपने प्रिय कवि निराला पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए किया है। 1934 में उनका पहला आलोचनात्मक लेख निराला पर "चाँद" में प्रकाशित हुआ। उनके द्वारा की गई रघुपति सहाय "फिराक" की आलोचना ने उन्हें हिन्दी साहित्य जगत में प्रसिद्धि दिलायी है। कालान्तर में वे भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री भी रह चुके। उन्होंने हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा के विकास में अपने वैचारिक अकाट्य तर्कों द्वारा अवधारणायें और स्थापनायें प्रस्तुत करते हुए साहित्य मूल्यांकन में प्रगतिशील और जातीय दृष्टिकोण अपनाया।

डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी समीक्षा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। वे मार्क्सवाद से प्रभावित होने पर भी हिन्दी साहित्य समीक्षा के क्रम में साहित्यिक-तत्वों विषयक, साहित्येतिहास लेखन सम्बन्धी, हिन्दी जाति और नवजागरण से सम्बद्ध मौलिक मान्यताओं को प्रस्तुत करते हैं।

शर्मा जी कट्टर और संकीर्ण दृष्टिकोण के समीक्षक नहीं रहे हैं बल्कि उन्होंने सैद्धांतिक रूप से मार्क्सवाद की सभी कट्टरताओं एवं संकीर्णताओं को दूर कर हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा को उदार दृष्टिकोण से परिपूर्ण किया है। उनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण अन्य मार्क्सवादी समीक्षकों की तरह यांत्रिकता-पूर्ण नहीं रहा है बल्कि उन्होंने साहित्य की जनवादी चेतना को विश्लेषित करने वाली समीक्षा पद्धति को प्रस्तुत किया है। वे निर्भीक एवं स्पष्ट-वक्ता समीक्षक हैं। उनकी समीक्षा पद्धति अत्यंत कठोर एवं निर्मम रही है और उन्होंने प्रहारात्मक भाषा-शैली का प्रयोग करते हुए हिन्दी समीक्षा में मार्क्सवादी समीक्षा-दृष्टि और जनवादी धारणाओं की स्थापना कर स्वयं को प्रगतिशील समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। शर्मा जी ने मार्क्सवादी दर्शन को अपने विचारों का आधार बनाकर भौतिकवादी दृष्टिकोण और द्वन्द्वात्मक विश्लेषण-पद्धति के माध्यम से हिन्दी साहित्य का समग्रता में विवेचन प्रस्तुत किया है। वे मार्क्सवादी विचारधारा का सामाजिक चेतना और मानव-जीवन से अटूट सम्बन्ध मानते हुए साहित्य में यथार्थ-चित्रण, वर्गीय आधार, शोषक का विरोध, शोषित की पक्षधरता आदि की अभिव्यक्ति को महत्व देते हैं। उन्होंने वर्ग विभाजन और वर्ग संघर्ष को स्वीकार कर पारम्परिक चेतना और स्वरूप को विश्लेषित किया है। वे साहित्य में सामाजिक यथार्थ का समर्थन करते हुए कृति की समाज सापेक्षता, लेखक की युगबोधगम्यता को विश्लेषित करते हैं। उन्होंने अपने मार्क्सवादी सौन्दर्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण के द्वारा साहित्य और कला के सामाजिक सम्बन्ध को विवेचित किया है।

शर्मा जी मनुष्य के विकास में सहायक साहित्य को ही प्रगतिशील साहित्य मानते हैं तथा उसमें जनता की पक्षधरता, जातीय-चेतना,

साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा की अनिवार्यता दर्शाते हैं। वे प्रगतिशील साहित्य को साम्राज्यवाद, सामंतवाद अर्थात् जनता के शोषक पक्ष के नाश की चेतना और जागृति से परिपूर्ण होना आवश्यक मानते हैं और जातीय-चेतना के अभाव में नव-जागरण की उत्पत्ति असंभव बताते हैं। उन्होंने भारत में आधुनिकता की शुरुआत भक्ति-आंदोलन से माना है क्योंकि उनके अनुसार भारतीय समाज में सामंत विरोधी चेतना से आधुनिककता का उदय यूरोप से पूर्व रहा है। और हिन्दी नवजागरण को आधुनिकता का दूसरा चरण बताते हैं। शर्मा जी हिन्दी नवजागरण का आरम्भ 1857 की क्रांति से मानते हुए गदर को हिन्दी प्रदेश के नवजागरण की पहली सीढ़ी भारतेन्दु युग को दूसरा चरण और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग को तीसरा सोपान दर्शाते हैं। उन्होंने हिन्दी प्रदेश के नवजागरण के जातीय और राष्ट्रीय महत्व को उद्घाटित करते हुए उसे एशिया के नवजागरण का सूत्रधार बताया है जो हिन्दी प्रदेश की जातीय चेतना से ही संभव हो पाया है। शर्मा जी की जातीय अवधारणा में विशेष वर्ग समुदाय के सांस्कृतिक पक्ष को महत्व देने तथा उसकी भाषा को प्रमुखता प्रदान करने का दृष्टिकोण निहित रहा है क्योंकि उन्होंने कोसलगणों की जनता को कवि और कविता-प्रेमी बताया है जिनके द्वारा विकसित धारा के रूप में ही वाल्मीकि और वेदव्यास की काव्य परम्परा को देखा है। इस परम्परा के विकसित रूप को विश्लेषित करते हुए कालिदास, भवभूति, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण आदि को इस धारा को विकसित करने वाले प्रमुख प्रगतिशील साहित्यकार माना है जिन्होंने कालजयी कृतियों के माध्यम से अपनी सृजनशीलता को प्रस्तुत कर समाज के साहित्यिक और सांस्कृतिक पक्ष को विकसित किया है। आधुनिक युग में भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, निराला, केदार, नागार्जुन आदि को

हिन्दी की लोक-जागरण की धारा को विकसित करने वाले साहित्यकारों के रूप में विश्लेषित कर उनके साहित्यिक महत्व व युग-सापेक्षता को उद्घाटित किया है। हिन्दी के प्रमुख कवियों के काव्य-साहित्य का समीक्षात्मक विवेचन करते हुए वाल्मीकि में मानवीय संवेदनाओं की गहरी अनुभूति को खोजा है तो कालिदास के व्यक्तित्व को सामंतीय परिवेश से प्रभावहीन होकर विकसित होने वाला उदात्त चरित्र बताया। संत-साहित्य को अपने समय का क्रांतिकारी कार्य मानकर उसकी लोक-पक्षधरता, लोक-भाषा, लोक-संस्कृति का विकास कबीर के दोहों और साखियों में, तुलसी तथा जायसी की चौपाईयों में और मीरा के भजनों में देखा है। तथा संत-कवियों की गेयता, माधुर्य सरसता से दरबारी साहित्य को परास्त होते हुए दर्शाया है। वे संत-साहित्य को जनवादी धारा द्वारा सामंती बन्धनों को तोड़ने वाले जातीय-चेतना से परिपूर्ण आंदोलन के रूप में देखते हैं। उन्होंने तुलसी को जन-पक्षधर कवि, जातीय -चेतना, वर्गीय पक्षधरता, युग-चेतना से परिपूर्ण समाज के जीवन के प्रत्येक पहलू और सामाजिक-जीवन के प्रत्येक सम्बन्ध को विश्लेषित करने वाला कवि बताया है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने मध्यकालीन हिन्दी कविता में गेयता के गुण की प्राधान्यता स्वीकार करते हुए मध्यकालीन संत-कवियों की वाणी को एक सांस्कृतिक चेतना से युक्त स्वर बताया है। क्योंकि इस स्वर ने दरबारी कविता की एकरसता, रूढ़ि-प्रियता और निष्प्राणता को तोड़ा है। इसे तोड़ने वालों में जायसी, मंझन, कुतुबन आदि संत कवियों का भी विशेष महत्व स्वीकार किया है। तुलसी और सूर के साहित्य में गेयता की प्रवृत्ति को विश्लेषित करते हुए सूर को गायन सम्राट बताया और मीरा के पदों में मध्यकालीन निषेधों के प्रति नारी का प्रबल विद्रोह देखा। तथा आलम, रसखान, रहीम का इस प्रेम की परम्परा से अटूट सम्बन्ध बताया।

संत-काव्य की विद्रोही भूमिका के पक्ष को विशेष महत्व देते हुए संतों द्वारा सामंती व्यवस्था के विरुद्ध अपनायी गयी प्रवृत्ति को प्रशंसनीय और साहस से परिपूर्ण माना। उन्होंने भक्ति आंदोलन को जातीय उत्थान का प्रतीक मानते हुए संतों, सूफियों और भक्तों को एक ही आंदोलन का अंग बताया।

शर्मा जी भक्ति आंदोलन के सही रूप को उद्घाटित कर उसकी विरोधी काव्य-धारा के रूप में रीतिकाव्य परम्परा को विश्लेषित करते हैं तथा उसे हिन्दी की लोक-जागरणवादी धारा की विरोधी प्रवृत्ति मानते हुए उसका विकास वाल्मीकि के समय से उसके विरुद्ध चलने वाली चमत्कारवादी काव्यधारा के अंग रूप में होना स्वीकार करते हैं। और रीतिकाल के विरोध में ही हिन्दी आलोचना की प्रगतिशील धारा का विकास मानते हैं। किंतु भारतेन्दु युगीन काव्य परम्परा पर रीतिवादी काव्य धारा का काफी प्रभाव देखते हुए मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, दिनकर, सुमन, नरेन्द्र आदि की रचनाओं द्वारा विकसित काव्य-परम्परा को उसकी विरोधी बताते हैं। शर्मा जी आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा के विकास को व्यक्त करते हुए रीतिवादी, सुधारवादी और छायावादी धारा को प्रस्तुत करते हैं। और प्रसाद के काव्य में लोक-कल्याण की कामना को उभार कर पंत के साहित्य में मध्यवर्ती पंथ और समझौतावादी प्रवृत्ति को विश्लेषित करते हैं। शर्मा जी जहाँ प्रसाद के काव्य में लोक-मंगल की भावना और कामना का सर्वत्र समायोजन देखते हैं वहीं पंत के काव्य में समन्वय के नाम पर अंध-विश्वासों की प्रतिष्ठा संघर्षशील जनता को वर्ग सहयोग का उपदेश देने की प्रवृत्ति पाते हैं। परन्तु निराला के काव्य में विद्रोही चेतना की अभिव्यक्ति देखते हुए उनकी वर्ग-संघर्ष से

परिपूर्ण दृष्टि, शोषण के विरुद्ध आक्रोश, जन-पक्षधरता, सामाजिक-राजनीतिक चेतना, मानवीय सहानुभूति, यथार्थ-प्रियता, संघर्षशीलता आदि विशेषताओं को उभारते हैं। किंतु महादेवी के साहित्यिक जीवन का आरंभ छायावाद के मध्यकाल से मानते हुए उनके काव्य में प्रेम और वेदना का समन्वय देखा है। तथा उनकी अन्तर्मुखी अनुभूति, अमांसल सौंदर्य मानवीय-प्रेम, सौन्दर्य की आकांक्षा नारी सुलभ भाव-व्यंजना और शंका असीम-दृढ़ता आदि विशेषताओं को विश्लेषित किया है। शर्मा जी ने दिनकर के काव्य में यथार्थ-दर्शन और काल्पनिक श्रृंगार का मिश्रण देखते हुए उनके काव्य में चरम भावोत्कर्ष, प्रेम के आस्वाद, नायिका-भेदी परम्परा और खटकने वाली अलंकार योजना को उद्‌घाटित किया है। तथा दिनकर को मनुष्य और उसकी शक्ति में विश्वास रखने वाले कवि बताया। परन्तु बच्चन की कविता में वेदना की कसक और आशा की उमंग को निहारते हुए उसमें सामाजिक चेतना नयी संवेदनशीलता आदि के दर्शन करते हैं। छायावादी काव्य के उत्तरकाल की कविता का रूप विश्लेषित करते हुए छायावादियों के यथार्थवाद की ओर संक्रमण की प्रवृत्ति को उभारते हैं। यथार्थवाद की प्रकृति की अभिव्यक्ति पंत, निराला, गिरिजाकुमार, सुमन, नरेन्द्र, दिनकर, केदार आदि की कविताओं में देखते हैं।

शर्मा जी प्रगतिशील कविता द्वारा छायावादी काव्य की अस्पष्टता, भाषा की दुरूहता निराशावादी भावनाओं और पलायनवादी प्रवृत्ति को दूरकर जीवन में आस्था, दलित और शोषित जनता की मुक्ति की आकांक्षा, सामाजिक दायित्व की चेतना और भावना आदि को विशेष महत्व देने की दृष्टि को उभारते हैं तथा प्रयोगवादियों का इलियट से गहरा

सम्बन्ध दर्शाते हुए प्रयोगवादियों द्वारा रुग्ण कल्पना के माध्यम से संसार को देखने छायावाद और हिन्दी कविता के समस्त स्वस्थ तत्वों का बहिष्कार करने, अस्वस्थ तत्व, निराशावाद और कुंठा का प्रतिनिधित्व करने की प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है। अर्थात् छायावाद के उत्तरकाल में छायावादी कवियों द्वारा यथार्थवादी भाव भूमि की अभिव्यक्ति करने तथा प्रयोगवादी प्रचारकों द्वारा कुंठा और घुटन की सुन्दर अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति को उजागर किया है। अज्ञेय के काव्य की विशेषताओं को विश्लेषित कर उसे छायावादी रुझानों से पूर्णतः आच्छादित पाया है। गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में छायावादी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और क्रांति के पक्षधरता को देखा है। जबकि मुक्तिबोध के साहित्य का गहन विश्लेषण करते हुए उनकी अभिव्यक्ति की सत्यता के कारण उनका आत्म-संघर्ष रहस्यवादी रुझानों से ग्रस्त होकर प्रस्तुत होने की क्रिया का देखते हैं। और मुक्तिबोध के मानसिक स्तर पर मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद को लेकर चलने वाले संघर्ष की अभिव्यक्ति उनके काव्य में होने की बात स्वीकार करते हैं। मुक्तिबोध के काव्य-साहित्य को विश्लेषित करते हुए शर्मा जी ने अनेक आलोचकों की धारणाओं का खण्डन तर्क-सहित किया है। और मुक्तिबोध के दार्शनिक विचारों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। परन्तु शमशेर के काव्य के विवेचन के क्रम में रूमानियत और रीतिवाद का संगम पाया है।

शर्मा जी हिन्दी काव्यधारा के विकास को विश्लेषित करते हुए प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य-साहित्य में विरोधी वृत्तियों का विकास देखते हैं। तथा नई कविता का विकास प्रयोगवाद के सहारे होने पर भी उसका प्रयोगवाद से विच्छेद होने तथा उसके द्वारा स्वाधीनता आंदोलन की

विरासत और छायावाद के साथ-साथ प्रगतिशील कविता की उपलब्धियों को भी नकारने वाली प्रवृत्तियों को उद्घाटित किया है। शर्मा जी यथार्थवादी काव्यधारा के विकास में निराला, केदारनाथ, नागार्जुन आदि का महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार करते हैं। प्रयोगवाद और नयी कविता द्वारा विषय-वस्तु पर आवरण डालकर उसे शिल्प की समस्याओं तक सीमित कर देने की प्रवृत्ति को भी दर्शाते हैं। वे नयी कविता का प्रयोगवाद से नाता, प्रयोगवाद पर अज्ञेय का एकाधिकार के कारण टूटने और पृथक-धारा के रूप में प्रवाहित होने की बात कहते हैं। नयी कविता के अन्तर्गत अस्तित्ववाद से मार्क्सवाद का मुख्य टकराव होने तथा नयी कविता में शमशेर बहादुर सिंह और मुक्तिबोध जैसे मार्क्सवादियों की उपस्थिति को उजागर किया है। शर्मा जी नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में नेमिचन्द जैन और भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, सुमन, गिरिजा कुमार माथुर, नरेन्द्र शर्मा, मुक्तिबोध आदि को महत्व देते हैं। परन्तु केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में उन्होंने क्रांतिकारी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के दर्शन किये हैं। और केदार की चेतना को मूलतः किसान की चेतना बताया। किंतु नागार्जुन को राजनीतिक जागरण और लोक-संस्कृति के कवि रूप में स्वीकार किया तथा उनमें साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद की प्रखर आलोचना की प्रवृत्ति और हिन्दी जातीयता व श्रमिक जनता की पक्षधरता को देखा है। लेकिन त्रिलोकन के काव्य में जातीय-चेतना की बहुलता देखते हुए उनके साहित्य को संघर्षशील जनता का साहित्य माना है। क्योंकि त्रिलोचन की कविता हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना की जड़ों को सींचने वाली रही है। अर्थात शर्मा जी ने केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन को हिन्दी जाति के साहित्य की प्रगतिशील धारा के प्रतिनिधि कवि बताया है।

शर्मा जी नयी कविता के विकास के विभिन्न सोपानों को विश्लेषित करते हुए 1938 में "रूपाभ" के प्रकाशन से आरम्भ होने वाली नई कविता को प्रगतिशील कविता, 1947 में "प्रतीक" के प्रकाशन से आरंभ होने वाली नई कविता को प्रयोगवादी कविता और 1954 में "नई कविता" के प्रकाशन से नई कविता का आरम्भ मानते हैं और क्रमशः मार्क्सवादी, प्रगतिशील विरोधी तथा अस्तित्ववादी कविता बताया है। 1958 में "क्रांति" के प्रकाशन से आरम्भ नई कविता को मूल्यहीनता की पक्षधर दर्शाया। जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, श्रीकांत वर्मा, इत्यादि को नयी कविता के प्रमुख कवि माना है। और नयी कविता में सिद्धांतों और व्यवहार में उलझाव देखा है।

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने जहाँ एक ओर काव्य समीक्षा साहित्य में वाल्मीकि से नयी कविता के विभिन्न कवियों और काव्य-प्रवृत्तियों को विश्लेषित किया वहीं गद्यालोचन के अन्तर्गत भवभूति के नाटकों में मानवीय संवेदना का विस्तार देखा तथा उनके नाटकों की तुलना शेक्सपियर की रचनाओं से करते हुए उन्हें सुखांत ट्रेजेड़ी माना है। शरत जी के कथा-साहित्य का विश्लेषण करते हुए उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। और उनके औपन्यासिक पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं को उभारा तथा उनकी कलात्मकता के दोषों को भी उद्घाटित किया है। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक चेतना का संवाहक बताते हुए उनके गद्य-साहित्य के अन्तर्गत विशेष रूप से नाटकों की समीक्षा प्रस्तुत की है। तथा भारतेन्दु की कला-कौशलता को तुलसी की परम्परा और श्रेणी का प्रेमचन्द और गोर्की की कला-कौशलता के समान माना है। भारतेन्दु की साहित्य प्रतिभा को अमीर खुसरो, सूर, मीरा, रसखान आदि की तुलना में देखा है। तथा

गद्य-समीक्षा में उनके समस्त नाटकों, निबन्धों और पत्रकारिता को समेट कर उनके साहित्य लेखन का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। साथ ही भारतेन्दु-युगीन साहित्य का नया मूल्यांकन करते हुए उनके युग की प्रवृत्तियों को विश्लेषित किया। उस युग को राजनीतिक, सामाजिक तथा भाषा सम्बन्धी आंदोलनों का युग मानते हुए उसका प्रभाव साहित्य और पत्रकारिता पर देखा है। प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों को उक्त आंदोलनों में संघर्षरत पाया। भारतेन्दु युगीन उपन्यास का पूर्ण विकास प्रेमचन्द में देखते हुए उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का महत्व आचार्य शुक्ल का समीक्षा क्षेत्र और निराला का काव्य-क्षेत्र के समान माना है।

शर्मा जी प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करते हुए उनके औपन्यासिक पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण, उनके कथोपकथन की सार्थकता, सामाजिक भूमिका आदि को उद्घाटित किया है। और प्रेमचन्द के साहित्य में अंग्रेज़ीराज की कटु-आलोचना को विशेष महत्व दिया है। साथ ही उनके साहित्य की जन-पक्षधरता, पूँजीवाद विरोधी दृष्टिकोण आदि को सहज और सरस विवेचनात्मक शैली में प्रस्तुत कर जीवन के मार्मिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति, यथार्थ-चित्रण, युगीन सामाजिक संदर्भों को विश्लेषित किया है। और प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य में जैनेन्द्र, यशपाल द्वारा अपने अपन्यासों के तथा राहुल जी द्वारा विचारों के माध्यम से साहित्य में प्रगति-शीलता के नाम पर सेक्स सज्जा और यौन विकृतियों को प्रस्तुत करने वाली प्रवृत्ति को उभारा तथा वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, नागार्जुन आदि के उपन्यास साहित्य से तुलना करते हुए विश्लेषित किया है। किन्तु वृन्दावनलाल वर्मा जी के उपन्यास साहित्य के विवेचन के क्रम में उनके ऐतिहासिक

उपन्यास-लेखन की सार्थकता की समीक्षा की है। और उनके साहित्य में लोक-भाषा और संस्कृति के चित्रण को उभारते हुए प्रेम के औदात्तिकरण को विश्लेषित कर नारी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रस्तुत किया है साथ ही उनकी सामंत-विरोधी प्रवृत्ति को उभार कर उनकी जन-पक्षधरता को प्रस्तुत करने वाले कथा-कौशल को उद्घाटित किया।

शर्मा जी मार्क्सवादी उपन्यासकार यशपाल के उपन्यास-साहित्य की समीक्षा करते हुए उनकी रचनाशीलता एवं विचारधारा का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। तथा उनके उपन्यास साहित्य में व्यक्त मध्यवर्गीय जीवन-पद्धति, सामाजिक विषमता, पात्रों के चरित्र कथावस्तु की प्रासंगिकता का यथार्थ चित्रण करने वाली शैली का विश्लेषण करते हुए उनकी कमजोरियों को भी उभारते हैं। परन्तु अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य का विश्लेषण कर उसमें व्याप्त मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष और चेतना को उद्घाटित किया है। तथा उनके पात्रों के अन्तर्द्वन्द, सामाजिक संघर्ष का विवेचन कर उनकी चारित्रिक विशेषताओं में उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण, भाषा-शैली, संवाद-पद्धति, जागरूकता, संघर्षशीलता आदि को प्रस्तुत किया है।

गद्यालोचन के क्रम में शर्मा जी ने आंचलिक उपन्यास विधा की समीक्षा करते हुए उसमें पाये जाने वाले भारतीय तत्वों की प्रगतिशीलता को देखा है तथा वृन्दावन लाल वर्मा की रचनाओं में आंचलिकता की अधिकता को दर्शाते हुए "मैला आँचल" की आँचलिक विशेषताओं को विश्लेषित करते हुए परती परिकथा तक के विकासक्रम में होने वाले ह्रास को उद्घाटित किया। और आंचलिक धारा की कुछ विशेषताओं को प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, नागार्जुन आदि के उपन्यास साहित्य में देखा है।

इनके साथ इलाचन्द जोशी, राजेन्द्र यादव आदि को सम्बद्ध कर समस्त साहित्यकारों द्वारा प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य को लोक-कल्याण की दिशा में ले जाने का क्षेत्र दिया। और इन लेखकों के कथा-लेखन से प्रगतिशीलता के नाम पर होने वाले उच्छृंखलता-प्रदर्शन की प्रवृत्ति की समाप्ति को देखा। तथा इनके कथा-साहित्य में सामाजिक विषमता के साथ-साथ लोक-कल्याण के भी दर्शन किये हैं। कहानी-लेखन के क्रम में मार्कण्डेय, अमरकांत और राजेन्द्र यादव की कहानियों का तथा गद्य के अन्य रूपों के अन्तर्गत निबन्ध लेखन के क्षेत्र में बनारसी दास चतुर्वेदी, शमशेर बहादुर सिंह की लेखन-प्रवृत्ति की विशेषताओं को विश्लेषित कर उनकी साहित्यिक महत्ता को उद्घाटित किया है।

हिन्दी आलोचना विधा के विवेचन के क्रम में डॉ. शर्मा सबसे पहले आचार्य शुक्ल के सम्पूर्ण समीक्षा साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। जिसके अन्तर्गत उन्होंने शुक्ल जी की दार्शनिक विचारधारा, रस-विषयक अवधारणा, लोक-मंगलवादी दृष्टिकोण, काव्यात्मा-विषयक विचारों, काव्य-शास्त्रीय मान्यताओं, प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य एवं साहित्यकार सम्बन्धी स्थापनाओं को विवेचित किया है। संत-साहित्य, भक्ति के विकास, रहस्यवाद सम्बन्धी, सूर, तुलसी, जायसी की साहित्यिक विशेषताओं, भक्ति-आंदोलन, रीतिकालीन आचार्यों में केशव आदि की साहित्यिक प्रवृत्ति को विश्लेषित कर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता को उभारा। हिन्दी गद्य के विकास में भारतेन्दु-युगीन साहित्य की महत्ता को उद्घाटित कर उनके छायावाद विषयक दृष्टिकोण, रहस्यवाद विषयक विचारों की समीक्षा प्रस्तुत की है। और उनके दृष्टिकोण की यथार्थवादी प्रवृत्ति, वैज्ञानिक विश्लेषित पद्धति आदि को प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी द्वारा लोक-हृदय में लीन होने की कसौटी रखकर भाववादी धाराओं से

साहित्य को मुक्त करने, वस्तुओं में ही उनके गुणों को समाहित देखने, रस-दशा को लोक-हृदय में लीन होने की दशा कहने, उनका रिचार्ड्स के सिद्धांतों से प्रेम, इलियट, मि. हाजमन इत्यादि से विरोध को उद्घाटित किया है। वे शुक्ल जी की जायसी की भूमिका को उनकी श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृति मानते हैं। उनके द्वारा भक्त की भावानुभूति की दशा को रस-दशा मानने, सूर की कृष्ण भक्ति को जयदेव और विद्यापति से सम्बद्ध करके देखने की दृष्टि को परम्परावादी बताया। उनकी तुलसी विषयक कृति को अत्यधिक असंगतियों और अन्तर्विरोधों से परिपूर्ण माना। इसके अलावा रीतिकालीन कवियों केशव, बिहारी, मतिराम आदि से सम्बद्ध समीक्षाओं का विवेचन प्रस्तुत किया।

परन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के वैचारिक अन्तर्विरोध व असंगतियों को विस्तृत रूप से विश्लेषित कर उनके द्वारा आचार्य शुक्ल की इतिहास लेखन की पद्धति को विकसित करने का मत व्यक्त किया। और द्विवेदी जी के चिंतन की मौलिकता पर प्रश्न-चिह्न लगाया। हिन्दी साहित्येतिहास सम्बन्धी आ. शुक्ल और आ. द्विवेदी जी की विभिन्न अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। द्विवेदी जी के संत-साहित्य, कबीर, भक्ति-काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि, सूर साहित्य एवं साहित्य और समाज, साहित्य से संस्कृति का सम्बन्ध, इतिहास-लेखन की दृष्टि, बौद्ध-नाथ धर्म इत्यादि विषयों से सम्बद्ध अवधारणाओं और समीक्षाओं का विश्लेषणात्मक या साहित्य विषयक मान्यताओं या धारणाओं, उनकी कलावादी दृष्टि, इतिहास सम्बन्धी स्थापनाओं का समीक्षात्मक विश्लेषण कर अनेक प्रसंगों के संदर्भ में उनकी समझ पर व्यंग्य किया है। और नगेन्द्र जी की ऐतिहासिक बोधगम्यता की शून्यता को उद्घाटित कर उनके काव्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण, दरबारी-संस्कृति की प्रियता, नायिका-भेद विषयक मान्यताओं,

व्यक्तिवादी सिद्धांतों और छायावादी अवधारणाओं का समीक्षात्मक विश्लेषण कर उनकी कलावादी समीक्षा-दृष्टि को उभारा है।

डॉ॰ नामवर सिंह की आलोचना-पद्धति का विवेचन करते हुए उनकी समीक्षा-दृष्टि के अन्तर्विरोधों, असंगतियों को नयी कविता के नये प्रतिमानों सम्बन्धी स्थापनाओं के द्वारा उद्घाटित किया है तथा उनकी आलोचना को "बाजरे की कॅलगी" कहा है। नामवर जी की आलोचना-दृष्टि का विश्लेषण करते हुए अज्ञेय के दृष्टिकोण से उनकी साम्यता दर्शाकर विजयदेव नारायण साही से प्रेरित माना। और छायावाद तथा नयी कविता के भेद सम्बन्धी उनकी दृष्टि की भ्रामकता को विभिन्न संदर्भों द्वारा उद्घाटित किया है। नामवर जी द्वारा नगेन्द्री परिभाषा के ध्वस्त हेतु आचार्य शुक्ल का अर्थ-मीमांसा का शस्त्र उपयोग करने के प्रसंग को उभार कर नगेन्द्र विषयक उनकी समीक्षा-दृष्टि के अन्तर्विरोध को दर्शाया है। कविता के नये प्रतिमानों के स्थान पर नाटकीयता वैचारिक अंतर्विरोध, अस्तित्ववादी और भाववादियों की आधुनिकता की अभिव्यक्ति, सर्वत्र तनाव, नगेन्द्र, आचार्य शुक्ल, अज्ञेय, मुक्तिबोध, इलियट, डोनाल्ड डेवी की टकराहट प्रस्तुत करने के प्रसंगों को विशेष रूप से उभारा है। उनकी छायावाद विषयक भ्रामक दृष्टिकोण को उजागर करते हुए मुक्तिबोध विषयक समीक्षा का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

परन्तु शर्मा जी निराला की जीवनी-परक आलोचनाओं के अन्तर्गत निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को विश्लेषित कर उनके साहित्यिक विकास को दर्शाया है। तथा उनकी साहित्यिक विशेषताओं से उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं, विचारधारा, दृष्टिकोण, जीवनानुभूतियों, दुखद एवं हृदय-विदारक घटनाओं आदि का उनके साहित्य

पर प्रभाव देखते हुए उनकी भावनाओं की औदात्यता को प्रस्तुत किया है। इस तरह की जीवनीपरक आलोचना हिन्दी साहित्य में शर्मा जी द्वारा सबसे पहले पूर्णतः मौलिक ढंग से लिखी गई है जो उनकी समग्रता को विश्लेषित करने वाली समीक्षा-दृष्टि का परिणाम है।

इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा ने साहित्य-समीक्षक के रूप में काव्य एवं समस्त गद्य-विधाओं में अपना समीक्षात्मक लेखन-कार्य कर हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना की स्थापना और विकास में अतुलनीय योगदान दिया जो हिन्दी-साहित्य में ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अपना विशेष महत्व एवं स्थान रखता है। उन्होंने अपनी मार्क्सवादी समीक्षात्मक दृष्टि के द्वारा समीक्षा साहित्य की रचना करते हुए अपनी भौतिकवादी विचारधारा, द्वन्द्वात्मक विश्लेषण की पद्धति, युग-सापेक्षतावादी नये परम्परा-बोध, यथार्थ-प्रियता, जन-पक्षधरता, लोक-भाषा और संस्कृति से आत्मीयता और हिन्दी-जाति तथा भारतीय संस्कृति से प्रेम को प्रस्तुत किया है जो हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा के विकास में भावी पीढ़ी का मार्ग-प्रशस्त करने में पूर्णतः सक्षम है।

परिशिष्ट

(क) डॉ. रामविलास शर्मा से साक्षात्कार

यहाँ डॉ. रामविलास शर्मा जी से दिनांक 23-4-1995 को उनके निवास स्थान पर लिये गये साक्षात्कार का अल्पांश प्रस्तुत किया जा रहा है जो इस प्रकार है --

रामप्रकाश : आपकी प्रगतिशील आलोचना या विचारधारा का रूप आपके लेखों के अतिरिक्त किन कृतियों में मिलता है?

रामविलास शर्मा: मेरी कविता में, रूपतरंग में, वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रगतिशील कविता के विकास के सम्बन्ध में वैचारिक अन्तर विरोध की अभिव्यक्ति हुई।

रामप्रकाश : प्रगतिशील लेखक संघ के विघटन का एक कारण कुछ लोग आपको भी मानते हैं क्या यह सही है ?

रामविलास शर्मा : जिस समय मैं महामंत्री बना उस समय तक प्रगतिशील लेखक संघ था ही नहीं वह 1947 तक ही रहा और 1947 में देश का विभाजन हुआ उस समय उसके मंत्री सज्जाद जहीर थे जो पाकिस्तान चले गये, उनके साथ प्रलेस भी चला गया। बम्बई के साथियों ने मुझे बुलाया और मैं वहाँ की कई बार यात्रा कर चुका। वहाँ 1949 में एक सम्मेलन होने वाला था उस पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया क्योंकि प्रगतिशील लेखक संघ उस समय बहुत बदनाम था तो उसको गुप्त रूप से भिंवडी में चलाया गया जिसमें अनेक भाषाओं के लेखक उपस्थित हुए इस सम्मेलन की व्यवस्था कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा की गई। मुझे सभी लेखकों को इक्ट्ठा करने का कार्य सौंपा गया अगर कम्युनिस्ट पार्टी अपना सहयोग न देती तो यह कार्य संभव नहीं हो सकता था। इस समय जितने कार्यकर्ता थे वे सब कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे। इस सम्मेलन में कम्युनिस्ट पार्टी ने कोई नीति निर्धारित नहीं की कि साहित्य में यह काम करना चाहिए। परन्तु ये सब काम मैंने किया। इस सभा में मैंने हिन्दी पर अपने विचार व्यक्त किये और लोगों ने मेरा नाम जनरल सेक्रेटरी के लिए प्रस्तुत

रा. वि. शर्मा : किया और पूर्ण सहमति से मेरा नाम अनुमोदित कर मुझे पद भार सौंपा गया।

रामप्रकाश : प्रगतिशील लेखक संघ के चलते रहने में क्या कम्युनिस्ट पार्टी का राजनैतिक आधार जरूरी था क्या राजनैतिक आधार की जो वैचारिक पृष्ठभूमि है और उसके आधार मार्क्सवाद को स्वीकार कर क्या प्रगतिशील लेखक संघ नहीं चलाया जा सकता है ?

रा. वि. शर्मा : बिल्कुल चला सकते हैं। उस समय की जो स्थिति थी वह इस प्रकार रही -- प्रगतिशील लेखक संघ का संगठन कम्युनिस्ट पार्टी ने किया और उसी ने मुझे प्रलेस में जनरल सेक्रेटरी बनाया। 1950 में यूरोप से एक पत्र "FOR A LOSTING IS FOR A PEOPLE" निकलता था जो अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिज़्म का दस्तावेज़ था मास्को से प्रकाशित इस पत्र में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की आलोचना की गई और कम्युनिस्टों को चीन के साथ सम्पर्क करने का सुझाव दिया गया।

रामप्रकाश : तो क्या वह भारतीय परिप्रेक्ष के अनुसार सही था ?

रा. वि. शर्मा : नहीं था लेकिन उसके आने के बाद कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर एक संघर्ष शुरू हो गया उस संघर्ष में प्रलेस भी शामिल हो गया इस संघर्ष में दो गुट रहे एक बी.टी. रणदिवे का और दूसरा पी.सी.जोशी, अमृतपाद ढांगे का पक्ष। प्रगतिशील लेखक संघ में मैं था तो बी.टी. रणदिवे पार्टी के नेता थे तो मुझे उनका आदमी कहा गया इसलिए पी.सी. जोशी के अनुयायियों ने मेरे विरुद्ध प्रचार अभियान

रा. वि. शर्मा : चलाना शुरू किया जो विशुद्ध राजनैतिक दृष्टि का रहा उनका साहित्य से कुछ लेना देना नहीं था मैंने उनकी आलोचना की तो लोगों ने कहा कि इन्होंने आलोचना की इसीलिए प्रगतिशील लेखक संघ टूट गया। परन्तु मैंने जिसकी आलोचना की उन्होंने मुझे कितनी गालियाँ दी ये बात लोग भूल गये। मेरे ऊपर इतना लिखा गया कि वह पूरा एक पोथा बन सकता है। मैंने तो थोड़ा ही लिखा और उन्होंने बहुत लिखा पूरी पुस्तकें लिखीं।

रामप्रकाश : क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आपके विरोध में सक्रिय कार्य-नीति में गाँधीवादियों की कोई चाल रही हो जो इस संघटन में फूट डालना चाहते थे या तोड़ना चाहते थे ?

रा. वि. शर्मा : गाँधीवादियों की चाल इस रूप में रही कि सन् 1946 में सरदार पटेल जेल से छूटकर लौटने के पश्चात् उन्होंने कम्युनिस्ट विरोधी आंदोलन चलाया और पार्टी हेड क्वार्टर पर हमले किये। एक में आग लगाने की कोशिश की गई उस समय मैं वहाँ मौजूद था। उसमें पूरनचन्द जोशी भी थे ये एक ग्रुप था जिसमें पटेल कम्युनिस्टों को गद्दार कहकर उन्हें मारने के लिए उकसाते थे। इस समय कम्युनिस्ट पार्टी गैर कानूनी करार दी गई और यह स्थिति लगभग 1953 तक रही।

रामप्रकाश : लेकिन यह गैर क़ानूनी करार देने के पीछे धारणा क्या रही जबकि 1942 के बाद उत्तर प्रदेश में जो चेतना आयी उसमें मार्क्सवादी विचारधारा का बहुत बड़ा हाथ दिखायी देता है।

रा. वि. शर्मा : ये बिल्कुल सही है जो लोग सन् 1942 के बारे में बहुत बोलते हैं मैं उनसे पूछता हूँ कि वो सन् 1946 में क्या कर रहे थे। 1946 में क्रांति सारे देश में रही नाविक विद्रोह, फौज और पुलिस में बगावत हो रही थी। उस समय कांग्रेस के लोग शांति बनाये रखने तथा शांति से आजादी मिल जाने का आश्वासन जनता को दे रहे थे। उस समय यदि क्रांतिकारी उभार को आगे बढ़ाया जाता तो क्रांति होती परन्तु कम्युनिस्ट नेतृत्व उस समय बहुत कमजोर रहा है। उन्होंने देखा कि अब कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने स्वीकार कर लिया, हम अब क्या करें उन्हीं के पीछे चलना चाहिए नहीं तो वे कहते कि देश का विभाजन होने वाला है और आगे चलकर सम्प्रदायवाद फैलेगा। विदेशी पूँजी यहाँ सुरक्षित थी यह आज़ादी हमें नहीं चाहिए हम क्रांति के जरिये आजादी पायेंगे तो सारा देश उनके साथ था, ये कमजोरी थी जिसको उन्होंने बाद में स्वीकार किया और आगे कभी हम ऐसी गलती दोहरायेंगे नहीं।

रामप्रकाश : लेकिन प्रगतिशील लेखक संघ या प्रगतिशील साहित्य के बारे में अध्ययन के क्रम में यह बोध होता है कि नेहरू सरकार इसकी विरोधी रही है जबकि नेहरू समाजवादी मानसिकता रखते थे फिर उन्होंने दोहरी नीति क्यों चली है ?

रा. वि. शर्मा : इसलिए कि नेहरू सुभाषचन्द्र के साथ नहीं थे बल्कि सरदार पटेल के साथ रहे। वे हमेशा बातें वामपक्ष की करते रहे और काम दक्षिण पक्ष के। उनकी जो आत्म-कथा है उस पर मैंने बहुत पहले लिखा -- जवाहरलाल नेहरू का अन्तर्द्वन्द्व।

रामप्रकाश : तो क्या प्रगतिशील लेखक संघ को तोड़ने में भी अप्रत्यक्ष रूप से उनकी दमन नीति उत्तरदायी रही है ?

रा. वि. शर्मा : बिल्कुल नहीं। वैसे मैं बार-बार यह कहता हूँ कि तुम दमन को छोड़कर प्रगतिशील लेखक संघ के टूटने की बात कहते हो। अच्छा प्रगतिशील लेखक संघ को मैंने तोड़ा तो जननाट्य संघ को किसने तोड़ा ? अर्थात जितने सांस्कृतिक मोर्चे थे कम्युनिस्ट पार्टी के वो सब टूट गये। ये सब टूटने का कारण ये रहा कि जब दमन आरम्भ हुआ तब पहले जो लोग जैसे अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, सुमित्रानन्दन पंत, बालकृष्ण शर्मा नवीन सब उसे छोड़कर चले गये, कोई अज्ञेयवादी, कोई गाँधीवादी, कोई मार्क्सवादी हो गया और जब ये प्रगतिशील लेखक संघ में रहे उनमें राजनैतिक दृष्टि से देखे तो दो प्रकार की विचारधारा रही सरकार की समर्थक और विरोधी। समर्थक सभी प्रलेस से निकल गये और मैं बराबर कहता था कि सरकार कॉम्प्रमाइस से बनी है इससे देश की उन्नति होने वाली नहीं।

रामप्रकाश : आपका प्रगतिशील लेखक संघ में जो कार्य रहा है महामंत्री पद पर उस समय आपका मार्क्सवादियों से और अमार्क्स-वादियों से एक साथ संघर्ष क्यों रहे और इस संघर्ष में आप अकेले ही क्यों रहे ?

रा. वि. शर्मा : उसका कारण यह है कि मार्क्सवाद को बहुत से लोग गलत ढंग से समझते हैं। उनमें दो तरह के लोग हैं जो मार्क्सवाद को यांत्रिक रूप में समझते हैं और दूसरे तरह के लोग चिंतावादी दृष्टि से आज की परिस्थिति को देखते हैं। हमाराइतिहास और संस्कृति क्या है, अंग्रेज़ों के आने से पहले यहाँ कोई सामाजिक क्रांति नहीं हुई, सामाजिक क्रांति के बिना साहित्य में प्रगतिशीलता कैसे आ सकती है। इसीलिए प्रलेस के प्रथम और द्वितीय घोषणा पत्र में यह बराबर कहा गया कि भारत में अंग्रेज़ों के आने से पहले वैराग्य और दुनिया छोड़कर भाग जाने की धारणायें थी इसलिए अब नये साहित्य की रचना करना चाहिए। इसी दृष्टि से शिवदान सिंह चौहान ने सन् 1937 में "विशाल भारत" में छायावाद पर आक्षेप करते हुए लेख लिखा।

रामप्रकाश : कुछ आलोचकों द्वारा लेखकों पर लांछन लगाने की जो धारणा या प्रवृत्ति रही है वह उनकी भ्रामक मार्क्सवादी समझ, उनकी अवसरवादी नीति या फासिस्टवादी दृष्टिकोण दिखायी देता है क्या यह सही है ?

रा. वि. शर्मा : बिल्कुल सही । उन्होंने बहुत पहले तुलसी साहित्य को सामंती दृष्टिकोण मानते हुए लिखा कि हमारे यहाँ

रा. वि. शर्मा : प्रगतिशील लेखक हैं जिन्होंने सम्प्रदाय-वादियों का काम बहुत आसान बना दिया है। वे ही कहते हैं कि शूद्रों का दमन करना चाहिए जातिवादी व्यवस्था बनायी रखनी चाहिए यही तुलसीदास ने लिखा है तो मैंने कहा कि इस तरह से साहित्य को धोखा दे या इसे प्रगतिशील कहे तो वे धर्म के बहुत बड़े प्रचारक हुए वो भी निष्क्रिय प्रतिरोध वाले। शेक्सपीयर ने राजाओं और राजकुमारों को छोड़कर कोई पात्र लिये ही नहीं तो ये सारा साहित्य बिल्कुल निकाल दिया जायेगा।

रामप्रकाश : तुलसीदास पर आक्षेप लगाने वाले लोग आचार्य शुक्ल जी पर भी प्रश्न उठाते हैं ऐसा क्यों ?

रा. वि. शर्मा : उनके दिमाग में एक ही बात है तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और रामविलास शर्मा।

रामप्रकाश : तो क्या यह मानना चाहिए कि ये लोग प्रगतिशीलता को ही नहीं समझ पाये ?

रा. वि. शर्मा : बिल्कुल सही, सारी लड़ाई मार्क्सवाद को सही ढंग से समझने की रही है। मार्क्स के चिंतन में जहाँ परिवर्तन हुआ जहाँ वे स्वीकार करते हैं उसे लोग अनदेखी कर देते हैं। मार्क्स ने कहा कि भारत में अंग्रेज़ों के आने से पहले कोई क्रांति नहीं हुई और कहा कि भारत में अब एक प्रतिरोध केन्द्र कायम हो गया है। जो अंग्रेज़ों को बाहर निकाल सकता है और 1857-58 में यहाँ के संघर्ष

रा. वि. शर्मा : पर उन्होंने बराबर नज़र रखा और इसे स्वाधीनता संग्राम कहा। मार्क्स की लिखित अन्य बातों को छोड़कर लेनिन की बातें बार-बार दोहराते हैं वे जानते हैं कि ये सब लिखा गया उसे नज़र-अंदाज करके उसी को सच्चा मार्क्सवादी कहते हैं।

रामप्रकाश : प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द को लेकर जो वाद-विवाद चला है उसका मूल कारण क्या रहा ?

रा. वि. शर्मा : प्रगतिवाद शब्द शिवदान सिंह चौहान के द्वारा चलाया हुआ है। अंग्रेज़ी में *Progressivesim* जैसी कोई धारणा नहीं है। लोगों ने छायावाद के अनुरूप ही प्रगतिवाद चला दिया है। मैं प्रगतिशील साहित्य की व्याख्या इस रूप में करता हूँ कि प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवाद से प्रभावित है यह मार्क्सवाद से प्रभावित यथार्थवादीधारा है।

रामप्रकाश : यदि मार्क्सवाद से प्रभावित साहित्य की धारा को प्रगतिशील धारा कहेंगे तो प्रेमचन्द द्वारा साहित्यकार को स्वभावतः प्रगतिशील मानने की धारणा की व्याख्या किस प्रकार की जायेगी ?

रा. वि. शर्मा : इसे हम इस प्रकार देखेंगे - एक प्रकार का प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवाद के पहले का रहा जिसमें वाल्मीकि को देखा जा सकता है इसी धारा में प्रेमचन्द आते हैं यह धारा प्रगतिशील रही है जो मार्क्सवाद के पूर्व की प्रगतिशील धारा मानी जायेगी और प्रेमचन्द के समय

रा. वि. शर्मा : मार्क्सवाद पढ़ने के बाद की प्रगतिशीलधारा। यदि मार्क्सवाद को हटा दे तो अंग्रेज़ों के पहले की जो प्रगतिशील धारा है वह सामंत विरोधीधारा रही। रीतिवादी, अंग्रेज़ीराज कायम होने के बाद प्रगतिशील धारा सामंत विरोधी होने के साथ-साथ साम्राज्य-विरोधी भी है। प्रेमचन्द के पहले की जो धारा भारतेंदु के समय रही वह प्रगतिशील धारा मार्क्सवाद से प्रभावित नहीं रही। प्रेमचन्द के पहले की जो भारतेंदु व महावीर प्रसाद द्विवेदी की धारा रही वह सामंत-विरोधी या साम्राज्य-विरोधी रही लेकिन मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिशील काव्यधारा को सुसंगत रूप से सामन्तवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी होनी चाहिए।

0
0 0
0

परिशिष्ट "ख"

डॉ. रामविलास शर्मा का समग्र कृतित्व

1. अपनी धरती अपने लोग (तीन खण्ड) - 1995 - किताब घर
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना - 1973 - राजकमल
3. आज की दुनिया और लेनिन - 1992 - अनामिका
4. आर्य और द्रविड भाषा परिवारों का सम्बन्ध - 1979 - हिन्दुस्तानी एकेडमी
5. आस्था और सौंदर्य - 1990 - राजकमल
6. इतिहास-दर्शन - 1995 - वाणी
7. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प - 1982 - वाणी
8. केदार की कविताओं में राजनीति की निर्णायक भूमिका है - 1992 - पहल
9. घर की बात - 1983 -
10. चार दिन (उपन्यास) - 1994 - वाणी
11. निराला - 1971 - शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा
12. निराला (बाल-जीवनी) - 1989 - पी.पी. हाउस
13. निराला की साहित्य-साधना (तीन खण्ड) 1967, 1972, 1976 - राजकमल
14. नयी कविता और अस्तित्ववाद - 1989 - राजकमल
15. परम्परा का मूल्यांकन - 1981 - राजकमल
16. पंचरत्न - (संस्मरण) - 1980 - राजपाल एण्ड सन्स
17. पश्चिम एशिया की सभ्यता और ऋग्वेद - 1994 - दिल्ली विश्वविद्यालय
18. पाप के पुजारी (नाटक) - 1995 - वाणी
19. प्रगति और परम्परा - 1948 - किताब महल
20. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - 1986 - परिमल

21. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ - 1954 - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

22. प्रेमचन्द - 1994 - राधाकृष्ण

23. प्रेमचन्द और उनका युग - 1989 - राजकमल

24. बड़े भाई - 1986 - वाणी

25. भक्ति और वेदान्त §अनुवाद§

26. भारत की भाषा समस्या - 1978 - राजकमल

27. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी §तीन खण्ड§
1981 - राजकमल

28. भारत में अंग्रेज़ीराज और मार्क्सवाद - §दो खण्ड§ - 1982 - राजकमल

29. भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद - 1992 -
दिल्ली विश्वविद्यालय

30. भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ - 1986 - वाणी

31. भारतेन्दु युग - 1943 - युग मंदिर

32. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा - 1975 - राजकमल

33. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

34. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ -
1989 - राजकमल

35. भाषा और समाज - 1977 - राजकमल

36. भाषा, युग-बोध और कविता - 1994 - वाणी

37. भाषा, साहित्य और संस्कृति - 1959 - किताब महल

38. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण - 1989 - राजकमल

39. मार्क्स और पिछड़े हुए समाज - 1986 - राजकमल

40. मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज - 1986 - लोक भारती

41. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - 1984 - वाणी

42. मानव सभ्यता का विकास - 1991 - वाणी

43. मित्र संवाद - 1992 - परिमल

44. मेरे साक्षात्कार - 1994 - किताब घर

45. राजयोग {अनुवाद} - 1934

46. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि - 1990 - वाणी

47. लोक-जागरण और हिन्दी - 1985 - वाणी

48. लोक-जीवन और साहित्य - 1956 - विनोद पुस्तक मंदिर

49. विराम चिह्न - 1985 - वाणी

50. शेली और मार्क्स, क्रांतिकारी जनवाद का दर्शन और भारत - 1992, साम्य

51. सदियों से सोये जाग उठे - 1988 - वाणी

52. सन् सत्तावन की राज्य-क्रांति और मार्क्सवाद - 1990 - लोक भारती

53. संस्कृति और साहित्य - 1949 - किताब महल

54. स्वाधीनता संग्राम - बदले परिदृश्य - 1992 - दिल्ली विश्वविद्यालय

55. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य - 1956 -
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस

56. साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन - 1968 - अक्षरा

57. हिन्दी जाति का साहित्य - 1992 - राजपाल एण्ड सन्स

58. श्रम का सूरज {सम्पादित} - 1986 - परिमल

59. एसेज ऑन शेक्सपीयरियन ट्रेजडी - 1965 - शिवलाल अग्रवाल एंड कं., आगरा

60. स्टडीज इन नाइन्टीन्थ सेंचुरी इंग्लिश पोएट्री - 1967

<u>विशेष</u> : उक्त सूची में उपलब्ध संस्करण का सन् दिया गया है प्रकाशन का नहीं।

आधार ग्रन्थ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना - 1973 - राजकमल
2. कथा, विवेचना और गद्य-शिल्प - 1982 - वाणी
3. केदार की कविताओं में राजनीति की निर्णायक भूमिका है 1992 - पहल
4. निराला - 1971 - शिवलाल एण्ड कम्पनी - आगरा
5. निराला की साहित्य-साधना (तीन खण्ड) - 1967, 1972, 1976, राजकमल
6. नयी कविता और अस्तित्ववाद - 1989 - राजकमल
7. परम्परा का मूल्यांकन - 1981 - राजकमल
8. प्रगति और परम्परा - 1948 - किताब महल
9. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - 1986 - परिमल
10. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ - 1954 - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
11. प्रेमचन्द - 1994 - राधाकृष्ण
12. प्रेमचन्द और उनका युग - 1989 - राजकमल
13. भारतेन्दु युग -- 1943 - युग मंदिर
14. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा
    1975 - राजकमल
15. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
16. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ
    1989 - राजकमल
17. भाषा, युगबोध और कविता - 1994 - वाणी
18. भाषा, साहित्य और संस्कृति - 1959 - किताब महल
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी और जनवजागरण - 1989 - राजकमल

20. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि
1990 - वाणी
21. लोकजागरण और हिन्दी - 1985 - वाणी
22. संस्कृति और साहित्य - 1949 - किताब महल
23. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य - 1956
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
24. साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन - 1968 - अक्षरा
25. हिन्दी जाति का साहित्य - 1992 - राजपाल एण्ड सन्स
26. श्रम का सूरज (सम्पादित) - 1986 - परिमल
27. आस्था और सौन्दर्य - 1990 - राजकमल

विशेष : उक्त सूची में उपलब्ध संस्करण का सन् दिया गया है प्रकाशन का नहीं।

0
0 0
0

सहायक ग्रन्थ

	लेखक	कृति	संस्करण	प्रकाशक
1.	अग्रवाल केदारनाथ	- विचारबोध	- 1980	- परिमल, इलाहाबाद
2.	अवस्थी रेखा	- प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य	- 1978	- मैकमिलन, दिल्ली
3.	कश्यप श्याम	- हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना (संपादित)	- 1986	- राधाकृष्ण, दिल्ली
4.	को. आ. अंतोनोवा	- भारत का इतिहास	-	- प्रगति प्र., मास्को
5.	गुप्त मन्मथनाथ	- प्रगतिवाद की रूपरेखा	- 1952	- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
6.	चतुर्वेदी रामस्वरूप	- इतिहास और आलोचक दृष्टि	- 1982	- लोकभारती, इलाहाबाद
7.	चौहान कर्ण सिंह	- साहित्य के बुनियादी सरोकार	- 1982	- पी. पी. हाउस, दिल्ली
8.	वही	- साक्षात्कार (बातचीत)	- 1986	- राधाकृष्ण, दिल्ली
9.	चौहान चंचल	- जनवादी समीक्षा	- 1978	- पाण्डुलिपि, दिल्ली
10.	चौहान विद्या	- आधुनिक हिन्दी समीक्षा की प्रवृत्तियाँ	- 1987	- संचयन, कानपुर
11.	जैन निर्मला	- आधुनिक हिन्दी समीक्षा (संपादित)	- 1985	- साहित्य अकादमी, दिल्ली
12.	वही	- साहित्य का समाज-शास्त्रीय चिंतन (संपा)	- 1986	- दिल्ली विश्वविद्यालय
13.	वही	- हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी	- 1992	- राधाकृष्ण, दिल्ली

14. तिवारी विश्वनाथ प्रसाद - रामविलास शर्मा (संपादित) - 1985 - वाणी, दिल्ली

15. नवल नन्द किशोर - हिन्दी आलोचना का विकास - 1981 - राजकमल, दिल्ली

16. पाण्डेय मैनेजर - साहित्य और इतिहास दृष्टि - 1992 - अरुणोदय, दिल्ली

17. वही - साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका - 1989 - हरियाणा साहित्य अकादमी

18. पाण्डेय रामकृपाल - रामविलास शर्मा का आलोचना कर्म - 1990 - अम्बिकापुर

19. पामदत्त रजनी - भारत वर्तमान और भावी - 1956 - पी.पी.हाउस, दिल्ली

20. पाण्डेय शशिभूषण - मार्क्सवादी समाज शास्त्रीय और ऐतिहासिक आलोचना - 1992 - राधाकृष्ण, दिल्ली

21. पाण्डेय सुधाकर - निराला साहित्य सन्दर्भ, (संपादित) - 1973 - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

22. प्रसाद कमला - मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र (संपादित) - 1977 - संभावना, हापुड़

23. प्रसाद वासुदेव नन्दन - शुक्लोत्तर समीक्षा - 1978 - अनुपम, पटना

24. मदान इन्द्रनाथ - निराला (संपादित) - 1975 - लोकभारती, इलाहाबाद

25.	माचवे प्रभाकर	- हिन्दी आलोचना अतीत और वर्तमान	- 1988	- हिन्दुस्तानी अकादमी
26.	मिश्र रामदरश	- हिन्दी समीक्षा स्वरूप और सन्दर्भ	- 1974	- मैकमिलन, दिल्ली
27.	मिश्र शिवकुमार	- आलोचना के प्रगतिशील आयाम	- 1987	- पंचशील, जयपुर
28.	वही	- मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन	- 1973	- म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
29.	वही	- हिन्दी आलोचना की परम्परा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	- 1986	- वाणी, दिल्ली
30.	मिश्र सत्यदेव	- शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य साहित्यिक अवधारणाओं का प्रभाव	- 1988	- प्रकाशन संस्थान, दिल्ली
31.	मोहन नरेन्द्र	- लम्बी कविताओं का रचना विधान §संपादन§	- 1977	- मैकमिलन, दिल्ली
32.	रहबर हंसराज	- प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन	- 1987	- विभूति, दिल्ली
33.	रामबक्ष	- आलोचक रामविलास शर्मा	- 1989	- साम्य पुस्तिका, अम्बिकापुर
34.	राय महेन्द्रनाथ	- छायावाद और नवजागरण	- 1973	- राधाकृष्ण, दिल्ली
35.	वर्मा जनेश्वर	- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना	- 1974	- ग्रन्थम, कानपुर

36. शम्भूनाथ - तीसरा यथार्थ - 1984 - प्रभा प्र., इलाहाबाद

37. वही - भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण (सम्पादन) - 1986 - वाणी, दिल्ली

38. शर्मा गीता - डॉ. रामविलास शर्मा और परम्परा का मूल्यांकन - 1991 - वाणी, दिल्ली

39. शर्मा भक्तराम - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - 1980 - वाणी, दिल्ली

40. शर्मा मक्खनलाल - मार्क्सवादी काव्य शास्त्र की भूमिका - 1991 - प्रेमशिल्प, दिल्ली

41. वही - हिन्दी आलोचना का इतिहास - - शब्द और शब्द, दिल्ली

42. शास्त्री विष्णुकांत - तुलसीदास आधुनिक सन्दर्भ में - 1976 - बंगीया हिन्दी परिषद्

43. सिंह कुवरपाल - साहित्य और राजनीति - 1981 - भाषा प्रकाशन, दिल्ली

44. वही - साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद - 1985 - पी.पी.हाउस, दिल्ली

45. सिंह दिनेश प्रसाद - प्रेमचन्द विविध आयाम (सम्पादित) - 1983 - अनुपम, पटना

46. सिंह नत्थन - आलोचक रामविलास शर्मा - 1984 - विभूति, दिल्ली

47.	सिंह नामवर	- इतिहास और आलोचना	- 1986	- राजकमल, दिल्ली
48.	वही	- कविता के नये प्रतिमान	- 1983	- वही
49.	वही	- छायावाद	- 1993	- वही
50.	वही	- वाद-विवाद सम्वाद	- 1991	- वही
51.	वही	- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	-	- वही
52.	सिंह रमेशचन्द	- राजनीति और साहित्य	- 1992	- वाणी, दिल्ली
53.	सिंह रामविनोद	- हिन्दी समीक्षा : सीमायें और संभावनायें	- 1981	- अनुपम, पटना
54.	साही विजयदेव नारायण	- छटवाँ दशक	-	- हिन्दुस्तानी अकादमी
55.	सैनी राजकुमार	- यथार्थवाद और सौन्दर्य-शास्त्र	- 1988	- राजधानी, दिल्ली
56.	हंस कृष्णलाल	- प्रगतिवादी काव्य साहित्य	- 1971	- मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी
57.	दरदयाल	- आधुनिक बोध और विद्रोह	- 1979	- राजेश, दिल्ली
58.	त्रिपाठी	- हिन्दी आलोचना	- 1992	- राजकमल, दिल्ली

59. त्रिवेदी रामप्रसाद - प्रगतिवादी समीक्षा - 1964 - ग्रन्थम, कानपुर
60. श्रीवास्तव परमानंद - महादेवी ﴾संपादित﴿ - 1976 - लोकभारती, इलाहाबाद

विशेष : उक्त सूची में उपलब्ध संस्करण का सन् दिया गया है प्रकाशन का नहीं।

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आजकल - अंक : अक्तूबर, 1982

2. आलोचना - अंक : 6, 9, 18, 29, 37, 41, 44, 60-61, 72, 81, 82.

आलोचना : मार्क्स विशेषांक
लेनिन विशेषांक
रामविलास शर्मा विशेषांक

3. दस्तावेज - अंक : 15, 16, 31, 32, 56, 58, 23-24

4. नया आलोचक : अंक - जनवरी-मार्च, 1984

5. समीक्षा - जनवरी-मार्च, जुलाई-सितम्बर, 1991 ﴾वर्ष-26, अंक-2﴿

6. साक्षात्कार - अक्तूबर-दिसम्बर, 1988

0
0 0
0